श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमोनमः

स्वर्गस्थ पूज्याचार्यदेव श्री विजयहर्षसूरीश्वरेभ्यो नमोनमः

— श्री विजयलक्ष्मीसूरीश्वरजीविरचित —

उपदेश-प्रासाद

हिन्दी अनुवाद—तीसरा भाग

[व्याख्यान १३१ से २१०]

अनुवादक

कु. सुमित्रसिंहजी लोढा माडवगढ (मेवाड)

संशोधक और संपादक

पू. आ. श्री विजयामृतसूरीश्वरजी म. सा. के प्रशिष्य

मुनिवर्य श्री निरंजनविजयजी महाराज

तथा पं. श्री धीरजलाल डाह्यालाल महेता-अमदावाद

प्रकाशक

प. पू. संविग्नशाखाग्रणी आचार्यदेव

श्री विजयहर्षसूरीश्वरजीके शिष्यरत्न तपोमूर्ति पू. पं.

श्री मंगलविजयजी गणिवरके सदुपदेशसे

श्री वर्धमान जैन तत्त्वप्रचारक विद्यालय

मु. शीवगंज मारवाड (राजस्थान)

विक्रम स २०१६ मूल्य इस्वी स १९६०
वीर स २४८६ पठनपाठन प्र १०००

[प्राप्तिस्थान
श्री वर्धमान जैन तत्त्वप्रचारक विद्यालय
मु शीवगंज पोष्ट एरनपुरा रोड
मारवाड (राजस्थान)

आ हिन्दी उपदेश-प्रासादनो
पहलो अने बीजो भाग अवश्य वसावो
आनु वाचन तमारी धर्मश्रद्धानु पोषण करशे
नवु नवु घणु ज्ञान प्राप्त थशे अने जे धर्मक्रिया
तमे करता हशो तेमा भावनानु रउ पुरशे
आ शासनप्रभावक महाग्रंथ दरेक श्रावकोना
घरे अवश्य जोईए
दरेक प्रसिद्ध बुकसेलरो पासेथी मळशे

मुद्रक
श्री काशाभाइ ह पटेल,
श्री सहायता मुद्रण कलामंदिर
घीकांटारोड-अमदावाद.

— समर्पण :—

परम पूज्य भविमशाखाग्रणी सकलागमरहस्यवेदी
सुविहिताचार्य पूज्यपाद गुरुदेव १००८

श्री विजयहर्षसूरीश्वरजी महाराज

अनादि भवभ्रमणमां अज्ञानतिमिरथी भटकता एवा मारा
आत्माने आपे सम्यक् मार्गनुं दर्शन करावी
" मनुष्यभव ए मोक्षनी मोसमरूप छे "
ए समजावी चारित्रमार्गमां मन जोडी
उपकार कर्यो छे ते निःसीम उपकारी
एवा आपश्रीने आ ग्रन्थ समर्पण
करतां आनन्द अनुभवुं छुं

—समर्पक
पं. मंगळविजय गणि

बे बोल

आ उपदेश प्रासाद ग्रन्थ महागीतार्थ पूज्यपाद आचार्य श्री विजयलक्ष्मीसूरीश्वरजीए वर्षना त्रणसो साठ दीवस गणी हमेशा पोताना धर्मकर्तव्यनु श्रावकोने शास्त्रविधिए ज्ञान थाय, तेवा शुभ हेतुथी गद्यपद्य संस्कृत भाषामा रचेल छे धर्मजिज्ञासुने बहु उपयोगी समजी भावनगर श्री जैन धर्म प्रसारक सभा तरफथी गुजराती भाषामा पाच विभागमा छपायेल छे तेनी त्रण-चार आवृत्ति थवा छता हाल आ ग्रन्थ अलभ्य थयो छे जे ग्रन्थ वांचवाने लीधे पादरली वाला परम श्रद्धालु श्रावक श्री बाबुलाल तिलोकचदजीए घणो आनन्द अनुमन्यो अने धर्मश्रद्धा वधी जेथी श्रावकोने घणो उपयोगी जाणी छपाववा भावना थई अने ज्ञाननी भक्ति प्रभावना माटे हृदयनी उदारता जणावी गुजरातीमा घणी आवृत्ति छपायेली जाणी हिन्दी भाषामा प्रथम भाग पू आ श्री विजयनीतिसूरीश्वर पुस्तकालय तरफथी बहार पडेलो हतो तेथी जो तेना पछीना भागो पण हिन्दी भाषामा छपाय, तो हिन्दीभाषावाळा मरूधरभूमि वगरे देशोमा बहु लाभदायी थाय, तेम निर्णय थता बीजा भागमा एक हजार रुपीयानी मदद आपी आ कार्यमा प्रेरणा आपी छ तेमनी आ ज्ञानभक्ति माटे तमने धन्यवाद छे वर्तमान समयनी मोंववारी घणी मखत-हिसाबथी बीजी खुटती रकम माटे सहायनी जरूर हती, तेथी शिवगञ्ज श्री वर्धमान जैन तत्त्व प्रचारक विद्यालयना आगेवानोए पोतानी उदारता साथे उपरोक्त संस्थाद्वारा

छपाववानो निर्णय करी सघरी श्री गोमराजजी फत्तेहचदजी, कोठारी श्री इन्दारीमल पुनमचद पेगलोरी तथा श्रावक श्री छोगमलजी वेडा वाला, एम दरेकना ब्रणसो ब्रणसो रुपीया सहायरूपे मन्न छे तेमनी पण ज्ञानभक्ति प्रशसा योग्य छे बाकीनी खुटती रकम शिरगज श्री वर्धमान जैन तत्त्व प्रचारक विद्यालयना ज्ञानदाता तरफथी पूण करवामा आवेल छे आ ग्रन्थनो चोथो–पाचमो भाग पण शिरगज विद्यालय तरफथी सहायतानी अनुकुलताये छपाववा सहर्षे निर्णय करेल छे ज्ञानभक्ति माट पुन्यवान पुरुषोनी सहायता अने समयनी अनुकुलता मले पूर्ण करवा धारीये छीये आ ग्रन्थन हिन्दी भाषामा तयार करी परमार्थभाव ज्ञानभक्तिथी पोताना अमूल्य समयनो जे भोग उदयपुर वाला श्री सुमित्र सिहजी लोढाए आपेल छे ते बदल तेमने पण भूलाय तम नथी

विशेषमा शासनसम्राट् पूज्यपाद आचार्य श्री विजयनेमि सूरीश्वरजीना पट्टधर पूज्य आचार्य श्री विजयअमृतसूरीश्वरजी महाराज साहेबना शिष्यरत्न सेवाभावी मुनिवर्य श्री खाति विजयजीना शिष्यरत्न साहित्यप्रेमी मुनि श्री निरजनविजयजीए साहित्यनी अनकानक प्रवृत्ति होवा छता अमारी विनतीने मान आपी खूबज लागणीथी भाषादृष्टिए यथामतिए सशोधन करी प्रूफ तपासी आप्या छे ते माटे तेमना आभारी छीए. तथा श्री धीरूभाई डाह्याभाइए प्रूफो सुधारवा वगेरे प्रेसनी व्यवस्थामा सहाय आपी छे ते बदल तेमने धन्यवाद घटे छे

ली

प्रन्यास मगळविजय गणि

—. प्रकाशकीय निवेदन :—

आ महा ग्रन्थनो थोडाज वखत पहेला हिन्दी भाषामा बीजो भाग बहार पाडया पछी आ त्रीजो भाग तैयार करी श्री संघना हस्तकमलमा मुकता अमने घणो ज आनन्द थाय छे

परम पूज्य प्रातःस्मरणीय रैवताचलाद्यनेक तीर्थोद्धारक गुणगणविभूषित स्वर्गस्थ पूज्य १००८ श्री विजयनीतिसूरीश्वरजी महाराज साहेबना पट्टालङ्कार स्वर्गस्थ पूज्य आचार्यदेव श्री विजयहर्षसूरीश्वरजी महाराज साहेबना विनेयरत्न शुभनामधेय शान्तदान्तादिगुणालङ्कृत पूज्य पन्यासजी श्री मंगलविजयजी गणिवर्य महाराज साहेबे आ ग्रन्थनो हिन्दी अनुवाद छपाववा माटे लागणी राखी तैयार करावी मरुधर देश निवासीओ उपर महान् उपकार कर्यो छे एम कहीए तो अतिशयोक्ति भर्यु न ज कही शकाय कारण के आत्मकल्याणमा हेतुभूत अने शासनप्रभावक एवा आ ग्रन्थनु अनेक भव्य जीवो पठन-पाठन अने वाचन करी धर्मभावनामा आगळ वधशे ए निर्विवाद वात छे

आ ग्रन्थनो हिन्दी अनुवाद श्री सुमित्रसिंहजी लोढाए गुजराती अनुवाद उपरथी घणीज काळजीपूर्वक करेलो छे ते बदल तेमनो पण अमे आभार मानीए छीए

आ ग्रन्थनु संशोधन तथा प्रुफ शोधवानु काम अमोए पूज्य पन्यासजी महाराजसाहेब मारफत शासनसम्राट् श्री विजय-

नेमिसूरीश्वरजी म ना समुदायना अनेक ग्रन्थोना निर्माता पूज्यपाद प्रात स्मरणीय साहित्य-प्रेमी मुनि श्री निरजनविजयजी महाराज साहेबनी निश्रामा श्रा धीरजलाल डाह्याभाईने सोप्यु हतु उपरोक्त बन्ने व्यक्तिओए पोताना अमूल्य समयनो भोग आपी सू.मदृष्टि राखवापूर्वक अनेक उचित स्थानोए सुधारा-वधारा करवापूर्वक अमारु काम सारी रीते पूर्ण कर्यु छे त बदल अमे तेओनो पण खूब खूब आभार मानीए छीए

अन्तमा वाचकवर्ग आ ग्रन्थ घणी पोताना आत्मानु कल्याण साधे एज अभ्यर्थना

थोडाज टाईममा बाकी रहेल बे भागो पण हिन्दी भाषामा बहार पाडवा म ट अमे मनोरथ सेवीए छीए

एज ली

वि स २०१६ ना फागण सुद पांचम

श्री वर्धमान जैन तत्त्वप्रचारक विद्यालय
ठे विलायती वास, एरनपुरा रोड,
मु शिवगज, मारवाड-(राजस्थान)

-: प्रस्तावना :-

आ अपार संसारसमुद्रनी अन्दर सर्व जीवो मानसिक, वाचिक अने कायिक दु:खोने अनुभवता अहीथी तही भटके छे परन्तु उपकारी महापुरुषना बतावेला आलम्बन विना कोई पण तातनो पार पामी शक्ता नथी अनन्त उपकारी परमात्मा श्री वीतराग देवे पोताना अप्रतिपाती ज्ञानथी आवा जीवोना दु:खसमूहने जाणी संसार-सागरना किनाराने दर्शावतो, वैराग्य रसथी भरपूर, रत्नत्रयीनी आराधनामय, अने सर्ववादीओनो विजय करनार एवो, त्रिपदीना उपदेश तीर्थस्थापना वखते श्री गणधर भगवन्तोने आप्यो जेमा अक्षरो अल्प होवा छता, अर्थ सागरनी जेम गंभीर हतो, अने ते त्रिपदीना प्रभावेज श्री गणधर भगवन्तो श्रुतसागरनो पार पामी शक्या अने परोपकारपरायण एवा ते गणधर भगवन्तोए आगमोनी रचना करी के जे आगमोना गूढ तत्त्वो रूपी अमृतरसनु पान करी घणा जीवोए कल्याण साध्यु छे वर्तमान काले साधे छे अने भविष्य कालमा साधशे

भूतकालना मानवीओ-(आपणा पूर्वजो) वर्तमान युग करता बुद्धि आदि गुणोमा घणाज अधिक हता जेना कारणे आगमोना एकेक सूत्रोमा चारे अनुयोगो समुच्चयपणे वर्तता हता एटले के (१) चरणकरणानुयोग, (२) गणितानुयोग, (३) द्रव्यानुयोग, (४) धर्मकथानुयोग एम चारे अनुयोगोनु स्थान एकेक सूत्रोमा अस्खलित रीते हतु परन्तु भावी कालमा

आवनी स पयग अने बुद्धि आदिनी हीनता जाणी शासन प्रभावक पूज्यपाद आचार्य देवेश श्री आर्यरक्षितसूरीश्वरनी महाराजे आ चार अनुयोगोनु विभागीकरण कर्यु त्यारथी ते चारमांथी कथानुयोग पण स्वतन्त्र स्थानने पाम्यो

आबालवृद्ध जीवोने अतिप्रिय अने रुचिकारक एवो आ कथानुयोग प्रतिदिन धर्मवृद्धि करवामा सहायक बनवा लाग्यो तथा कथा द्वारा धर्मना रहस्यो समजावी धार्मिक संस्कारोनु सिंचन करवामा आ अनुयोग अत्युत्तम साधनरूप थयो तेज हेतुथी अनेक महात्माओए आवा ग्रन्थोनु सर्जन करी विश्व उपर महान् उपकार करेलो छे अने आज कारणथी पूज्य श्री विजयलक्ष्मीसूरीश्वरजी म साहेबे पण कथानुयोगथी भरपूर एवा आ ग्रन्थनी अपूर्व रचना करी छे

आ ग्रन्थकर्तानो जन्म आबु पासेना पालडी गाममा संवत् १७९७ ना चैत्र सुद पाचमें थयो हतो तेमना पितानु नाम हेमराज अने मातानु नाम आणद हतु तेमनु नाम सुरचद हतु तेओ ज्ञातिए पोरवाड वणिक हता संवत् १८१४ ना महा सुदी पाचमने शुक्रवारे श्री विजयसौभाग्य सूरीश्वरनी पासे तमणे दीक्षा लीधी ते वखते तेमनु नाम मुनि श्री सुविधिविजयजी राखवामा आव्यु तीव्र बुद्धिबले सारी विद्वता प्राप्त करी, त्यारबाद सीनोरमा तेओश्रीने आचार्यपदवी विभूषित करवामा आव्या ते वखते तेमनु नाम श्री विजयलक्ष्मीसूरिजी राखवामा आव्यु तेओ संवत् १८६८ मा पालीमा स्वर्गवास पाम्या तेओश्रीए आ ग्रन्थ उपरान्त

अनेक पूजाओ, स्तवनो, ढाळीया वगेरे कृतिओ पण बनावी छे तेमनु विशेष जीवनचरित्र जैनयुग अने ऐतिहासिक रसमाळा वगेरे ग्रंथोमाथी जिज्ञासुओए जाणवु

व्याख्याता पूज्य मुनिभगवन्तो आदिने सर्वदा उपयोगी थाय तेवा, अने प्रसगे प्रसग ते ते विषयनी पुष्टिने करता रोचक दृष्टान्तोथी भरपूर भिन्न भिन्न विषयो उपर आगम ग्रन्थोमाथी तारवीन वर्षना दिवसो प्रमाण = एटले के ३६० व्याख्यानोना समूहरूपे आ ग्रन्थ सुदर शैलीमा रचायो अने तेनो उपयोग आज सुधी पूज्यपुरुषो घणो करता आव्या छ अन वर्तमान समये पण करे छे

आ ग्रन्थ साधु, साध्वी अने श्रावक-श्राविकाना जीवनने उपयोगी एवा-उपदेशोथी परिपूर्ण होवाथी तेना नामनी आदिमा "उपदेश" शब्द गोठववामा आव्यो छे अने आखो ग्रन्थ एक मनोहर-महेल जेवो होवाथी अत "प्रासाद" शब्द गोठवी "उपदेश प्रासाद" एवा सार्थक नामथी आ ग्रन्थने अलकृत करेल छे

जेम प्रासादने दीर्घायु करवा माटे मजबूत स्तभो मूक वामा आवे छे तेवीज रीते आ ग्रन्थ पण "यावच्चन्द्र दिवाकर" सुधी पाठक वर्गो वडे पठन-पाठन करातो रहे तेज हेतुथी आ ग्रथमा २४ स्तम्भो बनाववामा आव्या छे

आ त्रीजा विभागमा १० थी १४ सुधीना पाच स्तभोना १३१ थी २१० सुधीना कुल ८० व्याख्यानो रसप्रद शैलीथी

परलो छे तमां श्रावकना आठमा व्रतथी शेष व्रतोनु स्वरूप पर्युषणादि अट्ठाईनु स्वरूप-प्रतिक्रमणना पर्यायवाची नामोनु स्वरूप तथा तीर्थयात्रा अने मूर्तिपूजा वगेरे घणा विषयोनु स्वरूप सुन्दर रीते आलेखायेलु छे

आ सपूर्ण सस्कृत ग्रन्थनो गुजराती अनुवाद पाच भागमा श्री जैनधर्म प्रसारक सभा तरफथी प्रकाशित थयो छे आ हिन्दी ग्रन्थना सशोधन वखते गुजराती पुस्तक अने सस्कृत प्रत मेळवता केटलेक ठेकाणे अर्थान्तर थयो होय तेम लागे छे तेथी करीने अमे प्रूफ सशोधन करती वखते गुजराती पुस्तक करता सस्कृत प्रत उपर मुख्य आधार राख्यो छे अने अमारा क्षयोपशम प्रमाणे आ ग्रन्थनु प्रुफ सशोधन थयु छे अमे एवो दावो करता नथी के आ ग्रन्थ परिपूर्ण शुद्ध ज छे कारण के छद्मस्थनु कार्य परिपूर्ण शुद्ध होई शकतु नथी ते माटे आ ग्रन्थना सपादनमा अनुवादक तरफथी, अने अमारा तरफथी जिन आज्ञा विरुद्ध जे काइ लखायु होय अथवा मुद्रण दोषथी स्थूल या सूक्ष्म जे कोई क्षति रही गई होय तो ते बदल पुन पुन क्षमा मागीए छीए

पू महाराजश्रीए आ शासन प्रभावक ग्रन्थनु सपादन मने सोंपी जे यत्किंचित् ज्ञान उपासना अने ज्ञान-भक्ति करवानो प्रसग मने आप्यो छे ते बदल पूज्यपाद प्रात स्मरणीय १००८ पू पन्यासजी श्री मगलविजयजी महाराज साहेबनो हु उपकार मानु छु

आ ग्रन्थनु संशोधन करवामा परम पूज्य परमोपकारी १००८ मुनि श्री निरंजनविजयजी महाराज साहेबे पोतानी साहित्य विषयक अनेक प्रवृत्तिओमा सतत प्रयत्नशील होवा छता पण खूबज प्रेमभावे अमूल्य समयनो भाग आपी मने घणीज सहाय करी छे तेमज उचित स्थानोए भाषाशुद्धि करवामा अने पत्रलालित्य लाववामां तेओए करेल मदद बदल हु तेओश्रीनो घणोज उपकार मानु छु

वाचकवर्गने प्रार्थना करु छु के आ ग्रन्थ आदिथी अन्त सुधी वांची, जीवनमा रहेली अनादि भवभ्रमणा कापी जीवनने पवित्र बनावशो एवी प्रार्थना साथे विरमु छु

ली

वि. सं. २०१६ ना फागण सुद पांचम

धीरजलाल डाह्यालाल महेता
ठे. झवेरीवाड, खडतरनी खडकी,
अहमदाबाद

अनुक्रमणिका

विषय — पृष्ठ

विषय — पृष्ठ

समाप्त

शुद्धिपत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१ अ	५	प्रव धामें	प्रव धामें
२ अ	४	रोंद्र	रौद्र
३ अ	१८	आत्त	आर्त्त
१४ अ	९	तरुराज	स्तरराज
१४ अ	९	ज घतही	ज घतरी
१४ अ	१०	वलममाधिरिति	वव समाधिरिति
१७ अ	२	तिथ्य	तिथ्य
१८ अ	२३	यशीरतु	यशीकर्तु
२३ अ	७	पाटिलाचार्य	पोटिलाचार्य
२६ अ	१२	उद्धशामें	उद्देशाम
२८ अ	२०	पुरिपेवप्रश्न	पुरिप च प्रश्न
३० अ	१	शब्दोसे	शब्दोसे
३२ अ	१५	प्रग्रथित	प्रग्रथित
३२ अ	१५	पनिचिन्तना	पचिन्तना
२	३	अधिकरणके	अधिकरणोंके
२	२३	पच्यात्	पश्चात्
५	३	लागोंसे	लोगोंसे
८	१९	वेदग्यव्य	वैदग्ध्य
९	१६	हुतोपम्	हुतापमम्
१०	१४	चरित्र	चारित्र
१३	१०	भा	भी
१३	१३	वृत्तो	वृत्तौ
१३	१४	१६७	१३७

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६	१४	हुजा	हुआ
१८	१	१३८	१३९
२०	८	दुप्रतिधान	दुप्रणिधान
२३	११	१३८	१३९
२३	१५	तच	तत्त्व
२५	१४	पलियस्त्र	पल्पियस्त्र
२५	१५	अणत	अणत
२९	९	१५०	१४०
३०	३	सामाकिक	सामायिक
३०	१७	घतक	घातक
३४	१०	पचेद्रिय	पचेन्द्रिय
३७	२	विघ्नानुष्टान	विधानुष्ठान
३७	८	करत	कहत
४०	२०	स्थापनाचाय	स्थापनाचार्य
४१	१३	पहिलेहे	पडिलेहे
४३	१	स्थापन	स्थापना
४४	२	कुडकोलिक	कुण्डकोलिक
४४	७	पश्चत्	पश्चात्
४४	१०	कहने	करने
४५	२१	कहा	कहा
४८	१२	पडिकम्मा	पडिकम्या
५१	२१	अभिग्रह्	अभिग्रह
५१	२३	प्रति	प्राप्ति
५३	२१	ययशक्ति	यथाशक्ति
५८	१२	साक्षेप	सापेक्ष

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६१	१४	विठा	बैठा
६१	६	(३)	(२)
६९	१२	भुने	भुजे
६९	१४	नहा	नही
७१	६	अकाल	दुकाल
८०	१०	साधमि यांके	साधर्मियोंका
८१	११	उदमागया	उदयमागया
८२	२२	आर की	ओरकी
८३	१४	रथका	रथको
८५	९	घडी	घडी
८९	२	कन्याको	कन्याको सुणकर
९४	७	नहा	नही
१०१	१	बह ता	वह तो
१०१	२	क्या	क्यों
१०३	३	अटमा	अटमी
१०४	-	पोषध	पौषध
१०७	८	भा	भी
११८	१४	देखा	देखी
१२३	६	आत्मक	आत्माका
१२३	१६	वचनोंका	वचनोंका
१३१	१८	दध	दूध
१३९	१५	छे	छ
१४१	१९	वदाके	वैदाके
१४२	२	प्रसन्त	प्रसन्न
१४४	•	पडिक्कमना	पडिक्कमता

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४४	११	पामइ	पोसह
१४६	५	सहस्म	सहस्स
१५२	११	रह	गय
१५५	१०	लगी	लगा
१५५	१४	वैक्रिप	वैक्रियरूप
१५७	७	वि नोने	विद्वानोने
१५८	३	प्रकार	प्रकार
१६१	२२	श्रावक	श्राविका
१६८	१०	पात्राकी	पात्राकी
१७४	१५	मनुष्यक	मनुष्यके
१७५	४	आमरणोंके	आभरणोंके
१७९	१४	दोनो	नानों
१७९	१८	अनशय	अनशन
१८२	८	कराता	करता
१९३	१०	माता	भाता
२००	१३	हो सकनेसे	होसकनेसे
२०१	१४	युगालिया	युगलिक
२०३	१९	आराधक	आराधक
२०४	१७	बाधिह	बाधित
२०५	१६	इस्त	ऐसे
२०७	१८	धुत्वा	श्रुत्वा
२२४	५	वा	वा
२३५	९	वर्णिव	वर्णित
२३७	१३	छुटे	छुटे
२३७	१८	मिथ्यात्य	मिथ्यात्व
२४०	१८	बाधित	बोधित

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३९१	१७	प्रतिमाणके	प्रतिमाणके
३९५	९	अद्ययन	अध्ययन
३९८	६	तीर्थं कर	तीर्थं कर
४००	१७	भूपत	भूपते
४०१	१४	प्रादुपन्ति	प्रादुष्पन्ति
४०१	२२	परमार्थका	परमार्थको
४०४		उल्ल धन	उल्ल घन
४०७	३	काढि	कोढि
४०७	४	सा	साढे
४०७	६	जसा	जैसा
४०९	७	करता	करती
४०९	२२	उध्वलोक	उध्वं लोक
४१२	७	ज्ञानद्वरा	ज्ञानद्वारा
४१३	११	अप्रतिष्ठान	अप्रतिष्ठान
४१५	७	पूर्वमं	पूर्वमे
४१५	१४	कोई दुष्ट	दुष्ट
४१८	८	महोधस्वरा	महोघस्वरा
४१९	११	ग गा	ग गादि
४१९	१४	क्षरोदक	क्षीरोदक
४२२	५	समय	समर्थ
४२२	२१	शक्रई द्र	शक्रन्द्र
४२५	१२	ईशानेइ द्र	इशानेन्द्र
४२७	८	कल्याणका	कल्याणकका
४२८	१४	शिविकाकी	शिविकाकी
४२९	११	शक्रद्र	शक्रेन्द्र
४३२	१६	विमाक	विपाक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४१४	२१	क्योंटिया	क्यातिरी
४१५	१८	करसेउ	करनेमें
४१७	११	अगेला	अकेला
४१८	४	चैम्यदृशक्री	चैत्यदृशकी
४४३	१३	अस	जैस
४४६	११	म्य तरका	क्य तरकी
४४६	२०	खडा	खडी
४४९	५	मितार	मितोप
४५०	१८	परतु	परन्तु
४५१	७	आवलिका	६ आवलिका
४५४	२०	ओध	ओप
४५६	१६	जती	जाती
४५९	८	प्रन	प्रस
४६०	१२	करुणा	करु या
४६१	१	निवर	विचार
४६१	५	हिब्बेने	डब्बेमें
४६४	११	पुण्मेत्रमें	पुण्यमेत्रमें
४६६	७	कुम्हार	कु मार
४६९	५	पालकिय	पालखिय
४७०	१०	दबे में	डब्बेमें
४७२	१७	धूतरस	घृतरस
४७४	१२	होंने	होने
४७४	२३	चिप्रवाल	चिह्नवाले
४७५	१०	वप	वर्ण
४८३	९	भयाध्या	भयोध्या
४८४	४	दुपमगुष्मा	दुषमदुषमा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४८५	१६	भा	भी
४८६	५	हाने	होते
४८८	११	स छजा	स ख्या
४९३	१	कुलचार	कुलाचार
४९३	७	समुद्रका	समुद्रकी
४९३	२०	हाथियाका	हाथियोंकी
४९४	१५	खङ्ग	खड्ग
४९५	३	दशार्म अपनी	देशमें और अपराजित नामनो पुत्र बीजा दशार्म अपनी
४९५	२०	मग	भग
४९६	१५	जबरि	जबकि
४९८	६	प चवन	प चानन
५००	१२	।वराधन	विराधन
५०७	६	कीनिय	कीजिय
५०७	१४	अशन्हिका	अष्टाह्निका
५०८	१५	इन्द्र	इन्द्र
५११	२०	सिघार	सिधारे
५१२	१७	छोडद	छोड दो
५१३	६	कल	काल
५१३	७	अर	और
५१३	९	शाकन्द्र	शक्रेन्द्र
५१३	१७	धमरुपी	धर्मरुपी
५१४	१०	पांचन्द्रियोंको	पांचे इन्द्रियोंको
५१४	१५	अघ पहोरमें	अर्ध पहोरमें
५१५	१४	मिताप	मिलाप

पूज्यपाद प्रात स्मरणीय १००८ श्री नीतिसूरीश्वरजी म साहब

शान्तौ चन्द्रसम शूतौ रविसम क्षान्तौ धरित्रीसम
सत्य धर्मसम धृतौ गुरुसम धैर्य हिमाद्रे सम ।
धर्माधर्मविचारचारुनिपुण शास्त्रस्वधर्मे रत
सोऽय नीतिसूरीश्वरो गणपति पायात्सदापायत ॥

पूज्यपाद प्रात स्मरणीय १००८ श्री हर्षसूरीश्वरजी म साहेब
वदे न भवतारक गुणनिधि कारुण्यरत्नाकरम
स्याद्वादान्वितरात्सुधानलधर ज्ञानक्रियाल कृतम् ।
पञ्चाचारविशुद्धम यमधर ध्याने च मम सदा
शान्त श्रीगुरुहर्षसूरिमवनौ स विप्रचूडामणिम् ।।

पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय १००८ पन्यास

श्री मंगलविजयजी गणिवर्य म. साहब

॥ ॐ अर्हं नम ॥

श्री उपदेश प्रासाद भाषान्तर

भाग ३

व्याख्यान १३१

उपरोक्त प्रबन्धोंमें अतिचार सहित दूसरे गुणव्रतका वर्णन किया गया था, अब अनर्थ दण्ड परिहार नामक तीसरे गुणव्रतका वर्णन किया जाता है।

शरीराद्यर्थदण्डस्य प्रतिपक्षतया स्थित.।
योऽनर्थदण्डस्तत्त्याग. तृतीय तु गुणव्रतम् ॥ १ ॥

भावार्थ —शरीरके लिये होने वाले "अर्थदण्ड" के प्रतिपक्षी—अनर्थदण्डका त्याग करना तीसरा गुणव्रत कहलाता है।

विस्तारार्थ —"जिससे प्राणी अनर्थ अर्थात् विना प्रयोजनसे पुण्यरूप धनके अपहार द्वारा दण्डित हो और पाप कर्मसे लिप्त हो उसे अनर्थदण्ड कहते हैं। वो मुख्यतया चार प्रकारका है —"(१) आर्त्त रौद्र रूप अपध्यान, (२) पापकर्मका उपदेश, (३) हिंसामें सहायक-उपकारी हो सके ऐसी वस्तुका दान और (४) प्रमादका आचरण।"

इनमेंसे अपकृष्ट अशुभ ध्यानको अपध्यान कहते हैं, ध्यान अर्थात् अन्तर्मुहूर्त तक मनकी स्थिरता अथवा एका-

मता रखना । श्री ठाणागमसूत्रमें कहा है कि, " अन्तरमुहूर्त पर्यन्त चित्तकी एकाग्रता छद्मस्थका ध्यान, एवं योगनिरोध केवलीका ध्यान कहलाता है ।" उस अपध्यानके आर्त्त एवं रौद्र दो भेद हैं । उनमें भी आर्त्तध्यान चार प्रकारका है । वे इस प्रकार हैं–अनिष्ट ऐसे शब्द, रूप, रस और गन्धादिके प्राप्त होनेसे तीनों कालमें भी कैसे मिल सके तो ठीक इस प्रकार उसके वियोगकी चिन्ता करना आर्त्त ध्यानक पहला भेद कहलाता है । इन्छित शब्दादि प्राप्त कर तीनों कालमें उनका विच्छेद–वियोग न हो इस प्रकार चिन्तवन करना आर्त्त ध्यानका दूसरा भेद कहलाता है । रोगादिककी वेदना प्राप्त होने पर वे कब चली जायगी इस प्रकार उनके वियोगकी चिन्ता करना आर्त्त ध्यानका तीसरा भेद कहलाता है और भोगे हुए काम भोगका स्मरण करना आर्त्त ध्यानका चोथा भेद कहलाता है । अथवा श्री आवश्यकनिर्युक्तिमें कहे अनुसार ध्यानशतककी वृत्तिमें तो कहा है कि—इन्द्र तथा चक्रवर्ती आदिके-रूपादिक और समृद्धिका वर्णन सुनकर अथवा देख कर उनकी प्रार्थना करने वाला अधम, निदान–नियाणा करना कि, "इस तप या दान आदिके प्रभावसे मैं देवेन्द्रादि बन सकूं" इसे आर्त्त ध्यानका चोथा भेद समझना चाहिये। यहा पर यदि किसीको यह शंका उत्पन्न हो कि, इस ध्यानको अधम क्यों कहा गया है ? तो उसके उत्तरमें बतलाया गया है कि, ऐसा ध्यान अत्यन्त अज्ञानसे मग्नतासे होता है इसे अधम ध्यान कहते हैं, क्योंकि ज्ञानीके अतिरिक्त दूसरोंको ही सांसारिक वैभवमें अभिलाषा रहती है ।

ध्यान आत्मवृत्ति वाला होनेसे अलक्ष्य है परन्तु वह लक्षणोंसे जाना जा सकता है। आर्त्त ध्यानके इस प्रकार चार लिंग या चिन्ह हैं। आक्रन्दन अर्थात् उच्च स्वरसे रुदन करना शोचन अर्थात् नत्रासे आसु गिराना, परिवेदन अर्थात् दीनतापूर्वक बार बार क्लिष्ट भाषण करना और ताडन अर्थात् छाती कुटना ये चार लिंग इष्ट वियोग और अनिष्ट के संयोगसे होने वाली वेदना द्वारा उत्पन्न होते हैं। इस ध्यानसे तिर्यञ्चकी गति प्राप्त होती है।

श्री आवश्यकसूत्रकी वृत्तिमें श्री हरिभद्रसूरीश्वरजीने कहा है कि "आर्त्त ध्यानसे तिर्यंच गति प्राप्त होती है, रौद्र ध्यानसे नरकगति होती है, धर्म ध्यानसे देवगति प्राप्त होती है और शुक्ल ध्यानसे मोक्षगति प्राप्त होती है।"

आर्त्त ध्यानसे संजती नामक साध्वी गृहगोधा-छीपकली-घरोली हो गई थी। यह ध्यान देशविरति नामक पांचवे गुणठाणे तक होता है। इस ध्यानसे नन्दमणियार श्रेष्ठीको मंडुक या दर्दुरपन प्राप्त हुआ था और सुन्दर श्रेष्ठी चन्दन घो हुआ था। इस प्रकार आर्त्त ध्यानका फल समजना चाहिये।

दूसरा रौद्र नामक अपध्यान आर्त्त ध्यानसे भी विशेष क्रूर अध्यवसाय वाला होता है। इसके भी चार भेद हैं। एकेन्द्रियादि प्राणियोंका ताडन करना, बींधना, बन्धन करना, अंकित करना और उनके प्राणोंका वियोग कराना। अपितु खड्ग, शक्ति, भाला आदिसे तथा वीर, भूत, पिशाच एवं मूठ आदिके प्रयोगसे और विष प्रयोगसे अथवा मन्त्र, तन्त्र

या यन्त्रादिकसे मनुष्यादिकको मार डालनेका क्रोधसे चिन्तवन करना यह हिंसानुबन्धि नामक रौद्र ध्यानका प्रथम भेद है।

चुगलीखाना, अनुचितवचन-चकार मकरादि बोलना, अपने गुणोंकी अधिकता कर दूसरोंके दोष प्रगट करना, तथा अपने इच्छित राजाकी जय सुनकर दूसरे राजाके लिए रौद्र बुद्धिसे कहना कि, "अच्छा हुआ, हमारे राजाकी खड्गमें ही जय है कि जिसने एक प्रहार द्वारा ही इतनोंको मार डाला" आदि बारबार बोलना अथवा उसका विचार करना यह मृषानुबन्धि नामक रौद्र ध्यानका दूसरा भेद है।

तीव्र रोषसे द्रव्यके स्वामीओंके मरणसे परद्रव्य हरण करनेके उपाय करने आदिक चिन्तन करनेको स्तेयानुबन्धि नामक रौद्र ध्यानका तीसरा भेद कहते हैं।

अपने द्रव्यकी रक्षाके लिए सर्वत्र शङ्कित हो शत्रु आदिको हनन करनेका प्रयत्न करना संरक्षणानुबन्धि नामक रौद्र ध्यानका चोथा भेद कहलाता है।

ध्यान शतकमें कहा गया है कि करना, कराना, अनु-मोदन करना और उस विषयमें बारबार विचार करते रहना —इस प्रकार चार प्रकारका रौद्र ध्यान होता है। अविरत-सम्यग्दृष्टि और देशविरति श्रावकों द्वारा सेवित-चिन्तित दुर्ध्यान अश्रेयकारी पापरूप और निन्दनीय है। इसके चार लिंग-चिन्ह हैं—पूर्वोक्त हिंसादि चारोंके विषयमें एक बार आदर करना प्रथम लिंग कहलाता है। इन चारोंमें बारबार

प्रवृत्ति करना दूसरा लिग, धुराख्र सुनकर अथवा अज्ञानवश हिसात्मक यज्ञादिमें धर्मबुद्धिसे प्रवृत्त होना तीसरा लिग, मरणान्त तक कालशौकरिक-कसाईके समान हिसादिसे निवृत्त नही होना चोथा लिग कहलाता है। अथवा विचारामृत सग्रह नामक ग्रन्थमे कहा है कि, "रौद्र ध्यानसे मृत्युको प्राप्त हुआ तन्दुल जातिका मत्स्य हिसादि दुष्कर्म किये बिना ही मात्र असत्य दुष्कर्म द्वारा पराभव करने वाले ऐसे दुरत नरकमे[1] जाता है।" रौद्र ध्यान पर कुरुड और उकुरुड नामक दो महाशयोंकी कथा प्रसिद्ध है कि —

कुरुड और उकुरुड मुनिकी कथा

कुणालानगरीके दरवाजेके खालके समीप कुरुड और उकुरुड नामक दो मुनि कायोत्सर्ग कर रहे थे। उनके प्रभावसे "उनको जलका उपसर्ग न हो" ऐसा विचार कर मेघ नगरके बाहर ही बरसता था। यह बात जान लोग एकत्रित हो उनसे उपद्रव करने लगे और कहने लगे कि, "तुम्हारी दोनाकी महिमासे नगरमें वर्षा नही होती। जिससे हमको अत्यन्त परिताप रहता है और यह हमारे लिये बडा अनिष्ट विनरूप है अत तुम यहासे निकल जाओ।" इस प्रकार बारबार कहनेसे उन दोनोंका ध्यानभग हो गया और उनका उन लोगों पर रौद्र ध्यान उत्पन्न हुआ इससे वे मानों इस प्रकार श्लोक बोले कि —

---

[1] तदुल मत्स्य सातवी नरकमें जाता है।

वर्ष मेघ कुणालाया, दिनानि दश पंच च ।
नित्य मुशलधाराभि-र्यथा रात्रौ तथा दिने ॥

भावार्थ :—" हे मेघ ! कुणालानगरीमें मूसलधार रात्रि-दिन पन्द्रह दिन तक बरस ।" इतना कहते ही मेघ बरसने लगा यह इतना बरसा कि उसके जल प्रवाहमे समस्त नगर बह कर समुद्रमें चला गया उसमें वे दोनों मुनि भी अशुभ ध्यान ध्यानेसे बह चले । इस प्रकार वे दोनों मुनि द्रव्य एव भावसे डूब कर नरकगामी हुए ।

आर्त्तादि अपध्यानसे मेघकी वृष्टि करा कर क्षमारहित-पनसे समस्त नगरको जलमे बहा कर वे दोनों मुनि अनर्थ दण्ड द्वारा नरक गतिको प्राप्त हुए ।

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ एकत्रिंशदुत्तरशततमः प्रबंध. ॥१३१॥

व्याख्यान १३२

अनर्थ दण्डके अन्य भेद

अनर्थ दण्डका दूसरा भेद पापकर्मका उपदेश करना है जैसे कि खेत खोदो, हल आदि तैयार करो बैलोंको पलोटो -दमो शत्रुओंको मारो, कन्याका विवाह करो । " आदि अन्य को उपदेश देना पापोपदेश कहलाता है । आगममें सुना है कि कृष्ण वासुदेव और चेडा महाराजाने अपने बालकोंका विवाह करनेका भी नियम किया था ।

अनर्थ दण्डका तीसरा भेद हिंसामें उपयोगी सिद्ध होने वाली वस्तुओंको देना है। हिंसामें उपयोगी उपकरण जैसे गाड़ी, शस्त्र, घटी, सांबेला, खाडणी, दातरडा, करवत, छुरी, कार्स्सी, कुशली, रेचक औषध, प्राणके कृमिका और गर्भ-नाशक मूलिया तथा क्षार आदि किसीको देना पाप बंधका हेतु है। इस विषय पर एक दृष्टान्त है कि, द्वारिका नगरीमें धन्वंतरि और वैतरणी नामक दो वैद्य रहते थे। उनमें धन्वंतरि कई सावद्य कर्म करता था और वैतरणी भी औषधियाम कई जीवोंकी हिंसा किया करता था, तथापि वह किसी भी रोगी मुनिको निर्दोष औषधि दिया करता था। एक समय कृष्ण वासुदेवने श्री नेमिनाथ प्रभुसे पूछा कि, "हे स्वामी! वैद्योंकी क्या गति होती है? लोकिक कहावत है कि, —

> कवी, चीतारो, पारधी, वली विशेषे भट्ट।
> गार्धी नरक सधारीआ, वैद्य देखाडे वट्ट ॥१॥

"कवि, चित्रकार पारधि, भट्ट और गाधी-ये नरक-गामी होते हैं और उनको वैद्य मार्ग बतलाता है।" इस नगरीमें धन्वंतरि और वैतरणी नामक दो वैद्य रहते हैं, उनकी क्या गति होगी?" प्रभुने उत्तर दिया कि—"हे राजन्! पहला सातवीं नरकमें अप्रतिष्ठान नामक प्रतरमें उत्पन्न होगा और दूसरा आरंभ करता है किन्तु आरंभ करते समय मनमें कुछ डरता है इससे मर कर वनमें वानर होगा, वहां किसी मुनिके पैरमें काटा लगा देख कर, जातिस्मरण ज्ञान

उत्पन्न होनेसे शल्योद्धारिणी औषधि द्वारा उनका उपचार करेगा, जिस पर मुनि उसे धर्मोपदेश करेंगे। उसे सुन पूर्वकृत पाप कर्मकी आलोचना कर तीन दिन तक अनशन कर सहस्रार देवलोकमें देवता बनेगा। वह धन्वंतरि वैद्य षट्काय जीवकी हिंसासे बार बार अप्रतिष्ठान नरकमें उत्पन्न होगा और वनस्पत्यादिकमें पर कांडीत अनन्तम भागमें बचा जायगा।' इस प्रकार अनर्थ दण्डका तीसरा भेद समझना चाहिये।

प्रमादका आचरण अनर्थ दण्डका चौथा भेद कहलाता है। प्रमाद-मद्यादि पांच प्रकारके हैं। उनको अंगीकार करना अनर्थ दण्ड है। उनके विषयमें आगममें कहा गया है कि —

मज्ज, विसय, कसाया, निद्दा विकहा य पंचमी भणिया।
ए ए पंच पमाया, जीवं पाडन्ति संसारे ॥ १ ॥

"मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा-ये पांच प्रमाद जीवको संसारमें भटकाते हैं।" मद्य अर्थात् मदिरा-उपलक्षणसे अथवा, मांस, सुराका और ताड़ी आदिका ग्रहण करना। मद्य लौकिक एवं लोकोत्तर दोनोंमें निंद्य है। कहा भी है कि, 'मद्यसे मोहित बुद्धि वाला पुरुष गाता है, भटकता है, यद्वा तद्वा बोलता है, रोता है, दौड़ता है, जिस किसीको पकड़ता है, क्लेश करता है, मारता है, हसता है, खेदित होता है और अपना हित नहीं समझता।" अपितु "संबोध सित्तरी" की वृत्तिमें कहा गया है कि, "मद्यसे मदोन्मत्त हुए कृष्णके पुत्रोंके दोषसे एकसो बत्तीस कुलकोटी

यादवोंकी द्वारिकापे चल आनेसे नाश हुआ था । ' उनमेंसे छप्पन कुलकोटी यादव नगरमें रहते थे और बहत्तर कुलकोटी यादव नगरसे बाहर रहते थे । उनमेंसे जिन्होंने चारित्र अंगीकार करना स्वीकार किया उनको श्री नेमिनाथ प्रभुके पास छोडकर शाम्बने जो द्वारिकासे दूर चले गये थे, उनको भी मीठा लाकर अग्निमें होम दिया था । कुलकोटीकी संख्या इस प्रकार है कि किसी एक यादवके घरमें एकसो आठ कुमार निकले एक कुलका एक कुलकोटी गिना जाता है ऐसा वृद्ध लोगोंका कथन है । तत्व तो बहुश्रुत ही जान सकते हैं । इस प्रकार प्रथम मद्य नामक प्रमाद समझना चाहिये।

विषय-य शब्दादिक पांच प्रकारका है । कहा है कि, 'जिसका चित्त विषयसे व्याकुल होता है वह पुरुष अपना हित-अहित नहीं जानता, इससे वह जीव अनुचित कर्म कर इस दुःखसे भरे संसाररूप अरण्यमें चिरकाल तक भटकता रहता है ।" इसे दूसरा विषय नामक प्रमाद समझना चाहिये।

कषाय अर्थात् संसारका आय या लाभ जिससे हो वह कषाय कहलाता है । इसके चार भेद हैं जिसका विशेष स्वरूप आगे बतलाया जायगा । यह कषाय नामक प्रमादका तीसरा भेद है ।

निद्रा अर्थात् ऊंघ । यह पांच प्रकारकी है । जिस निद्रासे सुखपूर्वक जागा जाय वह निद्रा कहलाती है । जिसमें दुःख पूर्वक जागा जाय वह निद्रा निद्रा, खडेखडे आवे वह प्रचला, चलते चलते आवे वह प्रचला प्रचला और वासुदेवसे अर्द्ध

उपन्न होनेसे शल्योद्धारिणी औषधि द्वारा उनका उपचार करेगा जिस पर मुनि उसे धर्मोपदेश करेंगे। उसे सुन पूर्वकृत पाप कर्मकी आलोचना कर तीन दिन तक अनशन कर सहस्रार देवलोकमें देवता बनेगा। वह धन्वन्तरि वैद्य षट्काय जीवकी हिंसासे बारबार अप्रतिष्ठान नरकमें उत्पन्न होगा और वनस्पत्यादिकमें भी कोटीके अनन्तम भागमें बेचा जायगा।" इस प्रकार अनर्थ दण्डका तीसरा भेद समझना चाहिये।

प्रमादका आचरण अनर्थ दण्डका चौथा भेद कहलाता है। प्रमाद-मद्यादि पांच प्रकारके हैं। उनको अंगीकार करना अनर्थ दण्ड है। उनके विषयमें आगममें कहा गया है कि —

मज्ज, विसय, कसाया, निद्दा विकहा य पंचमी भणिया।
ए ए पंच पमाया, जीव पाडन्ति संसारे ॥ १ ॥

"मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा-ये पांच प्रमाद जीवको संसारमें भटकाते हैं।" मद्य अर्थात् मदिरा-उपलक्षणसे भांग, मांस, सुरका और ताड़ी आदिका ग्रहण करना। मद्य लौकिक एवं लोकोत्तर दोनोंमें निंद्य है। कहा भी है कि, "मद्यसे मोहित बुद्धि वाला पुरुष गाता है, भटकता है, यद्वा तद्वा बोलता है, रोता है, दौड़ता है, जिस किसीसे पकड़ता है, क्लेश करता है, मारता है, हंसता है, खेदित होता है और अपना हित नहीं समझता।" अपितु "संबोध सित्तरी" की वृत्तिमें कहा गया है कि, "मद्यमें मदोन्मत्त हुए कृष्णके पुत्रोंके दोषसे एकसो बत्तीस कुलकोटी

यादवोंकी द्वारिकाने जल जानेसे नाश हुआ था।" उनमेंसे छप्पन कुलकोटी यादव नगरमें रहते थे और बहतर कुलकोटी यादव नगरके बाहर रहते थे। उनमेसे जिन्होंने चारित्र अंगीकार करना स्वीकार किया उनको श्री नेमिनाथ प्रभुके पास छोडकर शेषमसे जो द्वारिकासे दूर चले गये थे, उनको भी खीच लाकर अग्निमें होम दिया था। कुलकोटीकी संख्या इस प्रकार है कि किसी एक यादवके घरमें एकसो आठ कुमार निकले ऐसे कुलकों एक कुलकोटी कहा जाता है ऐसा वृद्ध लोगोंका कथन है। सत्य तो बहुश्रुत ही जान सकते हैं। इस प्रकार प्रथम मद्य नामक प्रमाद समझना चाहिये।

विषय-ये शब्दादिक पांच प्रकारका है। कहा है कि, "जिसका चित्त विषयसे व्याकुल होता है वह पुरुष अपना हित-अहित नहीं जानता, इससे वह जीव अनुचित कर्म कर इस दुःखसे भरे संसाररूप अरण्यमें चिरकाल तक भटकता रहता है।" इसे दूसरा विषय नामक प्रमाद समझना चाहिये।

कषाय अर्थात् संसारका आय या लाभ जिससे हो वह कषाय कहलाता है। इसके चार भेद हैं जिसका विशेष स्वरूप आगे बतलाया जायेगा। यह कषाय नामक प्रमादका तीसरा भेद है।

निद्रा अर्थात् ऊंघ। यह पांच प्रकारकी है। जिस निद्रासे सुखपूर्वक जागा जाय वह निद्रा कहलाती है। जिससे दुःख पूर्वक जागा जाय वह निद्रा निद्रा, खडे खडे आये वह प्रचला, चलते चलते आये वह प्रचला प्रचला और वासुदेवसे अर्द्ध

बलवाली कि जिसमें दिनमे चिन्तन किया हुआ अर्थ-कार्य सिद्ध हो उसे स्त्यानर्द्धि कहते हैं। इस प्रकार निद्राके पञ्च भेद हैं।

स्त्यानर्द्धि निद्राकी पूर्व कथित व्याख्या कर्म ग्रन्थकी चूर्णीमे कही गई है। परन्तु उतना बल वज्रऋषभनाराच संघयणकी अपेक्षासे समझना चाहिये। उसके सिवाय तो वर्तमानकालके युवकोंसे आठ गुना बल हो ऐसा कर्म ग्रन्थकी वृत्तिका अभिप्राय है। जित कल्पकी वृत्तिमे ऐसा लिखा है कि, "स्त्यानर्द्धि निद्राका जब उदय होता है, तब अति संक्लिष्ट परिणामसे दिनमें देखे अर्थको उठमें ही उठ कर सिद्ध करता है और उसका वासुदेवसे अर्द्ध बल होता है। उस निद्राके वियोग होने पर भी उस मनुष्यमे अन्य मनुष्योंसे तीगुना या चोगुना बल होता है। यह निद्रा नरकगामी जीवोंको ही होती है।" इस निद्राके विषयमें महाभाष्यकी २३४ वी गाथामें कई दृष्टान्त दिये गये हैं। उस गाथामें कहा गया है कि, "थीणद्धी निद्रा पर मांस, मोदक, हाथीदांत, कुंभार और वटवृक्ष इस प्रकार पांच उदाहरण जाने। वे उदाहरण इस प्रकार है कि —

कोई कणबी मांसभक्षी था। उसे किसी स्थविर साधुने प्रतिबोधित कर दीक्षा दी। इसके पश्चात् उसने किसी स्थान पर पाडेका वध होते देखा, जिसकी अभिलाषा करते हुए वह सो गया। रात्रिमें उसे स्त्यानर्द्धि निद्राका उदय हो आया, जिससे वह खडा हो किसी स्थान पर जा दूसरे

पाडेका वध कर उसका मांस भक्षण किया और जो अवशेष रह गया उसे भी अपने साथ लाकर उपाश्रयमें रखकर सो गया। प्रात काल उसने गुरुसे कहा कि मैंने ऐसा स्वप्न देखा है। उसी समय वो मास अन्य साधुओंकी दृष्टिमें आया अत उन्होंने कहा कि इस साधुको रात्रिमें स्त्यानर्द्धि निद्राका उदय होना प्रतीत होता है। फिर सबने मिल कर उसका ओघा-मुहपत्ति आदि मुनि लिंग छीन कर उसे विसर्जन कर दिया।

कोई साधु श्रावकके घर मोदक या लड्डु देख उसकी अभिलाषा करता हुआ सो रहा। रात्रिमे उस स्त्यानर्द्धि निद्राका उदय हो आया जिससे वह उठ कर उस श्रावकके घर पर गया और उसके मकानके किवाड तोड उन मोदकको खा अवशेष उपाश्रयमे लाकर पात्रमे रख कर सो गया। प्रात काल उठ कर उसने भी अपने स्वप्नका हाल गुरुसे कहा परन्तु पड हुए पात्रमे मोदक दिखाई दिये अत गुरुने उसे स्त्यानर्द्धि निद्रा आई जान विसर्जन कर दिया।

किसी साधुको हाथीने बहुत खेदित किया, इससे वह किसी प्रकारसे उस स्थानसे भग कर उपाश्रयमें चला आया और उस हाथी पर मनमे कोप करता हुआ सो रहा। रात्रिमे उसको स्त्यानर्द्धि निद्राका उदय हो जानेसे वह मुनि नगरके किवाड तोड, उस हाथीको मार, उसके दांत निकाल कर अपने स्थानमे लाकर सो रहा। प्रात काल उस बातका पता चल जानेसे उसे संयमके अयोग्य जान गुरुने उसे बाहर निकाल दिया।

भोजनके स्वाद आदिकी भक्तकथा–इस प्रकारकी विविध कथा विकथा कहलाती है।"

विस्तारार्थ —"राजाओंके युद्ध आदिका वर्णन राज कथा कहलाती है जैसे कि, "यह राजा भीमके सदृश युद्ध करने वाला है, यह चिरकाल पर्यन्त राज्य करे।" अथवा "यह राजा दुष्ट है अतः इसकी मृत्यु हो जाय।" आदि स्त्रीकथा अर्थात् उसके रूपकी निंदा अथवा प्रशंसा करना जैसे कि —

द्विजराजमुखी, गजराजगति, तरुराजविराजित जघत ही।
यदि सा दयिता हृदये वसति, क्वजप, क्वतपःक्वसमाधिरिति ॥

"इस स्त्रीका मुख चन्द्र सदृश है, इसकी चाल गजेन्द्र सदृश है, और इसकी जंघा कदलीके स्तंभ सदृश है, ऐसी स्त्री यदि हृदयमें बस जाये तो फिर जप, तप और समाधि किस गिनतीमें है?" उसकी निन्दा इस प्रकार है कि,— "इस स्त्रीकी गति ऊँट जैसी है स्वर कौए जैसा है पेट लम्बा है, नेत्र पीले हैं, कुशील वाली है और कटु भाषण करने वाली है तथा अभागिनी है। ऐसी स्त्रीसे क्या सुख मिल सकता है?" अपितु स्त्री सम्बन्धी देश, जाति, कुल, रूप, नाम, वेशभूषा और परिजनकी कथा करना भी स्त्रीकथा है। उनमसे देश सम्बन्धी स्त्रीकथा इस प्रकार है कि,— "लाट देशकी स्त्रीयें मधुर भाषी और रति क्रियामें निपुण होती है।" आदि जाति सम्बन्धी स्त्रीकथा इस प्रकार है

कि—" विधवा हुई ब्राह्मणकी स्त्रियोंको धिक्कार है, कि जो जीती हुई भी मरी के सदृश हैं और कई अन्य जातिकी स्त्रियोंको धन्य है कि जो सदैव आनन्दित रहता है।" आदि कुल सम्बन्धी स्त्रीकथा इस प्रकार है कि—" अहो! सोलकी राजपूतकी पुत्रियोंका साहस जगतमें सबसे अधिक है कि जो पतिकी अमान्य होने पर भी पतिकी मृत्यु हो जाने पर उसके पीछे अग्निमें प्रवेश करती है।" आदि, रूप सम्बन्धी स्त्रीकथा वह कहलाती है कि जिसमें स्त्रीके स्वरूपका वर्णन किया जाये। नाम सम्बन्धी स्त्रीकथा इस प्रकार है कि—"जैसा स्त्रीका नाम वैसा ही परिणाम" ऐसा कहना। नेपथ्य-वस्त्र सम्बन्धी स्त्रीकथा इस प्रकार है कि,—' उस स्त्रीके रूप, यौवन और पहनावेको धिक्कार है कि जो युवान पुरुषोंके नेत्रको आनन्दायक नहीं होते।" परिजन सम्बन्धी स्त्रीकथा इस प्रकार है कि—" इस स्त्रीका दास-दासियोंका परिवार चतुर और विनीत है।" आदि स्त्रीकथाका त्याग करना चाहिये।

देश कथा इस प्रकार है कि, "मालव देश रमणीय है कि जिससे उत्तम धान्य एवं सुवर्ण होता है और जहां कन्मिरावला भी सोनेकी पड़ी जाती है। गुर्जर भूमि दुर्गम और उग्र सुभट वाली है। लाट देश तो भील लोगोंसे भरपूर है। काश्मीरमें मूत्रता बहुत है और कुन्तल देश सुखमें स्वर्ग सदृश है।" इस प्रकारकी देश कथाको सद्बुद्धि वाले पुरुषोंको दुर्जनके संग सदृश छोड़ देना चाहिये।

भक्त कथा अर्थात् भोजनके स्वाद आदिकी कथा, वह इस प्रकार है कि, "इस पुरुषने विवाहादिक कार्यमें बहुत उत्तम रसोई की थी। उसमें जो शाक भाजी बनाई थी उसका स्वाद तो अभी तक कायम ही है।" अथवा "इसके बनाये हुए पकान्न आदि तो जला देने योग्य है एक पापड़के अतिरिक्त अन्य सब खराब कर दिये थे।" आदि

इस प्रकार विकथा चार प्रकारकी है। सम्बोध सित्तरी नामक प्रकरणकी वृत्तिमें सात प्रकारकी विकथा बतलाई गई है। उनमेंसे चार प्रकारकी तो उपरोक्तानुसार है, और शेष तीन इस प्रकार हैं कि—"श्रोताओंके हृदयको मृदु बना दे वह प्रथम मृद्वी कथा, कि जिसमें पुत्रादि प्रजाकी कथाका प्रधानपन होनेसे वो करुणा उत्पन्न करने वाली होती है—जैसे कि, "हा पुत्र! हा वत्स! हमको छोडकर तू प्रज्वलित अग्निमें क्यों कूद पडा" आदि। दूसरी दर्शन भेदिनी कथा—जिसमें कुतीर्थियोंके ज्ञानादिकके अतिशयपनकी प्रशंसा की जाती है—जैसे कि, "बुद्धका शासन सूक्ष्म अर्थको जानने वाला होनेसे श्रवण करने योग्य है।" आदि तीसरी चारित्र भेदिनी कथा—जिसमें व्रत ग्रहण किये अथवा व्रत लेनेमें तत्पर हुए पुरुषके चारित्र सम्बन्धी विचारका भेद किया जाता है। जैसे कि, "केवली रहित इस कालमें चारित्रके शुद्ध या अशुद्ध भावको कौन जानता है, अतः चारित्र लेना ही व्यर्थ है।" अपितु "इस समय तो चारित्र लेकर मात्र देहको कष्ट पहुचाना है क्योंकि गिरि शिखरसे गिरना सरल

है किन्तु चारित्रपालन सरल नहीं है।" अपितु ऐसा कहते हैं कि—

काले पमायबहुले, दसणनाणेहि वट्टए तित्थ ।
वुच्छिण्ण च चरित्त, तो गिहिधम्मो वर काउ ॥१॥

"अत्यन्त प्रमाद वाले इस कालमें दर्शन और ज्ञानद्वारा ही शासन प्रवृत्त होता है, चारित्रका तो विच्छेद हो गया है अत इस समय तो गृहस्थ धर्मका अगीकार करना ही श्रेष्ठ है।"

इस प्रकार पूर्वोक्त चारमें अन्य तीन विकथा मिला देनेसे सात प्रकारकी विकथा हो जाती है। परन्तु यहा तो शिर्षक श्लोकमें आवश्यकादि सूत्रमें प्रसिद्ध चार विकथा होने से चार प्रकारकी बतलाई गई है। विकथा पर एक रोहिणी नामक स्त्रीकी कथा प्रसिद्ध है कि —

विकथा पर रोहिणीकी कथा

कुन्दनपुरी नामक नगरीमे सुभद्र नामक एक श्रेष्ठी रहता था जिसके रोहिणी नामक एक बालविधवा पुत्री थी। उसने गुरुके पास अध्ययन कर कम्मपयडी आदि ग्रन्थोको अपने नामके सदृश कठस्थ कर लिये थे। वह सदैव त्रिकाल जिन पूजा और दो काल आवश्यक करनेमें कभी चूक न करती थी और सदैव पढनेसे वो एक लाखसे अधिक स्वाध्यायका पाठ करने वाली हो गयी थी।

इस बीच एक बार ऐसा हुआ कि, चित्तारूप नगरमे रहने वाले मोहराजाको उसके कुबोध नामक दूतने कहा कि, "हे महाराज! एक रोहिणी नामक स्त्री तुम्हारे बारबार अवगुण गाता है और तुम्हारे पुत्र राग और द्वेषकी, तुम्हारे मिथ्यात्व नामक मन्त्रीकी, और अठारह पापस्थानरूप सभा

सदाँकी निन्दा करती है।" यह सुनकर महाराजा अपनी सभाके समक्ष रुदन करता हुआ गद्गद् वाणीसे बोला कि, "अरे ! मेरी सभामें—मेरे परिवारमें कोई ऐसा नहीं है ? कि जो मेरी आज्ञाका खण्डन करने वाली रोहिणी कि जो मेरे वैरी चारित्र धर्मसे मिलनेको उत्सुक है उसे वशमें करके मेरे सुप्रत कर दे।" इस प्रकारके महाराजके वचन सुन कर एक कोनेमें बैठी हुई मोहराजाकी स्त्री दुष्टाभिकी सखी विकथा नामक योगिनी बोली कि,—"हे स्वामी ! ऐसे स्वल्प काममें आपको खेद करना योग्य नहीं है क्योंकि आपके एक एक सेवकने सम्यक्त्व, व्रत और श्रुतसे पूर्ण हुए जीवोंको भी उनके गुणासे निचे गिरा दिया है। वे अब भी आपके चरणोंके समीप रखके सदृश लौट रहे हैं। उनकी संख्या भी कोई नहीं जानता। इसके विषयमें जीवानुशासनकी वृत्तिमें कहा गया है कि, "मोहके प्रभावसे अनन्ता श्रुत केवली भी पूर्वगत श्रुतको भूल कर मृत्यु प्राप्त कर अनन्तकायमें चले गये और वहाँ रहे हैं।" अतः हे राजन् ! विचार करो कि रोहिणी तो किस गिनतीमें है। ऐसा कह मोहराजाकी आशिष प्राप्त कर विकथाने रोहिणीके मुह तथा चित्तमें प्रवेश किया जिससे रोहिणी तत्काल धर्मके सब कार्योंमें विकथा करने तथा अन्य द्वारा कराने लगी। एक बार साधुओं और साध्वीयोंने उसे शिक्षा दी कि, हे श्राविका ! तेरी जैसी सुज्ञातको परनिन्दा या विकथा करना योग्य नहीं है। कहा है कि –

यदीच्छसि वशीकर्तुं, जगदेकेन कर्मणा।
परापवादसस्येभ्य-श्चरन्ती गा निवारय॥

"यदि तेरेको मात्र एक ही कर्मसे इस जगतकी धरामें जानेकी अभिलाषा हो तो परनिन्दा रूप घासको चरने वाली तेरी वाणीरूप गायको उससे निवृत्त कर।" यह सुन रोहिणी क्रोधातुर हो उठी जिससे शनै शनै मोहराजाका सर्व सैन्य उसके पास एकत्रित हो गया और विकथाकी प्रशंसा करने लगा। इस सैन्यका बल पा रोहिणी विकथा करनेमें इतनी तल्लीन हो गई कि उसने सर्व पठन-पाठन तक छोड दिया था।

एक वार राज मार्गमे जाते हुए रोहिणी राजाकी रानी के दोषोंका कथन कर रही थी कि रानीकी दासियोंने उसे सुन लिया और सब वृत्तान्त राजासे जा कर निवेदन किया। उस पर राजाने रोहिणीके पिताको बुलवा कर पूछा कि, "हे श्रेष्ठी, तेरी पुत्रीने मेरी रानीका कुशीलपन कहा देखा और कैसे पता चलाया?" श्रेष्ठीने उत्तर दिया कि—"हे स्वामी! उस पुत्रीका दुष्ट स्वभाव है। इस पर कोपित हो राजाने उसे नगरसे बाहर निकाल दिया। अरण्यमे दुःखका अनुभव कर वह मृत्युको प्राप्त हुई और अपरिगृहीता देवांतर देवी हुई। वहां अन्य देवताओं द्वारा बहुत दुःखका अनुभवकर वहांसे च्यवकर एकेन्द्रियादिकमें अनन्तकाल तक भ्रमती रही। अन्तमे उसका जीव क्रम क्षयकर भुवनभानु केवली हुआ।

"इस प्रकार विकथा करने वाले प्राणियोंको महान् दुस्तर दुःख प्राप्त होता है यह जान कर भव्य प्राणियोंको वैराग्यादि द्वारा बन्धमुक्त करने वाली धर्म सम्बन्धी सत्कथा ही सदैव करना व विकथाको त्याग देना उचित है।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्ती त्रयस्त्रिंशदुत्तरशततमः प्रबन्धः ॥१३३॥

व्याख्यान १३४

सामान्यतया अनर्थदण्डके प्रमादाचरण नामक चौथे भेदका विशेष रूपसे पुनः कथन किया जाता है

जीवाकुलेषु स्थानेषु, मज्जनादिविधापनम् ।
रसदीपादिपात्राणि, आलस्यात् स्थगयते न हि ॥ १ ॥
उल्लोचं नैव बध्नाति, स्थाने महानसादिके ।
सर्वमेतत्प्रमादस्याचरणमभिधीयते ॥ २ ॥

भावार्थ —"जीवसे परिपूर्ण स्थानमें स्नानादि करना, रस पदार्थो तथा दीपक आदिके पात्रोंको आलस्यवश नहीं ढांकना और रसोई आदि स्थानमें चन्दरवा नहीं बांधना । ये सब प्रमादाचरण कहलाता है ।"

विस्तारार्थ —"जीवसे परिपूर्ण स्थान अर्थात् जहां लील-फूल, कीडियें, मकोडे तथा कुंथुवा आदि छ कायके जीवोंकी हिंसा होना संभव हो उस भूमि आदिमें स्नान करना योग्य नहीं है । एकादशी पुराणमें कहा गया है कि, —

गृहे चैवोत्तमं स्नानं जलं चैव सुशोधनात् ।
ततो त्वं पांडवश्रेष्ठ गृहे स्नानं समाचर ॥ १ ॥
कूपे ह्रदेऽधमं स्नानं नद्यामेव च मध्यमं ।
वाप्यां च वर्जयेत्स्नानं तटाके नैव कारयेत् ॥ २ ॥
पीडयन्ते जन्तवो यत्र जलमध्ये व्यवस्थिताः ।
स्नाने कृते ततः पार्थ पुण्यं पापं समं भवेत् ॥ ३ ॥

* * जलको छान कर घर पर स्नान करना उत्तम स्नान कहलाता है अत हे पाण्डव श्रेष्ठ ! तुम्हें घर पर ही स्नान करना चाहिये । (१) कुआ तथा द्रह-खण्डमें स्नान करना अधम स्नान है। नदीमें स्नान करना मध्यम स्नान है और वापी तथा तालाबमें स्नान करना तो कदापि योग्य नहीं है। (२) उष्ण स्नान करनेसे जल-जन्तुओंको पीडा उत्पन्न हो वहा स्नान करनेसे है पाप । पुण्य और पाप बराबर ही होता है । (३) अपितु ब्रह्माण्ड पुराणमें भी कहा गया है कि –

ज्ञान तीर्थं धृतिस्तीर्थं, दान तीर्थमुदाहृत ।
तीर्थानामपि यत्तीर्थं, विशुद्धिर्मनस परा ॥१॥

" ज्ञान तीर्थ है, धैर्य तीर्थ है और दान भी तीर्थ है किन्तु इन सब तीर्थोंका तीर्थ मनकी उत्कृष्ट शुद्धि है।" विष्णु पुराणमें भी कहा गया है कि, " जल स्वभावसे पवित्र है, उसको भी यदि अग्नि द्वारा उष्ण कर दिया जावे तो फिर उसकी पवित्रताकी बात ही क्या कहना। अत पण्डितजन उष्ण जल ही की इह शुद्धिको प्रशसा करते हैं । " मनु स्मृतिमें कहा गया है कि, " अतर्गत दुष्ट चित्त तीर्थ स्नान करनेसे कदापि शुद्ध नही हो सकता, वह तो सैकडा बार जलसे धोये मदिरा पात्रके सदृश अपवित्र ही रहता है । १

प्रथम शौच सत्य, दूसरा शौच तप, तीसरा शौच इन्द्रियोंका निग्रह और चौथा शौच सर्व प्राणियों पर दया करना है उसके पश्चात् पाचवा जल शौच है । " २

अपितु नागरखण्डमें भी कहा है कि, " दृष्टिसे पवित्र देखे हुए स्थानमें पैर रखना, वस्त्रसे पवित्र-छाने हुए जलको

पीना, सत्यसे पवित्र-मनने वचन बोलना और मनसे पवित्र आचरण करना चाहिये ।"

यदि गृहस्थको स्नान करना हो तो दिनमें जीव यतनापूर्वक करना चाहिये रात्रिमे कदापि नही । मूल श्लोकमें आदि शब्द है अत पेशाब एव दस्त भी निर्जीव भूमिकामे ही करना चाहिये आदि अपनी बुद्धिसे समझ लेवे ।

रस पदार्थ अर्थात् घी, तेल, दूध, दही, छास और जल आदिके पात्र दीपक और भोजन आदिके पात्रोंको आलस्य वश नहीं ढके जाय अथवा ढक कर जीव रक्षा न करे उसे प्रमादाचरण कहते हैं ।

महानस अर्थात् रसोई करने आदि स्थान पर उल्लोच या चन्द्रवा न बाधना भी प्रमादाचरण कहलाता है । क्योंकि गृहस्थको शयन, भोजन और पाक करनेके स्थान पर तथा जल, और दल, गुरु और धर्मके स्थान पर अवश्य उल्लेच बाधना चाहिये। रसोईघर आदि स्थान पर चदरवा न बाधने से जीव वधसे बहु दोष होना सभव है । इस पर एक दृष्टान्त इस प्रकार है कि —

उल्लेच बांधने पर मृगसुन्दरीकी कथा

श्रीपुर नगरमे श्रीषेण नामक राजा राज्य करता था। उसके देवराज-इन्द्र सदृश देवराज नामक एक पुत्र हुआ । वह राजकुमार दैवयोगसे यौवन वयमे ही कुष्टी हो गया । सात वर्ष तक कई उपाय किये गये किन्तु उसका रोग नही मिटा । अन्तमे वैद्योंने उसका उपचार करना बन्ध कर दिया । तत्पश्चात् राजाने ग्राममे यह घोषणा की कि, "जो इस

कुमारको नीरोगी बना देगा उसे मैं अपना आधा राज्य भेंट स्वरूप दूगा ।" उसी नगरीमें यशोदत्त नामक एक श्रेष्ठीके शीलादि व्रतमें आसक्त एक पुत्री थी उसने उसके हाथके स्पर्श मात्रसे राजकुमारका कोढ मिटा दिया । तिस पर राजाने उन दोनोंका पाणिग्रहण करा दिया और विवाह उत्सव कर, पुत्रको राज्याधिकारी बना स्वयंने दीक्षा ग्रहण की ।

एक वार उस नगरमें पोट्टिलाचार्य पधारे जिनको वन्दना करनेके लिए राजा एवं रानी दोनों गये । देशना सुन कर उन्होंने अपना पूर्व भव पूछा । गुरुजीने कहा कि, "वसन्तपुर नगरमें देवदत्त नामक एक व्यापारी था । उसके धनेश्वर आदि चार मिथ्यात्वी पुत्र थे । उसी समयमें मृगपुर नामक नगरमें जिनदत्त नामक श्रेष्ठीके मृगसुन्दरी नामक एक पुत्री थी । उसके तीन अभिग्रह थे, "श्री जिनेश्वरकी पूजा कर और मुनिको दान देकर भोजन करना और रात्रि भोजन कदापि नहीं करना । एक वार व्यापार करनेको एक धनेश्वर श्रेष्ठीपुत्र मृगपुरमें आया । उसने जिनदत्त श्रावककी पुत्री मृगसुन्दरीको देखा और उस पर मोहित हो गया । परन्तु "मैं मिथ्यात्वी हू इस लिये इस कन्याका पिता श्रावक मुझे इस कन्याको नहीं देगा ।" ऐसा विचार कर वह कपटी श्रावक बना और किसी प्रकार उसके पिताको समझा कर उस कन्याके साथ विवाह कर उसे उसके घर ले आया ।"

वहां पहुच धर्मकी ईर्ष्यासे उसने मृगसुन्दरीको जिन पूजा करनेका निषेध किया । उसको जिनपूजा किये बिना भोजन करनेका त्याग होनेसे उसके तीन उपवास हो गये । उसने

किसी मुनि-महाराजसे उसके विषयमे पूछा तो गुरुजीने लाभालाभ विचार कर कहा कि, "तू चुल्हे पर चन्दरवा बांध और भावसे पच तीर्थकी स्तुति कर, पांच साधुओंको नित्य दान दे कि, जिससे तुझे तेरे अभिग्रहानुसार फल मिल सकेगा।" उसने वैसा ही किया परन्तु उसके ससराने चुल्हे पर चन्दरवा देख कर धनेश्वरको कहा कि, तेरी इस स्त्रीने कुछ कामण किया है यह सुनकर धनेश्वरने उसके बांधे हुए उल्लोचको जला दिया। मृगसुन्दरीने फिर दूसरा उल्लोच बांधा उसको भी धनेश्वरने जला दिया। इसी प्रकार क्रमश सात उल्लोच जला दिये। फिर मृगसुन्दरीको उसके श्वसुरने कहा कि, "हे भद्रे! तू क्यो उल्लोच बांधनेका प्रयास करती है?" मृगसुन्दरीने उत्तर दिया कि, "जीव दयाके लिए" इस पर उसके श्वसुरने क्रोधित होकर कहा कि, "यदि तुझे चन्दरवा बांधना हो तो तेरे बापके घर चली जा।" उसने कहा कि,—"तुम सब कुटुम्ब सहित चलकर मुझे मेरे पियर छोड आवो" इस पर सब उसे छोडने चले। मार्गमे कोई ग्राम आया जहा सासराके पक्षके किसी सगेने सबकी महेमानदारी करनेके लिए उनको जीमानेको रात्रिमे रसोई बनाई। भोजन करनेके समय मृगसुन्दरीको बहुत कुछ कहा गया किन्तु वह भोजन करनेको नही उठी, इससे दूसरोंने भी भोजन नही किया। मात्र जिनके घर भोजन बनाया गया था उन्होंने ही सबने भोजन किया। वे सब रात्रिमे एकाएक मर गये। प्रात कालमे जब उनकी मृत्युका कारण ढूढा गया तो भोजन रांधनेके पात्रमे सर्प देखा गया। सबने विचार

किया कि रात्रिमे भोजन पकानेके समयमे धुएँसे आकुल-व्याकुल होकर सर्प अन्नके पात्रमे गिर गया होगा। इस पर सबोंने गगसुन्दरीको खमाया। गगसुन्दरीने कहा कि, "इस कारणसे ही मैंने चुल्हे पर चन्दरवा बाधा था और मैं रात्री भोजन भी नही करती जिसका प्रत्यक्ष कारण तुमने अभी देखा ही है।" जिसे सुनकर सबको प्रतिबोध हुआ। फिर वे सबने यह जानकर कि उसने उन सबोंको जीवित दान दिया है उसे कुलदेवीके सदृश मानने लगे। और उस ग्रामसे सब वापस लौटकर अपने घर चले आये। अनुक्रमसे गग सुन्दरी और धनेश्वर धर्मकी आराधना कर स्वर्गमे सिधाये। जहासे चव कर तुम राजा तथा रानी हुए हो। "हे राजन्! तूने पूर्व भवमे सात चन्दरवे जला दिये थे इससे तुझे इस भवमे मात्त वर्ष पर्यन्त कोढकी व्याधिसे प्रसित रहना पडा। इस प्रकार अपना पूर्वभव सुनासे उन दोनोंको जातिस्मरण हो आया अत उन्होंने अपने पुत्रको राज्य सौंप पोटिलाचार्य पास दीक्षा ग्रहण की और अन्तमे दोनो स्वर्ग सिधाये।"

"उपरोक्त कथा सुन जो धार्मिक श्रावक शयन स्थान, पानीके पनियारे और रसोडा आदिमे भावपूर्वक चन्दरवा बाधते हैं वे उत्तम देवलोकको प्राप्त करते हैं।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ चतुस्त्रिंशदुत्तरशततम प्रबध ॥१३४॥

व्याख्यान १३५

अन्य प्रमादाचरणका वर्णन किया जाता है

अनतप्रत्ययी अर्थं, प्रत्याख्यानेन वारयेत् ।
सर्वं प्रयत्नत: कार्यं, तथा द्युतादिसेवनम् ॥१॥
कुतूहलान्नृत्यपेक्षा, कामग्रथस्य शिक्षणम् ।
सुधीः प्रमादाचरण, एवमादि परित्यजेत् ॥२॥

भावार्थ —"व्रतलिए बिना अविरतिपनसे जो कर्मका बन्ध हो उसको पच्चक्खान आदि लेकर निवारण करना चाहिये । सब काम यत्न पूर्वक करने चाहिये । और जुआ आदि खेलना कुतूहलसे नृत्य देखना और काम ग्रन्थका अध्ययन करना आदि प्रमादाचरण सद्बुद्धि वाले मनुष्योंको त्याग देने चाहिये ।"

विस्तारार्थ —अविरतिद्वारा होनेवाले कर्मबंधका पच्चक्खाण द्वारा निवारण करना चाहिये । देव, मनुष्य तिर्यंच और नारकी-इन चार गतिरूप इस संसारमें भ्रमण करते हुए प्राणी जो जो देह, आयुष्य भोग कर अस्थि, लोह अथवा काष्ट रूप पूर्वमें छोडे हैं, उस शरीर द्वारा जब जब अन्य-जीवोंके वधरूप अनर्थ हो तब तब प्रथम छोडे शरीरका स्वामी जो जीव उसके अन्य भवके प्राप्त करलेने पर भी उसकी सत्ताका त्याग नही करता अर्थात् उसने देहको नही वोसराया इससे तब तक उससे होने वाले पापसे लिप्त होता है । अर्थात् जहां वो गया हो वहां वो पाप अविरति द्वारा आता है । यह तात्पर्य है इस विषयमें भगवती सूत्रके पांचवे शतकके छठे उद्देशामें कहा है की, "हे भगवन्त ! यदि कोई धनुषसे बाण छोडे और उससे जीवोंका हनन हो तो उस पुरुषको कितनी क्रियाये लगती है ? भगवंत उत्तर देते

है कि-हे गोतम ! जो धनुष द्वारा बाण चलाता है उसे पाच क्रियाये लगती है । कायिकी, अधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपातिकी और जिस जीवके देहसे वो धनुष आदि निपजे हो उस जीवको भी उन पाच क्रियाओंसे स्पर्श हुआ समझना चाहिये ।

यहा यदि किसीको शका हो कि, "जिसने बाण छोडा है उसे तो वे क्रियाये लगनी ही चाहिये किन्तु अन्य जीवोंको क्योंकर लग सकती है । क्योंकि वे तो मात्र पापरूप है और उनका अचेतनपन है । अपितु जो ऐसा कहा जायकि मात्र शरीरसे भी क्रिया लगती है तो सिद्ध हुए जीवोंको भी प्रथम छोडे हुए देहके लिए बलात्कारसे बध होना चाहिये । क्योंकि सिद्ध हुए जीवका देहभी किसी स्थान पर जीवघातका हेतु होगा । अपितु जैसे धनुष आदि पापके कारण हैं उसी प्रकार उस जीवके देहसे हुए पात्र दड आदि जीव रक्षाके भी हेतु है । तो उनके पुण्यका कारण होनेसे उनका पुण्य भी उस जीवको लगना चाहिये । इस प्रकार बराबर न्याय होना चाहिये ।" इसका उत्तरमे कहा गया है कि, "यहा तो *अविरतिपनके* भावसे बध होता है और सिद्ध हुए जीवको तो सर्व सवर होनेसे विरति है इससे उनको बध होनेकी सभावना ही नही रहती । तथा पात्रादि जिसके देहसे बने हुए है उन जीवोंमे उस सम्बधके विवेकाभिका अभाव है इससे उनको पुण्यका बध नहीं होता । अथवा श्री भगवती सूत्रके वचन होंसे सर्व सत्य है । ऐसा समझे । अत अन्य भवान्तरमे शस्त्रादिरूप हुए देहका भी अधिकरणपन है ऐसा जानकर अवश्य जिन जिनका त्याग हो सके उन उनका प्रत्याख्यान करना ऐसा भावार्थ है ।

अपितु यत्नसे सब क्रियाओंको छोड देना अर्थात् अपने कार्यके लिये किया गया हो तो भी कार्य समाप्त हो जाने पर जलती हुई लकडी को फिर बुझा देना चाहिये। यहां यदि किसीको शका हो कि, "अग्निके बुझानेमे भी दोष है फिर क्योंकर बुझाई जाये ?" यह बात सच्च है परन्तु अग्नि दश मुहनाला शस्त्र होनेसे उससे अन्य त्रसादि जीवोंका वध होता है जिसके रोकनेके लिए उसे बुझा देना चाहिये।

अपितु विना शुद्ध किये इधन, छाणा, धान्य और पानीको कार्यमे लेना, मार्गमे हरितकाय या हरे घास पर चलना, व्यर्थ पुष्प और पत्ते आदि तोडना, भीतमेंसे ढेच नेकी भूगल करना, विना ध्यान रक्खे किवाडके अर्गला लगाना अप्रासुक लवण या कच्चा नमक उपयोगमे लेना व्यर्थ वृक्षकी शाखा तथा मृतिकाको हटाना, वस्त्रमे रहे जू आदि जीवोंको देखे बिना धोबीको देना और श्लेष्म गलफा -थूक आदि डालने पर उसे थूक या राखसे नही ढकना आदि सर्व क्रिया प्रमादाचरण हैं अत इन सब क्रियाओंको बिना यत्नके नही करना चाहिये। गलफा आदिमे एक मुहुर्त पश्चात् अनेक जीवोंकी उत्पत्ति हो जाती है। श्री लोकप्रकाश ग्रन्थमे कहा है कि —

पुरिषेप्रश्रवणे, श्लेष्मसिंघाणयोरपि ।
वातेपित्तेशोणिते च, शुक्रे मृतकलेवरे ॥१॥
पुंस्त्रीपुंससयोगे, शुक्रपुद्गलविच्युतौ ।
पुरनिर्द्धमने सर्वेष्वपवित्रस्थलेषु च ॥२॥

"१ विष्टामें, २ पेशाबमें, ३ श्लेष्म-गलफामें, ४

लीटमें, ५ वमनमें, ६ पित्तमें, ७ रुधिरमें, ८ वीर्यमें, ९ मुर्दोमें, १० परूमें, ११ स्त्री-पुरुषके संयोगमें, १२ वीर्य स्खलित हुएमें, १३ नगरकी खाल (मोटी-गटर)मे, १४ अन्य सब अपवित्र स्थानोंमें-गर्भज मनुष्य सम्बन्धी इन वस्तुओंके विषयम अर्थात् पूर्वोक्त १४ स्थानोंमें अन्तमुहूर्तकी आयुष्यवाले, एक अंगुलके असंख्य भाग जैसे देहवाले और सात या आठ प्राणको धारण करने वाले असंख्यात समुर्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं। "संग्रहणीकी टीकामें "नव प्राण वाले जीव उत्पन्न होते हैं।" ऐसा भी कहा गया है। तथा श्री पन्नवणा सूत्रमें श्यामाचार्यने भी ऐसा ही कहा है। अतः श्लेष्म-गलफा आदिको यत्नापूर्वक ढक देना चाहिये।

जुए आदि खलना-आदि शब्दसे सात दुर्व्यसनका सेवन करना भी माना जा सकता है अतः इन प्रमादाचरणको त्याग देना चाहिये। कहा भी है कि, "जुआ, मांस भक्षण, सुरापान, वेश्यासंग, शिकार, चोरी और पर स्त्री सेवा-ये सात दुर्व्यसन कहलाते हैं ये प्राणीको घोरातिघोर नरकमें ले जाते हैं "जुए आदि व्यसनसे प्राणीको पद पद पर विपत्ति प्राप्त होती है। इस विषय पर निम्नकथा कहा है कि—

जुए पर पुन्दर राजाकी कथा

सिद्धपुर नामक नगरमें पुन्दर नामक राजा राज्य करता था। वह सुन्दर नामक किसी जुआरीके संग जुआ खेलने लगा। उसे देख उसकी रानीने एकबार अमृतमय वचनोंसे राजासे कहा कि, "हे राजा! जुए खेलनेसे नल राजा और पाण्डव भी पद पद पर निन्दित होकर दुःखी हुए हैं अतः सर्प जिस प्रकार अपनी कंचुकीको छोड़ देता है उसी प्रकार

आपने भी इस जुऐ-बाजीका त्याग कर दो आदि शब्दोंसे उसे बहुत निवारण किया किन्तु राजाने जुआ खेलना बन्द नहीं किया। एकबार जब राजा उसके छोटे भाईके साथ जुआ खेलते खेलते अपना राज्य हार गया तो उसके छोटे भाईने उसे उसके नगरसे बाहर निकाल दिया।

राजा अपनी रानी और एक कुमारको साथ लेकर अरण्यमे चला गया। मार्गमे जाते हुए किसी भीलके साथ उसने यह भी शरत की कि, "यदि मै तेरे साथ जुएमे जीत जाउ तो तेरी स्त्रीको मै ले लूगा और यदि हार जाउगा तो मेरा सिर तुझे दे दूगा।" ऐसा कर उसके साथ जुआ खेलने लगा जिसमे राजाकी जीत हुई अत कज्जलसे बनाई सदृश काली और दुर्भाग्यसे बनाई सदृश कुरूपा भीलडीको साथ लेकर राजा आगे बढा। मार्गमे जाते हुए नीच भीलडीको विचार आया कि, "यह रानी मेरी उप स्त्री-शोक्य होनेसे मेरी वैरिणी है अत इसको मार देनेमें ही मुझे सुख है।" ऐसा विचार कर जल भरनेका बहाना बना रानीको कुएके समीप ले जाकर उसे कुएमे डाल दिया और पुनम्र राजाको जाकर कहा कि तुम्हारी रानी तो किसी अन्य पुरुषको लेकर चली गइ है। राजा उसके वियोगसे अत्यन्त खेदित हुआ और भीलडी तथा कुमारको लेकर चल दिया। मार्गमे एक बडी नदी आई। भीलडी और कुमार दोनोंको एक साथ लेकर नदी उतारनेम असमर्थ होनेसे प्रथम भीलडीको लेकर राजाने नदीमे प्रवेश किया। जहा कोई मगर राजाको गल गया और भीलडी नदीमे बह कर मर गई। राजाके भारसे मगर अधिक न चल सका इससे किनारे पर

आकर पड़ रहा । धीवर लोगोंने उसे पकड़ कर चीरा तो उसके उदरसे राजा निकल आया । शीतल पवन करने पर उसे चेत आया तब धीवर लोग उसे अपने घर ले गये और दास बनाकर रक्खा । एक बार राजाने मत्स्य लेनेको नदीमें प्रवेश किया तो बह कर मृत्युको प्राप्त हुआ ।

इधर कुएमे पड़ी रानीको किसी मुसाफिरोंने कुएसे बाहर निकाला मुसाफिरोंके सार्थपतिने उससे पूछा कि तो कौन है ? इस पर उसने अपना यथार्थ वृत्तान्त सच्चसच्च कह सुनाया जिस पर सार्थपतिने उसे अपनी बहिन बना अपने साथ रक्खा ।

नदीके किनारे जो कुमार था उसको कोई विद्याधरी वैताढ्य पर्वत पर ले गई और उसे अनेक विद्याओंका पात्र बना अनुक्रमसे उसे उसने पिताके राज्य पर बैठाया ।

एक बार वह सार्थवाह सिद्धपुर नगरमे आया । रानीने अपना नगर जान पुरुषका वेष धारण कर सार्थपतिके साथ सभामे गई । वहा अपने पुत्रको देख अत्यन्त हर्षित हुई । राजाने पुरुषवेषी स्त्रीको देखकर सार्थपतिसे पूछा कि यह कौन है ? इस पर सार्थपतिने उसका सारा वृत्तान्त कह सुनाया । कुमारने हर्षित होकर अपने सभाजनोंके समक्ष उसके चरणोंमे प्रणाम किया और अपनी माताको सुख–विलासमय बनाया । फिर राजाने नगरमे जुआ आदि अनेक दुर्व्यसन बन्द करनेकी घोषणा की और स्वय भी अर्थ दण्डसे विराम पा स्वर्ग सिधाया ।

"सर्पक्रीडा जैसी द्यूतक्रीडा कौन पुरुष करना चाहेगा ? कि जिसके लिये पुरन्दर राजाको भी पद पद पर विपत्ति उठानी पड़ी ।" जुआ खेलनेसे हास्य, वाचालता–वाचालपन

और कठोर भाषण आदि दुर्गुण अवश्य प्राप्त हो जाते हैं जिससे वैरकी भी वृद्धि होती है। पूर्वमें राजा कुमारपालके प्रसंगमें द्यूतक्रिडा करते हुए उसके बहनोई के, "मार मुंडेको" ऐसा हास्यमें बोल जानेसे महान् अनर्थको प्राप्त हुआ था जिसका वर्णन इसी ग्रन्थमें अन्यत्र किया गया है। अत: जुआ आदि व्यसनके दुःखोंके देनेवाले और प्रमादाचरण है ऐसा जान त्याग कर देना चाहिये।

कौतुकसे भी नृत्य नहीं देखना चाहिये। उपलक्षणसे गीत, वेश्या आदिका नाच, भांड भवाई और ईन्द्रजाल आदि भी नहीं देखना चाहिये क्योंकि ये पापके उत्पन्न करने वाले हैं। इसी प्रकार काम ग्रन्थ–कोकशास्त्र, रतिशास्त्र आदि उनमें बतलाये आसन, मन्त्र, औषधि और कामोद्दीपन प्रयोग भी नहीं सिखने चाहिये। आदि प्रमादाचरणको धर्मज्ञ पुरुषको सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। यह दूसरे श्लोकका अर्थ पूर्ण हुआ।

अनर्थदण्डोऽपनिचिन्तनादिकश्चतुर्विधोऽग्रग्रथित: सदागमे।
तत: प्रमादो गुणहानिहेतुको विशेषमुच्यश्चरमे गुणव्रते ॥१॥

भावार्थ —"उत्तम जिनागममें अपध्यान आदि चार प्रकारके अनर्थ दण्ड बतलाये गये हैं उनमेंसे प्रमाद गुणकी हानि करनेमें हेतु रूप है अत अन्तिम गुणव्रतके विषयम उसका विशेष रूपसे त्याग करना उचित है।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ पञ्चत्रिंशदुत्तरशततम प्रबन्ध ॥१३५॥

इति नवम स्तंभः समाप्तः

॥ श्री जिनाय नम ॥

श्री सद्‌गुरुभ्यो नम.

"श्री उपदेशप्रासाद भाषान्तर"

भाग ३

स्थंभ १०

व्याख्यान १३६

अनर्थदंड विरमण नामक आठवं व्रत संबंधी त्याग करने योग्य पांच अतिचार।

मयुक्ताधिकरणत्वमुपभोगातिरिक्तता ।
मौखर्यमथ कौकुच्य, कदर्पोऽनर्थदंडगा ॥ १ ॥

शब्दार्थ —"निरंतर अधिकरण एकत्रित कर तैयार रखना, अपने उपभोग में आ सके उससे विशेष वस्तुएं तैयार रखना, मुखरपन-अतिवाचालपन करना, कुचेष्टा करना और कामोत्पादक वचन बोलना-ये पांचों आठवे व्रत के अतिचार कहलाते हैं।

विस्तरार्थ —इन पांचो अतिचारका स्वरूप इस प्रकार है कि –जिससे आत्मा पृथ्वी आदि मे अधिकृत हों उसे अधिकरण कहते हैं। उसे संयुक्त अथवा अन्य अधिकरणोंके साथ मिलाकर रखना, जैसे कुदालीके साथ सावल, हलके साथ उसका फाल, धनुषके साथ बाण, गाडीके जुडा जुडा, चक्कीके एक पाटके साथ दूसरा पाट, और कुल्हाडीके साथ उसका दस्ता –आदिके संयुक्त कर रखनेसे वे अनर्थ क्रिया करने योग्य होते हैं। उसको सज्ज–तयार कर रखना संयुक्ताधिकरण, इसका भाव संयुक्ताधिकरणत्व कहलाता है। इसके विषयमें आवश्यक बृहद्वृत्ति मे कहा गया है कि "श्रावक को गाडी आदि अधिकरण एकत्रित कर नही रखने चाहिये।" आदि शब्द से यह प्रयोजन है कि मसोता, फरसा आदि भी तैयार नहीं रखने चाहिये क्योंकि यदि ये अधिकरण तैयार न हो तो सुखपूर्वक दूसरों को प्रतिषेध किया जा सकता हैं (मना किया जा सकता है)। अग्नि भी दूसराने अपने घर पर जला कर तयार की हो उसमेंसे लेना, तथा घर, दुकान आदिका आरम्भ व परगाम प्रत्ये गमन स्वय को प्रथम नहीं करना चाहिय। बाजार से बिना वस्त्र से ढके सर्व लोगोंकी दृष्टि पडे इस प्रकार शाकभाजी आदि भी नहीं लाना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से परपरा से पाप की वृद्धि होती है। कहा है कि —

कार्ये शुभेऽशुभे वापि, प्रवृत्तिर्यं कृतादित ।
ज्ञेयास्ते तस्य कर्त्तार पश्चादप्युपचारत. ॥१॥

"शुभ एवं अशुभ कार्य में जो प्रथम प्रवृत्ति करते हैं वे उस के पश्चात् होनेवाले शुभाशुभ कार्य के भी कर्त्ता हैं ऐसा उपचार से समझ।" यह हिंसाप्रदानरूप अनर्थदंड का प्रथम अतिचार है।

उपभोग में—उपलक्षण से स्नान, भोजन और वस्त्र आदि भोग्य वस्तु अधिक तैयार रखना और तैल से शरीर को मर्दन करना यह प्रमादाचरण संबंधी दूसरा अतिचार है।

मुखर अर्थात् बहुत वाचाल इस संबंधित भाव मौखर्य कहलाता है, अर्थात् असंबद्ध बहु प्रलाप करना पापोपदेश संबंधी तीसरा अतिचार है। इस प्रकार अति वाचालपनके होने से पापोपदेश होजाने की संभावना है।

कुचेष्टा अर्थात् भ्रकुटी, आख, ओष्ट, नाक, हाथ, पैर और मुंह आदिके विकारद्वारा ऐसी हास्योत्पादक कुचेष्टा करना कि जिससे दूसरा उपहास करे और अपनी लघुता प्रगट हो ऐसा बोलना और ऐसा करना वो प्रमाद होनेसे उचित नहि हैं इसे प्रमादाचरण सम्बन्धी चोथा अतिचार कहते हैं।

कन्दर्प अर्थात् कामदेव इसकी उत्पत्ति के हेतुरूप वचन बोलना पाचवा अतिचार कहलाता है। उत्तम आचारवाले श्रावक को ऐसे वचन नहीं बोलना चाहिये कि जिससे खुद को या अन्यको मोह जाग्रत हो। इन अन्तिम दो प्रमाद सम्बन्धी अतिचारों हैं। इसमें निरतिचारव्रतका विषयमें निम्नस्थ दृष्टान्त प्रसिद्ध है कि —

शूरसेन और महीसेन का दृष्टान्त

मधुरी नगरी म शुरसेन और महीसेन नाम के दो राजपुत्र थे। वे दोनों सदाचारी एव परस्पर प्रीतिवाले होकर सुख पूर्वक रहते थे। एकबार महीसेनकी जिह्वापर असाध्यरोग उत्पन्न हो गया। वैद्योंने उसे असाध्य समझ छोड दिया। उस रोग से उसकी जिह्वा इतनी गध फैलाने लगी कि कोई भी उसके समीप न रह सका मात्र उसका बधु शुरसेन ही स्नेहवश उसके पास रहने लगा। रोग की तीव्र वेदनासे जब महीसेन 'अरे! अरे!' पुकारने लगता तो शुरसेन कहता कि-" अरे बधु! शान्त हो ओर सर्व जगत के तारक तथा ज्ञानध्यान रुप अग्नि से इस भवप्रपच तथा कर्मजाल को भस्म करने वाले श्री सर्वज्ञ प्रभु का स्मरण कर।" बधु के ऐसे उपदेश से महीसेनने पचपरमेष्ठी का मन म ध्यान करना आरम्भ किया, और शूरसेनने अपने बधु के अधिक जीवित रहने की आशा छोड उससे पाप त्यागके अनेक नियम करवाकर प्रासुक जल द्वारा उसकी जिह्वा पर जलसिंचन करना आरम्भ किया। दैवयोग से उस प्रकार मदमद जलसिचन करने से उसका रोग निर्मूल हो गया, वह अपने किये पञ्चखाण का बराबर पालन करता रहा।

एक बार वहा श्री भद्रबाहुस्वामीजी पधारे। उनका आगमन सुन वे दोनों भाई उन को वन्दन करने गये। देशना सुनने पश्चात् जब शुरसेनने महीसेनके रोग होनेका कारण पूछा तो गुरुने उत्तर दिया कि मणिपुर नगरमे मदन नामका किसी

मनिहाके वीर और धीर नामक दो धर्मिष्ठ पुत्र थे। एक बार जब वे दोनों वन में भ्रमण करने गये, और वहां उनके मामा वसन्त नामक मुनि को पृथ्वी पर पड़ा देख लोगों से उसका कारण पूछा तो उनमें से किसी ने कहा कि-"एक सर्प, कायोत्सर्ग स्थित इस मुनि को डस कर अपनी बामी में छिप गया है।" मामा के स्नेह से लघुबन्धु धीर ने कहा कि 'अरे दुष्ट लोगों! तुमने उस भगते हुए सर्प को क्यों नहीं मार डाला?' यह सुन वीरने कहा कि-'हे भ्राता! ऐसे वचन बोलकर वृथा कर्म क्यो बांधते हो?' धीरने उत्तर दिया कि-'मुनि को डसने वाले सर्प को मारने से तो धर्म ही होता है। कहा भी है कि —

दुष्टस्य दंड स्वजनस्य पूजा, न्यायेन कोशस्य च सम्प्रवृद्धि ।
अपक्षपातो रिपुराष्ट्र चिंता, पंचैव यज्ञा नृपपुङ्गवाना ॥ १ ॥

"दुष्ट को दंड देना, स्वजन की पूजा करना, न्याय से भंडार वृद्धि करना, किसी का पक्षपात न करना और शत्रु से देशकी चिंता रखना-ये पांच उत्तम राजाओंके लिये यज्ञ तुल्य हैं।" अतः हम क्षत्रियों को ऐसा करने में कोई दोष नहीं है।" वीरने कहा-"हे बन्धु! हम जैनियों के लिये यह अघटित है। जैनियों को तो लकड़ी टूटे नहीं, दूध का पात्र फूटे नहीं, और दूध ढूले नहीं, उसी प्रकार जीव का वध भी न हो ऐसा कार्य करना चाहिये। जीवानन्द वैद्य के सदृश जैनियों को तो वचन भी विचार कर बोलने चाहिये।" इस प्रकार अपने बन्धु के वचनों को सत्य समझ

उन्होंने मुनि को योग्य उपचार द्वारा ठीक किया । अनुक्रम से वे दोनों क्षत्रीयपुत्र मृत्यु प्राप्त कर तुम दोनों भाई हुए। धीर के जीव ने उस भव में बोले हुए अनर्थदंडरूप वाक्य को आलोचना नहीं की थी इससे यह महीसेन जिह्वा रोगसे पीडित हुआ । किन्तु मुनिको उपचार द्वारा जीवित किया था इससे उस प्राप्त की लब्धि द्वारा, तेरे प्रयास से वह वापस निरोग हो गया है ।

इस प्रकार अपने पूर्वभव का वर्णन सुन उन दोनों भाइयों ने जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हो जाने से अनर्थदंड को निर्मूल कर मुनिव्रत ग्रहण किया ।

इस शूरसेन और महीसेन के दृष्टान्त का श्रवण कर हमें पाप के मूल अनर्थदंड को निर्मूल करने का भरचक प्रयास करना चाहिये ।

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ षट्त्रिंशदुत्तरशततम प्रबंध ॥ १३६ ॥

व्याख्यान १३७

(पुनः अनर्थदंड वर्णन)

अज्ञानमन्युदम्भेभ्योऽनर्थदंड प्रजायते ।
स त्याज्यो व्रतचक्रेण चित्रगुप्तकुमारवत् ॥१॥

"अज्ञान, मोघ और दम्भ से अनर्थदंड होता है अत उस का चित्रगुप्तकुमार सदृश प्रवरूपी वज्रद्वारा चूर्ण कर देना चाहिये।"

इस श्लोक का भावार्थ श्लोक में सूचित चित्रगुप्त कुमार के दृष्टान्त से जाना जा सकता है, जो इस प्रकार है कि —

चित्रगुप्तकुमार की कथा

कोशल देश में जयशेखर नामक राजा था, जिस के पुरुषदत्त और पुरुषसिंह नामक दो पुत्र थे। समान गुण एवं शीलवाले उन दोनों में परस्पर अति मित्रता थी, मानो दो नेत्रों से शिक्षा ग्रहण की हो। इस प्रकार उनका सदैव एकता पाया हुआ था। इस के विषय में अर्थदीपिका में लिखा हुआ है कि —

पाण्योरुपकृति सत्य-स्त्रिया भग्नगुणो बलम्।
जिह्वाया दक्षतामक्ष्णो, सखिता शिक्षणसुधी ॥१॥

"सद्बुद्धि पुरुष को दो हाथों से उपकार, स्त्री से सत्य, दौड़ते हुए श्वान से बल, जिह्वा से चतुराई और दो नेत्रों से मित्रता सीखना चाहिये।" उस राजा के वसु नामक एक गुरु थे। जिन के चित्रगुप्त नामक एक पुत्र था जिसको कौतुक देखना बहु प्रिय था।

जब जयशेखर राजा अकस्मात् मर गया तो उस के अमात्योंने उस के ज्येष्ठ राजपुत्र पुरुषदत्त को राजा तथा

उस के कनिष्ठ राजपुत्र पुरुषसिंह को युवराज बनाया। एक बार राजाने राजसभामें कहा कि –"जब यह सर्व समृद्धि मेरे पिता को शरणदायक नहीं हुई तो मुझे शरणभूत क्यों कर होगी ?" यह सुन उसके गुरुने कहा कि–"हे कुमार! तुम्हारे पिताके श्रेयके लिये सुवर्णमूर्तिये, गायें, भूमि, तथा शय्या, उपानह, तिल और कन्या आदिका ब्राह्मणोंको दान दीजिये, क्योंकि पुत्र के किये दानका फल पिताको प्राप्त होता है ऐसा श्रुतिका कथन है और इसीलिये लोग पुत्रकी अभिलाषा रखते हैं।" तत्पश्चात् राजाने सर्व दशनवालोंको बुला बुला कर दान देना आरम्भ किया। जब जैन मुनियोंको बुलवाया तो उन्होंने कहा कि–"हे राजन्! जीव घात करने वाले दान मुनियोंके लिये अनुचित है। इसके विषयमें यशस् घृतिमें कहा गया है कि —

तथा हि येन जायते, क्रोधलोभादयो भृश।
स्वर्णरूप्य न तद् देय, चारित्रिभ्यश्चरित्रहृत् ॥१॥

"जिस सुवर्ण और चांदीसे क्रोध, लोभ आदि विशेष उत्पन्न हों उसे चारित्रधारियोंको कदापि नहीं देना चाहिये क्योंकि वह चारित्रका हरनेवाला है।" अपितु कहा है कि —

निर्मगो वीतसगाना, वैदग्ध्यच्य कुलयोषिता।
दाक्षिण्य वणिजा प्रेम-वेश्यानाममृत विप ॥१॥

"निसग पुरुषोंके लिये वैभव, कुलीन स्त्रियोंके लिये अति चातुर्य, व्यापारियोंके लिये दाक्षिण्यता और वेश्याओंके

लिये प्रेम विष तुल्य है। ये चारा अमृत तुल्य होने पर भी इन इनके लिये विष सदृश है अपितु हे राजन्! अपवित्र वस्तुओंके खानेवाले और श्रृंग-खुरियोंसे जंतुओंको मारनेवाले पशुओंका दान श्रेयकारक क्यों कर हो सकता है? अतः यदि दान ही करना हो तो एक अभयदान करना ही श्रेष्ठ है कहा भी है कि —

कपिलाना सहस्र तु, यो द्विजेभ्य प्रयच्छति ।
एकस्य जीवित दद्यात्, कला नार्हति षोडशीं ॥ १ ॥

"यदि कोई ब्राह्मणों को एक हजार कपिला गउओंका दान करे व एक को जीवितदान दे तो वह गौओंका दान जीवितदान की सोलहवीं कला के तुल्य भी नहीं होता।" इसमे भी अन्यद्वारा किये हुए धर्म-कर्म का फल अन्य को नहीं मिलता। जो करता है उसी को मिलता है। कहा भी है कि —

एकस्मिन् भुक्तवत्यन्य', साक्षादपि न तृप्यते।
मृतस्य कल्पते यत्तु, तद्भस्मनि हुतोपमं ॥ १ ॥

"एक मनुष्य भोजन करे और दूसरे को तृप्ति हो ऐसा तो साक्षात् में भी नहीं होता फिर मृतक के लिये ऐसा होना तो भस्ममें घी होम ने तुल्य ही है।" किये हुए कर्म का फल तो उसके कर्ता को ही मिलता है यदि ऐसा नहीं तो "कृतनाश (किये हुए का नाश) और अकृतागम

(नहीं किये का आगम) का दोष प्राप्त होगा।" ऐसा सुनकर राजा ने कहा कि-"हे महाराज! तो तुमको क्या क्या भेंट किया जाय?" इस पर मुनियोंने एषणीय प्रासुक आहार आदि का स्वरूप कह बतलाया। जिसे सुन जैनमुनि के धर्म में निर्दोषपन जान राजा पुरुषदत्तने अपने कनिष्ट बंधु को राज्यभार सौंप अपने एकसौ राजपुत्रों सहित दीक्षा ग्रहण की, और अनुक्रम से अवधिज्ञान प्राप्त कर अपने ज्ञातिजन को प्रतिबोधित करने निमित्त यहां आये।

राजा पुष्पसिंह के साथ उन का पुरोहित पुत्र चित्रगुप्त भी उन्हें वन्दना करने के लिये आया। देशना देते समय किसी कठीयारे को प्रतिबोधित होते देख जैनधर्म से अज्ञात, मिथ्यात्ववश जैनधर्म का द्वेषी चित्रगुप्त राजा के भय से दंभ से इस प्रकार बोला कि "इस कठियारे को धन्य है कि जिसने सर्वस्व छोड चरित्र ग्रहण किया जिससे इसे अब बिना परिश्रम किये अन्नादिक उपलब्ध हो सकेंगे तथा राजा आदि की वेठ भी न देनी होगी। अहो! मुनिवेश की कैसी अनुपम महिमा है?" उसके ऐसे व्यंग भरे शब्द सुन गुरुने कहा कि अहो! अब भी तुझे अनर्थदंड मारता है। चित्रगुप्त ने पूछा कि अनर्थदंडका क्या अर्थ है? ज्ञानीने उत्तर दिया कि महान क्रोध और दंभ से अनर्थ-दंड प्राप्त होता है और जिस के फल स्वरूप भवोभव कुयोनियों में जन्म लेना पडता है। यह अनर्थदंड की विडंबना सुनो।

अनर्थदंड पर कथा

पूर्वकाल में भद्दिलपुर में जिनदत्त श्रेष्ठी के सेन नामक एक पुत्र था। वह बालवयसे ही वैराग्यवान हो गया था अतः उसके पिताने उसकी वैराग्यवृत्ति को छुडाने के लिये उसे दुष्ट पुरुषों की संगति मे रक्खा। जहां उसकी राज पुत्र के साथ मित्रता हो गई। नीच लोगों के संगसे वह पाप करने में भी परायण हो गया। एकबार उसने राजपुत्र से कहा कि-"हे मित्र! तू तेरे वृद्ध पिता को मार कर राज्य क्या नहीं छीन लेता? जब यह सूचना मंत्री द्वारा राजा को मीली तो उसने वणिक पुत्रको, राजकुमारको कुबुद्धि देनेवाला जान अपने सुभटोंको बुलाकर उन्हें उसके वध करने की आज्ञा प्रदान की। इस पर सुभटोंने राजा की आज्ञा से उसका वध कर दिया वहांसे मृत्यु प्राप्त कर वह नरकगामी हुआ तथा वहां से चव मरकर असंख्यकाल तक भ्रमण कर अन्त में तू चित्रगुप्त नामक पुरोहित पुत्र हुआ है। इस प्रकार अपने पूर्व भवके सुनने पर जातिस्मरण हो जाने से चित्रगुप्तने प्रतिबोधित हो जब उस मुनिकुंवर कठीयारे को नमन किया तो गुरुने कहा कि हे चित्रगुप्त! एक और कथा सुन कि —

द्रमकमुनिका प्रबंध —श्रीवीर प्रभुके पास एकबार किसी भिखारीने दीक्षा ग्रहण की उनसे प्रश्न किया कि "हे स्वामी! बिना ज्ञानरूपी सूर्यके उदय हुए, मैं चारित्रमार्गको कैसे देख-पाल सकूंगा?" प्रभुने उसे चौदहपूर्वका रहस्य बतलाते हुए

शब्दार्थ ,—" एक मुहूर्त तक सावद्य व्यापार का त्याग कर देना पहिला शिक्षाव्रत कहलाता है जो समताधारियों से ही लभ्य है।"

विस्तारार्थ —मुहूर्त अर्थात् दो घटी तक सावद्य अर्थात् पापयुक्त मन, वचन और काया के चेष्टारूप, व्यापार का त्याग कर देना पहला शिक्षाव्रत कहलाता है। सिखने योग्य अर्थात् बारबार करने योग्य कार्य को शिक्षाव्रत कहते हैं। राग-द्वेष के हेतु में मध्यस्थपना रखना समता कहलाता है। इस विषय में कहा है कि —

इतो रागमहाम्भोधिः इतो द्वेष दवानल'।
यस्तयोर्मध्यग' पथा तत्साम्यमिति गीयते ॥ १ ॥

एक ओर रागरूप बडे समुद्र और दूसरी ओर द्वेषरूप दावानल के मध्यवृति मार्ग को साम्य अथवा समता कहते है।" ऐसी समता के अभिलाषी जीवों को सामायिक प्राप्त होती है। सामायिक के अन्य अर्थ इस प्रकार है कि — (१) सम अर्थात रागद्वेष रहित, आय अर्थात् ज्ञानादिक का लाभ, (२) सम अर्थात प्रतिक्षण ज्ञानादि अपूर्व पर्यायो जिन्होंने कि चिन्तामणि तथा कल्पद्रुम आदि के प्रभावों का भी तिरस्कार कर दिया है तथा जो निरुपम सुख के हेतु है, उनके साथ संयुक्त हो जाना समाय कहलाती है और समाय जिसका प्रयोजन हो उसे सामायिक कहते हैं। यह सामायिक बिना सावद्य कर्म के त्याग किये होना अशक्त है। उसके विषय में परम ऋषियों का कथन है की —

" सावज्जजोग परिवज्जियाण, सामाइय केवलिइ पसत्थ गिहत्थधम्म परम ति नच्चा, कुज्जा बुहा आयहिय परत्था । "

सावद्य योग का त्याग कर, करने योग्य सामायिक को ज्ञानीयोंने प्रशस्त (श्रेष्ठ) कहा है । उस सामायिक को गृहस्थ के लिये श्रेष्ठ धर्म समझ कर आत्महितार्थि पुरुषोंको परलोक हित के लिये करना उचित है । " इस सामायिक का फल इतना बडा है कि उसकी गणना कोइ नहीं कर सक्ता कहा है कि —

दिवसे दिवसे लक्ख, दइ सुवन्नस्स खंडिय एगो ।
इयरा पुण सामाइय, करेइ न पहुप्पए तस्स ॥ ६ ॥

" एक पुरुष दिनप्रतिदिन लाख स्वर्ण मुद्राका दान दे और दूसरा सामायिक करे तो स्वर्णका दान सामायिककी तुलना कदापि नहीं कर सक्ता । " इसके विषयमें एक दृष्टांत भी प्रसिद्ध है कि —

सामायिक पर दृष्टान्त

एक नगरमें एक धनाढ्य गृहस्थ रहता था जो अत्यन्त दातार होसे सदैव पात्रापात्रका विना विचार किये ही लक्ष सुवर्णका दान कर सदैव अपने पलंग से निचे पैर रखता था । उसके पडोसमें एक वृद्ध श्राविका रहती थी जो सदैव एक सामायिक किया करती थी । एकदा किसी कारणवश उस गृहस्थ एवं उस वृद्धको दान देने व सामायिक करनेमें बाधा

शब्दार्थ —" एक मुहूर्त तक सावद्य व्यापार का त्याग कर देना पहिला शिक्षाव्रत कहलाता है जो समताधारियों को ही लभ्य है।"

विस्तारार्थ —मुहूर्त अर्थात् दो घड़ी तक सावद्य अर्थात् पापयुक्त मन, वचन और काया के चेष्टारूप, व्यापार का त्याग कर देना पहला शिक्षाव्रत कहलाता है। सिखने योग्य अर्थात् वारबार करने योग्य कार्य को शिक्षाव्रत कहते हैं। राग-द्वेष के हेतु म मध्यस्थपना रखना समता कहलाता है। इस विषय म कहा है कि —

इतो रागमहाम्भोधि. इतो द्वेष दवानल'।
यस्तयोर्मध्यग पथा तत्साम्यमिति गीयते॥ १॥

एक ओर रागरूप बडे समुद्र और दूसरी ओर द्वेषरूप दावानल के मध्यवृति मार्ग को साम्य अथवा समता कहते है।" एसी समता के अभिलाषी जीवों को सामायिक प्राप्त होती है। सामायिक क अन्य अर्थ इस प्रकार है कि — (१) सम अर्थात रागद्वेष रहित, आय अर्थात ज्ञानादिक का लाभ, (२) सम अर्थात प्रतिक्षण ज्ञानादि अपूर्व पर्यायों जिन्होंने कि चिन्तामणि तथा कल्पद्रुम आदि के प्रभावों का भी तिरस्कार कर दिया है तथा जो निरुपम सुख के हेतु है, उनके साथ सयुक्त हो जाना समाय कहलाती है और समाय जिसका प्रयोजन हो उसे सामायिक कहते हैं। यह सामायिक बिना सावद्य कर्म के त्याग किये होना अशक्त है। उसके विषय में परम ऋषियों का कथन है की —

" सावज्जजोग परिवज्जियाण, सामाइय केवल्डि पसत्थ गिहत्थधम्म परम ति नच्चा, कुज्जा बुहो आयहिय परत्था । "

सावद्य योग का त्याग कर, करने योग्य सामायिक को कवलीयोंने प्रशस्त (श्रेष्ठ) कहा है । उस सामायिक को गृहस्थ के लिये श्रेष्ठ धर्म समझ कर आत्महितार्थि पुरुषोंको परलोक हित के लिये करना उचित है । " इस सामायिक का फल इतना बडा है कि उसकी गणना कोई नहीं कर सकता कहा है कि —

दिवसे दिवसे लक्ख, देइ सुवन्नस्स खडिय एगो ।
इयरो पुण सामाइय, करेइ न पहुप्पए तस्स ॥ ६ ॥

" एक पुरुष दिनप्रतिदिन लाख स्वर्ण मुद्राका दान दे और दूसरा सामायिक करे तो स्वर्णका दान सामायिककी तुलना कदापि नहीं कर सकता । " इसके विषयमें एक दृष्टांत भी प्रसिद्ध है कि —

सामायिक पर दृष्टान्त

एक नगरमें एक धनाढ्य गृहस्थ रहता था जो अत्यन्त दातार होनेसे सदैव पात्रापात्रका विना विचार किये ही लक्ष सुवर्णका दान कर सदव अपने पलग से निचे पैर रखता था। उसके पडोसमें एक वृद्ध श्राविका रहती थी जो सदैव एक सामायिक किया करती थी। एकदा किसी कारणवश उस गृहस्थ एव उस वृद्धको दान देने व सामायिक-करनेमे बाधा

उपस्थित हुई अत वे दोनो अत्यन्त खिन्न हुए। उस वृद्धा को दुःखी देख, उस गृहस्थने गर्वपूर्वक कहा कि, "अरे! बुढिया! तू दुःखी क्यो होती है? एक वस्त्रका टुकड़ा लेकर यदि हाथ आदिका प्रमार्जन नहीं किया गया तो क्या हो गया? उससे क्या पुण्य होने वाला है? ऐसा करनेमें क्या खर्चा होता है? यदि ऐसा करनेसे ही धर्म होता हो तो मग्न सदैव ऐसा ही क्यों न किया करे? लक्ष स्वर्णका दान ही क्यों करे!"

यह सुनकर वृद्धाने कहा कि, "ऐसा न कहिये।" सुवर्णमणिके पगथियेवाले मन्दिरके बनवाने से भी सामायिक में अधिक पुण्य है। इस विषयमें "कंचनमणि सोपान०" नामक गाथा पढ़िये।

अनुक्रम से वह गृहस्थ अतकालमे आर्त्तध्यान से मर कर हस्ती हुआ और वह वृद्ध श्राविका सामायिक के ध्यान से उसी ग्राममे राजपुत्री हुई, राजाने उस हस्तीको अटवीसे पकड़ कर अपना पट्ट हस्ती बनाया। एकदा राजमार्ग मे जाते हुए उस हस्ती को अपना घर आगे दिख पड़ा जिसे देख उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया। और वह मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। राजकन्या जब उसे देखने को वहा आई और उसे भी अपने घर आदि को देख जातिस्मरण ज्ञान हो आया तो उसने अपने तथा हाथी के पूर्वभव को जान अपने दोनो हाथोसे हाथीको उठाने का भरसक प्रयत्न किया परतु जब उसका सब प्रयत्न निष्फल हुआ तो यह बोली कि —

उठ सिठि मम भत कर, करी हूउ दाणनसेण ।
हु सामाइय रायधुअ, बहुगुण समहिय तेण ॥१॥

हे शेठ ! उठ, भ्रांति न कर, तू दानके प्रभाव से हाथी हुआ है, और मैं सामायिक के प्रभावसे राजपुत्री हुई हू । सामायिकका पुण्य अधिक होता है" राजपुत्रीके यह वचन सुनकर हाथी तुरत उठ बैठा ।

राजादिको इस घटनासे अत्यन्त आश्चर्य हुआ अत उस पुत्रीने अपना तथा हाथीका पूर्व भव कह सुनाया ।

उस हाथीने राजपुत्रीके वचनसे प्रतिबोध पा दोनोका सामायिक करने निमित्त पृथ्वीकी, और नीची दृष्टि कर अपनी गुरुणीके समक्ष एक एक मूहूर्त तक समता भावसे रहना आरभ किया । वह भाव सामायिकधारी हाथी सामायिक लेते व पूर्ण करते समय अपनी गुरुणी–राजकन्याको नमस्कार कर बैठने तथा उठने लगा। तत्पश्चात जातिस्मरण ज्ञानद्वारा भक्ष्याभक्ष्य तथा पेयापेय आदिका ज्ञान प्राप्त कर समाधि द्वारा आयुष्य पूर्ण कर सहस्रार देवलोकमें देवता हुआ।

" मुनिवर कहते है कि यदि कोइ धनाढ्य सदैव याचकोको सुवर्ण भूमिका दान कर सोवे और कोई भवि प्राणी सदैव सामायिक करे तो उनमे सामायिक करनेवाले को ही अधिक पुण्य होता है अत सर्व भवि प्राणियो को पुण्यरुप सामायिक अवश्य करना चाहिये ।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसग्रहाख्यायुपदेशप्रासादवृत्तौ अष्टत्रिंशदुत्तरशततम प्रबध. ॥१३८॥

व्याख्यान १३८

(सामायिक व्रतमें त्याग करने योग्य पांच अतिचार)

कायवाङ्मनसा दुष्ट-प्रणिधानमनादर ।
स्मृत्यनुपस्थापन च, स्मृता· सामायिकव्रते ॥ १ ॥

भावार्थ —" मन, वचन, और कायासे दुष्ट आचरण करना, सामायिक में आदर नही रखना, और व्रत के काल आदि का स्मरण नहीं करना ए पांच सामायिक व्रत के अतिचार कहलाते हैं ।

विस्तारार्थ —काया, वचन, और मनसे दुष्ट प्रणिधान करना अर्थात् अनाभोग आदिसे सावद्य योगमें प्रवृत्ति करना, उसमे शरीर का अवयव-हाथ, पैर, आदिको बार बार हिलाना, प्रमार्जन बिना शरीर खुजलाना, दिवार आदि का आलम्बन लेना, और प्रमार्जन रहित भूमि पर बैठना आदि काया का दुष्ट प्रणिधान कहलाता है । वचन से कठोर भाषण करना अथवा मार कुट, आ, जा, बैठ, खडा रह, यह दुकान तथा मकानकी चाबी ले, आदि वचन बोलना वचन सम्बन्धी दुष्ट प्रणिधान कहलाता हैं । इस के विषय मे कहा है कि-" जिसने सामायिक ग्रहण कीया है । उसे प्रथम बुद्धि से विचारकर सत्य एव निर्दोष वचन ही बोलने चाहिये, अन्यथा वह सामायिक सामायिक नही कहलाती । " मन द्वारा घर तथा दुकान आदिका सावद्य चितवन करना, मन सम्बन्धी दुष्प्रणिधान कहलाता है । इस के विषय

मे कहा है कि–" जो श्रावक सामायिक ग्रहणकर गृहकार्य चिन्तवन करता है उस आर्त्त ध्यानवाले श्रावक की सामायिक निष्फल होती है।" अर्थात् जो श्रावक सामायिक ग्रहण कर इस प्रकार चितवन करे कि–" आज घरमे घी, हींग, नमक और इंधन आदि नहीं है और स्त्री भी आचरण की तरुणी है, फिर धन करना निर्वाह किस प्रकार होगा? तो इस प्रकार विचार करनेवाले श्रावक की सामायिक निरर्थक होती है।" ये मन सम्बन्धी दुष्ट प्रणिधान हुआ, इसी प्रकार तीन योग सम्बन्धी अतिचार होते हैं।

चोथा अतिचार अनादर अर्थात सामायिक करनेमें उत्साह न रखना। नियमित समय पर सामायिक न करना या सामायिक ग्रहण कर तत्काल समाप्त कर देना कहा है कि "जो सामायिक लेकर तत्काल पार ले अथवा यथेच्छ रूपसे करे वह अनवस्थित या अशुद्ध सामायिक कहलाती है।"

पांचवा अतिचार सामायिक का स्मरण नहीं होना जैसे सामायिक की, या नहीं की? इस प्रकार प्रमादसे सामायिकका ध्यान-ख्याल न होना पांचवां अतिचार कहलाता है।

यहां पर यदि किसी को शंका हो कि–"सामायिकमें "दुविहं तिविहेणं" पाठ के अनुसार यद्यपि द्विविध त्रिविधे (मन वचन, काया सम्बन्धी) पच्चक्खाण किये जाते हैं किंतु फिरभी मनका रोध करना अशक्य होने से, मन सम्बंधी दुष्ट प्रणिधान हो जाना संभव है, और ऐसा होनेसे ग्रहण किये हुए व्रतका भंग होता है, व्रतके भंग होनेसे प्रायश्चित

होता है, अत ऐसी सामायिक नहीं करना ही श्रेष्ट है।" तो इस के उत्तरमे कहा गया है कि ऐसी शका करना ही व्यर्थ है, क्याकि सामायिकमे मन द्वारा करना नहीं, कराना नही, वचन द्वारा करना नही, कराना नहीं और काया द्वारा करना नहीं, कराना नही इस प्रकार प्रत्याख्यान के छ भेद है उनमें से अनाभोग द्वारा यदि एकका भग भी हो जाय तो भी शेष भाग अखड रहते है इससे उस व्रत का सर्वथा भग नही होता अपितु मनके दु प्रतिधान की मिथ्यादुष्कृत के कहनेमे ही शुद्धि है, अत सामायिक कदापि त्याग नही करना चाहिये क्योंकि सामायिकके न करने से परिणाममे सब विरतिके भी अनादर होने का प्रसग आ उपस्थित होता है।

बहुधा कई एसा भी कहते हैं कि-"अविधि से किए धर्मानुष्ठानसे तो धर्मानुष्ठान न करना ही अधिक उत्तम है।" परन्तु एसा कहना भी अनुचित है। कहा है कि —

अविहिकया वरमकय, उस्सुअवयण भणत्ति गीयत्था।
पायच्छित्त जम्हा, अकए गुरुअ कए लहुय ॥ १ ॥

गीतार्थ का कहना है कि "अविधिपूर्वक करने से नही करना ही उत्तम है" एसा जो कहते हैं वह "उत्सूत्र वचन है" क्योंकि धर्मानुष्ठान न करनेसे गुरु-बड़ा प्रायश्चित्त होता है और अविधिपूर्वक करने से लघु प्रायश्चित होता है। आरम्भ मे कुछ अतिचार सहित क्रिया करते करते अभ्यास से अन्त में अतिचार रहित अनुष्ठान का होना भी

सम्भव है। जैसे धनुर्विद्या के अभ्यासी आदि आरम्भ से ही सर्व कला-पारगत नहीं होते, परन्तु अभ्यास करते करते वे भी प्राय कला कुशल हो जाते हैं, अपितु एकबार जल बिन्दु के गिरने मात्र से कोई सरोवर पूर्णतया नहीं भराता, शनै शनै भराता है, अत सम्यग प्रकारसे मन की शुद्धि द्वारा बारबार क्रिया करते रहना चाहिये। आगम का भी कथन है कि —

जीवो पमायबहुलो, बहुसो वि बहुविहेसु अत्थेसु।
एएण कारणेण, बहुसो सामाइय कुज्जा ॥ १ ॥

"जीव अनेक प्रकारके कार्यों में संलग्न होने से वह प्रमादी होता है, अत उसे अनेकबार सामायिक करना चाहिये।" सामायिक स्थित श्रावक भी साधु सदृश होता है। श्री आवश्यक नियुक्ति में कहा गया है कि —"श्रावक सामायिक करने से मुनि तुल्य होता है, अत उसे बारबार करते रहना चाहिये।" सामायिक व्रतका महणसिंहकी तरह सदैव पालन करते रहना चाहिये।

महणसिंहकी कथा

दिल्लीमें फिरोजशाह बादशाहके राज्यकालमें महणसिंह नामक एक साहुकार रहता था। एकबार बादशाहने दिल्लीसे अन्यत्र बाहर जाते समय महणसिंहको अपने साथ लिया। मार्ग में जाते हुए सूर्यास्त के समय महण सिंह घोड़े से नीचे उतर भूमिको प्रमार्जीत कर प्रतिक्रमण

करने ठहर गया। वह सदैव प्रतिक्रमण करने के उपकरण अपने साथ रखता था। बादशाहने जब आगे जाते दूसरे ग्राम मे पहुचने पर महणसिंह श्रेष्ठी को अपने साथ नहीं देखा, तो एक व्यक्ति को उस की खोज मे भेजा। श्रेष्ठी सामायिक पूरी कर जब बादशाह के समक्ष गया तो बादशाहने उसे उसके पीछे रहने का कारण पूछा। महणसिंहने उत्तर दिया कि –"हे महाराजा! सूर्य के उदय तथा अस्त होने के समय ग्राम, अरण्य, नदी, स्थल, या पर्वत, चाहे किसी भी स्थानमें मैं दोनों समय अवश्य प्रतिक्रमण करता हूँ।" बादशाहने कहा कि, 'हे श्रेष्ठी! हमारे कई शत्रु हैं, इससे यदि वे कभी तुमको इस प्रकार अकेले देखकर मार डाले तो क्या करो?"

महणसिंहने उत्तर दिया कि—"हे जहांपनाह! धर्म करते हुए यदि मृत्यु प्राप्त हो जाय तो अवश्य ही स्वर्ग मिलता है, इसलिये मैने आज उस स्थान पर प्रतिक्रमण किया है। महणसिंह के ऐसे वचन सुन बादशाह अत्यन्त प्रसन्न हुआ और आज्ञा दी कि–"अरण्य, पर्वत, या जहां कहीं भी महणसिंह प्रतिक्रमण करने बैठे, वहां एक हजार सैनिक उसकी रक्षा करते रहें।"

एक बार दिल्ली लौट आने पर बादशाहने कोई दोष निकाल महणसिंह के हाथ-पैर मे बेडी डाल उसे कारागृह मे बन्द करा दिया। वहा उसने दिन भर भूखे रहने पर भी सायकाल को प्रतिक्रमण करने के लिये रक्षको को दो

स्वर्णमुद्रा दे, दो घडी के लिये हाथो से बेडी निकलवा प्रतिक्रमण किया। इस प्रकार एक महिने में उसने साठ स्वर्णमुद्राओ का व्यय करके भी सदैव प्रतिक्रमण किया। यह वृत्तान्त सुन दिल्लीपति उस के दृढ नियम से अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसे बन्दीगृह से मुक्त कर, सिरपाव दे पहिलेसे भी विशेष मानसे अपने पास रक्खा।

इस प्रकार धर्मकी दृढतासे महणसिंह दिल्लीपतिका वैशाद्यक्ष तथा फिरोजशाह बादशाहका अत्यन्त प्रशंसापात्र हुआ, यह सब उस नयमे सामायिक व्रतका ही फल है।

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ एकोनचत्वारिंशदुत्तरशततमः प्रबन्ध ॥ १३८ ॥

व्याख्यान १४०

सामायिक के भेद

—०—

सामायिकं स्यात्त्रिविध्यं, सम्यक्त्वं च श्रुत तथा।
चारित्रं तृतीयं तच्च, गृहिकमनगारिकम् ॥

"सामायिक तीन प्रकार की होती है। समकित सामायिक, श्रुत सामायिक, और चारित्र सामायिक। इनमे से चारित्र सामायिक के फिर दो भेद है। प्रथम गृहिक अर्थात् श्रावक की और द्वितीय अनगारिक अर्थात् साधुकी।"

विस्तारार्थ —पहली समकित सामायिक उपशमादिक भेदसे पाच प्रकार की है। दूसरी श्रुत सामायिक द्वादशांगीरूप है, और तीसरी चारित्र सामायिक दो प्रकारकी है, जिनमे प्रथम गृहिक अर्थात् देशविरति सामायिक द्वादश व्रत के आराधनरुप है, और दूसरी अनगारिक अर्थात् सर्व सावद्य वजनरुप तथा पच महाव्रतरूप है। यह सर्वविरति चारित्र सामायिक सर्व द्रव्य विषय सबन्धी है। उसके विषय मे कहा गया है कि —

पढमम्मि सव्वजीवा, बीए चरमे य सव्वदव्वाइ।
सेसा महव्वया खलु तदिक्कदेसेण दव्वाण ॥ १ ॥

"पहले व्रतमे सर्व जीवोंका, दूसरे और पाचवे व्रतमे सर्व (षट्) द्रव्योंका और शेष तीसरे और चोथे व्रतमे उस द्रव्यके एक देशका समावेश होता है" इसका विस्तारार्थ इस प्रकार है कि-पहले महाव्रत मे सर्व सूक्ष्म बादर जीवों का पालन करना होता है, इससे उसमे एक जीव द्रव्य आता है। दूसरे और पाचमे व्रतमे सर्व द्रव्य आते हैं जैसे-"यह पचास्तिकायात्मक लोक किसने देखा है? यह तो झूठी बात है।" ऐसे असत्य भाषण के त्याग से दूसरे महाव्रत मे छ द्रव्योंका सम्बन्ध है और पाचवे व्रत में अति मूर्च्छा द्वारा ऐसा चिन्तवन करना कि "मैं सर्व लोकोंका स्वामी हो जाऊ तो अच्छा हो।" इस प्रकार सर्व द्रव्य विषयक मूर्च्छा के त्यागरुप पाचवे परिग्रहण विरमण व्रतमे छ द्रव्यों का समावेश होता है। शेष दो

महाव्रत द्रव्यके एक देश भूत है, अर्थात् किसीकी द्रव्य बिना दिया, उठाना या लेना यह पुद्गल द्रव्यका एक देश है, जो अदत्तादान के विरमणरूप तीसरा व्रत है। किसी स्त्री के रूपको देख कर उसका तथा उसके साथ हुए द्रव्य सम्बन्धी मोहका त्याग करना अब्रह्मविरतिरूप चौथा महाव्रत है। इसमें भी द्रव्यके एक देश का समावेश होता है। आहार द्रव्य विषयिक रात्रिभोजन त्यागरूप छट्ठा व्रत है। इसमें भी द्रव्यका एक ही देश है। इस प्रकार चारित्र सामायिक सर्व द्रव्य विषयक है। इसी प्रकार श्रुत सामायिक के भी ज्ञानरूप होने से तथा समकित सामायिक के भी सर्व द्रव्य से श्रद्धामय होने से सर्व द्रव्य विषयक है। इस सामायिक को एक जीव इस संसारमें पर्यटन करता हुआ संख्यात असंख्यात बार प्राप्त करता है। कहा है कि —

सम्मत्तदेसविरया, पल्लियस्स असंखभागमित्ताओ।
अट्ठभवाउ चरित्ते, अणंतकाल य सुअसमए॥ २॥

"देशविरति और समकित क्षेत्रपल्योपम के असंख्यात में भागमें जितने आकाश प्रदेश होते हैं उतने भव में प्राप्त करता है। सर्वविरति संयम उत्कृष्टमें आठ भव में प्राप्त करता है और अक्षरात्मक श्रुत तो अनन्तकाल पर्यन्त प्राप्त करता है।" अर्थात् समकित सामायिक और देशविरति सामायिक ये दोनों क्षेत्रपल्योपम के असंख्यातवे भागमें जितने आकाश प्रदेश होते हैं उतने प्रमाणवाले भवमें एक जीव उत्कृष्ट से प्राप्त करता है, और जघन्यसे एक भवमें

प्राप्त करता है । चारित्र (सर्वविरति) सामायिक तो उत्कृष्ट आठ भव में प्राप्त करता है । उसके पश्चात् सिद्धि को प्राप्त करता है और जघन्य से मरुदेवा के सदृश एक ही भव में प्राप्त कर सकता है । सामान्य श्रुत सामायिक अनन्तभवोंमें प्राप्त होता है, और जघन्यसे श्री ऋषभदेवजीकी माताकी तरह एक भवमें भी प्राप्त होता है । स्वल्प श्रुतसामायिक का लाभ तो अभव्यको भी प्राप्त हो सकता है और वह ग्रैवेयक देवताके स्थान तक जा सकता है । अन्तर द्वार में कहा है कि—कोई जीव अक्षर ज्ञान प्राप्त कर पतित हो फिर अनन्त काल पश्चात् प्राप्त करे उसे उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं । समकितादि सामायिकमें जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त्तका होता है, और उत्कृष्ट अन्तर देशमें उणअर्द्धपुद्गलपरावर्त्तनका जो अन्तर है, वह बहुत आशातना करनेवाले जीव के लिये होता है । कहा है कि —

तीर्थंकर प्रवचन, संघ, श्रुत-ज्ञान, आचार्य गणधर और लब्धिवाले महर्धिक मुनिकी कईवार आशातना करने वाला जीव अनंत संसारी होता है, परन्तु तिसपर भी समकित सामायिक की महिमा से प्राणी अवश्य सिद्धि पद को प्राप्त कर सकता है । इस विषयमें चार चोरोंकी कथा प्रसिद्ध है कि —

चार चोरोंकी कथा

क्षितिप्रतिष्ठित नगर निवासी कोई श्रावक अपना निर्वाह करने को भील लोगों के गांवमें जाकर रहने लगा । पुण्य

योग से वहां रहते हुए वह कोटी धनका स्वामी हो गया। एक बार उन भील लोगो के कुल से चार वृद्ध पुरुष उस श्रावककी समृद्धि देख कर विचार करने लगे कि–इस श्रावकने हमको लोभमें डाल कर ठग कर बहुत द्रव्य एकत्रित कर लिया है, अतः रातको इसके घर में सेंद लगा इसका द्रव्य वापस ले लेना चाहिये अन्यथा यह कपटी वणिक हमारा सर्व द्रव्य लेकर वापस अपने नगर को चला जायगा। कहा है कि —

पासा वेसा अग्गि जल, ठग ठक्कर सोनार।
ए दस न होय अप्पणा, मक्कड वणिक्र बिलाड ॥ १ ॥

"पासा, वेश्या, अग्नि, जल, धूर्त, ठाकोर, सोनी, मर्कट, वणिक और मार्जार ये दश कभी अपने नहीं होते।" ऐसा विचार कर वे सेंद लगाने को तैयार हुए, गृहस्थ श्रावक प्रतिदिन सात आठ सामायिक क्रिया करता था। उस दिन भी मध्यरात्रि व्यतीत हो जाने पर वह उसकी स्त्री सहित सामायिक लेकर बैठा हुआ था, उसी समय वे चोर सेंद लगाने को आये। सेंद लगाकर जब अन्दर देखा तो गृहपति को सजग पाकर विचार करने लगे कि इसकी जागृतावस्था में चोरी कैसे की जाय? अतः कुछ देर राह देखना चाहिये। इधर उस श्रावकने भी उनको देख कर विचार किया कि–"द्रव्य तो कई भवों में प्राप्त होगा, इस भव में भी द्रव्य कई बार आया और गया परन्तु यदि ज्ञानादि भाव द्रव्य को क्रोधादि चोर हर लेंगे तो फिर क्या

करेगा ? अत इस भाव द्रव्यको ही बचा लेना अधिक श्रेष्ठ है, क्योंके भाव धन के होने पर अन्य सर्व द्रव्य कि प्राप्ति सुलभ होती है।" ऐसा विचार कर वह श्रावक एक के पश्चात् दूसरी सामायिक करने लगा और उनमें बारबार नवकार मंत्र आदि का उच्चारण करने लगा। जिसे सुनकर उन चारा चोरा को उहापोह करते जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो आया। जिससे असत्य भव पहिले जो धर्मानुष्ठान किया था तथा जो ज्ञानाध्ययन किया था उस सबका स्मरण हो आया, इससे वे चारों विचार करने लगे कि–"पराये धनकी इच्छा रखने वाले हमको धिक्कार है। चोरी करने से बाह्य पौद्गलिक द्रव्योंकी तो अवश्य प्राप्ति होती है परन्तु भावात्मक आत्मधन-ज्ञानादिक तो प्राय लुप्त हो जाता है, जिसको यह जीव नहीं देखता। अहो! इस श्रावक को धन्य है कि यह हमको देखता हुआ भी अपने लक्ष्य पर अटल है।" इस प्रकार उसकी प्रशसा करते हुए उनको समकित प्राप्ति हुई और चोरी आदि का प्रत्याख्यान करने से देशविरतिपन प्राप्त हुआ। फिर वैराग्यकी वृद्धि होने से खड्ग तथा गणेशियों आदि का त्याग कर नौ प्रकार के भावलोचना परिणामी हुए जिसको सर्वविरति सामायिक की प्राप्ति हुई। तत्पश्चात् अनुक्रम से शुक्ल ध्यान और क्षपक श्रेणी को प्राप्त कर सयोगीकेवली नामक तेरवे गुणठाणा को प्राप्त किया अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त किया।

सूर्य उदय होने पर उन्होंने द्रव्य लोच किया और समीपस्थ देवताओंने जो मुनिवेष दिया, उसको उन्होंने ग्रहण

किया । वह श्रावक भी इन सनदर्शो चारों मुनियों को नमन कर बारबार उनकी स्तुति करने लगा । चारों मुनियोंने अन्यत्र विहार कर अनुक्रमसे मुक्तिपद को प्राप्त किया ।

"इस प्रकार एक गृहस्थ के सामायिक चिह्न को देख कर चारो चोर मुमुक्षु होकर सामायिकके भाव को प्राप्त हुए और अन्तमें ज्ञान द्रव्य उपार्जन कर अभयपुर-मुक्तिपुर मे पहुंच गये ।

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ चत्वारिंशदुत्तरशततम प्रबंध ॥ १५० ॥

व्याख्यान १४१

सामायिक सर्वगुणोंका पात्र होकर अशुभ कर्म की हानि से प्राप्त होती है ।

तदत्र सर्वगुणस्थान, पदार्थाना नभ इव ।
दुष्टकर्मविघातेन, शुभ्यानतस्तथा भवेत् ॥ १ ॥

भावार्थ —"जिस प्रकार सर्व पदार्थोंका स्थान आकाश है, उसी प्रकार सब गुणोंका स्थान सामायिक है । वह दुष्ट कर्मों के घात से और शुभ ध्यान से प्राप्त होते है ।"

विशेषार्थ —सामायिक ज्ञान, दर्शन और चारित्रादि सब गुणो का स्थान है । सर्व वस्तुएँ जैसे घड़ा, वस्त्र, काष्ट आदि का आधार स्थान आकाश है । सर्व आधेय वस्तु

आकाश के आधार से ही स्थित रह सकती है, अन्यथा नहीं वैसे ही ज्ञान दर्शनादि गुण भी सामायिक के आधारभूत हैं। ये सामायिक विना नही रह सकते। वैसी सामायिक क्योंकर प्राप्त हो सकती है यह अब बतलाया जाता है, कि वैसी सामायिक श्री जैन सिद्धान्तानुसार अशुभ कर्म के घात से प्राप्त हो सकती है। सामायिक के घात करनेवाले ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के सर्वघाती स्पर्द्धकके खुल जानेसे और अनंत देशघाती स्पर्द्धकके खुल जानेसे प्रकट होनेपर अनंत गुणकी वृद्धिद्वारा शनै शनै विशुद्धमान होनेपर शुभ शुभतर परिणाम वाला प्राणी भावसे सामायिकसूत्र करेमि भंते का प्रथम अक्षर ककार प्राप्त करता है। इसी प्रकार अनंत गुणोंकी वृद्धि होने पर समय समय पर विशुद्धमान होने पर रेफादि अक्षरों की पंक्ति को प्राप्त करता है। इस प्रकार भाव से सामायिक का लाभ भव्य प्राणी को होता है। इस प्रकार करते करते " करेमि भंते सामाइय " आदि समस्त सूत्र को प्राप्त करता है। इस के विषय में कहा गया है कि-" सामायिक की पातक सर्वघाति और देशघाति कर्म प्रकृति का उद्घात होने पर अनंत गुणी वृद्धि द्वारा विशुद्ध प्राणी को सामायिक का लाभ होता है। " इस का विस्तृत विवरण श्री विशेषावश्यक से पढिये। "

अपितु सामायिक शुभ ध्यानसे होती है। शुभ ध्यान अर्थात् धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान। सामायिक में

धर्म ध्यान का विशेष प्रचार है । धर्म ध्यान चार प्रकार का है । प्रथम आज्ञाविचय अर्थात् श्री वीतराग प्रभु के वचनों का यथार्थरूप से पालन करना क्योंकि वे निश्चय-व्यवहार, नित्य-अनित्य आदि स्याद्वाद प्रकारसे सर्वोत्तम एवं अमूल्य हैं । इस के विषय में ध्यानशतक की प्रतिमे भी कहा गया है कि —

कल्पद्रुम कल्पितमात्रदायी, चिन्तामणिश्चिंतित-मेव दत्ते ।
जिनेंद्रधर्मातिशय विचिंत्य, द्वयेऽपि लोके लघुतामुपेति ॥१॥

"कल्पवृक्ष केवल कल्पित वस्तुका देता है, और चिन्तामणि केवल चिन्तित वस्तुकी प्राप्ति कराती है, परन्तु श्री जिनेन्द्र धर्म के अतिशयका विचार किया जाय तो उससे आगे-कल्पवृक्ष और चिन्तामणि दोनों तुच्छ प्रतीत होते हैं और भी कहा है कि —

स्वरूपपररूपाभ्या, सदसद्रूपशालिषु ।
य स्थिरप्रत्ययो ध्यान, तदानाविचयाह्वयम् ॥१॥

"स्वरूप और पररूप द्वारा सत् असत् स्वभावी वस्तु धर्ममें स्थिर प्रतीतिवाला ध्यान आज्ञाविचय नामक प्रथम धर्म ध्यान कहलाता है ।"

धर्म ध्यान का दूसरा भेद अपाय विचय है । यह इस प्रकार है कि-इस जीवने संसार में परिभ्रमण करते हुए बहु अपाय (कष्ट) प्राप्त किये हैं । हे चेतन ! आत्मा के लिये स्वाधीन मुक्तिमार्ग को छोड़कर तूमने ही तुम्हारी

आत्मा को हजारों कष्टों में डाला है। परन्तु यह आत्मा तत्त्व से तो अज्ञानादिक से रहित, अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्यवाला अर्थात् अनन्त चतुष्टये युक्त, अनादि, अनन्त, अक्षर, अनश्वर, अमल, अरूपी, अकर्म, अबन्धक अजन्य, अनुदीरक, अयोगी, अभेदी, अछेदी, अवपाय, अद्वैहात्मक, अतीन्द्रिय, अनाश्रव, लोकालोकज्ञायक, सर्व प्रदेशे कर्म परमाणुओं से व्यतिरिक्त, शुद्धचिदानन्द, चिन्मय, चिन्मूर्ति और चित्पिंड है। इस प्रकार अनेक गुणोंसे युक्त ऐसे आत्मा को भी हे चेतन! तूने मोहान्धकार द्वारा परवश चेतनवाला बनाकर कौन कौन से कष्ट नहीं दिये? इस प्रकार आत्मा की और दूसरे की अपाय परंपरा का चिन्तवन करते हुए योगी पुरुष अपाय विचय नामक धर्म ध्यान को प्राप्त करते हैं।

धर्मध्यान का तीसरा भेद विपाक विचय है। अनन्त ज्ञानादि गुणों से युक्त जीव भी विपाक अर्थात् किये हुए कर्म के शुभाशुभ फल को द्रव्य क्षेत्रादिक सामग्री द्वारा अनुभव करता है। इनमें द्रव्य से स्त्री, पुष्प आदि के सुन्दर उपभोग को शुभ विपाक, और सर्प, शस्त्र, अग्नि और विष आदि से होनेवाले अनिष्ट फल को अशुभ विपाक समझना चाहिये। क्षेत्र से महल में रहने को शुभ विपाक और स्मशान में रहने को अशुभ विपाक जानना चाहिये। काल से शीत आदि में रति होना शुभ और अरति होना अशुभ विपाक समझना चाहिये। भाव से मनकी प्रसन्नता से शुभ और रौद्र परिणाम आदि से अशुभ विपाक जानना चाहिये।

भव से देवताओं मे तथा भोग भूमि में शुभ और नरकादि भूमि में अशुभ विपाक जानना चाहिये। इस प्रकार द्रव्यादि सामग्री के योग से प्राणियोंके पूर्व संचित कर्म अपना अपना फल देते हैं अत सुख-दु ख को पाकर जीव को खेद एव हर्ष नही करना चाहिये। इसी प्रकार सर्व कर्म की प्रकृतियो के विपाक पर विचार करना चाहिये। यह विपाक विचय नामक तीसरा धर्म ध्यान कहलाता है।

अब संस्थानविचय नामक चोथा धर्म ध्यान बतलाया जाता है। चौदह राजलोक के आकारका विचार कीजिये। जिसमें उर्ध्व अधो और तिर्छालोक के स्वरूपका भी चिन्तवन हो सके। इसका विशेष स्वरुप लोकभावना से देखिये। इस सर्व लोकस्थान मे ऐसा एक भी स्थान नहीं है कि जो इस जीवने जन्मादिक से स्पर्श नहीं किया हो। इस प्रकार चिन्तवन करना संस्थानविचय नामक चोथा धर्म-ध्यान कहलाता है।

इस धर्मध्यान को चोथे गुणस्थानसे लगाकर सातवे गुणस्थान तक समजना। चन्द्रावतस राजा के सदृश कष्ट प्राप्त होने पर भी जो पुरुष इस धर्मध्यान को नहीं छोड़ता उसीको सामायिक प्राप्त हो सकती है।

चन्द्रावतस राजाकी कथा

विशालापुरीमे चन्द्रावतस नामक राजा राज्य करता था। वो बडा धर्मनिष्ठ था। एकबार उसने चतुर्दशी को

महलमे रहते हुए मनमें यह अभिग्रह धारण कर कायोत्सर्ग किया कि जब तक यह दिपक जलता रहेगा तब तक मैं कायोत्सर्गमे रहूगा, 'राजा की एक भक्तिवत दासी स्वामी को खड़ा देख यहा कही अधेरा न हो जाये इस विचार से बारबार उस दिपक मे तेल डालने लगी जिससे वो दिपक बराबर जलता रहा । रात्रि के चारो पहरों मे राजाने कायोत्सर्गमे रहकर धर्म ध्यान किया । उस धर्म ध्यानका स्वरुप इस प्रकार है —

सूत्रार्थसाधनमहाव्रतधारणेश्च, बंधप्रमोक्षगमनागमहेतुचिंता। पचेन्द्रियव्यपगमश्च दया च भूते, ध्यान तु धर्म्यमिति तत्प्रवदति तज्ज्ञा. ॥ १ ॥

"महाव्रतके धारण करने द्वारा सूत्रार्थसाधन सम्बन्धी विचार, कर्म के बंध और मोक्षका चितवन, तथा गति अगति के कारणों का चितवन, पचेन्द्रियपनके विनाश का विचार और प्राणिमात्र पर दया का विचार, इस ध्यानके जानने वाले महात्मा धर्मध्यान कहते हैं।" ऐसे शुभ ध्यान में तत्पर रह "जावनियम पज्जुवासामि" इस पाठ के अनुसार चिंतित समय तक चद्रावतस राजा कायोत्सर्गमें रहा। जब सूर्य उदय हुआ और दिपक बुझ गया तब कायोत्सर्ग पाला, उस समय रुधिर से दोनो पैर भर जानेसे पर्वत के शिखर सदृश वह राजा लुढक कर भूमि पर आ गिरा और शुभ ध्यान से मर कर सद्गति को प्राप्त हुआ।

"इस प्रकार दो घडी की सामायिक भी चिरकाल के कर्मो का नाश कर देती है और चन्द्रावतंस राजा के सदृश विशेष करने से तो विशेष फल देती है। जैसे जल मात्र के स्पर्श से मलिनता का नाश होता है और दीपक के जलाने मात्रमें घोर अन्धकार का विनाश होता है।

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ एकचत्वारिंशदुत्तरशततम प्रबंधः ॥ १४१ ॥

व्याख्यान १४२

सामायिक दोष रहित करना चाहिये

द्वात्रिंशद्दोषनिर्मुक्तं, सामायिकमुपासकैः ।
विधिपूर्वमनुष्ठेयं, तेनैव फलमश्नुते ॥ १ ॥

भावार्थ —" उपासकों-श्रावकों को सामायिक बत्तीस दोष रहित विधिपूर्वक करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे ही उसका फल प्राप्त होता है अन्यथा नहीं ।"

विस्तारार्थ —सामायिक बत्तीस दोष विरहित करना चाहिये, इन बत्तीस दोषोंमें बारह शरीरके दोष हैं। १ वस्त्र हाथ आदिसे पग बांध कर बैठना-२ आसनको इधर उधर हिलाना-३ कौए के समान दृष्टिको फिराते रहना-४ काया से पापयुक्त कार्य करना-५ प्रमार्जन किये बिना स्तंभ या भींत आदिका सहारा लेना-६ अंगोपांग सकोचना अथवा

बार बार लम्बे करना-७ आलस्य करना-८ हाथ-पैर की अंगुलियों मरोड़ कर आवाज करना-९ प्रमार्जन किये बिना शरीरको खुजलाना-१० देहका मैल उतारना-११ शरीरको मालिश करानेकी अभिलापा करे-१२ निद्रा आदिका सेवन करना । यह बारह काया सम्बन्धि दोष हैं ।

दस वचन सम्बन्धि दोष-१ सामायिकमें अपशब्द-गाली बोले । २ सहसात्कार नहीं बोलने योग्य बोल जाय-३ सावद्य कार्यकी आज्ञा दे-४ इच्छानुसार बोले-५ सूत्र के आलावों को संक्षेप में बोले-६ वचनसे कलह करे-७ विकथा करे-८ वचन द्वारा हास्य करे-९ खुले मुह बोले-१० अविरति लोगों को "आओ, जाओ" ऐसा कहें । ये दस वचन सम्बन्धि दोष कहलाते हैं । अब दस मन सम्बन्धि दोष बतलाये जाते हैं -१ विवेक रहित मन द्वारा सामायिक करे-२ यश-कीर्तिकी अभिलापा रक्खे-३ धन, भोजन और वस्त्रादिक की अभिलापा रक्खे-४ मनमें गर्व करे-५ पराभव होता देख नियाणका चिन्तवन करे-६ आजीविकादिक के भयमें मनमें डरे-७ धर्म के फलमें संदेह रक्खे-८ रौद्र चिन्तवनसे और मात्र लोकरीतिसे कालमान पूर्ण करे-९ "इस सामायिक रूप कारागार-बंदीखाने से कब छूटूँगा" ऐसा विचार करे-१० स्थापनाजी या गुरु को अपकार आदिसे रख मन द्वारा बिना लक्ष्यके उद्धताईसे शून्य मनसे सामायिक करे । ये दस मन सम्बन्धि दोष हैं । इस प्रकार कुल बत्तीस दोषोंसे रहित सामायिक श्रावकों को विधिपूर्वक करना चाहिये ।

अनुष्ठान पाच प्रकारका है—१ आलोक के निमित्त तपस्या या क्रिया आदि करना विष्टानुष्ठान कहलाता है। जैसा कि—मागधिका वेश्याने कुल बालिकाको भ्रष्ट करने को किया था–२ परलोक निमित्त जो तपस्या क्रिया आदि की जाय उसे गरलानुष्ठान कहते हैं। जैसा कि वसुदेवके जीव नंदीषेणने किया था–३ उपयोग रहित जो तप, सामायिक आदि किया जाय अथवा दूसरेकी क्रिया देखकर समूर्च्छिम की तरह करे उसे अन्योन्यानुष्ठान कहते हैं। लौकिक शास्त्र मे भी कहा है कि "गुरुके उपदेश बिना जो कोई दूसरे के देखादेखी आचरण करता है वो जटिलके मूर्ख शिष्य के सदृश हास्यका पात्र बनता है।"

जटिलके मूर्ख शिष्यकी कथा

वर्द्धमान नगर में कोई बड़ा-जटिल का एक शिष्य था। वो भिक्षाके लिये एकबार एक सुथारके घर गया। सुथार एक बांस के तेल चोपड़ कर उसे अग्नि के ताप से सीधा कर रहा था। उसे देख उस जड़बुद्धि शिष्यने सुथार से पूछा कि–"यह क्या कर रहे हो?" सुथारने उत्तर दिया कि–"इस टेढे-मेढे बांस को सीधा कर रहा हूँ।" मूर्ख शिष्यने विचार किया कि मेरे गुरु भी वायु विकार से टेढे हो गये हैं। अत उनके लिये भी यही उपाय उत्तम जान पड़ता है। मन टेढी वस्तुओं को सीधी बनाने का यह ही एक उपाय होगा। तत्पश्चात् घर आ गुरु के तेल का मर्दन कर अग्नि के ताप से तपाने लगा। जब अग्नि के ताप से

अत्यन्त कष्ट पा गुरु चिल्लाने लगा तो उस का आक्रन्द सुन कई लोग एकत्रित हो गये और अत्यन्त परिश्रम से पश्चात् गुरु को छुटकारा दिलाया । सब लोगोंने मूर्ख शिष्य का तिरस्कार किया । इस के उपनयका अपनी बुद्धिनुसार विचार कर बुद्धिमान पुरुषको अन्योन्यानुष्ठान नही करना चाहिये ।"

उपयोग पूर्वक अभ्यासके अनुकूल क्रिया करना तद्धेतु अनुष्ठान कहलाता है, जैसा आनन्द श्रावक आदिने किया था । मोक्ष निमित्त यथार्थ विधिपूर्वक तपक्रिया आदि करना अमृतानुष्ठान कहलाता है । जैसा कि वीतराग सयमीअर्जुन माली आदिने किया था । इन पाच प्रकारके अनुष्ठानोंमसे प्रथम तीन त्याग करने योग्य और अतिम दो स्वीकार करने योग्य हैं । इसी प्रकार अन्य अनुष्ठान के भी चार भेद है । १ जो प्रीतिरस द्वारा किये जाय और अति रुचि रहे उसे प्रीत्यनुष्ठान कहते हैं । ये सरल स्वभावी जीवों की नित्यकृति मे होवे हैं । २ बहुमान से भव्य जीव पूज्य की प्रीति के लिये जो करे उसे भक्त्यनुष्ठान कहते हैं । प्रीत्यनुष्ठान तथा भक्त्यनुष्ठानमे इतना अन्तर है कि स्त्री का पालन प्रीति से होता है और माता की सेवा भक्ति से । ३ सूत्र वचन से जो क्रिया की जाय उसे वचनानुष्ठान कहते हैं । यह सर्व आगमानुसार प्रवृत्ति रुप होने से चारित्रधारी साधु को होता है पासत्थादिक को नही होता । जो अभ्यास के बल से श्रुतकी अपेक्षा बिना और फलकी इच्छा बिना जिनकल्पि सदृश यथार्थ रूपसे करे उसे असगानुष्ठान कहते हैं । वचना-

नुष्ठान और असगानुष्ठानमे यह अन्तर है कि कुम्भकार के चक्र का भ्रमण प्रथम दण्ड के सम्बन्ध से होता है इस प्रकार वचनानुष्ठान, और पश्चात् जो चक्रका भ्रमण दण्ड के सयोग बिना केवल सस्कार मात्रसे होता है उस प्रकार असगानुष्ठान है, अर्थात् जो श्रुत सस्कार वचन की अपेक्षा बिना होता है उसे असगानुष्ठान कहते हैं। इस प्रकार दोनाका भेद समझना। ये चारा भेद विशेष विशेष शुद्ध है। इसके विषय मे वृहद्भाष्य मे कहा गया है कि– "प्रथम भावना की स्वल्पता से प्राये बालादिक को सभव है पश्चात् उत्तरोत्तर निश्चय शुद्ध यथार्थ क्रिया की प्राप्ति होती है।" इस प्रकार अनुष्ठान का स्वरूप समझ कर उसका विधि पूर्वक आचरण करना चाहिये। ऐसा करने से ही आगे बतलायेनुसार फल मिलता है अन्यथा नहीं।

"मन वचन और कायाके दोषों से मुक्त ऐसा अनुष्ठान जो यहा प्रथम बतलाया गया है उसी प्रकार सदैव विधिपूर्वक निर्दोष सामायिक करना चाहिये कि जिससे उसकी सफलता है।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ द्विचत्वारिंशदधिकशततम प्रबध ॥१४२॥

व्याख्यान १४३

सामायिकमें धर्मके उपकरण

धर्मोपकरणान्यत्र, पचोक्तानि श्रुतोदधौ ।
तदालव्य विधातव्य, सामायिक शुभास्तिकैः ॥१॥

भावार्थ —"शास्त्ररूप समुद्रमे धर्मके पाच उपकरण हैं, जिनको लेकर उत्तम आस्तिक पुरुषोंको सामायिक करना चाहिये ।"

विस्तारार्थ —सामायिक करनेमें धर्ममें उपष्टम्भ (टेका) अर्थात् धर्मकार्यके उपकारक शास्त्ररूपी समुद्रमे पाच उपकरण कहे गये हैं । श्री अनुयोगद्वार की चूर्णीमे कहा है कि– " सामायिक करनेवाले श्रमणोपासक-श्रावक के लिये पाच धर्मोपकरण कहे गये हैं (१) स्थापनाचार्य, (२) मुहपत्ति, (३) जपमाला-नवकारवाली, (४) चरवला, और (५) कटासना।

प्रथम स्थापनाचार्य को स्थापित कर सामायिक करना। स्थापना दश प्रकार की है । " १-अक्षय २-वराटक ३-काष्ट ४-पुस्तक और ५-चित्रामण । इन पाच प्रकारकी स्थापना के सद्भाव और असद्भाव ऐसे दो भेद हैं । तथा इत्वरा और यावत्कथिता ऐसे भी दो भेद हैं । ऐसा आवश्यक निर्युक्ति के वन्दनाध्ययनमें कहा गया है । इस गाथा से यह प्रयोजन है कि गुरुके अभावमें स्थापनाचाय

के समक्ष वन्दनादि करना चाहिये । इसमें मुख्यवृत्ति द्वारा कर्ता के रूप मे साधु है । इसके विषय में कहा गया है कि "पंचमहाव्रतधारी, प्रमाद रहित, मानसे वर्जित, बुद्धिवाले, मोक्षार्थी और कर्म निर्जराके अर्थी ऐसे मुनि महाराज कृति कर्ममें वन्दना के दाता हैं ।" परंतु साधु सदश श्रावकको भी वन्दना करना चाहिये । यहाँ यदि कोई शंका करे कि, शास्त्रमें किसी स्थान पर श्रावकने भी स्थापनाचार्य की स्थापना की है ? तो उसके उत्तर मे कहा जाता है कि श्री व्यवहारसूत्र की चूलीका म कहा गया है कि, सिंह नामक श्रावक द्रव्याधिकारे दिव्य ऋद्धि और पुष्प का शेखर आदि छोड़ कर स्थापनाचार्य स्थापन कर पोषधशाला में स्थित हुआ । फिर आभूषणों रहित हो आकर इरियावहि पडिक्कमी-करके मुखवस्त्रिका पडिलेहे, तत्पश्चात् चार प्रकारका पोषध करे ।" इस प्रकार सिंह श्रावकने स्थापना प्रगटरूप से ग्रहण की थी। अपितु विशेषावश्यकमें भी कहा है कि- "गुरु के विरह में स्थापना स्थापन करना गुरु वचन के उपदर्शन निमित्त है, जैसे जिनके विरहमे जिन बिंब के सेवन और आमन्त्रण के निमित्त होती है ।"

यहाँ पर यदि कोई यह शंका करे कि-"मुनि के सामायिक सम्बन्धि प्रस्ताव में भते शब्द की व्याख्या करते हुए "गुरुविरहमि" आदि वाक्यों द्वारा भाष्यकार महाराजने साधु के आश्रीत कर स्थापना करना कहा है, श्रावक को आश्रय कर नहीं कहा गया "तो उस शंका करनेवालेसे इतना

व्याख्यान १४३

सामायिकमें धर्मके उपकरण

> धर्मोपकरणान्यत्र, पचोक्तानि श्रुतोदधौ ।
> तदालम्ब्य विधातव्य, सामायिक शुभास्तिकैः ॥१॥

भावार्थ —"शास्त्ररूप समुद्रमे धर्मके पाच उपकरण हैं, जिनको लेकर उत्तम आस्तिक पुरुषोंको सामायिक करना चाहिये ।"

विस्तारार्थ —सामायिक करनेमें धर्मका उपष्टम्भ (टेका) अर्थात् धर्मकार्यके उपकारक शास्त्ररूपी समुद्रमे पाच उपकरण कहे गये हैं । श्री अनुयोगद्वार की चूर्णीमे कहा है कि– " सामायिक करनेवाले श्रमणोपासक–श्रावक के लिये पाच धर्मोपकरण कहे गये हैं (१) स्थापनाचार्य, (२) मुहपत्ति, (३) जपमाला–नवकारवाली, (४) चरवला, और (५) कटासना ।

प्रथम स्थापनाचार्य को स्थापित कर सामायिक करना । स्थापना दश प्रकार की है । " १–अक्षय २–वराटक ३–काष्ट ४–पुस्तक और ५–चित्रामण । इन, पाच प्रकारकी स्थापना के सद्भाव और असद्भाव ऐसे दो भेद हैं । तथा इत्वरा और यावत्कथिता ऐसे भी दो भेद हैं । ऐसा आवश्यक निर्युक्ति के वदनाध्ययनमें कहा गया है । इस गाथा से यह प्रयोजन है कि गुरुके अभावमे स्थापनाचाय

के समक्ष वंदनादि करना चाहिये। उसमें मुख्यवृत्ति द्वारा कर्ता के रूप में साधु हैं। इसके विषय में कहा गया है कि "पंचमहाव्रतधारी, प्रमाद रहित, मानसे वर्जित, बुद्धिवाले, मोक्षार्थी और धर्म निर्जराके अर्थी ऐसे मुनि महाराज कृति कर्ममें चन्दना के दाता हैं।" परन्तु साधु सदृश श्रावकको भी वन्दना करना चाहिये। यहां यदि कोई शंका करे कि, शास्त्रमें किसी स्थान पर श्रावकने भी स्थाप नाचार्य की स्थापना की है? तो उसके उत्तर में कहा जाता है कि श्री व्यवहारसूत्र की चूर्णीमें कहा गया है कि, सिंह नामक श्रावक द्रव्यादिकारे दिव्य ऋद्धि और पुष्प का शेखर आदि छोड़ कर स्थापनाचार्य स्थापन कर पौषधशाला में स्थित हुआ। फिर आभूषणों रहित वो श्रावक इरियावहि पडिक्कमी-करके मुखवस्त्रिका पड़िलेहे, तत्पश्चात् चार प्रकारका पोषध करे।" इस प्रकार सिंह श्रावकने स्थापना प्रगटरूप से ग्रहण की थी। अपितु विशेषावश्यकमें भी कहा है कि- "गुरु के विरह में स्थापना स्थापन करना गुरु वचन के उपदर्शन निमित्त है, जैसे जिनके विरहमें जिन बिंब के सेवन और आमंत्रण के निमित्त होती है।"

यहां पर यदि कोई यह शंका करे कि-"मुनि के सामायिक सम्बन्धि प्रस्ताव में भते शब्द की व्याख्या करते हुए "गुरुविरहमि" आदि वाक्यों द्वारा भाष्यकार महाराजने साधु को आश्रीत कर स्थापना करना कहा है, श्रावक को आश्रय कर नहीं कहा गया "तो उस शंका करनेवालेसे इतना

ही पूछना कि श्रावक जब सामायिक का उच्चारण करता है तब भदंत-भंते शब्द का उच्चारण करता है या नहीं? यदि करता है तो साधु के सदृश साक्षात् गुरु के अभाव में वो भी स्थापना का स्थापन करता है क्योंकि न्याय की तो दोनों स्थानमे समानता है। और 'भंते" शब्द का उच्चारण नहीं करना तो केवल दीक्षाके समय श्री जिनेश्वर भगवत के लिये ही घटित होता है। अपितु जब सर्व ज्ञान क्रियामे प्रवीण साधु ही स्थापना स्थापन करते हैं तो फिर गृहकार्य में व्यग्र मनवाला श्रावक के लिये तो ऐसा करना विशेष प्रकार से उचित है। इस प्रकार आगमप्रमाण बतला कर अब युक्ति बतलाई जाती है कि यदि स्थापनाचार्य बिना अनुष्टान किया जाय तो वंदनकनिर्युक्ति मे कहाँ गया है कि —

आयप्पमाणमित्तो, चउदिसि होइ उग्गहो गुरुणो।
"आत्मप्रमाण अर्थात् साढ़े तीन हाथ के प्रमाण में चारो दिशाओं मे गुरु का अवग्रह होता है। "उस अवग्रह क्षेत्र मे बिना गुरु आज्ञा के प्रवेश नहीं करना चाहिये। अब ऐसा कहा गया है तो फिर यह वाक्य क्या कर घटित होगा? क्योंकि गुरु के अभावमें अवग्रह क्या कर? जैसे गावके अभाव मे सीमाकी व्यवस्था नहीं हो सकती। अपितु श्री समवायागसूत्र मे वादना के पच्चीस आवश्यक कहे है। उनमे जो "दुप्पवेस एग निक्खमण" आदि कहा गया है वो भी बिना गुरु के क्यों कर किया जाय? कोई

ऐसा भी कहते हैं कि–"हम तो गुरु की स्थापन हृदय मे कर लेंगे।" इस के उत्तर मे गुरु का कहना है कि–तुम्हारा ऐसा कहना गधे के शीग के लावण्य के वर्णन करने तुल्य है, क्योंकि यदि गुरु को हृदय मे स्थित माना जाय तो व दना करने के साथ ही गुरु का सचार होगा अर्थात् दो प्रवेश और एक निष्क्रमण मे गुरु साथ ही सचरें, इससे किसी भी प्रकार से गुरु के समक्ष निर्गमन प्रवेश करना घटित नहीं होता और ऐसा होने से पचीस आवश्यक पूरे नही होते और जबतक वे पूरे न हो तब तक वन्दनकी शुद्धि नहीं हो सकती, अत गुरु की स्थापना स्थापित करके ही क्रिया करना चाहिये ऐसा सिद्ध होता है।'

दूसरा उपकरण मुखवस्त्रिका रख कर सामायिक करना चाहिये। इस के विषय मे श्री व्यवहार सूत्रमे कहा गया है कि–"हे गौतम! जो मुहपत्ति पडिलेहना बिना वन्दना करे उसे गुरू प्रायश्चित्त लगता है।" अपितु श्री व्यवहार चूर्णीमें कहा है कि "प्रावरण आभूषण आदि को दूर रख, मुहपत्ति ग्रहण कर, वस्त्र तथा काया का प्रमार्जन कर, पौष धादिक करना चाहिये।" आवश्यकचूर्णी में भी कहा है कि –"जो सामायिक करे उसे मुकुट उतारना व कुण्डल, मुद्रिका, पुष्प, ताम्बूल और प्रावरण आदि को वोसिराना चाहिये।" श्री निशीथसूत्र की चूर्णी मे १४ वे उद्देश मे 'प्रावरण' का अर्थ 'उत्तरीय वस्त्र' बतलाया गया है। यहा उत्तरीय वस्त्रके त्याग से श्रावक को मुखवस्त्रिका को ग्रहण

करना अर्थापत्ति द्वारा बतलाया गया है। श्री उपासगदशांग सूत्रके छट्ठा अध्ययनमें कहा है कि-" एक बार कुंडकोलिक श्रमणोपासक पूर्व[1] अपराह्न कालमें अशोक वनमें जहां पृथ्वी शिलापट्ट हैं वहा आया, आकर नामांकित मुद्रिका और उत्तरीय[2] वस्त्र शिलापट्ट पर स्थापन किया। स्थापित कर श्रमण भगवंत श्री महावीरपरमात्माके समक्ष धर्मतत्त्वको आदरने लगा।" उसी स्थान पर देवकी परीक्षाके पश्चात् कहा है कि-" उस समय प्रभु पधार-समवसर्‍यें, यह बात श्रमणो पासक कुण्डकोलिकने सुनी। वो भी तत्काल कामदेव श्रावक की तरह प्रभुको वंदनकरनेको निकला, यावत् पर्युपासना करने लगा। कामदेव श्रावक पौषध पारे विना ही वंदन करनेको निकला है। इस विषयमें उसी सूत्रमें कहा है कि-" श्री महावीर प्रभुको वन्दना कर वहांसे वापस लौटने पर ही मुझे पौषध पारना उचित है। यह ही मेरे लिये श्रेयकारी है, ऐसा विचार कर आदि।" यहां कुण्डकोलिक श्रावकने भी उत्तरीय वस्त्र अलग रख कर मुखवस्त्रिका आदिसे धर्मक्रिया की है ऐसा समझना चाहिये। यदि ऐसा न माना जाये तो उसे कामदेवकी उपमा देनेसे उस प्रकार पौषध पारने का अभिप्राय पुरा नहीं होता।

यहां पर कोई वादी कहेगा कि-"कृष्ण वासुदेव द्वारा किये गये वन्दना का सम्बन्ध जहां कहा गया है उस में मुखवस्त्रिकादि से वंदन करना नहीं कहा गया? उसी प्रकार

---

१ दुपहर के पहिले का समय। २ ओढ़ने का वस्त्र।

वस्त्र के छोरसे करने का भी नही कहा गया है।' इसके उत्तर मे कहा गया है कि-' श्री अनुयोगद्वारसूत्र मे कहा है कि-वह लोकोत्तर भाव आवश्यक कहलाता है कि जिसमें साधु, साध्वी श्रावक और श्राविकाके विषय में चित्त, मन, लेश्या और अध्यवसाय रक्खे। उनके अर्थ मे उपयुक्त हो उसके लिये अर्पित करण करे और अन्य स्थान पर मन के जानेका निरोध करे। इस प्रकार दोनों समय आवश्यक करे। यहा "तदप्पिअकरण' इस पद की चूर्णी में चूर्णीकार लिखते हैं कि-" इस के साधन उपकरण शरीर, रजोहरण, मुखवस्त्रिका आदि या द्रव्यक्रिया करने के स्थान पर स्थापित करना चाहिये।" उस पद की वृत्ति मे वृत्तिकार लिखते हैं कि 'तदर्पित करण वे उपकरण जो रजोहरण-मुखवस्त्रिका आदि उस आवश्यकमे यथायोग्य आधार के नियोग मे जिनका अर्पित किये गये हैं अर्थात् द्रव्यसे स्वस्थान पर उपकरणोंको स्थापित करने वाला।" इस प्रकार श्री हरिभद्रसूरिकृत अनुयोगद्वार की वृत्ति म कहा गया है और मलधारी श्री हेमचन्द्रसूरिकृत वृत्ति मे भी इसी प्रकार कहा गया है अर्थात् चूर्णी मे और दोना वृत्तिमे "तदर्पित करण" का व्याख्यान साधु और गृहस्थ दोनोके लिये एकसा दिया गया है किसी भी स्थान पर केवल श्रावकको आश्रित कर समस्त आवश्यक क्रिया का पाठ नहीं किया गया है। अपितु आवश्यकचूर्णी में सामायिक के विषयमें लिखा है कि-"साधुके समीपसे रजोहरण अथवा कटासण माग अथवा अपने घर उपधी रजोहरण न हो तो

उसके अभाव मे वस्त्र के खण्ड द्वारा क्रिया करे।" तथा वदनकभाष्य मे भी कहा गया है कि-" इस प्रकार सुश्रावक श्री द्वादशावर्त्त वदन करता हुआ मुखवस्त्रिका आदि को ग्रहण करने को कहा गया है। इस विषय मे विशेष युक्ति श्रीकुलमडनसूरि द्वारा लिखित विचारामृतसग्रह से जानी जा सकती है।

श्रावकको सामायिकमे जपमाला भी रखना चाहिये। प्रतिक्रमण मे छ प्रकार के आवश्यक किये पश्चात् अथवा सामायिक मे जप करने के लिये उसका रखना आवश्यक है।

'दण्ड' इस शब्दसे पदभूमि[१]का प्रमार्जन करने निमित्त रजोहरण-दडासन लेनेका अभिप्राय है। अथवा बहुश्रुत जो अर्थ करे वह अभिप्राय है।

पादप्राछनक कटासना कम्बल या बनात का होना चाहिये। उपरोक्त धर्मके उपकरणो को अवलवित कर उत्तम आस्तिक श्रावक को सामायिक करना चाहिये। इन उपकरणो के दानका भी महान फल है। इस विषय में सुना गया है कि-" श्री कुमारपाळ राजा अढारहसो साधर्मीयों को धर्म के उपकरण भेट करते थे।" एक समय किसी चारण से एक वणिय पाचसो घोड़ोको देखकर पूछा कि ये घोडे किसके हैं? उस पुरुषने उत्तर दिया कि ये घोडे श्री कुमारपाल राजाकी पौषधशाला मे जो मुखवस्त्रिका आदि उपकरण देते

---

१ पैर रखने की भूमि।

हैं और जो साधर्मियोंकी सार-सभाल करते हैं उनके हैं, और उनके निर्वाहके लिये राजाने बारह गाव दे रक्खे हैं। उनकी उपज से जो द्रव्य आता है वो सर्व धर्मके उपकरणों की सार-सभालमें उपयोग में लिया जाता है। यह सुनकर चारण इस प्रकार प्रशंसा करने लगा कि–" वो पार्श्वनाथ[1] बड़े अच्छे हैं कि जिनके शासनमें श्री कुमारपाल जैसा राजा हुआ है, जिनके देखनेसे मुनिसमूह सदैव हर्षित होते हैं।" इस प्रकार धर्म वर्णन प्रशंसा सुन श्री कुमारपालने उसे एक लक्ष द्रव्य दिया।

इस प्रकार समतारूप अमृतके रसास्वादनमें तत्पर राजा श्री कुमारपालने धर्मके उपकरणों की वृद्धि निमित्त कई ग्राम और अश्व दिये थे।

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ त्रिचत्वारिंशदुत्तरशततमः प्रबंधः ॥ १४३ ॥

व्याख्यान १४४

सामायिक का फल

देशसामायिकं श्राद्धो, वितन्वन् घटिकाद्वयम् ।
द्रव्यादीनां व्ययाभावा–दहो पुण्यं महद्भवेत् ॥१॥

---

१ यहां पार्श्वनाथ शब्दसे जैनियोंके देव

भावार्थ —"केवल दो घडी की देश सामायिक मात्र से श्रावक को बिना किसी द्रव्यादिक खर्चे के कितना महान पुण्य प्राप्त होता है।"

विस्तारार्थ —श्रावक दो घडी-एक मूहूर्त की देश सामायिक से ही महान पुण्य उपार्जन करता है। वो सामायिक किस प्रकार करता ? यह बतलाया जाता है-पूर्वोक्त कथन-युक्ति द्वारा रजोहरण मुखवस्त्रिका आदि उपकरण लेकर-इरिआवही पडिक्कमणा इसके विषय मे श्री महानिशीथ सूत्र मे कहा है कि-"इरियावही पडिक्कमे विना चैत्यवदन, स्वाध्याय और ध्यानादि करना अकल्पनीय है। अपितु श्री हरिभद्रसूरि द्वारा रचित श्री दशवैकालिक सूत्र की वृत्ति मे कहा गया है कि-" ईर्यापथिकी' पडिक्कमा बिना अन्य कोई कार्य नही करना चाहिये क्योंकि उसके बिना किये कार्यमे अशुद्धपनकी आपत्ति है अत प्रथम इर्यापथिकी पडिकमी करके सामायिक करना। पचाशकवृत्ति में, २३पद प्रकरणमें, आव श्यक निर्युक्तिके द्वितीय खडके प्रात भागमें, और श्राद्धदिन कृत्य ग्रन्थम प्रथम "करेमि भते" इत्यादि सूत्र पढकर पश्चात् इर्यापथिकी पडिकमें ऐसा कहा गया है। उसे देखकर श्री आर्हत् धर्ममे व्यामोह-सन्देह नहीं करना क्योंकि श्री गण-धर महाराजाओं की समाचारीये भी भिन्न भिन्न सुनि जाति है। तत्त्व, नो बहुश्रुतसे जाना जा सकता है। परन्तु बुद्धि-मान पुरुषो को पूर्वाचार्य की परम्परा से नहीं आनेवाले पक्ष को केवल अपनी बुद्धि की कल्पना मात्रसे ही स्वीकार नहीं कर लेना चाहिये।

सामायिक की विशेष विधि श्री धर्मसंग्रहादि ग्रंथोंमें पढ़िये। इस प्रकार विधिपूर्वक सामायिक करनेसे श्रावक बिना किसी द्रव्य-वस्त्रादिकके खर्चे ही बड़ा पुण्य उपार्जन करता है। इस विषयमें पूज्य पुरुषोंने कहा है कि "दो घड़ीकी सामायिक मात्रसे श्रावक कई पल्योपमका देवायुष्य बांधता है। कितने पल्योपम का? इसके विषयमें कहा है कि-"बाणु करोड़-ओगनसाठ लाख पच्चीस हजार नौसो पच्चीस पल्योपम तथा १/३ और ८/९ पल्योपम।" अपितु कहा है कि-"जो मोक्ष गये, जाते हैं, और जायेंगे, वे सब सामायिकके प्रभावसे ही हैं ऐसा समझना। फिर भी कहा है कि-"बिना हवन, तप व दानकी अमूल्य करणी मात्र सामायिक ही है जो मात्र समता द्वारा ही सिद्ध होती है।" इसके विषयमें एक निम्नस्थ कथा है —

सामायिक महिमा पर केशरी चोर की कथा

श्रीपुर नगरमें पद्म श्रेष्ठी के केशरी नामक एक पुत्र था। वह नट, विट और अधर्मियों की संगत से चोरी करने लगा, लोगोंका पुकार सुन राजाने उसे पकड़ मंगवाया और शिक्षा दे वापस छोड़ दिया फिर भी वह चोरी के व्यसनमें आसक्त रहा। इससे राजाने उसे उसके पिता के कहने से अपने देशसे बाहर निकलवा दिया। मार्ग में जाते उस दुष्टने विचार किया कि-"आज मैं किसके यहां चोरी करूंगा?" ऐसा विचार कर वह सरोवर की पालके वृक्ष

पर चढा और चारों ओर सर्व दिशाओंमे दृष्टि फैला कर देखा तो एक सिद्ध पुरुषको अकस्मात आकाश से उत्तर सरोवर के किनारे पादुका उतार अन्दर जा स्नान करते देखा। यह देख वह वैरागी उसकी पादुका पहिन आकाश मे उड़ गया और अपने नगर मे आ लोगो का सर्वस्व चोरने लगा। राजाके अन्तःपुरमे भी जाने लगा अत राजा स्वय अत्यन्त खेदित हो हाथमे खड्ग-तलवार लेकर सर्व स्थान पर उस चोर की खोज करने लगा वनमे जाने पर एक दिव्य पूजित चन्डिकाका मन्दिर दृष्टिगोचर हुआ। वहा चोरका आना सभव जाना छिपकर खड़ा रहा। उसी समय वह चोर वहा आ दोनों पादुका को उतार देवी को नमन कर बोला कि, "हे देवी! यदि आज मुझे बहुत धन मिलेगा तो मैं तेरी पूजा विशेष आनन्द य ठाठ-बाट से करुगा।" ऐसा कहकर ज्यो हि वह पादुका पहिनने गया कि राजाने एक पादुका ले ली। चोर राजाको उस शिक्षा करनेवाला समझ भगने लगा कि पासमे ही छीपे राजाके योद्धाओंने उसका पीछा किया। चोर भयसे विह्वल होकर विचारने लगा कि "अहो! आज मेरा पाप फला है।" उसी समय उसने समीप ही एक मुनिको देखा जिससे उसने अपने अबतक किये पाप के त्याग का उपाय पूछा। मुनिने उत्तर दिया कि —

तप्येद्वर्षकोटीर्यद्व, एकपादस्थितो नर।
एकेन ध्यानयोगेन, कला नार्हति षोडशीम्॥

" यदि कोई पुरुष सौ वर्ष पर्यन्त एक पैरसे खड़ा रहकर तप करे तो भी वह एक ध्यान योग सामायिककी मोलहवी कलकी समता नहीं कर सकता।' तत्पश्चात् गुरुके मुहसे सामायिकका फल सुन, सामायिक ले, वह चार वनके पूर्वकृत पापका पश्चात्ताप करने लगा।" अहो! मैंने नास्तिक बुद्धिसे बड़ा भारी पाप किया है, मुझे धिक्कार है।" इस प्रकार शुभ ध्यान करते हुए क्षपकश्रेणी द्वारा उसे केवलज्ञान प्राप्त हुआ। देवताओंने रजोहरण आदि भेट कर बड़ा उत्सव मनाया। राजा भी उस चार को समतावान्-संयमी देख आश्चर्यान्वित हो उसकी महिमा देखने लगा। उसे देख ज्ञानी महात्मा बोले कि राजा! तू आश्चर्यान्वित हो कर यह सोच रहा है कि इसे क्यों कर केवलज्ञान प्राप्त हो गया? पर यह सब सामायिककी महिमा-प्रभाव है अर्थात् सामायिकका फल है। कहा है कि —

प्रतिहन्ति क्षणार्द्धेन, साम्यमालम्ब्य कर्म तत्।
यन्न हन्यान्नरस्तीव्रतपसा जन्मकोटिभिः ॥ १ ॥

" पुरुष करोड़ों जन्म तक तीव्र तपस्या द्वारा जितने कर्मोंका विनाश नहीं कर सकता उतने कर्मोंका समता मय सामायिकका आलम्बन करनेवाला पुरुष अर्द्धक्षण मात्रमें नाश कर सकता है।" यह सुन राजा भी प्रतिदिन सामायिक करनेका अभिग्रह ले घर गया। चारमुनि चिरकाल पर्यन्त पृथ्वी पर विहार कर अनेक जीवोंको प्रतिबोध दे अनुक्रमसे मुक्तिको प्राप्त हुए।

सात व्यसनमे आसक्त, सर्वको सताप देनेवाले, ऐसा चोरको भी निर्वाण प्राप्त करानेवाली सामायिक सदैव प्राज्ञ पुरुषो को करना चाहिये।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ चतुश्चत्वारिंशदुत्तरशततमः प्रबंधः ॥ १४४ ॥

व्याख्यान १४५

दसवा देशावकाशिक व्रत

दिग्व्रते परिमाणं यत्, तस्य सक्षेपणं पुनः ।
दिने रात्रौ च देशाव-काशिकव्रतमुच्यते ॥ १ ॥

भावार्थ —छट्ठे दिग्विरमण व्रतमे दिशाओंके परिमाण किये व्रतका दिन अथवा रात्रिमे सक्षेप करना देशावकाशिक व्रत कहलाता है।"

विस्तारार्थ —पहले गुणव्रतमे जो दशों दिशाओंमे आनेका परिमाण बाधा हो उसका दिन अथवा रात्रिमे उपलक्षणसे प्रहर आदिके लिये जो सक्षेप किया जाता है उसे देश और उसमे अवकाश अर्थात् अवस्थान देशावकाशिक व्रत कहलाता है। प्रथम दिग्व्रतमे यावज्जीवन पर्यन्त अथवा वर्ष प्रमुखकी मर्यादासे जो सो योजन आदिकी छूट रक्खी हो उसमे से इस देशावकाशिक व्रतमे मुहूर्त, दिन, प्रहर आदि इच्छित काल तक घटाये जाते हैं और उस समय तक घर,

दुकान, शय्या आदि विभागमें आरम्भका त्याग कर एक देश की मर्यादा में रहा जाता है, उसे देशावकाशिक व्रत कहते हैं।

दृष्टि विष सर्पके विषका विस्तार बारह योजनका होता है उसको विद्या बलसे एक योजनका बतलाया जा सकता है अथवा समस्त शरीरमें व्याप्त बिच्छुके विषको एक अगुली (डङ्क)में लाया जा सकता है। इसी प्रकार विवेकी पुरुषको दिग्व्रतमें लिये दिशा परिमाणका सदैव सक्षेप करते रहना चाहिये। इस व्रतसे अन्य सब व्रतोंके नियमोंका भी प्रतिदिन सक्षेप होता रहता है। इसीलिये उपरोक्तानुसार "सच्चित्त दव्व" गाथामें बतायेनुसार १४ नियमोंको श्रावक प्रातःकाल ग्रहण करते हैं, सायङ्काल उनका सकोच करते हैं और उनका पच्चक्खाण करते हुए "देसावगासिय पच्चक्खामि" कहके गुरुके समक्ष स्वीकार करते हैं। इस विषयमें कहा है कि— "दिशिपरिमाण व्रतका नित्य प्रति सक्षेप करना देशावगासिक, अथवा सब व्रतोंका सक्षेप प्रतिदिन जिस व्रतमें हो उसे देशावगासिक व्रत कहते हैं। उनमें प्रथम व्रतका सक्षेप इस प्रकार है कि—"पृथ्वी जल, अग्नि, वायु और वनस्पति तथा त्रसजीवों सम्बन्धी जो आरम्भ और उपभोग हैं उन सबका इसके व्रतमें यथाशक्ति सक्षेप करना चाहिये।" इसी प्रकार सर्व व्रतोंमें यथशक्ति करना। शयन समय तो विशेषतया सर्व हिंसा तथा मृषावाद आदिका सक्षेप करना उचित है। इस व्रतके पालनसे सुमित्र सदृश उत्तम सपत्ति की प्राप्ति होती है। उसकी कथा इस प्रकार है —

सुमित्रकी कथा

चद्रिका नगरीमे प्रजापाल नामक राजा था जिसके सुमित्र नामक जनमत्री था। उन दोनोंमें परस्पर सदैव धर्म विषयमें वादविवाद होता रहता था। राजाको धर्म पर श्रद्धा नही थी। एक बार राजाने मत्रीसे कहा कि "अरे प्रधान! तू देव पूजा आदिमे क्या वृथा मोह करता है?" मत्रीने उत्तर दिया कि-'हे राजन्! विना पूर्वभवमे सुकृत किये तुम राजा क्योंकर बने और मैं सेवक क्योंकर? सब एक सदृश क्यों नही बने?' राजाने कहा कि-"यदि एक पत्थरकी शिलाके दो टुकड़े करें और उनमें से एक टुकड़े का केवल प्रतिबिंब घडावे और दूसरेका पगथिया, तो यह लाइय कि इन दोनोंमे से किसने धर्म किया और किसने पाप? मात्र स्थान विशेषसे न्यूनता और विशेषता गिनी जाती है।' मत्रीने उत्तर दिया कि "यह आपकी मान्यता झूठी है, क्योंकि उनमे त्रसजीवका अभाव होने से वह युक्ति रहित है, यदि उनमें त्रसजीव होता तो यह आत्मशक्तिसे पूज्य और अपूज्य कर्मका उपार्जन कर सकता। अपितु उस पत्थरमें एकेन्द्रिय जीव होता है। उसके एक खण्डमे रहने वाले जीवने पूर्वभवमे बड़ा पुण्य किया था इससे यह देव का प्रतिबिम्ब हुआ और वह हजारो वर्ष तक घाइ ताडन, घर्षण, निभाईमे पचन आदि तथा चूर्ण (चूना) होने आदि दुःखोंको नहीं भोगेगा। दूसरे खण्डमे स्थित जीवने पूर्व भवमें पाप किया होगा जिससे वह अत्यन्त दुःखोंका भागी होता है। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये।" प्रधानके

ऐसे शब्द सुन राजाने मन्त्रीसे कहा कि-" बिना प्रत्यक्ष फल देखे मुझे पुण्य पर श्रद्धा नहीं होती।" इस प्रकार उनमें परस्पर सदैव संवाद होता रहता था।

एक बार मन्त्रीने पाक्षीकी रात्रिको घरसे बाहर जानेके पच्चक्खाण किये और उसी रात्रीको बाद आवश्यक कार्य उपस्थित होनेसे राजाने एक प्रतिहारको उसे बुलाने भेजा। मन्त्रीने प्रतिहारको अपना नियम समझाकर आनेमे लाचारी प्रकट की। प्रतिहारने लौट कर यो बात राजा से कही। राजाने अतिक्रोधित हो प्रतिहार को वापस भेज मन्त्री से अपनी मोहोर छाप मंगवाई। मन्त्रीने तत्काल उसे प्रतिहारको दे दी। प्रतिहारने कौतुकसे उस मोहर छापकी मुद्रिकाको हाथमे पहन अपने साथियोसे हस कर कहने लगा कि-"अरे सेवको! देखो राजाने मुझे मन्त्रीपद दिया है।" सेवक-" मन्त्रीराज! खमा, पधारिये" इस प्रकार बोलने लगे। तत्पश्चात् यह कुछ ही आगे गया कि दैवयोगसे किन्ही दुष्ट सुभटोने उसे मार डाला। यह खबर जब राजाको मिली तो उसने विचार किया कि-" अवश्य उस प्रतिहारको मन्त्रीने ही मरवाया होगा अतः मैं स्वयं जा कर उस मन्त्रीको ही क्यों न मार दूं?" ऐसा विचार कर राजाने वहांके लिये प्रस्थान किया कि इसी बीचमें हि प्रतिहारको मारने वाले सुभट पकड़े गये और बन्दीके रूपमें उसे मार्गमें मिले। राजाने उनसे पूछा कि "तुम कहां से आये थे?" उन्होंने उत्तर दिया कि "हे महाराज! हम पेटार्थियोंसे क्या पूछते हैं?

तुम्हारे वैरी सूर राजाने हमने तुम्हारे मन्त्रीका वध करनेको भेजा था अत हमने मुद्रिकासे इस प्रतिहारको मन्त्री समझ कर मार डाला है।" तत्पश्चात् राजा मन्त्रीके घर जा मिथ्या दुष्कृत कह कर सर्व वृत्तान्त मन्त्रीसे कह सुनाया। मन्त्रीने उन सब सुभटोंको अभयदान दिया। राजाने कहा कि "हे मन्त्रीराज! आज मैंने पुण्यका फल प्रत्यक्ष देखा है।" फिर पुण्यकी प्रशसाकर राजाने गृहस्थ धर्म अगीकार किया। अन्तमें मन्त्री और राजा दोनोने पुण्य उपार्जन कर महा विदेह क्षेत्रम सिद्धि पद प्राप्त किया।

"सुमित्र मन्त्रीने दशवे व्रतम दृढ रह इसी लोकमें धर्म के पूर्ण फल को प्राप्त किया और राजाने उसे देख नास्तिकपनाका त्याग कर प्रतिबोध प्राप्त कर शुद्ध धर्म का सेवन किया।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ पञ्चचत्वारिंशदधिकशततम प्रबंध ॥१४५॥

व्याख्यान १४६

देशावकाशिक व्रतमे त्यागन योग्य पाच अतिचार

प्रेष्यप्रयोगानयन, पुद्गलक्षेपण तथा ।
शब्दरूपानुपातौ च, व्रते देशावकाशिके ॥१॥

भावार्थ —सेवकको भेजना, भीतर मंगवाना, पुद्गल फेकना, कंकर आदि डालना, शब्द करना और रूप बतलाना" ये पांच देशावकाशिक व्रतके अतिचार हैं ।

विस्तारार्थ —दिग्व्रतमे जो विशेषता हो उसे देशावकाशिक व्रत कहते हैं । वो विशेषता इस प्रकार है कि- दिग्व्रत यावज्जीवित वर्ष और चातुर्मासके परिमाणका होता है और यह देशावकाशिक व्रत एकदिन, रात्रि, प्रहर और मुहूर्त (दो घड़ी) आदि के परिमाणका होता है । इस व्रत के पांच अतिचार हैं जो इस प्रकार है कि -प्रेष्य अर्थात् आदेशानुसार कार्य करनेवाले नोकरका प्रयोग करना याने धारित क्षेत्रके बाहर किसी प्रयोजनसे सेवक आदिको भेजना (क्योंकि खुदके जानेसे तो व्रत भंग होता है ।) यह प्रथम प्रेष्य प्रयोग नामक अतिचार है । आनयन अर्थात् कोई सचेतनादि वस्तु नियमित क्षेत्रसे बाहर हो उसे सेवक आदि को भेज कर मंगवाना आनयन प्रयोग नामक दूसरा अतिचार कहलाता है । पुद्गल अर्थात् पाषाण काष्ट आदि के टुकडों को नियमित स्थान से बाहर फेंक अपना कार्य बतलाना पुद्गल प्रक्षेप नामक तीसरा अतिचार कहलाता है । नियमित क्षेत्रसे बाहर वालेको अपना कार्य बतलानेके लिये व्रत भंग के भय स्वयं जाकर तो नहीं बोलते लेकिन ऊंचे स्वर, खांसी, खरखरी आदिसे अपने आत्माका सूचित करना शब्दानुपात नामक चौथा अतिचार कहलाता है । इसी प्रकार अपने रूपको बतलाना अथवा निश्रेणी, अटारी, मेडी या

छत पर चढ कर दूसरेका रूप देखना रूपानुपात नामक पाँचवा अतिचार कहलाता है । यह व्रत नियमित भूमिसे बाहर चलने फिरनेसे जीवो के वध को रोकने निमित ग्रहण किया जाता है । वो जीव वध चाहे स्वय करे या दूसरो द्वारा कराव इसके फलमे कोई विशेषता नहीं होती परन्तु यदि स्वय जाये तो उसम इर्यापथिकी की शुद्धि आदि के गुण होते हैं परन्तु सेवको के भेजनेसे तो उनम निपुणपन के अभावसे तथा निशुकपन के होने व इर्यासमिति के न होने से विशेष दोष प्राप्त होते हैं अत आनयन प्रयोग आदि अतिचार लगाना अकल्पनीय है । इनमे पहले दो अतिचार "मेरे व्रतका भग न हो' इस प्रकार व्रतको निभानेकी सापेक्ष वृत्तिमे अनाभोग आदिसे होत हैं और अन्तिम तीन अतिचार मायावीपनस अतिचार रुप होता है। इस दसवे व्रतका निरतिचारपन से पालन करने के विषयमें राजा के भडारी धनदकी कथा प्रसिद्ध है । उसका उल्लेख श्राद्ध प्रतिक्रमणसूत्र की अर्थ दीपिका नामकी वृत्तिम किया गया है । तथा दूसरी पवनजय की कथा श्राद्धदिनकृत्यवृत्तिमे लिखी गइ है ।

जो प्राणी इस व्रतका ग्रहण न कर सर्वस्थान पर जानेकी छूट रखत हैं वे अत्य त दु ख के भागी बनते है । और जो गुरु वचनसे देशावकाशिक व्रतको अगीकार करते हैं वे पुण्य उपाज न कर लोहजघ सन्श विपत्तिसे बच जाते है । इसी प्रकार जो अश्व, वृषभ, ऊट आदि के स्वामी

उन्हें सैन्य अपरिमित गतिसे चलाते हैं वे भी अपना हित नहीं कर सकते । लोहजघकी कथा इस प्रकार है कि —

लोहजघकी कथा

एक बार उज्जयिनीनगरीमे चण्डप्रद्योत राजाने यह घोषणा की थी कि जो कोई अभयकुमार मत्रीको बाध कर ले आयेगा उसे मैं मनोवाञ्छित वस्तु दूगा । इस बार किसी वेश्याने स्विकार किया, और श्राविका का कपटरूप बनाकर राजगृहनगरी मे जा, अभयकुमारको उसने ठहरने के स्थान पर ला, धोखेसे चन्द्रहास मदिरा पिला, उसे बेभान बनाकर नशेकी हालत मे पकड़ अवती मे ला राजा चडप्रद्योत के समक्ष उपस्थित किया जिसे राजाने बन्दी बनाया । परन्तु जब राजा चडप्रद्योतने उसे पकडकर लानेका सम्पूर्ण वृतात वेश्यासे सुना तो वो उस पर अप्रसन्न होकर बोला कि "तूने जो इसे धर्म के छलसे पकड़ा है यह अच्छा नहीं किया"

राजा चडप्रद्योतके पास अग्निभीरु रथ, शिवादेवी पटरानी स्त्री, अनिलवेग हस्ती और लोहजघ दूत ये चार रत्न थे। इनमेसे लोहजघ दूत प्रतिदिन पच्चीस योजन जा अनेक देशोके राजाओके गुह्य समाचार ला राजाको सुनाया करता था । इससे सर्व सामन्त, राजा उद्वेगित हो उसे मारनेके लिये एक बार विषमिश्रित भोजन दिया। लोहजघ उस भोजन को ले अवतिकी ओर चल पडा। मार्गमे जब भोजन करने बैठा तो कई अपशुकनोने उसे रोका, इससे उसने भोजन न

कर अवती आकर सब वृतान्त राजा प्रद्योतको सुनाया। राजाने जब अभयकुमारसे पूछा तो उसने उत्तर दिया कि " इस भोजनके गधसे ऐसा प्रतीत होता है कि इसमे दृष्टि विष सर्प उत्पन्न हो गया हैं। विषके जानने का यह उपाय है कि–विषयुक्त अन्नके देखनेसे चकोर पक्षीके नेत्र विराम पाते हैं, कोकिल उन्मत्त हो मर जाते हैं, क्रौंच पक्षी तत्काल मदमस्त हो, नोलीयेके रोम विस्वर हों और मयूर प्रसन्न हो क्याकि नोलिये तथा मोर की दृष्टि पडने से विष तत्काल मन्द पड जाता है। अपितु विषयुक्त अन्न देख मार्जार उद्वेगित होती हैं, वानर विष्टा करने लगता है, हसकी गति स्खलित हो जाति है, मुर्गा रुदन करने लगता है, भ्रमर विषयुक्त अन्न सूग कर विशेष गुजारव करने लगता है, और तोता–मेना आक्रोश करने लगते हैं।" यह सुन कर चडप्रद्योत राजाने उस भोजनको पल्लवित वनमे रक्खा था जिसमे से वहा दृष्टि विष सर्प निकला जिसकी विषमय दृष्टिसे सम्पूर्ण वन सूख गया। इस प्रकार अनेक प्रसगोमे अभयकुमारकी बुद्धि से राजा प्रसन्न हो उसे वर दिये। जिन के फल स्वरूप अभयकुमार पुन वहासे मुक्त हुआ। जाते समय अभय कुमारने विनयपूर्वक कहा कि "तुम्हे बिना धर्मके छलने, दिनमे, तुम्हारे नगरसे, " मैं चडप्रद्योत हूँ " ऐसा कहते हुए यदि ले जाउ तो मुझे सच्चा अभयकुमार समझना।" ऐसा कह अभयकुमार वापस अपने नगरको लौट आया। कई दिन पश्चात् दो वेश्या पुत्रीयोंको ले वणिकका वेष बना

था वापस उज्जैनमें आया और राजा चंडप्रद्योतके महलके समीप ही एक दुकान किराये पर ली। राजा उन वेश्या-पुत्रीयोंको देख विह्वल हो गया और अपने आमजनोंके साथ उनके सङ्गकी इच्छा प्रकट की। उन दोनों स्त्रीयोंने उत्तर दिया कि "हमारा वृद्ध बधु जब उसके लघु बधुके शरीर मे भूत घुस गया है उसके सुखके लिये किसी मान्त्रिकके घर जाता है उस समय यदि राजा गुप्त रुपसे यहा आवे तो हमारा सग हो सकता है।"

अभयकुमारने अपने एक आदमीको पागल बनाकर उसका नाम प्रद्योत रखा। वो पागल 'मैं राजा प्रद्योत हू' ऐसा कहता हुआ इधर उधर भटकने लगा। अभयकुमार लोगोको यह कहता हुआ कि "इस पागल को कैसे रक्खे?" उसको पकडनेको दौडता और उसे मान्त्रिकके घर लेजानेके बहाने से एक पलग पर बिठा सदैव बाजारमे हो कर ले जाता था। बाजार के चौराहेमें "मैं प्रद्योत राजा हू, मुझे यह बाधकर ले जाता है अत मुझे छुडाओ।" इस प्रकार वह पागल उच्च स्वरसे चिल्लाता रहता था। लोग उसे पागल समझ उसकी उपेक्षा किया करते थे।

अब सकेतानुसार प्रद्योत राजा अकेला गुप्त रुपसे अभय के घर वेश्या कन्याओं के पास आया। पिछे से अभय-कुमारने आकर अपने मनुष्योंसे कामान्ध हस्ती सदृश उसे पलग के साथ मजबूतीसे बधवाया और धोले दिन, "मैं प्रद्योत राजा हू, मुझे छुडाओ" इस प्रकार चिल्लाते हुए उसे

लोगों ने समक्ष राजग्रहनगरी मे ले गया जहा मगधपतिने उसे छुडा सन्मान सहित हर्षपूर्वक वापस विदाय किया। फिर उज्जैननगरी के राजाने अपने राज्यमे आ लोहजघ दूतको यह शिक्षा दी कि-तुझे सर्व दिशाओंमे स्वेच्छासे नहीं घूमना चाहिये कि जिससे शत्रु तुझे दुःख दे-लोहजघने वैसाही किया उससे उसे कोई कष्ट नहीं हुआ। इस कथाका उपनय इस प्रकार है कि जिस प्रकार लोहजघन दिशागमनमे सक्षेप किया तो उसे शत्रुओ द्वारा बधादिकका कष्ट नहीं रहा उसी प्रकार श्रावक भी इस व्रत के ग्रहण मात्रसे हिंसादि पाप कर्मो द्वारा कृत उपद्रवोंसे मुक्त हो जाते है।

"इस दशम दशावकाशिक व्रतके आचरणसे पूर्व उपार्जित अनेक पापकर्मोका सक्षेप हो जाता है और अनुक्रम से वो पुण्य अल्पकालमें ही सौभाग्य लक्ष्मी (मोक्ष लक्ष्मी) को प्राप्त करता है।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ पट्चत्वारिंशदुत्तरशततम. प्रबध. ॥ १४६ ॥

—०—

व्याख्यान १४७

पद् अष्टाह्निका (८ अट्ठाई) पर्व

अष्टाह्निका पडेवोक्ता', स्याद्वादाभयदोत्तमै. ।
तत्स्वरूप समाकर्ण्य, आसेव्या, परमार्हतैः ॥ १ ॥

भावार्थ —" स्याद्वाद मतक कथन करने वाले और अभयके दाता उत्तम पुरुषोने छ अट्ठाइयोंका वर्णन किया है, जिनका स्वरूप बराबर समझ परम श्रावकोंको उनका सेवन करना योग्य है।"

विस्तारार्थ —अट्ठाइये छ हैं। (१) चैत्र मास मे (ओलीजी की), (२) असाढ मासमे, (३) पर्युषण पर्व सम्बन्धी, (४) आश्विन मास मे (ओलीजी की), (५) कार्तिक मास मे और (६) फाल्गुन मास मे। इन छ अट्ठाइयोंमे दो अट्ठाइयें शाश्वत है ऐसा श्री उत्तराध्ययन की बृहद्वृत्तिम कहा गया है। वो इस प्रकार है —"दो अट्ठाइय शाश्वत हैं एक चैत्र मासमे और दूसरी आश्विन मासमे, इन दो शाश्वत अट्ठाइयोंमे सब देवता नन्दीश्वर की यात्रा करते है और विद्याधर तथा मनुष्य अपने अपने स्थानमे यात्रा करते हैं। इस के उपरान्त चौमासे की तीन अट्ठाइ मे और एक पर्युषण की अट्ठाइ इस प्रकार चार अट्ठाइये और प्रभुके जन्म, दीक्षा, केवल और निर्वाणादिक कल्याणके दिन अशाश्वत पर्व है।" दुषमकाल और युग लिंगिके समयमें भी देवता-गण चैत्र और आश्विन मासकी अट्ठाइ सदैव मानते है अत एव शाश्वत हैं। श्री जीवाभिगम सूत्रम कहा गया है कि—" वहां बहु भुवन पति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषि और वैमानिक देवता चौमासे की तीन अट्ठाइये और पर्युषण पर्व मे महान उत्सव मनाते हैं।"

चैत्र और आश्विन मासकी अट्ठाईमें श्रीपाल और मयणासुन्दरी सदृश भी सिद्धचक्रजीका आराधन करना चाहिये । याझसे मत्रका स्वरप निर्धारित कर मन द्वारा ललाट आदि दस स्थानोंमें मत्रकी आकृतिका स्थापन कर भावपूर्वक उसका ध्यान करना चाहिये । सामान्य तथा सर्व अट्ठाईयोंमें अमारी की उद्घोषणा कराना जिनमंदिरों में अट्ठाई उत्सव अत्यन्त ठाठसे करना और तोडना, फोडना, दलना, पीसना, खाडना, वस्त्र धोना और स्त्री सेवन करना आदि कार्य न करना और न कराना चाहिये । इनमें भी पर्युषणकी अट्ठाईका तो पांच साधनो द्वारा आराधन करना चाहिये । वे पाच साधन ये है -(१) अमारी घोषणा, (२) साधर्मिक वात्सल्य, (३) परस्पर खमाना, (४) अष्टम तप और पांचवां चैत्यपरिपाटी । इनमेंसे प्रथम साधनका वर्णन आगे किया जायगा ।

दूसरा साधन साधर्मिक वात्सल्य है अर्थात् सर्व साधर्मियोंकी अथवा यथाशक्ति हो सके उतने साधर्मियोंकी भक्ति करना चाहिये । प्राय एकसमान साधर्मिक मिलना दुर्लभ है । कहा भी है कि -" सब जिव परस्पर पूर्वके सम्बन्धी है इससे वे तो बारबार मिल जाते है परन्तु साधर्मिकतो किसी ही जगह मिलते हैं स्वामीवच्छलके फलके विषयमें कहा गया है कि —

एगत्यसव्वधम्मा, साहम्मिअवच्छल तु एगत्य ।
बुद्धितुलाए तुलिया, दोवीअ तुलाइ भणियाइ ॥१॥

"यदि एक ओर सर्व धर्मोंको और दूसरी
स्वामिय-उलको रखकर बुद्धिरूपी तराजूमें तौला जाय ते
दोनों समान उतरेंगे ।" इस विषयमें भरतचक्री, दण्ड
कुमारपाल आदिके दृष्टान्त प्रसिद्ध हैं जो स्वयमेव पढ सकते

तीसरा साधन परस्पर खमाना है । जैसे चद
राजाने चण्डप्रद्योतको खमाया, अब दोनोंमें जो एक ख
और दूसरा न खमाय, तब जो खमाते हैं, उसको आरा
धकपणा समझना, दूसरेको नहीं, इससे स्वय अवश्य ख
चाहिये। किसी स्थलपर दोनोंको भी आराधकपणा समझ
इस पर एक कथा प्रसिद्ध है कि –"एक बार चन्द
साध्वी और मृगावती साध्वी श्रीमहावीर प्रभुको व
करने गई । उस समय सूर्य एव चन्द्र भी अपने अपने
विमानमें बैठकर प्रभुको वन्दना करने आये इससे रात र
होने पर भी समवसरणमें दिनके सदृश प्रकाश हो
था। परन्तु दक्षताने सूर्यास्त समय जान चन्दनबाला उप
पहोंच गई। और इर्यापथिकी,पडिक्कमणा कर निन्द्रावश हुए।
जब सूर्य चन्द्र अपने अपने स्थानोको चले गये इससे ए
अन्धकार हो गया इससे रात्रि होजानेसे भयभीत होकर
मृगावती भी उपाश्रय आई और इरियावहीकर प्रतिक्रमण
हुए चन्दना साध्वीको कहा कि "हे गुरुणीजी ! मेरा
राध क्षमा कीजिये," चन्दनबालाने कहा कि–' हे मृगाव
तेरे जैसी कुलीनके लिये ऐसा करना शोभा नहीं देता
मृगावतीने उत्तर दिया कि अब भविष्यमें ऐसा कभी न

करूंगी। ऐसा कह कर वह चन्दनबालाके पैराम गिर पड़ी। चन्दनबालाको तो क्षणमें वापस निद्रा आ गई परन्तु शुद्ध अंत. करणसे बारबार खमानेसे मृगावतीको केवलज्ञान प्राप्त हो गया। उस समय चन्दनबालाके पाससे एक सर्प आ रहा था, इससे उसने चन्दनबालाका हाथ ऊँचा उठाया जिससे वो जाग उठी और उससे हाथ ऊँचा करनेका कारण पूछा तो मृगावतीने सर्पका वृतान्त कहा। इस पर चन्दनबालाने पूछा कि "ऐसे अन्धकारमें तुझे सर्प कैसे दिखलाई दिया ?" उसने उत्तर दिया कि 'आपकी कृपासे।' ऐसा सुनकर उसे केवलज्ञान प्राप्त हुआ जान, मृगावती साध्वीको खमाते हुए चन्दनबाला को भी केवलज्ञान प्राप्त हो गया। अतः इस प्रकार परस्पर क्षमा कर मिथ्या दुष्कृत कहना चाहिये ।

परन्तु कुंभार और क्षुल्लक साधुकी तरह वृथा मिथ्या दुष्कृत नहीं देना चाहिये । इस विषय पर दृष्टान्त बतलाते हैं —कोई लघुशिष्य कंकर फैंककर कुम्भकारके बर्तन फोड़ता था। कुंभकारने उसको रोका, इससे उसने मिथ्यादुष्कृत दिया, किन्तु वह वापस उसी प्रकार बर्तनोंको फोड़ने लगा फिर कुंभकारने कंकरोंसे उसके कान ढेरे तो क्षुल्लकने उत्तर दिया कि मुझे कष्ट होता है। अर्थात् कुंभकारने भी वृथा मिथ्या-दुष्कृत दिया। इस प्रकारके परस्परके मिच्छामिदुक्कडको वृथा समझना चाहिये ।

चौथे साधनरूप पर्युषणपर्व में अष्टमतप अवश्य करना चाहिये । पाक्षिक पर्वमें एक उपवास, चौमासी पर्वमें

छट्ठ-दो उपवास, और वार्षिक पर्वमे अट्ठम-तीन उपवास, करना श्रीजिनेश्वर भगवानने कहा है। जो अष्टमतप करनेमे असमर्थ हो उसे उस तपकी पूर्तिके लिये छ आंबिल करना, जो छ आंबिल करनेमें अशक्त हो, उसे नौ नीवि करना अथवा उसके बदले बारह एकासना करना, अथवा चोवीस बियासणा करना अथवा छ हजार स्वाध्याय करना अथवा साठ पक्की नवकारवाली गिननी चाहिय। इस प्रकारभी तपकी पूर्ति करना उचित है। ऐसा नहीं करनसे श्रीजिनेश्वर भगवान की आज्ञाके उल्लघनका दोष लगता है। इस प्रसग पर नव कारसी प्रमुख तपका फल बतलाया जाता है।—

नारकीका जीव एकसो वर्षमे नारकीय कष्ट भोग कर अकाम-निजरा द्वारा जितने कर्मका क्षय करे उतना पापकर्म एक नव कारसीके पचखाणसे क्षय होते हैं, पोरसीके पच्चखाणसे एक हजार वर्षके पाप दूर होते हैं, साढपोरसीके पच्चखाणसे दस हजार वर्षके पाप टलते हैं, पूरिमड्ढके पचखानसे एकलाख वर्षके पापकर्मोका विनाश होता है, अचित्त जलयुक्त एकासणे से दस लाख वर्षका पाप नष्ट हो जाता है, नीवि तपसे कोटी वर्षका पाप विलीन हो जाता हैं, एकठाणेसे दस कोटी वर्षका पाप टल जाता है, एक दत्तीसे (दाताने एकबार अन्न दिया हो उतनाही खानेसे) सो कोटी वर्षका पाप चला जाता है, आंबेल तपसे एक हजार कोटी वर्षका पाप चला जाता है, उपवासके तपसे दस हजार कोटी वर्षका पाप चला जाता है, छट्ठ तप करोसे एक लाख कोटी वर्षका पाप प्रलय

होजाता है, और अट्ठम तपसे दस लाख कोटी वर्षका पाप चला जाता है। इसके आगे एक एक उपवासकी वृद्धिकर अनुक्रमसे उनके फलमें दसगुना अंक बढा देना चाहिये। अट्ठम तप करनेसे नागकेतुने उसी भवमें प्रत्यक्ष फल प्राप्त किया था। वे सब तप शल्य-कपटरहित करना चाहिये। शल्ययुक्त तप दुष्कर करने पर भी निरर्थक होता है। इस पर निम्नोक्त एक कथा है कि —

आजसे अस्सीमीं चोवीसीमें एक राजाके कई पुत्र हुए तत्पश्चात् सैकडों मानता करने पर एक लक्ष्मणा नामक पुत्री हुई। वह राजाको अत्यन्त प्रिय थी। उसके विवाह योग्य होने पर राजाने एक स्वयंवर रचा जिसमें उसने इच्छित वरको वरा, परन्तु विवाहविधि करते समय चवरी-विवाहमंडपमें ही उसके स्वामिका मृत्यु हो गया। तबसे ही वह सुशील सतीयोंमें श्रेष्ठ श्रावक धर्मका भलीभांतिसे पालन करने लगी और अन्तमें उस चोवीसीके अन्तिम तीर्थंकरके पास उसने दीक्षा ग्रहण की। एकवार वो लक्ष्मणा साध्वी चकवा चकवीका संयोग देख, कामातुर हो विचारने लगीकि "अरिहंत प्रभुने क्या देख कर मुनिको इस कर्मकी आज्ञा नहीं दी? अथवा भगवंत स्वयं अवेदी हैं इससे व वेदधारीके दु:खको क्या जाने?" ऐसा विचारते हुए क्षणमात्रमें ही उसे वापस पश्चाताप हुआ। उसने विचार किया कि, "मैंने खराब चिन्तवन किया है अतः अब किस प्रकार इसकी आलोयणा करूं? क्योंकि यदि यह बात मुझमें प्रकट नहीं

की जायगी तो इसका शल्य रह जायगा और शल्य रह जायगा तो इसकी शुद्धि नहीं होगी । "ऐसा विचार कर वह आलोयणा लेनेके गुरु समीप जानेको तैयार हुई और ज्योंही चलने लगी कि एकाएक उसके पैरमें काटा लगा, इससे वह इस अपशुकनसे क्षोभित हुई, अत उसने दूसरेका नाम लेकर गुरुसे पूछा कि-"इस प्रकार दुर्ध्यान चिन्तवन करने वालेको क्या प्रायश्चित करना पडता है?" इस प्रकार दूसरेका नामसे गुरुको पुछकर पचास वर्ष तक तीव्र तप किया । वो इस प्रकार है-छट्ठ, अट्ठम, चार उपवास और पाच उपवास कर पारणे नीवि करे इस प्रकार दस वर्ष तक तप किया, दो वर्ष तक मात्र निर्लेप चनेका आहार लिया, दो वर्ष तक भुने हुए चनेका आहार लिया । सोलह वर्ष मासखमण किया, और बीस वर्ष तक आयंबिल तप किया । इस प्रकार लक्ष्मणा साध्वीने पचास वर्ष तक कठोर तप किया, किन्तु फिर भी दंभ रखनेसे उसके पापकी शुद्धि नहीं हुई और आर्त्तध्यानमें मृत्युको प्राप्त हुई । तत्पश्चात् दासी प्रमुखके असंख्य भवोंमें, महादुःख भोगकर श्री पद्मनाभ[1] प्रभुके तीर्थमें सिद्धिपदको प्राप्त करेगी । इस विषयमें कहा भी है कि, "पराक्रम द्वारा घोर तीव्र तप एक दिव्य सहस्र वर्ष पर्यन्त आचरे परन्तु यदि वह सशल्य हो, तो वो भी निष्फल होता है ।"

---

१ आनेवाली चोवीसीमें प्रथम तीर्थंकर ।

वार्षिक प्रतिक्रमणमे एक हजार और आठ श्वासोच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग जानना चाहिये । प्रत्येक चतुर्विंशति स्तवमे "चंदेसु निम्मलयरा" तक पचीस श्वासोच्छ्वास समझना चाहिये । इस प्रकार चालीस लोगस्स एक नवकार अधिक गिननेसे १००८ श्वासोच्छ्वास होते हैं । यहा इस श्वासो च्छ्वास पदानुसार समझना चाहिये । चातुर्मासिक प्रतिक्रमणमे पाचसो श्वासोच्छ्वासोंका अर्थात् २० लोगस्सका और पाक्षिक प्रतिक्रमणमें तीनसो श्वासोच्छ्वासोंका अर्थात् १२ लोगस्सका काउस्सग्ग समझना चाहिये ।

अब कायोत्सर्गमे एक श्वासोश्वासमें देवगतिका कितना आयुष्य बधाता है यह बतलाया जाता है । 'दो लाख पेतालीस हजार चारसो आठ पल्योपम और एक पल्योपमके नौ हिस्से करे ऐसा चार भाग समान एक श्वासोच्छ्वासमे देव गतिका आयुष्य बधाता है ।' इस विषयमे कहा गया है कि —

लक्खदुग सहस्स पणचत्त, चउ सया अट्ठ चेव पलियाइ ।
किंचुणा चउभागा, सुराउबंधो इगुसासे ॥ १ ॥

इसका अर्थ ऊपर आ गया है। सम्पूर्ण नवकारके आठ श्वासोच्छ्वासमे उन्नीस लाख तेसठ हजार दोसो सडसठ पल्योपमका देवगतिका आयुष्य बधाता है और एक लोगस्सके पचीसे श्वासोच्छ्वासमे एकसठ लाख पेतीस हजार दोसो दस पल्योपमका देवगतिका आयुष्य बधाता है । आयुष्य

साधनेका अर्थ यह है कि–जिस देवलोकमें देवताओंका आयुष्य उतने पल्योपमका हो उसी देवलोकमें यह उत्पन्न होता है।

पर्युषणपर्व में पाचवे साधनरूप चैत्य परिपाटी करना और चैत्यपूजा आदिसे शासनकी उन्नति करनी चाहिये। जैसे एकबार वज्रस्वामीजीने बडा अकाल पडने पर सम्पूर्ण संघको पट पर बैठाकर सुभिक्षापूरीमें ले गये थे। वहाका राजा बौद्ध था जिसने जिनचैत्यमें पूजाके लिये पुष्प न देनेकी आज्ञा दी थी। उसी समय पर्युषणपर्व आ गया। अत प्रभुजीकी आगीयाके वास्ते श्रावकाने पुष्पोंके लिये गुरुसे प्रार्थना की। गुरु आकाश गामिनी विद्याद्वारा स्वय माहेश्वरी नगरीमें जाकर अपने पिताके मित्र किसी मालीको पुष्प तैयार करनेकी आज्ञा दी, और स्वय हिमवत पर्वतपर श्रीदेवीके भुवनमें गये। वहा श्रीदेवीने एक महापद्म दिया, और हुताशन वनमें से बीस लाख पुष्प ले (पूर्व भवके मित्र जृभक देवताद्वारा विकुर्वित) विमानमें बैठकर महोत्सव सहित सुभिक्षापूरीमें आकर श्री जैनशासनकी प्रभावना की। उसे देख बौद्ध राजा भी आश्चर्यचकित हो श्रावक बना।

अट्ठाइ पर्वमें अमारी पालन कराना चाहिये। जैसा कि श्रीकुमारपाल और सप्रति महाराजा आदिने किया था। वर्तमानकालमें भी श्रीहीरसूरीश्वरजी गुरुके उपदेशसे अकबर बादशाहने अपने सम्पूर्ण राज्यमें छ महिने तक अमारीकी घोषणा की थी। जिसकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है —

एक बार अकबर बादशाहने अपने प्रधानो आदिसे श्रीहीरसूरीश्वरजीका वर्णन सुनकर अपने नामसे फरमान भेज अत्यत मानसे सूरिजीको बुलवाये। इससे सवत् १६३९ मे ज्येष्ठ मासकी कृष्णा त्रयोदशीके दिन सूरिराज गधार नगरसे बहुमानपूर्वक वहाँ पहुँचे। बादशाहसे भेंट हुई। फिर योग्य अवसर पर सूरिजीने ऐसा धर्मोपदेश दिया कि जिसके फल स्वरूप अजमेर नकके मार्गमे प्रत्येक कोश पर कुए सहित मिनारे बनवा कर उस प्रत्येक मिनारे पर अपने शिकार करनेकी कला कौशल्यको प्रकट करनेके लिये हिरणके सेकडों सींग आरोपन किये थे। वो हिंसक बादशाह भी गुरुदेव के उपदेश से दयालु हो गया। एक बार अकबर बादशाहने सूरीवर्यसे कहा कि, "हे महाराज! मैंने आपके दर्शन करने की उत्कठासे आपको दूर देशसे यहा बुलवाये हैं किन्तु आपतो मेरी कोई वस्तु ग्रहण नहीं करते अत आप मेरे से कोई भी योग्य वस्तु माग ले।" सूरिजीने विचार कर उसके सम्पूर्ण देशमे पर्युषणपर्वकी अट्ठाईके आठो दिन तक अमारी घोषणा करनेकी और बदीजनोंके मुक्त करने की याचना की। सूरिराजके गुणासे मनमें चकित हो, बादशाहने उत्तर दिया की मेरी ओरसे उसमे चार दिन की वृद्धि ओर हो ऐसा कह अपने अधिनस्थ समस्त देशमे श्रावण कृष्ण दशमीसे भाद्रपद शुक्ल छट्ठ तक बारहदिन अमारी घोषणा प्रवर्तानेके, अपने नामकी मोहरछाप वाले घोषणा–पत्र सुवर्ण रत्नमय डिबीया–भूगलीयो मे डालकर छ फरमान सत्वर गुरु को अर्पण किये, उनमे एक गुजरात देशका,

दूसरा मालव देशका, तीसरा अजमेर प्रान्तका, चौथा दिल्ली व फत्तेहपुरका, पांचवा लाहोर व मुलतानका, और छट्ठा पांचों देश सम्बंधि साधारण, गुरुके पास रखनेको इस प्रकार छ फरमान जारी-करके कर दिये, और उन देशोंमें उसने अमारी घोषणा कर दी। तत्पश्चात् गुरुके समीपसे उठ, अनेक गाउके प्रमाणवाले डाबरनामक सरोवरके किनारे जा, साधुओंके समक्ष देशान्तरके लोगोंद्वारा भेट किये विविध प्रकारके सदयान ध पक्षियोंको बधसे मुक्त किये। इसी प्रकार कारागृहमें अनेक लोगोंके बधन भी तोड डाले (याने उनको छोड दिया)

तत्पश्चात् हीरसूरिजीने बादशाहकी प्रार्थना पर जम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिके टीकाकार, स्वशास्त्र और परशास्त्रके ज्ञाता, पश्चिम दिशाओंके लोकपाल वरुणका वरदान प्राप्त करनेवाले उपाध्यायजी श्रीशान्तिचन्द्रजीको धर्म सुनानके लिये वहा रख, और खुदने विहार किया। श्री शान्तिचन्द्रगणिने स्वोपज्ञ ऐसे कृपा रसकोश नामक शास्त्ररूप जलसे सिंचित दयारूप वेल बादशाहके हृदयमें वृद्धिको प्राप्त हुई।

एक बार किसी व्यापारीने बादशाहको आंवलेके फल समान दो मुक्ताफल भेट किये। उसका सन्मान कर राजाने अपने कोषाध्यक्ष और चामर वीजनेवाले बारहजारी नामक मनसबदारको उन मुक्ताफलोंको रखने भेजा। बारहजारीने घर आकर वे मुक्ताफल उसकी स्त्रीको दिये। उस समय उसकी स्त्री स्नानकरने बैठती थी। इससे उसने उनको अपने वस्त्रके छोरमें बांध स्नान किया। तत्पश्चात् वे मुक्ताफल अकबर

बादशाहके होनेसे उचित स्थान पर सभालकर रखदे। उसके कुछ दिन पश्चात् दैवयोगसे स्त्री व्याधिग्रस्त होकर मर गई।

कुछ दिन पश्चात् बादशाहने बारहजारीसे वो मोती वापस मांगे तो उसने उत्तर दिया कि, 'हे स्वामी! मेरे घर जाकर ले आता हूं। राजाकी आज्ञा मिलने पर उसने घर जाकर घरमें सब स्थानपर उनकी खोज की किन्तु जब वे कहीं नहीं मिले तो वो अत्यन्त चिन्तातुर एवं निलेज हो वापस राजा के पास जा रहा था कि उसके पुण्य उदयसे मार्गमें शान्तिचन्द्रजी उपाध्यायसे भेट हो गई, जिन्होंने उसे चिन्तत होनेका कारण पूछा जिसने अपने जीनेकी आशा छोड दी है। बस बारहजारीने सर्व वृत्तान्त उनसे कह सुनाया।

वाचकेन्द्रने कहा कि-' तू वापस अपने घर जा और जिस स्थान पर जिसको तूने वो वस्तु दी हों उसीसे माग ले कि तुझे वापस वो चीजे प्राप्त हो सके।" बारहजारी आश्चर्यचकित हो, तत्काल श्रद्धापूर्वक वापस अपने घर गया जहा स्नान करनेकी तैयारी करती हुई अपनी स्त्री के पास जाकर जिस के पासमे उसने मुक्ताफल वापस मागे और उसने उनको उसके बलकी छोरसे खोल कर उसे दे दिये। बारहजारी आश्चर्यचकित हो राजाके समक्ष गया और मुक्ताफल बादशाहके सामने रख, चामर ढोलने लगा परन्तु वह अत्यन्त आश्चर्यमें मग्न था इससे स्तब्ध होजाता था। बादशाहने उसकी ऐसी स्थिति देख उससे पूछा कि 'आज तू चित्र लिखित क्योंकर दिखाई देता है ?' अत्यन्त आग्रह करने पर उसने मोतीके सम्बन्ध

का सम्पूर्ण वृतान्त कह सुनाया। उसे सुन बादशाहने कहा कि, 'इसमें आश्चर्य जैसी कौनसी बात है? यो तो दूसरे परमेश्वर हि है।"

दूसरे रोज प्रात काल जब उपाध्यायजी बादशाहको धर्मोपदेश देनेको बादशाहकी कचेरीमें स्थित स्वर्ण पाट पर आ कर बैठे तो बादशाहने उपाध्यायजीसे प्रणाम कर विज्ञप्ति की-'हे पूज्य! मुझे भी कोई आश्चर्य बतलाइये।" गुरुने उत्तर दिया कि 'कल सवेरे गुलाबबाडीमे आना' अत दूसरेरोज प्रात कालमें बादशाह वहा गया। उपाध्यायजी भी वहा आये। दोनो परस्पर धर्मगोष्टी करने लगे कि अकस्मात् बादशाही नोबतका डका सुनाई पडा। जिसे सुन बादशाहने सभ्रांत हो उसके सेवकासे पूछा कि "मेरी आज्ञा बिना बारह गाउ तक किसी की नोबत नहीं बज सकती, फिर यह क्या हुआ? जाच कर उत्तर दो।" सेवकोंने खोज कर उत्तर दिया कि-'हे जहांपनाह! आपके पिता हुमायु बादशाह एक बडी सेनासहित आपसे मिलनेको आरहे हैं।" सेवक ये बात कर ही रहे थे कि इतने में तो हुमायु बादशाह वहा आ अपने पुत्र अकबरसे भेट कर खडे हो गये और अकबरके सब आदमियाको मेवा तथा मिठाईके भरे हुए चादीके थाल दिये। पश्चात् अकबरको भी शिरपाव सहित बडा सन्मान दे हुमायु जैसे आये थे वैसे ही वापस लौट गये और क्षण भर में अदृश्य हो गये। बादशाह आश्चर्यचकित हो विचारने लगा कि "ये इन्द्रजाल तो मालूम नहीं होता

सैन्यको स्तंभित कर दिया और तीसरी फूकसे अनाजकी धानी समान दरवाजे फूटकर खुल गये। अकबर बादशाहने आश्चर्य-चकित हो उस नगरमें अपनी अखंड आज्ञा प्रवृत्त की। फिर गुरुके समीप आकर कहा कि, "हे पूज्य! मुझे कोई कार्य बतानेका अनुग्रह करें।' उस समय सूरिजीने बादशाहके राज्य भंडारमें प्रतिवर्ष जो जिजीया करका चौदह कोटी द्रव्य आता था, उसे माफ करनेको कहा और कहा कि-" तुम जो सदैव सवासेर चिडीयाकी जीभ खाते हो उसे आजसे खाना बंद करो और शत्रुंजयगिरि पर जानेवाले प्रति पुरुषसे जो एक सोनैयाका कर लिया जाता है उसे माफ करो, इसी प्रकार छ महिने तक अमारी की घोषणा करो। वे छ मास ये हैं-आपका जन्म मास-पर्युषणपर्वके बारह दिन, सब रविवार, १२ संक्रांतियोंकी १२ तिथियें, नवरोज (रोजा)का महिना, ईद के दिन, मोहरम के दिन और सोफिआन के दिन।" बादशाहने इन चारों बातोंको शीघ्र स्वीकार किया और उनके फरमान मोहर छाप सहित शीघ्र निकालकर, वाचकेन्द्र के अर्पण किये। वाचकेन्द्रने वे उनके गुरु महाराज श्री विजयहीरसूरिजीको भेट किये।

'इस प्रकार सौभाग्य लक्ष्मी आदिके सुखके अभिलाषी भाविक पुरुषोंको अट्ठाइयोंमें धर्मकी वृद्धिके लिये विविध प्रकारसे शासनकी उन्नति करनी चाहिये।'

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ सप्तचत्वारिंशदुत्तरशततमः प्रबंधः ॥ १४७ ॥

व्याख्यान १४८

अट्ठाइपर्वके आराधकके लिये वार्षिक कृत्य

सघार्चादिसुकृत्यानि, प्रतिवर्षं विवेकिना।
यथाविधि विधेयानि, ह्येकादशमितानि च ॥१॥

भावार्थ —"विवेकी श्रावकको प्रति वर्ष सघपूजा आदि ग्यारह प्रकारके सुकृत्य विधियुक्त अवश्य करने चाहिये।"

विस्तारार्थ —वे ग्यारह कृत्य पूर्वसूरियों द्वारा कही गाथाओंके अनुसार ये हैं —"१ सघपूजा २ साधर्मिकभक्ति ३ यात्रात्रिक ४ जिन मदिरमें स्नात्रोत्सव ५ देवद्रव्यकी वृद्धि ६ महा पूजा ७ रात्रि जागरण ८ सिद्धान्त पूजा ९ उद्यापन–उज्जमणा १० तीर्थ प्रभावना और ११ शोधि पापकी विशुद्धि।"

१ प्रति वर्ष जघन्यपनमे–कमसे कम एकवार भी सघपूजा करनी चाहिय। सघपूजा अर्थात् साधु–साध्वीको निर्दोष आहार तथा पुस्तकादिका दान देना और श्रावक–श्राविकाकी यथाशक्ति भक्तिपूर्वक पहरामणी आदि करना। सघपूजा तीन प्रकारकी है। उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। सर्वदर्शन तथा सर्व सघकी पहेरामणी करना उत्कृष्ट, सुतरकी नवकरवालिय देना जघन्य, और शेष सर्व प्रकारकी मध्यम सघपूजा कहलाती है। यदि कोई अधिक खर्च करनेमें अशक्त हो तो उसे मात्र साधु–साध्वीको सुतरकी आटी, मुहपत्ती आदि और दो तीन श्रावक–श्राविकाओंको सोपारी आदि देकर भी प्रति वर्ष सघ

रूप कृत्यको भक्ति पूर्वक कर जन्म सफल करना चाहिये। अति निर्धन हो, उसे पुनियाश्रावकके अनुसार भक्ति करनेसे भी सब पूजाका बड़ा फल प्राप्त हो सकता है। इस के विषयमें कहा है कि —

संपत्तौ नियमः शक्तौ सहनं यौवने व्रतं।
दारिद्रे दानमप्यल्पं महालाभाय जायते ॥१॥

"सम्पत्ति में नियम, शक्ति होते हुए सहनशीलता, यौवनावस्थामें व्रत और दारिद्र्यावस्थामें अल्प भी दान—ये सब महा लाभके कारण होते हैं।"

२ प्रतिवर्ष साधर्मियोंको निमंत्रण कर, विशिष्ट आसन पर बैठाकर, वस्त्रादिकका दान करना और यदि कोई सहधर्मी कर्मवश किसी आपत्तिमें आ पड़ा हो तो अपना धन खर्च करके भी, उसका उद्धार करना चाहिये। कहा है कि —

न कयं दीणुद्धरणं, न कयं साहम्मिआण वच्छलं।
हिअयंमि वियराओ, न धारिओ हारिओ जम्मो॥

"जिस मानवीने दीनोंका उद्धार नहीं किया, साधर्मिक-वात्सल्य नहीं किया, और हृदयमें श्री वीतरागप्रभुका स्मरण नहीं किया उसने अपना जन्म व्यर्थ व्यतीत किया है।

श्रावक सदा ही श्राविकाओंकी भी भक्ति करनी चाहिये न्यूनाधिक नहीं। श्राविका भी यदि ज्ञान, दर्शन, चारित्रवाली सुशीला हो तो वे चाहे सधवा हो या विधवा, उन्हें साधर्मिक ही समझना चाहिये।

शिष्य प्रश्न करता है कि, ' हे गुरु महाराज ! लौकिक तथा लोकोत्तरमे स्त्रियोंको तो दोषयुक्त ही बतलाया गया है । कहा है कि –

अनृत साहस माया, मूर्खत्वमतिलोभता ।
अशौच निर्दयत्व च, स्त्रीणा दोषा स्वभावजा ॥१॥

" असत्य, साहस, कपट, मूर्खता, अतिलोभ, अपवित्रपन, और निर्दयता ये तो स्त्रियोंके स्वाभाविक दोष हैं । " इस पर सुकुमालिका सुरीकान्ता कपिला, अभया, नुपूरपडिता और नागश्री आदि के दृष्टान्त पढ़ने योग्य हैं । सिद्धान्तमें कहा है कि –

अणताओ पावरासीओ, जया उदमागया ।
तया इत्थित्तण पत्त, सम्म जाणाहि गोयमा ॥१॥

" हे गौतम ! जब अनती पापकी राशिये उदय होती हैं तब स्त्रीपना प्राप्त होता है । ऐसा सम्यक् प्रकार से जानना । " इस विषय में रत्ना साध्वी का दृष्टान्त प्रसिद्ध है। इस प्रकार सर्व स्त्रियोंकी निन्दा दृष्टिगोचर होती है तो फिर उनका दान, मान एव वात्सल्य क्योंकर किया जाय ?"

गुरु महाराज इस का उत्तर देते हैं कि–" हे शिष्य तुझे केवल स्त्रियोंके लिये ही ऐसा नही समझ लेना चाहिये वैसे ही पुरुष भी ऐसे होते हैं । अठाईस राठोड सदृश महाक्रूर आशयवाले, नास्तिक और देव गुरुको भी ठगने वाले

पुरुष देखे गये हैं इसी प्रकार कई स्त्रियोंमें भी बहुत दोष पाये जाते हैं तथापि कई स्त्रियोंमे बहुत गुण भी होते हैं जैसे सुलसा, रेवती, कलावती आदि मे कई श्राविकाये भी ऐसी ऐसी उत्तम हुई हैं कि जिनकी श्रीतीर्थंकरोंने भी प्रशसा की है अत ऐसी श्राविकाओं पर माता बहिन और स्वपुत्री सदृश वात्सल्य करना उचित है। इस विषयमें इतनाही कहना काफी होगा।

३ प्रत्येक वर्षमे जघन्यसे एक यात्रा अवश्य करनी चाहिये। यात्रा तीन प्रकारकी बतलाई गई है —

अष्टाह्निकाभिधा चैका, रथयात्रा तथापरा।
तृतीया तीर्थयात्रा चे-त्याहुर्यात्रास्त्रिधा बुधा ॥९॥

अट्ठाईउत्सव यात्रा, रथयात्रा और तीर्थयात्रा इस प्रकार पण्डितोंने तीन प्रकारकी यात्रा का वर्णन किया है। "सर्व अट्ठाइपर्वोमें सब चैत्यपूजा आदि महान् उत्सव करना प्रथम यात्रा, दूसरी रथयात्रा जैसी कि कुमारपाल राजाने की थी —

चैत्र मास की शुक्लपक्षको अष्टमी को चौथे प्रहरमें महासमृद्धियुक्त एव हर्षित होकर एकत्रित हुए लोगों के जय जय शब्द के साथ श्री जिनेश्वरका स्वर्णरथ तैयार कराया गया वह रथ जब चलता था तो मेरु पर्वत सदृश शोभायमान होता था। उस पर स्वर्ण की बड़े दण्डवाली ध्वजा फहराती थी। भीतर छत्र था और दोनों ओर की चामर श्रेणियोंसे

थो देदिप्यमान था। उस रथ में स्नान विलेपन कर पुष्प चढा कर श्रीपार्श्वनाथप्रभुकी प्रतिमा स्थापन कर उसे मंत्र महाजनोंने कुमारपाल राजा के राजद्वार पर महान् ऋद्धि सहित लाकर स्थापित किया था।

उस समय वाजित्रोंके शब्द दशों दिशाओंमें व्याप्त थे और मनोहर हावभावसे स्त्रियोंका समूह नृत्य कर रहा था। तत्पश्चात् उस रथ को बाजे गाने सहित सामंत तथा प्रधान राजमन्दिरमें ले गये वहा कुमारपालने रथमें स्थित प्रतिमाकी पर वस्त्र तथा स्वर्णके अलंकारादि द्वारा स्वयं पूजा की और अनेक प्रकारके नृत्य कराये तत्पश्चात् उस रात्रिको वहा ही रखकर, प्रातःकाल राजा उस रथ सहित नगरके बहार निकल जो ध्वजा सहित वस्त्रका मनोहर तंबू बनाया हुआ था उसमंडपमें रथ को खड़ा कर रथमें स्थित जिनप्रतिमाजीकी पूजा की और चतुर्विध संघके समक्ष स्वयं आरती उतारी। तत्पश्चात् हाथी जुडे हुए उस रथ को सारे नगरमें घूमा कर स्थान स्थान पर मंडपमें विस्तारवाली रचना करा कर, उस उत्सवको मनाया।" इस प्रकार रथयात्रा समझना।

तीसरी तीर्थयात्रा, तीर्थोंकी यात्रा करना है, श्री शत्रुंजय, रैवताचल, और समेतशिखर आदि तीर्थ हैं। इसी प्रकार श्री तीर्थंकर की जन्म, दीक्षा, ज्ञान, निर्वाण और विहार भूमि भी तीर्थ मानी गई है। कई भव्य प्राणियोंमें शुभ भावनाओं सम्पादन कर ये भवसागरसे तारते हैं अतः इन्हें तीर्थ कहा गया है। ऐसे तीर्थमें दर्शनादि की

शुद्धि के लिये विधिपूर्वक यात्रा करना चाहिये। जैसे श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरिजी द्वारा प्रतिबोधित विक्रमादित्यने श्री शत्रुंजयकी यात्रा के लिये संघ निकाला था। उस संघमें एक सो सत्तर स्वर्ण के और पांचसो चंदन तथा हाथी दांत आदि के देवालय थे। श्री सिद्धसेन दिवाकर सूरिजी आदि पांच हजार आचार्य, चौदह मुकुट बद्ध राजा, सित्तरलाख श्रावकोंके कुटुम्ब, एक करोड दस लाख और नौहजार गाड़िये, अठारह लाख घोड़े, छीयात्तर सो हाथी और इसी प्रमाण से ऊँट तथा बैल आदि थे।

कुमारपाल महाराजाके संघमें स्वर्ण रत्नमय अठारहसो चमोत्तर देवालय थे। आभू संघपतिके संघमें सातसो जिनमन्दिर थे और उसकी यात्रामें बारह करोड सोनैयाका व्यय हुआ था। शाहू नार पेथड का तीर्थदर्शनमें ग्यारह लाख रुपया व्यय हुआ था। उसके संघमें बावन देवालय और सात लाख मनुष्य थे। महामंत्री वस्तुपाल की साढे बारह यात्रा प्रसिद्ध है।

४-चैत्यमें पर्वदिनोंमें स्नात्रमहोत्सव भी विस्तार पूर्वक करना चाहिये। यदि कोई प्रत्येक पर्व दिवसको ऐसा महोत्सव करने में असमर्थ हो तो कमसे कम प्रत्येक वर्षमें एक एक महोत्सव तो अवश्य करना चाहिये। ऐसा सुना जाता है कि शाह पेथड श्रावकने श्रीरैवतगिरि गिरनार पर स्नात्रमहोत्सवमें छप्पन घडी प्रमाण स्वर्ण द्वारा इंद्रमाल पहिनी थी और शत्रुंजय से गिरनार पर्वत तक एक स्वर्ण

का ध्वज चढाया था। इसके पश्चात् उसके पुत्र शाहझांझणने रेशमी वस्त्रका तेवडा ध्वज चढाया था।

५-देवद्रव्यकी वृद्धिके लिये प्रतिवर्षमाला महिनना योग्य है, इसमें इन्द्रमाला अथवा दूसरी माला भी ग्रहण करना चाहिये एकवार रैवतगिरी पर श्वेताम्बरी और दिगंबरी संघ में आपस में विवाद होने पर वृद्ध पुरुषोंने ऐसा निश्चय किया था कि "चढावा वोलकर जो इन्द्रमाला पहिने उन्हींका यह तीर्थ है।" उस समय शाहुकार पेथडने छप्पन घडी प्रमाण स्वर्णद्वारा इन्द्रमाला पहनी और चार घडी स्वर्ण याचकोंको देकर तीर्थ अपना किया इस प्रकार शुभ विधि द्वारा देवद्रव्यकी वृद्धि करना चाहिये।

६-प्रत्येकवर्ष या प्रतिपर्व चैत्यम महापूजा करना चाहिये।

७-प्रतिवर्ष रात्रिजागरण करना चाहिये। यह तीर्थ दर्शन समय, कल्याणकके दिनोंमें, और गुरुके निर्वाण आदि के प्रसंग पर करना चाहिये। इसमें श्री वीतरागके गुणगान एवं नृत्य आदि उत्सव करना उचित है।

८-प्रतिदिन श्रुतज्ञान की भक्ति करना चाहिये। यदि प्रतिदिन करनेमें अशक्त हो तो प्रतिमास या प्रतिवर्ष तो अवश्य करना चाहिये।

९-श्री नवपदजी सम्बन्धी अर्थात् श्रीसिद्धचक्रजी सम्बन्धी तथा एकादशी, पंचमी और रोहिणी आदि ज्ञान, दर्शन और

चारित्रादिकके आराधन निमित्त विविध तप सम्बन्धी उद्यापन (उजमणा) करना चाहिये। शक्ति सपन्न श्रावकोंको जघन्यसे प्रतिवर्ष एक एक उद्यापनविधि पूर्वक करना चाहिये। कहा है कि —

उद्यापन यत्तपस समर्थने, तच्चैत्यमौलौ कलशाधिरोपण।
फलोपरोपोऽक्षयपात्रमस्तके, ताम्बूलदान कृतभोजनोपरि ॥१॥

"तपस्या का उद्यापन करना जिनमन्दिर पर कलश चढाने, अक्षयपात्र पर फल रखने, और भोजन करा के ताम्बूल भेट करने सदृश है।"

सर्वत्र शुक्ल पञ्चमी आदि विधि पूर्वक तपके उजमणेमें उपवास की सख्याक प्रमाणमे द्रव्य-वर्तुलिका नारियल और मोदक आदि विविध वस्तुएँ रखकर शास्त्र सम्प्रदायानुसार उद्यापन करना चाहिये।

१०–तीर्थकी प्रभावना निमित्त पूज्य श्री गुरुमहाराजका प्रवेशोत्सव तथा प्रभावना आदि जघन्यपनसे प्रतिवर्ष एक एक बार करनी चाहिये। इसमे पू गुरु के प्रवेशोत्सवमे सर्व प्रकारके ठाठ बाटसे चतुर्विध सघ को सन्मुख जाना और गुरु तथा सघका यथाविधि सत्कार करना चाहिये। उस प्रसग पर, श्री ऊववाईसूत्रमे श्री महावीर प्रभु को वान्दने जाते समय कौणिक राजा के महोत्सवका जैसा वर्णन है, वैसा महोत्सव करना चाहिये। अथवा परदेशी राजा, उदायी राजा और दशार्णभद्रराजा सदृश महोत्सव करना चाहिये। शाहुकार पेथडने श्री धर्मघोपसूरिजीके प्रवेशोत्सवमें

सत्ताईस हजार टक द्रव्य का व्यय किया था। इस सम्बन्धमें सवेगी साधुका प्रवेशोत्सव करना अनुचित है ऐसा नहीं कहना क्योंकि व्यवहारभाष्यमें साधुके प्रतिमावहन के अधिकारमें कहा गया है कि –साधु सम्पूर्ण पडिमा करने बाद एका एक नगरमें प्रवेश न करे, परन्तु समीप आकार किसी साधु या श्रावकको अपने दर्शन दे या सन्देशा भेजे, जिससे नगर का राजा मन्त्री या ग्रामाधिकारी महोत्सवपूर्वक प्रवेश करावे। उनके अभावमें श्रावकसघ प्रवेशोत्सवादि बहुमान करे।" क्योंकि शासनकी उन्नति करनसे तीर्थंकरपनाकी प्राप्तिका फल मिलता है।

११–गुरु का योग मील सके तो जघन्यपनसे प्रति वर्ष तो अवश्य गुरु के पास आलोचना करनी चाहिये। कहा है कि –"जम्बूद्वीप में जितने बालु के रजकण है, यदि वे सब रत्न हो जायें और उतने रत्न कोइ प्राणि सात क्षेत्रोंमें व्यय करे तो भी विना आलोयणाके वो एक दिनके पाप से भी मुक्त नहीं हो सकता।" अपितु कहा है कि –"जम्बूद्वीपमें जितने पर्वत है वे सब स्वर्णमय हो जाये और उनका यदि कोई सात क्षेत्रोंमे व्यय करे तो भी विना आलोयणा के वो एक दिन के पाप से भी मुक्त नही हो सकता। वो फिर विना आलोयणा के कई दिनों के उपार्जित पापों को नाश कैसा होना सम्भव है। अत यदि विधिपूर्वक आलोचन कर गुरु जो प्रायश्चित बतलावे उस प्रकार करे तो उसी भवमे ही प्राणि शुद्ध हो सकता है

यदि ऐसा न हो तो दृढप्रहारी आदिकी उसी भवमें सिद्धि कैसे हो?

"विवेकी श्रावक प्रतिवर्ष उपरोक्तानुसार ग्यारह कार्य करते हैं और उनसे होनेवाली पुन्यपुष्टिसे वे कृतार्थ होकर जिनधर्ममें तत्परूप आत्मकल्याणको प्राप्त करते हैं ?

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ अष्टचत्वारिंशदधिकशततमः प्रबंधः ॥१४८॥

व्याख्यान १४९

पर्व दिवसोंमें पौषध अवश्य करना चाहिये

ये पौषधोपवासेन, तिष्ठंति पर्ववासरे ।
अन्तिम इव राजर्षि-र्धन्यास्ते गृहिणोऽपि हि ॥१॥

भावार्थ —"जो पर्व दिनमें पौषधपूर्वक उपवास करते हैं वे गृहस्थ होते हुए भी अंतिम राजर्षिके समान धन्य हैं।"

अन्तिम राजर्षिकी कथा

सिंधुसौवीर देशमें वीतभयादि ३६३ नगरका अधिपति उदायी राजा राज्य करता था। उसके प्रभावती नामक पटराणी, अभिचि नामक पुत्र और केशी नामक भानजा था।

चम्पा नगरीमे जन्मसे स्त्री-लम्पट कुमारनन्दी नामक एक सोनी रहता था। वो किसी भी रूपवती कन्याको पाचसौ सुवर्ण मोहर देकर विवाह करता था। इस प्रकार उसने पांचसौ ब्याहे थी। जिनके साथ एक स्तम्भवाले महल मे क्रीडा किया करता था। उसके नागिल नामक एक श्रावक मित्र था।

एक बार पचशैल द्वीपकी अधिष्ठात्री दो व्यंतर देवीयां इन्द्रकी आज्ञासे नन्दीश्वर द्वीपको जाती थी। मार्गमें उनका स्वामी विद्युन्माली देव च्यव गया। अत हासा और प्रहासा नामक दोनो देवीयोंने ऊंचे महल पर कुमारनन्दी सोनी को अत्यन्त कामी जानकर वहा उतरी। उन सुन्दर देवियो को देखकर कुमारनन्दी तत्काल मोहित हो गया और उनको आलिंगन करनेकी अभिलाषासे कहने लगा कि "तुम दोनो कौन हो? और यहा क्या आई हो?" उन्होने उत्तर दिया कि "हम तुम्हारे लिये ही आई हैं। यह उत्तर सुन सोनीने अत्यन्त हर्षित हो प्रार्थना की तो उन्होने कहा कि "तुमको पचशील द्वीप आना वहा अपना सयोग होगा।" ऐसा कह वे उड कर आकाश मार्गसे चली गई।

कुमारनन्दीने राजाको स्वर्ण भेटकर ऐसी घोषणा कराई कि "जो उसे पचशील द्वीपको ले जायगा, उसे वो एक क्रोडी द्रव्य देगा।" यह घोषणा सुन, किसी लोभी वृद्ध खलासीने उसे पचशील द्वीपको ले जाना स्वीकार किया और क्रोडी द्रव्य ग्रहण किया। उसने एक वहाण तैयार कराया और

सोनीको उसमे बैठाकर वहासे प्रस्थान किया । समुद्रमें बहुत दूर जाने पश्चात् वृद्ध खलासीने कहा कि "देखो, समुद्रके किनारे पर जो वह वटवृक्ष दिखाई दे रहा है वो पचशैल पर्वत पर उगा हुआ है । अत जब यह वहाण उसके नीचे होकर निकले, उस समय तू उसकी शाखासे लटक जाना । रात्रीमे वहा भारण्ड पक्षी आवेगे, वे जब सो जाये तो उनमे से किसी एकके पैरके साथ, वस्त्रसे तेरे शरीरको बाध तू दृढ मुष्टिसे, उसको चिपक जाना सो प्रात काल वो पक्षी उडकर तुझे पचशैल पर ले जायेगा, परन्तु यदि तू वट वृक्ष से नही लटकेगा तो इस वहाणके सदृश तू भी महा आवर्त्त म पड विनाशको प्राप्त होगा ।" सोनीने उसके कथनानुसार ही किया और भारण्ड पक्षी उसे पचशैल पर ले गया । अनुक्रमसे उसे हासा और प्रहासा दिखाई दी जिनसे उसने भोगकी प्रार्थना की, तो उन्होने उत्तर दिया कि "हे भद्र ! इस शरीरसे हमारा सङ्ग नही हो सक्ता । अत यदि तू अग्निमें प्रवेशकर या अन्य किसी प्रकारसे नियाणा बाधकर, मृत्युको प्राप्त हो और इस पचशील द्वीपका स्वामी बने तो हमारा सङ्ग हो सकता है ।" यह सुन कुमारनन्दीने विचार किया कि "अरे ! मैं तो दोनो प्रकारसे भ्रष्ट हुआ ।' इस प्रकार विचार करते हुए कुमारनन्दीको उन दोनों देवीयोने वापस उसके नगरमें छोड दिया । देवागनाओंके अङ्गसे मोहित हुए कुमारनन्दीने वहा जाने पर तुरत ही अग्निमें प्रवेशकर मरनेकी तैयारी की, उस समय उसके मित्र नागिल श्रावकने

कहा कि–" हे मित्र ! इस प्रकार बाल मरण करना तुझे शोभा नही देता। परन्तु फिर भी उसके रोकनेकी परवाह न कर, वो नियाणा बान्ध अग्नि शरण हो गया, और पचशैल द्वीपका स्वामी बना। यह देख वैराग्य प्राप्त कर नागिल श्रावकने दीक्षा ग्रहण की और मर कर अच्युत देवलोक में देवता हुआ।

एकबार जब देवता नन्दीश्वर द्विपकी यात्रा करनेको जाने लगे तो हासा प्रहासा भी आज्ञा मीलनेसे उनके आगे आगे गायन करती हुई चलने लगी। उन्होंने उनके स्वामीसे ढोल बजानेको कहा लेकिन उसने अभिमानवश नहीं बजाया इस पर पूर्वके दुष्कर्मसे जब वो ढोल उसके कण्ठमें आ लगा तो देवीयोंने कहा कि, 'हे प्राणेश! शरमाना नहि, अपने कुलके अनुसार कार्य करो।" फिर विद्युन्माली देव ढोल बजाने लगा और देवीये गायन करने लगीं। इस प्रकार वे देवताओंके आगे आगे चले। उसी समय उस विद्युन्माली का पूर्व भवका मित्र नागिल देवता भी यात्रार्थ जाता था जिसने अवधिज्ञानसे उसके पूर्व भवके मित्र विद्युन्मालीको देखकर पहचान लिया और बोला कि हे भद्र! क्या तू मुझे पहचानता है?' उसने उत्तर दिया कि, "हे तेजस्वी देव! मैं तुझे नहीं पहचानता के तू कौन है?" तत्पश्चात् उसने अपने पूर्वभवका श्रावक रुप बतलाया उसका खुदका तथा सोनीका पूर्वभवका स्वरुप और जिस धर्मसे उसे देवपन प्राप्त हुआ था वो सब वृतान्त कह सुनाया। उसे सुन कुमार

सोनीको उसमे बैठाकर वहासे प्रयाण किया । समुद्रमें बहुत दूर जाने पश्चात् वृद्ध खलासीने कहा कि "देखो, समुद्रके किनारे पर जो वह वटवृक्ष दिखाई दे रहा है वो पचशैल पर्वत पर उगा हुआ है । अत जब यह वहाण उसके नीचे होकर निकले, उस समय तू उसकी शाखासे लटक जाना । रात्रीमे वहा भारण्ड पक्षी आवेंगे, वे जब सो जाये तो उनमेसे किसी एकके पैरके साथ, वस्त्रसे तेरे शरीरको बाध तू दृढ मुष्टिसे, उसको चिपक जाना सो प्रात काल वो पक्षी उडकर तुझे पचशैल पर ले जायेगा, परन्तु यदि तू वट वृक्ष से नही लटकेगा तो इस वहाणके सदृश तू भी महा आवर्त्त म पड विनाशको प्राप्त होगा ।" सोनीने उसके कथनानुसार ही किया और भारण्ड पक्षी उसे पचशैल पर ले गया । अनुक्रमसे उसे हासा और प्रहासा दिखाई दी जिनसे उसने भोगकी प्रार्थना की, तो उन्होने उत्तर दिया कि "हे भद्र ! इस शरीरसे हमारा सङ्ग नही हो सकता । अत यदि तू अग्निमें प्रवेशकर या अन्य किसी प्रकारसे नियाणा बाधकर, मृत्युको प्राप्त हो और इस पचशील द्वीपका स्वामी बने तो हमारा सङ्ग हो सकता है ।" यह सुन कुमारनन्दीने विचार किया कि "अरे ! मैं तो दोनो प्रकारसे भ्रष्ट हुआ ।" इस प्रकार विचार करते हुए कुमारनन्दीको उन दोनों देवीयोने वापस उसके नगरमे छोड दिया । देवागनाओंके अङ्गसे मोहित हुए कुमारनन्दीने वहा जाने पर तुरत ही अग्निमें प्रवेशकर मरनेकी तैयारी की, उस समय उसके मित्र नागिल श्रावकने

कहा कि-" हे मित्र ! इस प्रकार बाल मरण करना तुझे शोभा नहीं देता। परन्तु फिर भी उसके रोकनेकी परवाह न कर, वो नियाणा बाध अग्नि शरण हो गया, और पचशैल द्वीपका स्वामी बना। यह देख वैराग्य प्राप्त कर नागिल श्रावकने दीक्षा ग्रहण की और मर कर अच्युत देवलोक में देवता हुआ।

एकबार जब देवता नन्दीश्वर द्विपकी यात्रा करनेको जाने लगे तो हासा प्रहासा भी आज्ञा मीलनेसे उनके आगे आगे गायन करती हुई चलने लगी। उन्होंने उनके स्वामीसे ढोल बजानेको कहा लेकिन उसने अभिमानवश नहीं बजाया इस पर पूर्वके दुष्कर्मसे जब वो ढोल उसके कठमें आ लगा तो दवीयोंने कहा कि, 'हे प्राणेश ! शरमाना नहि, अपने कुलके अनुसार कार्य करो।" फिर विद्युमाली देव ढोल बजाने लगा और दवीये गायन करने लगीं। इस प्रकार व देवताओंके आगे आगे चले। उसी समय उस विद्युमाली का पूर्व भवका मित्र नागिल देवता भी यात्रार्थ जाता था जिसने अवधिज्ञानसे उसके पूर्व भवके मित्र विद्युमालीको देखकर पहचान लिया और बोला कि हे भद्र! क्या तू मुझे पहचानता है ?' उसने उत्तर दिया कि, "हे तेजस्वी देव। मैं तुझे नहीं पहचानता के तू कौन है ?" तत्पश्चात् उसने अपने पूर्वभवका श्रावक रुप बतलाया उसका उसको तथा सोनीका पूर्वभवका स्वरुप और जिस धर्मसे उसे देवपन प्राप्त हुआ था वो सब वृतान्त कह सुनाया। उसे सुन कुमार-

नन्दीने कहा कि, 'हे मित्र ! अब मैं क्या करूँ ?" अच्युत देवने उत्तर दिया कि, "हे मित्र ! तू गृहस्थपनमें चित्रशालामें कायोत्सर्ग रह भाव साधु श्रीवीरभगवानकी प्रतिमा बना कि जिससे तुझे बोधि बीजकी प्राप्ति होगी।" उसकी बात मान उसने गृहमें कायोत्सर्ग कर ठहरे हुए श्री वीरप्रभुको देखा, तत्पश्चात् हिमवतगिरी पर जा, वहासे गोशीर्ष चन्दन ला उसकी यथोचित वीरप्रभुकी काष्टकी मूर्ति अलंकार सहित बनवाई। उसके बाद जातवन्त चन्दनकी एक पेटी बनवा, कपिल केवलीसे प्रतिमाकी प्रतिष्ठा कर उसे उस पेटीमें रक्खा। उस समय किसी यात्रीका वहाण जो समुद्रमें उत्पात वश छ महिनसे इधर उधर चक्र खाता फिरता था, उसे देख कुमारनन्दीने उसका कष्ट दूर कर वह प्रतिमाकी पेटी उसे देकर कहा कि, 'यहासे वीतभयपटण जा, वह पेटी बतलाकर ऐसी घोषणा करना कि "इसमें जो परमात्माकी प्रतिमा है उसे ग्रहण करो।"

ऐसा कहकर वह देव तो चल दिया और वह शेठ प्रतिमाके प्रभावसे निर्विघ्नतासे वीतभयपट्टण पहुच गया और वहा जाकर उसने देवके कथनानुसार घोषणा की जिस पर नगरका राजा, ब्राह्मण, तापस आदि अनेक पुरुष एकत्रित हुए। और उन्होंने अपने अपने इष्टदेवका स्मरण कर उस पेटीको खोलना आरभ किया किन्तु वह नहीं खुली। ऐसा करते करते मध्याह्नकाल हो गया अत रानीने भोजन करनेके लिये अपनी दासीको भेज राजाको बुलवाया। तो

उसने यह सारा वृत्तान्त रानीके कान तक पहुंचाया जिसे सुन रानी प्रभावती स्वयं वहाँ आई और उसने विचार किया कि जब ऐसा कहा जाता है कि इसमें देवाधिदेव परमात्माकी प्रतिमा है तो देवाधिदेव तो केवल अरिहंत ही हो सकते हैं, अन्य ब्रह्मादिक देवता नहीं। अतः अरिहंतके स्मरण मात्रसे पेटी खुल जाना चाहिये। ऐसा विचारकर उसने संपुटकी चन्दनादिकसे पूजाकर इस प्रकार प्रार्थना की कि –

' प्रातिहार्याष्टकोपेत प्रास्तरागादिदूषण ।
देयास्मे दर्शनं देवाधिदेवोऽर्हन् त्रिकालवित् ॥१॥

' हे अष्ट प्रतिहार्य युक्त, रागादि दूषणोंको जड से छेदन करनेवाले, त्रिकालज्ञ, देवाधिदेव श्री अरिहंत भगवान मुझे दर्शन दो।"

ऐसा कहने पर वह संपुट खुल गया और जिन प्रतिमा स्वयं प्रगट हुई, जिसे प्रभावती अपने चैत्यगृहमें ले जाकर, स्थापित की और उसकी त्रिकाल पूजा करने लगी।

एक वार जब द्रव्य पूजा किये पश्चात् रानी प्रसन्न चित्तसे भगवंत के आगे नृत्य कर रही थी और राजा वीना बजा रहा था तो राजाने बिना मस्तकका रानी का धड नाचते देखा। उसे देख राजा अत्यन्त क्षुभित हुआ और उसके हाथसे वो वीणा नीचे गिर पडी। उसकी आवाज सुन रानीने क्रोधित होकर कहा कि –"हे प्राणेश! यह क्या हो गया?" राजाने उसके आग्रहसे जब सब वृत्तान्त

फह सुनाया तो उसने कहा कि, "इस अनिष्ट दर्शनसे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरा आयुष्य अल्प है।" अपितु एक बार जब रानीने देव पूजाके लिये दासीसे श्वेत वस्त्र मगवाये तो उसे भावी विघ्नवश वे वस्त्र लाल दिखलाई पड़े, जिनको पूजा के अयोग्य जान क्रोध वश रानीने दासी पर दर्पणका प्रहार किया जिसके फल स्वरूप दासी मृत्युको प्राप्त हुई। तत्पश्चात् उन्ही वस्त्रोंको श्वेत देख रानी विचार करने लगी कि, 'अहो! मुझे धिक्कार है, मेरा प्रथम व्रत खण्डित हो चुका है अत इस पाप को क्षय करने के लिये मुझे दीक्षा ग्रहण कर लेना चाहिये, पुना वे वस्त्रोंका वर्ण विपर्यय देख कर ज्ञान होता है कि अब मेरा आयुष्य अल्प ही है।" फिर स्वामी की आज्ञासे वो व्रत लेनेको उत्सुक हुई। उस समय राजाने कहा कि 'हे देवी! यदि तुम्हे देवपन प्राप्त हो तो मुझे आकर बोधित करना! प्रभावती राणी चारित्र ग्रहण कर उसका भली भांति पालन कर अन्तमें अनसन ग्रहण कर सौधर्म देवलोकमें देवता हुई। इस ओर राणीने दीक्षा ग्रहण करने पश्चात् देवदत्ता नामक कुब्जा दासी उस मूर्तिकी भावपूर्वक प्रतिदिन पूजा करने लगी।

अब देवता बनी प्रभावती राणी तपस्वीके रुपमें राजाकी सभामें आ प्रतिदिन एक दिव्य अमृत फल राजाको भेट करने लगी। राजाने उस फल के सुस्वादसे लोभान्ध होकर एक दिन उस तपस्वीसे कहा कि, "हे मुनि! जिस स्थानमें ऐसे फल पैदा होते हैं वो स्थान मुझे भी बतलाइये।" तापसने

उत्तर दिया कि यदि तुम मेरे आश्रममें आओ तो मै तुमको वो स्थान बता सक्ता हूँ । यह सुन राजा शीघ्रतासे उस तपस्वीके साथ चला । देवताने कुछ आगे बढ वैसे दिव्य फलोंसे भरपूर एक स्थान बनाया–विकुर्व्या । उसे देख राजाने विचार किया कि, "मैं इस तपस्वीका भक्त हूँ अत यह मुझे निशक मेरी फलखानेकी इच्छाको तृप्त करने देगा । मुझे कभी नहीं रोकेगा" ऐसा विचारकर वह वानर सदृश फलोंको तोडने व खानेको दौड़ा लेकिन उसी समय कई तपस्वी क्रोधसे क्रोधित हो दौडे आये और उस पर लाकड़ियोंकी बोछार करने लग अत' राजा चोरके समान वहांसे भाग निकला । भागते भागते मार्गमे साधुओंको देखा और उनका शरण ग्रहण किया । साधुओंने उसे आश्वासन दिया । वह जब विचार करने लगा कि अहो ! क्रूर तापसने मुझे ताडना की है तो उसी समय उसे बोधित करनेके लिये आया हुआ प्रभावती देव प्रत्यक्ष हो अपने विकुर्वित घटनाका वर्णनकर स्वस्थान सिधाया । राजा जैन धर्ममें दत्तचित्त हो अपने नगरकी ओर जाने लगा कि उसी समय उसने अपने आपको राजसभामें बैठे हुए देखा ।

उन्हा दिनोंमे गाधार नामक एक श्रावक शाश्वत प्रतिमा को वन्दना करने की अभिलाषासे वैताढ्य गिरिके मूलमें जा तप कर रहा था । शासनदेवीने उसपर सन्तुष्ट हो, उसकी मनोवान्छा पूर्ण कर उसे १०८ एकसो आठ वान्छितदायक गुटिका दी । उनमेंसे एक गुटिका मुहमें डाल उसने विचार

विचारकर उदायी राजाको अत्यन्त क्रोध आया और उसने तत्काल दश मुकुटबध राजाओंके साथ ले, एक बडे सैन्य सहित अवन्तीनगर पर चढाई कर दी। दोनोंमें बडा संग्राम हुआ और अन्तमें उदायी राजाने राजा चण्डप्रद्योतको बाणों द्वारा हाथीसे नीचे गिरा कर उसके हाथ बाध तप्त लोहेकी सलाकासे उसके ललाट पर यह अंकित कराया कि, "यह मेरी दासीका पति है।" तत्पश्चात् उसे बन्दिगृहमें रख उदायी राजा चण्डप्रद्योतके दरबारमें जहा जिनालय था वहा गया। वहा मूल प्रतिमाजीको देख नमन कर, स्तुति कर उसे वहासे हटानेका उपक्रम किया परन्तु जब वह प्रतिमा उस स्थानसे चलित नहीं हुई तो राजाने प्रार्थना की कि, 'हे नाथ! मैंने ऐसा कौनसा अपराध किया है कि जिससे आप मेरे साथ नहीं आते?" उस समय उसके अधिष्टायक देवने उत्तर दिया कि, "हे राजा! तेरा नगर रज-वृष्टिसे स्थलरुप होनेवाला है। इससे मैं वहा नहीं आना चाहता, परन्तु तू इसका शोक न कर" यह सुन उदायी राजा अवंतीसे वापस लौटा। मार्गमें जाते बीचमें चातुर्मास आया। इससे राजाने रास्तेमें-वनमें ही छावनी डाल दी। वहां दश राजाओंके पृथक् पृथक् पडाव होनेसे उस स्थान पर दशपुर नगरकी स्थापना हुई।

पर्युषण पर्व आने पर उदायन राजाने पोसह किया अतः उस दिन रसोईयेने चण्डप्रद्योतसे पूछा कि, "आज आप क्या खायेंगे?" यह सुन अवंतीपति क्षोभित हो विचारने लगा कि "रसोईयेने मुझसे पहिले तो कभी ऐसा

प्रश्न नहीं किया और आज एकाएक ऐसा प्रश्न किया जिसका क्या कारण है ?" ऐसा विचार उसने उससे पूछा कि, "हे पाचक ! आज ऐसी बात पूछनेका क्या कारण है?" पाचकने उत्तर दिया कि, "हे स्वामी ! आज पर्युषण पर्व है, मेरे स्वामी राजा उदायनने उपवास किया है, अत केवल तुम्हारे लिये ही आज मुझे रसोई बनाना है।" चण्डप्रद्योतने कहा कि "हे पाचक ! अच्छा हुआ कि तूने मुझे आज पर्व दिनकी याद दिला दी, मेरे भी आज उपवास है।" रसोइयेने जब यह समाचार राजा उदायनको सुनाया तो उसने विचार किया कि, "चण्डप्रद्योत उपवासी होनेसे वो मेरा सार्धर्मिक भाई है, अत उसके बन्दीखानमे रहनेसे तो मेरा पर्युषण पर्व अशुद्ध होगा।" ऐसा विचारकर उसने चण्डप्रद्योतको बधनमुक्त कर खमाया और उसके ललाटमें अकित अक्षराको छीपानेके लिये एक सुवर्ण रत्नमय पट्टी बधवा कर उसे अवन्ति देश वापस लौटा दिया। इस प्रकार चण्डप्रद्योत वापस अपने स्थानको लौट गया।

वर्षाकाल बीतने पर उदायन राजा वापस अपने नगर को आया, और मूल प्रतिमाकी पूजा निमित्त बारह हजार गाव भेट दिये, प्रभावती देवीकी आज्ञासे नई मूर्तिकी भाव सहित पूजा करने लगा।

एक बार जब राजा उसके पौपधशालामे पौपध लेकर रहा सो मध्य रात्रिमें शुभ ध्यान करते उसके मनमे ऐसा अध्यवसाय उत्पन्न हुआ कि, "जित राजाओ आदिने श्री

वीर प्रभुके समक्ष दीक्षा और अन्य सम्यक्त्व आदि व्रत ग्रहण किये हैं उनको धन्य हैं, वे वन्दन करने योग्य हैं।" यदि वे वीर प्रभु यहा पधार कर मुझे पावन करे तो मैं भी उनके चरणकमलमे दीक्षा ग्रहण कर कृतार्थ होऊँ।" भगवन्त उसके ऐसे अध्यवसाय जान वहा पधारे। उदायन राजा श्रेणिक राजाके समान बडे उत्सवके साथ भगवानको वदन करने गया। विधिपूर्वक प्रभुकी देशना सुन अपने स्थान पर लौटा और विचार करने लगा कि, "अहो! यह राज्य अन्तमें नरकगति प्राप्त करानेवाला है अत इससे मेरे पुत्र अभिचि को तो नहीं देना चाहिये।" ऐसा शुभ विचार कर अपने भानजा केशीको राज्य सौंप दिया। तत्पश्चात उदायन राजाने भगवन्त समक्ष दीक्षा ग्रहण की और व्रत ग्रहण करनेके दिनसे ही तीव्र तपस्या कर उदायन राजर्षि अपने देहको शोषने लगे।

निरतर निरस आहार करनेसे वो राजर्षि व्याधिग्रस्त हुए। एक वैद्यने उन्हे देख उनको उनके शरीररक्षा निमित्त दही सेवन करनेको कहा। मुनि स्वदेहमें निस्पृह होने पर भी दधि लेनेको गवेषणा करने लगे और विहार करते करते वितभय नगर आ पहुचे। वहा मत्रीने राजर्षिके द्वेष वश केशी राजासे कहा कि "हे राजन्! यह तुम्हारा मामा तपस्यासे गभराकर तुम्हारा राज्य वापस लेनेको आया है अत इसका विश्वास कभी करना नहि।" केशीने उत्तर दिया कि, "यह राज्य तो उन्हीका है, वे इसे सुखपूर्वक ले सकते हैं।" मन्त्रीने उत्तर दिया कि, "राज्य किसीसे दिया हुआ

नहीं मिलता, यह तो पुण्यसे मिलता है अत मिला हुआ राज्य वापस क्या देना ? इसलिये हे राजा ! इस मुनिको किसी प्रकार विष दे दीजिये ।" मन्त्रीकी प्रेरणासे केशीने अपने उपकारी मामाको किसी पशुपालिका-ग्वालनीके द्वारा विष संयुक्त दही दिलानेका प्रबन्ध किया। उस विषका हरण कर उसके विषयमे किसी देवताने उदायन मुनिसे कहा कि, "तुम्हको आज विषमिश्रित दही मिलेगा, सो तुम आज दही खाना नहि उसकी इच्छा भी करना नहि ।" मुनिने उसी दिनसे दही खाना छोड दिया, किन्तु जब उनका रोग बढने लगा तो फिरसे दही खाना आरंभ किया । उसी देवताने फिर विषका हरण किया । इस प्रकार उस देवताने तीन बार विष-हरण किया परन्तु एकवार प्रमादसे वह विष-हरण नहीं कर सका, अत मुनिने विष-युक्त दहीका भोजन किया, जिससे उनके शरीरमे विष व्याप्त हुआ, यह जान मुनिने अनशन ग्रहण किया । तीन दिन अनशन पाल, केवलज्ञान प्राप्त कर, उदायन राजर्षि मोक्षगामी हुए । तत्पश्चात् उस देवताने क्रोधित हो केशी राजाके वीतभय नगरको रजवृष्टि द्वारा ढक दिया ।

इस ओर पिताके व्रत अंगीकार करने पश्चात् उनके पुत्र अभिचिने विचार किया कि, "अहो ! मेरे पिताने मुझे छोड उसके भानजेको राज्य दे दिया है, अत उसके ऐसे विवेकको धिक्कार है ।" ऐसा विचार कर केशीकी सेवा करना छोड, पिताके किये अपमानसे उदासीन, अभिचि कुमार कोणिक राजाके पास गया, और वहा श्री वीरभगवतकी

वाणीसे प्रतिबोध पा श्रावकधर्म पालने लगा, परन्तु अपने पिता-उदायनके वैरको न भूल सका। अंतमें पाक्षिक अनशन से पूर्वोक्त पापकी आलोचना लिये बिना ही मर कर भुवनपति देवता हुआ। वहा एक पल्योपमका आयुष्य भोग कर वहासे चव कर अभीचिका जीव महाविदेह क्षेत्रमे मनुष्य योनि प्राप्त कर मोक्षमे जायेगा। श्री वीरप्रभुके निर्वाणसे सोलह सौ उनहत्तर वर्ष पश्चात् कुमारपाल राजा उस प्रतिमाको धूलके आवरणसे बाहर निकाल कर उसकी पूर्ववत् पूजा करेगा। "जिस प्रकार उदायन राजाने पर्वके दिन सर्व सावद्य कर्म का त्याग कर निष्काम भक्ति द्वारा शुभ योग सहित धर्मको ग्रहण किया, उसी प्रकार व्रतधारी गृहस्थोंको भी फलकी इच्छा रहित धर्म ग्रहण करना चाहिये।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ एकोनपञ्चाशदधिकशततमः प्रबन्धः ॥ १४९ ॥

—o—

व्याख्यान १५०

तीसरे शिक्षाव्रतका स्वरूप

पोषं धर्मस्य धत्ते यत्तद्भवेत्पौषधव्रतम् ।
तच्चतुर्धा समाख्यातं, आहारपौषधादिकम् ॥१॥

भावार्थ —जिससे धर्मकी पुष्टि हो, उसे पौषध व्रत कहते हैं। उसके आहारपौषध आदि चार भेद हैं।

"पुष् पुष्टौ" पुष धातुका अर्थ पुष्टि करना है। "धर्मस्य पोष-पुष्टिं धारयतीति पौषधम्" धर्मकी पुष्टि करनेको पौषध कहते हैं। यह अष्टमी आदि पर्व दिनोंका नियमित अनुष्ठान है। यह पौषध चार प्रकारके हैं। इन चारोंके भी प्रत्येकके दो दो भेद हैं। इनके विषयमें श्री आवश्यक निर्युक्तिकी वृत्ति तथा उसकी चूर्णिमें इस प्रकार लिखा गया है कि —

"आहारपोसह के दो भेद हैं, देशसे और सर्वसे। किसी विगईका त्याग करना अथवा आयंबिल या एकासना करना देशसे आहारपोसह कहलाता है, और दिन-रात के आठों पहरमें चारों प्रकार के आहारका त्याग करना सर्वसे आहारपोसह कहलाता है। शरीर सत्कार पोसहके भी देशसे और सर्वसे दो भेद हैं। अमुक समय तक स्नान विलेपन नहीं करना अंशसे-देशसे, और सर्वथा स्नान विलेपन तथा पुष्पादिका त्यागकर देना सर्वसे शरीर सत्कार पोसह कहलाता है। ब्रह्मचर्य पोसहके भी देशसे और सर्वसे ऐसे दो भेद हैं। तिथि-दिन अथवा रात्रिको त्याग करना अथवा एकबार या दो बारका परिमाण बांधना देशसे, और दिन तथा रात्रि के आठों पहरमें ब्रह्मचर्य पालन करना सर्वसे ब्रह्मचर्य पोसह कहलाता है। अव्यापार पोसहके भी देशसे और सर्वसे दो भेद हैं। "अमुक प्रकार के व्यापार मैं नहीं करूंगा" ऐसा विचार करना देशसे, और हल, गाडा, घर आदि सर्व प्रकारका व्यापार छोड देना सर्वसे अव्यापार पोसह कहलाता है।

देशसे पौषध करनेवाला चाहे सामायिक करे या न भी करे परन्तु सर्वसे पोषध करने वालेको तो सामायिक अवश्य करनी चाहिये। नहीं करने से उसका फल नहीं मिलता है। सवसे पोसह चैत्यगृहमें, साधुके समीपमें अथवा घरकी पौषधशालामे जाकर करना चाहिये। यहा जाकर आभूपणादि दूर रख, पोसह अगीकार कर पुस्तक पढना तथा शुभ ध्यान ध्याना चाहिये। श्रावकप्रज्ञप्तिकी वृत्तिम भी इसका वर्णन किया गया है तथा पौषधसूत्रमे भी कहा है कि —

"करेमि भंते पोसह आहार पोसह देसओ सव्वओ।" आदि सूत्रमे पोसहके चार भेद कहे गये हैं। यहा पौषध शब्दका अर्थ नियम मानने पर ही इसका अर्थ बराबर बैठता है। इन आहार आदि चार प्रकारके पोषहके देशसे व सर्वसे आठ भाग तथा प्रत्येकके दो दो उपभोगाको सम्मिलित करने से कुल अस्सी भाग होते हैं। इनमे से आहार पोसह तो दो प्रकारसे किया जाता है, क्योंकि निर्दोष आहारसे सामायिकमे कोई विरोध नही आता, अपितु साधु और उपधान वहन करनेवाले श्रावक भी आहार ग्रहण करते हैं, परन्तु शेष तीन पोषह तो सर्वसे ही ग्रहण करना चाहिये क्योंकि उनको सर्वसे ग्रहण न किये जाये तो "सावज्ज जोग पच्चक्खामि" इस पाठका उल्लंघन होता है।

यहा यदि किसीको यह शङ्का होगी कि, निर्दोष देह सत्कार और निर्दोष व्यापार करनेमे क्या दोष है? तो

कहना है कि दोनों नियाये देहकी शोभा तथा लोभादिकके हेतुभूत हैं और सामायिकमे इन दोनों (देह-विभूषा और लोभ) का निषेध किया गया है, और समयपनके अभावमे धर्मक्रियाके निर्वाहके लिये साधुके सदृश आहार तो लेना आवश्यक है। इस विषयमे श्री महानिशीथसूत्रमे कहा गया है कि "यदि देशसे आहार पोसह किया हो तो गुरुके समक्ष पच्चखाण पाल, आवस्सही कह कर उपाश्रयसे निकले और ईर्यासमितिपूर्वक घर जावे (घरमे प्रवेश करते 'नयणा मगल') बोले इरियावही पडिक्कमी गमणागमणेका पाठ करे, तत्पश्चात् सडासेको प्रमार्जित कर, कटासणा-बेटका पर बैठे, थाली-लोटा वाटकी पाटला वगर पात्रको प्रमार्जित कर, योग्य भोजन पीरसावे, पीरसने बाद नवकार मन्त्रका उच्चारण कर, पच्चखाणका स्मरण कर वदन प्रमार्जित कर, मुखसे आवाज किये विना, विलम्ब रहित, विना जूठा डाल, मन वचन और काय गुप्तिसे युक्त हो कर साधु तरह भोजन करे। भोजन करने पश्चात् प्रासुक जलसे मुख शुद्धि कर, नवकार का पाठ पढ कर उठे। तत्पश्चात् चैत्यवन्दन कर, पच्चखाण धारण कर पुन पौषधशालामे आ, ईरियावही कर गमनागमने बोलकर स्वाध्याय ध्यान करे।"

श्राद्धप्रतिक्रमणकी चूर्णीमे भी इसी प्रकार कहा गया है परतु ये सब सामायिक और पौषधकी एकत्रताकी अपेक्षा से हैं क्योंकि मुहूर्त मात्रकी सामायिकमे तो अशन-भोजन करना सर्वथा निषिद्ध है। पोषधके विषयमे श्री निशीथ-

भाष्यमे ऐसा भी कहा गया है कि, "-उद्दिट्ठ कडपि सो भुजे" "इसे उद्देश कर किया हो तो भी पौषधवाला श्रावक भोजन करता है। निशीथचूर्णीमे भी कहा है कि, जिसने उद्देश कर किया हो वो सामायिक करने पर भी भोजन करे। निर्विवाद वृत्तिसे तो सर्व प्रकारके आहार आदिका त्याग करना ही सर्वोत्कृष्ट पौषध है। उसे शख श्रावक सदृश करना चाहिये —

शख श्रावककी कथा

श्रावस्ती नगरीमे शख और पुखली नामक दो श्रावक रहते थे। वे जब श्रीवीरभगवतको नमस्कार कर वापस लौटे, तब शखने पुखलीसे कहा कि, "तुम उत्तम भोजन तैयार कराओ, वो खा कर हम पाक्षिक पोसह ग्रहण करेगे।" पुखली को ऐसा कह शखने घर आ कर विचार किया कि, "आज तो निराहार पौषध व्रत करना हो ठीक है क्योकि उसका बडा फल है।" ऐसा विचार कर उसकी स्त्रीको कह पौषधशालामे जा अकेलेने ही शरीरसे अलकार हटा, शरीर सत्कारका त्याग कर, पौषध ले, दर्भके सथारे पर बैठ, शुभ ध्यान करने लगा। इस ओर पुखली श्रावक उत्तम भोजन तैयार करा कर शखको आमत्रण करनेको गया। शखकी स्त्री उत्पलाने पुखली श्रावकको आते देख, खडी होकर उसका सन्मान किया और उसके पतिका पौषधशाला मे होना कहा। इस पर शख पौषधशालामे गया और इर्यापथिकी पडिकमी, शखको भोजनके लिये आमत्रित

किया । शखने उत्तर दिया कि, "मुझे उनमेंसे कुछ नहीं कल्पता, जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो । कोई भोजन क्रिया मेरी आज्ञासे नहीं करनी । यह सुन पुखली श्रावक वापस लौट आया और यह वृतान्त अन्य सबको थह सुनाया ।

शखश्रावक रात्रिको धर्मजागरणमे विचार करने लगा कि, "मैं सुबह श्रीवीरप्रभुको नमस्कार कर फिर पौपधपूर्ण करुगा अर्थात् पालूगा ।" प्रभात होने पर वह श्रीवीरप्रभुके समीप जा नमस्कार कर बैठा कि पुखलीश्रावक भी वहा आ पहुचा । प्रभुको नमस्कार कर वह शखको बुरा भला कहने लगा कि, "हे शख ! तुमने कल अच्छा कार्य नही किया ।" इस पर भगवत बोले कि, "हे पुखली ! तुम शखकी निन्दा न करो, वह गतरात्रिको [1]सुदक्ष जागरिकासे जगा है ।" उस समय गौतमस्वामीजीने प्रश्न किया कि, "हे स्वामी ! जागरिका कितने प्रकारकी है ?" प्रभुने उत्तर दिया कि "हे गौतम ! जागरिका तीन प्रकारकी है, पहली बुद्ध जागरिका, जो केवली भगवतको होती है । दूसरी अबुद्ध जागरिका, जो छद्मस्थ अनगारी-मुनिको होती है । और तीसरी सुदक्ष जागरिका, जो श्रमणोपासक-श्रावकको होती है ।" तत्पश्चात् जब शखने क्रोधादिकका फल पूछा तो प्रभुने उत्तर दिया कि, "हे शख ! क्रोध, मान आदि कषाय आयुष्य कर्मके सिवाय, सात कर्मकी शिथिल बधवाली प्रकृतिओंको दृढ बधनवाली बनाते हैं ।" यह सुन पुखली

१ सारी रात धर्मध्यानमें प्रवृत्त रहा है ।

आदि श्रावक शखका बार बार खमाने लगा । शख श्रावक पौषध आदि व्रतोंका पालन कर सौधर्म देवलोकमे अरुणाभ विमानमें देवता हुआ । वहा चार पल्योपमका आयुष्य भोग महाविदेह क्षेत्रमे मोक्ष प्राप्त करेगा । यह कथा श्रीविवाह प्रज्ञप्ति-भगवतीसूत्रके बारवे शतकसे लिखी गई है ।

"पाचवे अगमे श्री जिनेश्वर भगवतने भी शख श्रावकके चार प्रकारके उत्कृष्ट पौषधव्रतका वर्णन किया है अत पर्वके दिनोंमे इन व्रतको विशेषतया धारण करना चाहिये ।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ पञ्चाशदुत्तरशततमः प्रबंध. ॥१५०॥

इत्युपदेशप्रासादवृत्तौ व्याख्यानहेतवे ।
पचदशभिरस्ताभि. स्थभोऽय दशमो मत ॥ १ ॥

दशमस्थभ समाप्त

श्री उपदेशप्रासाद भाषान्तर

स्थंभ ११

पर्वाराधन विधि

व्याख्यान १५१

चतुर्दश्यष्टमीराको-द्दिष्टापर्वसु पौषध ।
निधेय सौधम्धेनेत्थ पर्वाण्याराधयेद्गृही ॥१॥

भावार्थ —चौदश, अष्टमी, पूर्णिमा और अमावास्यादि पर्व में गृहस्थको पौषधव्रत कर पर्व का आराधन करना चाहिये।

विस्तारार्थ —चौदश, अष्टमी, पूर्णिमा और अमावास्या पर्व कहलाते हैं। इन पर्व दिनोंमें गृहस्थको पौषध करना चाहिये। इसके विषयमें कहा है कि, "सर्व दिनोंमें धर्म क्रिया करने से तो विशेष लाभ होता ही है परन्तु यदि सर्व दिनोंमें धर्म क्रिया नही की जाये तो, कमसे कम पर्व दिनोंमें तो धर्मक्रिया अवश्य करनी चाहिये।" अपितु कहा है कि,–' अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्व तिथियोंमे तो सर्व चैत्य तथा साधुओंको अवश्य वन्दन करना चाहिये अन्य तीथियोंको भी यथाशक्ति गुरु वन्दन करना उचित है। वान्दिताल श्री शान्तिसूरिजी रचित श्री उत्तराध्ययन सूत्रकी वृत्तिमें कहा है कि —

सर्वेष्वपि तपोयोगः प्रशस्तः कालपर्वसु ।
अष्टम्यां पंचदश्यां च, नियतः पौषधं वसेत् ॥१॥

"सर्वकाल पर्वमें तपका योग श्रेष्ठ है, परन्तु अष्टमी और पूर्णिमाको[1] तो पोसह अवश्य ग्रहण करना चाहिये।"

जैसे विजयादशमी-दशेरा, दीपोत्सवी-दिवाली आदि लौकिक पर्वमें मनुष्य पोशाक तथा खानपान आदि विशेषतया करते हैं वैसे ही धर्मप्रेमी श्रावकोंको धर्मके पर्वके दिनमें अवश्य करना चाहिये। एक महिनेमें अष्टमी, चतुर्दशी आदि छ पर्व दिन आते हैं, और एक पक्षमें तीन, उनका अवश्य पालन करना चाहिये। पर्वणीके विषयमें कहा है कि "बीज तीथीके पालनेसे अणुव्रत और महाव्रतरूप दो प्रकारके धर्मका आराधन होता है, पंचमीके पालनसे पांचो ज्ञानकी प्राप्ति होती है, अष्टमीके पालनसे आठो कर्मोंका क्षय होता है, एकादशीके पालनसे एकादश अंगकी आराधना प्राप्ति होती है, और चौदशके आराधनसे, चौद पूर्वके ज्ञानका लाभ होता है।" ये पांच पर्व हैं, जिनमें पूर्णिमा और अमावस्याके मिलानेसे सात पर्व होते हैं।

श्री गौतमस्वामीजीने प्रभुसे पूछा कि-"हे भगवंत! बीज आदि पांच पर्वणीमें किये धर्मानुष्ठानका क्या फल होता है?" प्रभुने उत्तर दिया कि, "हे गौतम! प्राय यह जीव पर्वणीयोंके दिन परभवके आयुष्य कर्मका उपार्जन करता

---

१ पहिले पूर्णिमाको चौमासी प्रतिक्रमण होनेसे, उसके विशेष पर्व समझते थे।

है अर्थात् एक भवमें आयुष्य बांधनेका काल एक बार और अंत मुहूर्तका होता है।

प्रत्येक जीव अपने आयुष्यके पिछले तीसरे भागमें आगामी भवका आयुष्य बांधता है जो कभी चलायमान नहीं होता। जैसे श्रेणिक राजाने पूर्वमें गर्भिणीको मार उसके गर्भको गिराकर अपने बलका गर्व-वर्णन करते हुए जो नारकी का आयुष्य बांधा था, वह किसी भी प्रकार छूट न सका।

अन्य मतिके शास्त्रमें भी पर्व दिनोंमें स्नान-मैथुनादि का निषेध किया गया है। विष्णु पुराणमें कहा है कि —

चतुर्दश्यष्टमी चैव, अमावास्या च पूर्णिमा ।
पर्वाण्येतानि राजेन्द्र !, रविसंक्रान्तिपर्व च ॥ १ ॥

तैलस्त्रीमांससम्भोगी, पर्वस्वेतेषु वै पुमान् ।
विण्मूत्र भोजनं नाम, प्रयाति नरकं मृतः ॥ २ ॥

हे राजेन्द्र। चौदश, आठम, अमावास्या, पूर्णिमा और सूर्यकी संक्रान्तिके दिन पर्वणी हैं। इन दिनोंमें तैल मर्दन कर स्नान करने वाला, स्त्रीसेवन और मांसका भोजन करने वाला पुरुष मृत्यु प्राप्त कर विण्मूत्रभोजन[1] नामक नरकमें जाता है।"

[1] जिस नरकमें विष्टा खाना पड़ता है।

सर्वेष्वपि तपोयोगः प्रशस्तः कालपर्वसु ।
अष्टम्या पचदश्या च, नियतः पौषध वसेत् ॥१॥

"सर्वकाल पर्वमें तपका योग श्रेष्ट है, परन्तु अष्टमी और पूर्णिमाको[1] तो पोसह अवश्य ग्रहण करना चाहिये ।"

जैसे विजयादशमी-दशेरा, दीपोत्सवी-दिवाली आदि लौकिक पर्वमें मनुष्य पोशाक तथा खानपान आदि विशेषतया करते हैं वैसे ही धर्मप्रेमी श्रावकोंको धर्मके पर्वके दिनमें अवश्य करना चाहिये । एक महिनेमें अष्टमी, चतुर्दशी आदि छ पर्व दिन आते हैं, और एक पक्षमें तीन, उनका अवश्य पालन करना चाहिये । पर्वणीके विषयमें कहा है कि "बीज तीथीके पालनेसे अणुव्रत और महाव्रतरूप दो प्रकारके धर्मका आराधन होता है, पचमीके पालनसे पाचो ज्ञानकी प्राप्ति होती है, अष्टमीके पालनसे आठो कर्मोंका क्षय होता है, एकादशीके पालनसे एकादश अगकी आराधना प्राप्ति होती है, और चौदशके आराधनसे, चौद पूर्वके ज्ञानका लाभ होता है ।" ये पाच पर्व हैं, जिनमें पूर्णिमा और अमावस्याके मिलानेसे सात पर्व होते हैं ।

श्री गौतमस्वामीजीने प्रभुसे पूछा कि-"हे भगवत । बीज आदि पांच पर्वणीमें किये धर्मानुष्टानका क्या फल होता है ?" प्रभुने उत्तर दिया कि, "हे गौतम ! प्राय यह जीव पर्वणीयोंके दिन परभवके आयुष्य कर्मका उपार्जन करता

---

[1] पहिले पूर्णिमाको चौमासी प्रतिक्रमण हाता, उसके विराय पर समझाते थे ।

है अर्थात् एक भवमें आयुष्य बांधनेका काल एक वक्त और अन्त मुहूर्तका होता है।

प्रत्येक जीव अपने आयुष्यके पिछले तीसरे भागमें आगामी भवका आयुष्य बांधता है जो कभी चलायमान नहीं होता। जैसे श्रेणिक राजाने पूर्वमें गर्भिणीको मार उसके गर्भको गिराकर अपन बलका गर्व-वर्णन करते हुए जो नारकी का आयुष्य बांधा था, वह किसी भी प्रकार छूट न सका।

अन्य मतिके शास्त्रोंमें भी पर्व दिनोंमें स्नान-मैथुनादि का निषेध किया गया है। विष्णु पुराणमें कहा है कि —

चतुर्दश्यष्टमी चैव, अमावास्या च पूर्णिमा ।
पर्वाण्येतानि राजेन्द्र !, रविसंक्रांतिपर्व च ॥ १ ॥

तैलस्त्रीमांससम्भोगी, पर्वस्वेतेषु वै पुमान् ।
विमूत्र भोजन नाम, प्रयाति नरकं मृत' ॥ २ ॥

हे राजेन्द्र। चौदश, आठम, अमावास्या, पूर्णिमा और सूर्यकी संक्रांतिके दिन पर्वणी हैं। इन दिनोंमें तैल मर्दन कर स्नान करने वाला, स्त्रीसेवन और मांसका भोजन करने वाला पुरुष मृत्यु प्राप्त कर विण्मूत्रभोजन[1] नामक नरकमें जाता है।"

---

१ " जिस नरकमें विष्टा और मूत्रका ही भोजन करना पड़ता है।

अवसर पर किया हुआ धर्मकार्य महान् फल देता है अत मुख्यतया पर्वके दिनोंमे अहोरात्रका पोसह करना चाहिये। यदि वो करनेमे अशक्त हो, तो रात्रि पौषध तो अवश्यकरना उचित है। इस प्रकार श्रावकको पर्वकी आराधना करनी चाहिये इस पर पृथ्वीपाल राजाका दृष्टांत बतलाया है।

पृथ्वीपाल राजाकी कथा

क्षितिप्रतिष्ठित नगरमें अनुपम रूपवान पृथ्वीपाल नामक राजा था। वह एक बार वनमे शिकार करने गया। वहा एक वृक्ष पर किसि मयूर पक्षीको देख, उसे मारनेके लिये, अपने धनुष पर बाणचढाकर उस पर छोडा। जिसके आघात से वह तत्काल पृथ्वी पर पड़ तडफडाने लगा। उसे तडफडाते और आक्रद करते देख राजाको विचार हुआ कि, "अरे! मैंने इस जीवको क्यों इसके क्रीड़ा रसमेंसे अकस्मात् विरस कर दिया? इसी प्रकार यदि कोई मेरेसे अधिक बलवान नर या व्याघ्र आकर मुझे अनेक प्रहारसे वेदना उपजावे तब उस समय उसका निवारण कौन करे? अत मुझ पापीको बारबार धिक्कार है।" ऐसा विचार कर वह पृथ्वी पर पडे तडफते हुए मयूरकी ओर देख बारबार नमने लगा। वेदना मे राजाने कहे हुवे नम्र वचनोंसे और शुभ ध्यानमे तत्पर हो वह मयूर क्षणभरमे मर, विशालपुर नगरमे मनुष्य बना।

पृथ्वीपाल राजा वहासे आगे बढने पर मार्गमे एक मुनि भगवन्तको शिलापट्ट पर बैठे हुए देखे, वे भावसे

अध्यातमरूप शिलापट्ट पर बैठे थे, वे मुनिवरको देख कर भाव सहित उनके समक्ष जा बैठा। उसे देख मुनिवरने कहा कि —

> धर्मस्य जननी जीव-दया मान्या सुरैरपि।
> तस्मात्तद्वैरिणीं हिंसा नाद्रियते सुधीर्नर ॥१॥

"धर्मकी माता जीवदया है, जो देवताओंको भी मान्य है, अत उत्तम बुद्धिमान् पुरुष जीवदयाकी वैरिणी हिंसाका आदर नहीं करते।" यह श्लोक सुन राजाने विचार किया कि, 'मैंने जो दुष्कृत्य किया उसे इस मुनिने नहीं देखा फिर भी इसने उसे व्यक्त कर दिया अपितु इसका कथित धर्म भी श्रेष्ठ जान पड़ता है।" राजाकी ऐसी भावना होने पर मुनिराजने उसे विशेष धर्मदेशना दी जिस पर वह मुनिके समक्ष श्रावकव्रत ग्रहण कर अपने नगरमे आया और उसने अपने घरके मच्छ जाल आदि समस्त हिंसाके अधिकरणाको जला दिया और पर्वके दिन घासी-तेलीको तल नहीं पीलनेकी तथा धोबीको वस्त्र नहीं धोनेकी आज्ञा प्रदान की। इस प्रकार पर्वकी महिमा करनेसे अनेक जीवोने धर्म प्राप्ति की। अनेक वर्षा तक इस प्रकार धर्मका आचरण कर पृथ्वीपाल राजा मृत्युको प्राप्त कर विशालपुर नगरमे शालिभद्र सेठके सदृश सुनन्द नामक व्यापारी हुआ। उस जन्ममें भी छोटीसी आयुमे ही पूर्वके अभ्याससे उसन जैन धर्मको प्राप्त किया और सर्व पर्वदिनोमे पौषधव्रत करने लगा उस मयुरका जीव जो

विशालपुरमें उत्पन्न हुआ था, यह भी वहाके राजाका सेवक हुआ।

एक बार उसने इन सुनन्द व्यापारीको देखा और देखते ही उसके अन्त करणमे क्रोध उत्पन्न हुआ, इसलिये वह उसे मारनेकी इच्छा करने लगा। एक समय राजाकी राणीने वक्षस्थलका हार चुपके से चुरा। वह पर्वके दिन पोसह पर अकेले बैठे हुए सुनन्द सेठके कठमे कपटसे पहिना दिया, वापस राजाके समीप आ गया। इस ओर रानी अपना हार खोया जान, शोक करने लगी व खाना-पीना तक छोड़ दिया। राजाने अपने हजारों सेवकोंको नगरके लोगाके घरोंमें हारकी खोज करने भेजा। उस समय यह मयूरका जीव भी राजाके अन्य सेवकाको साथ ले पौषधशालामे गया और वहा पोसह लेकर बैठे हुए सुनन्दके कठमे वो हार वतलाया। राजाके सेवक सुनन्दको पकडकर राजाके समक्ष ले गये। राजाने उससे पूछा परन्तु जब उसने सावद्य-पापकारी उत्तर नहीं दिया तो राजाने उसे मार डालनेको वधस्थानमे भेजा। राजाकी आज्ञा से, वो मयूरका जीव हाथमें तलवार ले उसे मारनेको आया परन्तु उसके शरीर पर विकराल तलवारका घाव करते हुए उस तलवारके ही हजारो टुकडे हो गये। सुनन्दने पूर्वभवमे हिंसाके अधिकरण तुड़वा दिये थे, तथा जला दिये थे, उस पुण्यसे इस भवमें उस तलवारके हजारों टुकडे स्वयमेव हो गये। क्रमश अन्य सेवकोंके शस्त्र भी नष्ट हो गये, अत सब राजसेवक शस्त्र रहित हो मनमे भयभीत हो

राजाके समक्ष आकर सब वृत्तान्त कह सुनाया। राजा विस्मित एवं द्वेष रहित हो स्वयं वहां गया तो उस सेवकने कहा कि, "हे स्वामी! इस धूर्त वणिकने मंत्र प्रयोगसे आपके सेवकोंको बहुत कष्ट दिया है, अतः यह वध करने योग्य है।" यह सुन राजा बोला कि, "यह सब कार्य कल किया जायेगा। आज तो इसे मुक्त करके इसके स्थानको पहुँचा दो।" दूसरे दिन सुनन्द पौषध पूर्णकर राजाके पास गया और कहा कि, "हे स्वामी! हम श्रावक हैं, चोरी नहीं करते हैं, धर्मके प्रतापसे ऐसे हार तो मेरे यहां कई मौजुद हैं, आप स्वयं पधार कर देख सकते हैं।" राजा शिघ्र ही उसके घर गया। वहां उसके घरकी सम्पत्ति देख चकित हो पूछने लगा कि, "यह घटना क्याकर घटित हुई?" श्रावकने उत्तर दिया कि, "मैं जैन श्रावक हूँ, न तो किसी की हिंसा करता हूँ न कराता हूँ।" राजाने पूछा कि, 'तुम कल क्यों नहीं बोले?" सुनन्दने उत्तर दिया कि, "आठम आदि पर्वके दिन पौषध लेकर बैठे हुए हमको सावद्य बोलना नहीं कल्पता।" इस प्रकार उसके नियम तथा उसमें उसकी दृढता देखकर राजाने उसकी बहुत प्रशंसा की और प्रसन्न हो अपने महलको लौट आया।

बादमें सुनन्द श्रावकने गृहभार अपने पुत्रको सौंपकर दीक्षा ग्रहण की और शुभ ध्यान द्वारा केवलज्ञान प्राप्त कर उसी नगरमें आया। राजा सहपरिवार उसे वन्दना करने गया। वन्दना कर जब सामने बैठा तो वो मयूरका जीव

राजसेवक, उन पर कोप कर, दुष्ट ध्यान धरने लगा, इस पर ज्ञानी मुनिने उसे उद्देश कर नीचे लिखा श्लोक कहा कि –

मयूर. प्राग्भवेऽभूस्त्व मन्मुक्तबाणतो हतः ।
साम्प्रत मानुज लब्ध्वा, मुञ्च दौष्ट्य भवप्रदम् ॥ १ ॥

" तू पूर्वभवमें मयूर था, जो मेरे द्वारा बाणसे मारा गया था, अब तूने मनुष्यपना प्राप्त किया है, अत ससारको प्राप्त करानेवाली इस दुष्टताको त्याग दे ।"

यह श्लोक सुन उसे जाति स्मरण ज्ञान हुआ, जिससे प्रबोधित हो उसने दीक्षा ग्रहण की, और अपना पूर्वकृत सब पाप प्रगट कर दिया ।

विशालनगरका राजा भी केवलज्ञानीके उपदेशसे पौषध व्रतद्वारा पर्व दिनोंकी आराधना करने लगा । केवली भगवतने अन्यत्र विहार किया और अनुक्रमसे मोक्ष प्राप्ति की। जो प्राणी हर्ष पूर्वक पौषधव्रत द्वारा सर्व पर्वोंकी आराधना करता है और मनसे धर्म–पर्वोंको भूलता नहीं है, वह सर्वसपत्ति युक्त होता है ।

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ एकशताधिकैकपचाशत्तम प्रबंध ॥ १५१ ॥

व्याख्यान १५२

पुनः पर्वकी आराधनाके विषयमें

सर्वारम्भपरित्यागात्पाक्षिकादिषु पर्वसु ।
विधेय पौषधोऽनघमिव सूर्ययशा नृप ॥ १ ॥

भावार्थ —"पाक्षिक (चतुर्दशी) पर्व आदिमें सर्व आरम्भोका त्याग कर सूर्ययशा राजा सदृश सदैव पौषध व्रत अंगीकार करना चाहिये।"

सूर्ययशाका वृत्तान्त

विस्तारार्थ —उपर लिखे श्लोकका सम्बन्ध श्री ऋषभ देव प्रभुके राज्यकालका है। पूर्वमे इन्द्रकी आज्ञासे भगवन्तकी राज्यस्थितिके लिये कुबेरने एक रात्रि और दिनमे विनीता नामक बारह योजन लम्बी और नौ योजन विस्तारवाली नगरी बनाई थी। उसके चारों ओर सुवर्णका किला व मध्यमें श्री जिनेश्वर भगवानका इक्कीस माल-खण्डका मन्दिर बनाया था। उस नगरमें भरतचक्रीके बाद उसके सवा करोड़ पुत्रोंमें से बड़ा पुत्र सूर्ययशा दश हजार मुकुटबद्ध राजाओंका अधिपति राज्य करता था। वह अपना विशाल राज्य नीतिसे चलाता था। इसके सवा लाख पुत्र थे और सदैव प्रातःकाल अपनी सेना सहित शक्रावतार नामक श्री ऋषभदेव प्रभुके प्रासादमें स्तुति मङ्गल करता था। इसी प्रकार पाक्षिक आदि पर्व दिनोंमें दश हजार राजा तथा अन्य स्वजनों सहित वह परिपूर्ण (आठ पहर व चारों प्रकारका सर्वसे) पौषध करता था। उस

दिन न तो वह स्वयं कोई आरंभ करता था, न अन्य किसीसे करवाता था।

एक बार सौ धर्मेन्द्रने अपनी सभामें बैठे बैठे ही अवधिज्ञान द्वारा सूर्ययशाकी पर्व सम्बन्धी धर्माराधनामें अटल दृढता जान, बारबार मन द्वारा उसकी प्रशंसाकी व नत मस्तक हुआ। उसे देख, रंभा, उर्वशी आदि गन्धर्वीयोंने जो मधुर गान, तान और हावभावपूर्वक, उसके सामने नृत्य कर रही थी उससे पूछा कि, "हे स्वामी! मृत्युलोकके जरासे जर्जरित मनुष्यके मस्तक सदृश आपने अपना सिर क्यों हिलाया? हमारी कलाकौशल्य या बाजित्रकी तालको भूलसे तो ऐसा नहीं किया गया है? हे देव! सम्पूर्ण सभामें व्याप्त इस सन्देहको अपने इष्ट वाक्य द्वारा दूर कर, हमारे मनको शल्यरहित करो।" इन्द्रने उत्तर दिया कि, "मृत्युलोकमें भरतचक्रीके जेष्ट पुत्र सूर्ययशाकी ऐसी धर्म दृढता है कि, जैसी वर्तमानमें अन्य किसीमें नहीं देखी जाती, और वह वैसे गुणीजनको ही शोभा देती है। कहा भी है कि, "दिग्गज, पर्वत, कुलपर्वत और शेषनाग द्वारा धारणकी हुई इस पृथ्वीका तो चलायमान होना संभव है, परन्तु निर्मल और दृढ हृदयवाले पुरुष जिस नियमको अंगीकार करते हैं उसका युगांत तक भी छूटना असंभव है। अपितु इस सूर्ययशाके परिचयसे अन्य भी कई प्राणि धर्म आराधनामें तत्पर हो चुके हैं। कहा है कि —

मुदग्गजण ससग्गी, सीलदरिद्दं पुणइ मिलट्ठ।
जह मेरुगिरिविलग्गं, तिणं वि कणगत्तणमुवेइ ॥१॥

"शीलरहित पुरुष भी उत्तम जनके संसर्गसे शीलवत हो जाता है, जैसे मेरु पर्वत पर उत्पन्न हुआ घास भी सुवर्णपनको प्राप्त होता है।"

इस प्रकार सौधर्म इन्द्र द्वारा कहे हुए वर्णनको सुन रंभा और उर्वशी बोली कि, "हे स्वामी! धान्यके कीडे और मात्र अन्न पर जीनेवाले मनुष्यकी आप इतनी अधिक प्रशंसा क्यों करते हैं? उन्होंने जब तक हमारा मुंह नहीं देखा तभी तक उनकी धर्मदृढता है।" ऐसा कह वे दोनों प्रतिज्ञा ले मृत्युलोकमें आई और शत्रुजतार नामक जिनमंदिरमें जा हाथमें वीणा ले मधुर स्वरसे श्री जिनेश्वर भगवंतके गुणों का गान करने लगी। उन्होंने सप्तस्वरमय ऐसा संगीत गाया कि उसे सुन अपनी जातिके स्वरकी भ्रान्तिसे पक्षीगण भी वहा सुननेको चले आये। कहा भी है कि—मयूर षड्ज स्वर, कुक्कुट ऋषभ स्वर, हंस गांधार स्वर, गवेलक मध्यम स्वर, वसंत ऋतुमें पुष्प विकस्वर होते समय कोकिला पंचमस्वर, सारस धैवतस्वर, और हाथी सातवा निषादस्वर बोलता है।" इस प्रकार पृथक् पृथक् पक्षियोंकी जातिका स्वर उन्होंने अपनी कलाकौशलसे एक ही साथ प्रकट किया। वह कैसे हुआ? इसके उत्तरमें स्वरोंकी उत्पत्तिका स्थान बताते हैं कि, "कंठमें षड्ज स्वर, हृदयसे ऋषभ स्वर, नासिकासे गांधार स्वर, नाभिसे मध्यम स्वर, उरस्थल एवं कंठसे पंचमस्वर, ललाटसे धैवतस्वर और सर्वसंधियोंसे निषादस्वर उद्भूत होते हैं। इस प्रकार सातों स्वरोंकी उत्पत्ति

श्री आदीश्वरजीके पौत्र सूर्ययशा राजा पाक्षिक पौषध-पूर्णकर, प्रातःकाल अपने परिवार सहित प्रभुको नमस्कार करनेके लिये शत्रुंजयावतार चैत्यमें आया। तीर्थको दूरसे देख, वाहनका त्याग कर, छत्र, चमर और मुकुट दूर रख, उपानह रहित चरणासे चलने लगा। उस समय दूर चैत्यमें होनेवाले संगीतको सुनते ही, अश्व, हाथी, पैदल और अन्य राजा आदि सब सूर्ययशा राजाको छोड़ शीघ्रतया वहां दौड़ चले। कहा है कि, "जो सुखीजनके सुखका कारण है, दुःखीजनको विनोदरूप है, श्रवणेन्द्रिय और हृदयको हरनेवाला है, कामदेवका अग्र दूत है, नये नये रसोंका निर्माता है, और नायिकाको वल्लभ है ऐसा पांचवां उपवेद 'नाद' इस जगत्में विजयी होता है।" तत्पश्चात् राजा भी अनुक्रमसे वहां पहुँचा और श्री जिनेश्वर भगवन्तको नमस्कार कर बाहर आया। उस समय उन दोनों अप्सराओंका सङ्गीत, स्मित, नृत्य, वेष, लावण्य और अनुपमरूप उसके देखनेमें आया। अपनी कान्तिसे सूर्यके बिम्बको भी तिरस्कार करने वाली, उन बालाओंका विशेष वर्णन क्या किया जाय? इन्द्र भी उनके रूप एवं गुणोंको देखकर असंख्य काल तक भी तृप्त नहीं होता। उनके ऐसे उत्तम सौन्दर्यको देखकर राजा मण्डपके बाहर आकर द्रव्यसे भूमि पर और भावसे उनके गुणोंकी स्तुतिमें स्थित हुआ। बादमें सुन्दरीयों द्वारा किये हुए अवसरोचित नृत्य एवं गीतरूप अमृत का कर्णपट द्वारा पानकर अपने मन्त्री द्वारा उनका जाति कुल पूछाया। इस पर उन अप्सराओंने उत्तर दिया कि,

"हम दोनों विद्याधरोंकी पुत्रीये हैं। अभी तक कुमारीका है। हमारे सदृश और हमारे वचनानुसार चलने वाले पतिकी खोजमे हम दोनों तीर्थ तीर्थ और नगर नगरको पर्यटन करती है, परन्तु हम अभी तक ऐसा कोई योग्य पति नही मिला है, अत अब हम वापस स्वस्थानको लौट जायेगी। इस पर मन्त्रीने कहा कि, "इस हमारे स्वामी सूर्ययशा (जो मरुदवी के पुत्र ऋषभदेव प्रभुके पौत्र हैं।) के सदृश दुसरा कोई पुरुष त्रिभुवनमें नही है। अत इन्ही के साथ तुम विवाह कर अपना विरह दाहको शान्त करो। हमारा स्वामी सत्यप्रतिज्ञ और सुज्ञ हैं, वो कभी भी तुम दोनोंके वाक्यका उल्लघन नही करेगा।" मन्त्रीके ऐसे वचन सुन उन्होंने कहा कि "वो हमारे वाक्य का उल्लघन नही करेगा इसका साक्षी कौन होगा?" मन्त्रीने उत्तर दिया कि, "इसका जिम्मेवार मैं स्वय हूँ।" इस पर उन्होंने कहा कि, "वचन दो" राजाने वचन दिया और श्रीयुगादीश प्रभु के समक्ष उन दोनोंका पाणिग्रहण कर उन दोनोंको साथ ले राजा महल आया। वे विद्याधरीये सुदर आवासमे सुखपूर्वक रहने लगी और राजा भी सदैव अभिनय कला का अवलोकन कर प्रसन्न होने लगा।

एक वार उनके साथ जब राजा अपने सुन्दरावासमें बैठा हुआ था तब मार्गमें होनेवाली पटह घोषणा उन्हे सुनाई पडी जिसे सुन विद्याधरीयोंने राजासे पूछा कि, "हे स्वामी! यह किसकी ध्वनि है?" राजाने उत्तर दिया कि, "हे

सुन्दरीयों ! कल अष्टमीका पर्वदिन है, इससे कल अनेक प्रकारके दलन, खडन, पेषन, रधन, अभक्ष्य सेवन, ज्ञाति भोजन, तिल तथा एरडी आदि का पीलन, रात्रि भोजन, वृक्ष-छेदन, भूमिविदारण, इट तथा चूना पकानेके लिये अग्निप्रज्वालन, वस्त्रक्षालन, वासी भोजन रखना, शाली तथा चने सेकना, और शाकपत्र खरीदना, आदि किसी भी किस्मके पाप व्यापार न तो कोई करेगा, न करायेगा । बालकके अतिरिक्त अन्य सब लोग प्राय उपवास करेंगे । वे तथा दस हजार राजा जो कल पौषध लेनेवाले हैं, वे सदैव सुखमग्न होनेसे पर्व दिनको क्योंकर जाने ? इससे पर्वके एक दिन पूर्व अर्थात सातम, तेरस आदि तीथियोंको मेरी आज्ञासे सदैव पटह की उद्‌घोषणा होती है और मैं भी पर्वके दिन पौषध ग्रहण करता हूँ ।"

कानमें सीसा डालनेके समान राजाके वचन सुन वे दोना विद्याधरीये मूर्च्छित हो गइ, और जब राजाने शीतल जल एव चन्दन के सिंचन द्वारा उनको सजग किया तो वे बोली कि, "हे स्वामी ! तुम्हारा एक क्षण मात्र का विरह भी हम को कोटी कल्प तुल्य जान पड़ता है इससे तुम्हारे पौषधकालका आठ पहरका विरहतो हम क्योंकर सहन कर सकती है ! अत यदि तुम्हने हमारे अगले सुखकी अभिलाषा हो तो पर्वके दिन पौषध करना छोड दो ।" राजाने उत्तर दिया कि, "प्राणान्ते भी मैं उसे नही छोड़ सकता, सासारिक सुखमें क्या महत्त्व है ? इन्द्रादिकका पद मिलना सुलभ है,

परंतु धर्म प्राप्त होना अत्यंत दुर्लभ है।" उन दोनोंने कहा,-हे स्वामी! यदि ऐसा है तो, तुमने जो हमको पाणिग्रहणके समय वचन दिया था वो व्यर्थ है? राजाने उत्तर दिया कि, "हे प्रियाओं! तुम्हारे वचनसे धन तथा राज्यादि सब छोड़ सकता हूँ परन्तु धर्मको कभी नहीं छोड़ सक्ता, क्योंकि वह तो आत्मका खजाना है।" वे दोनों बोली, "हे प्रिय! आपका वचन भंग होनेसे हम आपके वचनके साथ ही साथ हमारा अंग भी चित्तामें भस्म करेगी।" राजाने क्रोधित होकर कहा कि, "अरे! अवश्य तुम चण्डाल कुलोत्पन्न जान पड़ती हो, क्योंकि कुलवान कभी धर्मके विषयमें अन्तराय नहीं करती। तुम क्यों चित्तामें प्रवेश करना चाहती हो? दूसरा जो कुछ चाहो सो मांग लो मैं देनेको तैयार हूं।" उन्होंने कहा, "हे प्राणनाथ। हमने अत्यन्त स्नेहसे कि हमारे स्वामीको तपस्यासे कायक्लेश न हो इस अभिलाषासे ऐसा कहा था, इसमें आपको क्रोध नहीं करना चाहिये। अपने पिताके वचनोंका उल्लंघन कर निकली हुई हम दोनोंके पूर्वकर्मके सम्बन्धसे आप हमारे पति हुए हैं, और आपने श्री जिनेश्वर भगवतके समक्ष हमारे वाक्यको अन्यथा नहीं करनेकी प्रतिज्ञा की है इससे हम सदैव अभंगसुख मानती हुई, अन्यथा तो जब हम बाल्यावस्थाके शीलसे तथा पिताके राज्यसे भी भ्रष्ट हो चूकी हैं तो फिर हमें तुम्हारे राज्यादिकसे ही क्या प्रयोजन है? अब यदि तुम हमारे वचनसे पर्वका भंग न कर सको तो इस जिनगृहको गिरा दो।"

यह वचन सुनते ही राजा मूर्छित हो जमीन पर गिर पडा और जब सेवकोंने शीतल उपचारसे सचेत किया तो बोलाकि, " अरे अधम स्त्रियों ! मैंने मोहवश मणिकी शङ्कासे काचका टुकडा ग्रहण कर लिया है, अब जो कुछ हुआ सो ठीक, परन्तु तुम एक धर्मके लोपके अतिरिक्त जो कुछ चाहो सो यथेच्छ रूपसे माग लो कि जिसे देकर म अपने वाक्यदानका अनृणी बनु । " विद्याधारीयोंने कहा कि, " यदि तुम्हे अपने वचनोंका पालन करना है तो अपने पुत्रका मस्तक काट कर हमे दो । " राजाने उत्तर दिया कि, " हे भद्रे ! दूसरेके जीवकी क्यों याचना करती हो ? यह पुत्र तो मेरेही देहसे उत्पन्न हुआ है, अत मेरा ही मस्तक क्यों नहीं ग्रहण कर लेती ? " ऐसा कह ज्योंही राजाने स्वय अपने मस्तक पर खड्गका प्रहार किया कि उन्होने खड्ग धारा स्तभित कर दी । राजा नये नये खड्ग ले कठ पर प्रहार करने लगा कि वे दोनों अन्तर्धान हो गई । राजा विस्मय चकित हो विचार करने लगा कि-" अहो ! यह क्या हो गया ? कि उसी समय उन दोनोने प्रकट हो पुष्पवृष्टि कर पूर्वका सब वृतान्त कह कहने लगी कि- " आपकी महिमासे हमारा मिथ्यात्व नष्ट हुआ है " इस प्रकार प्रशसा कर स्वर्गमे जा इन्द्रसभामे भी उन्होने सुर्यवशाकी अनुपम प्रशसा की । बादमे सूर्यवशा अरिसाभुवनमें अपने पिता सदृश केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्षगामी हुए ।

"पाक्षिक आदि तिथियोंमे किया हुआ पौषधधर्म सूर्यवशा

राजा सदृश इस लोक और परलोकमे सुखकी प्राप्ति कराता है जिससे प्राणी निष्कलक कालिका सचय करता है।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ एकशताधिकद्विपचाशत्तम प्रबन्ध ॥ ॥ १५२॥

व्याख्यान १५३

पौषधमें प्रतिक्रमण करनेके विषयमे

पर्याया सन्ति ये चाष्टौ, निर्णीय सूरिभि कृता ।
प्रतिक्रमण शब्दस्य, कार्य तत्पौषधे मुदा ॥ १ ॥

भावार्थ —"सूरिमहाराजाओने जो विचारपूर्वक प्रतिक्रमण शब्दके आठ पर्याय बतलाये हैं, उस प्रतिक्रमणको पौषध व्रतमे श्रावकको हर्षपूर्वक करना चाहिये।"

विस्तारार्थ —"प्रति अर्थात् पीछा, क्रमण अर्थात् चलना। अर्थात् पापसे पीछे हटनेका नाम प्रतिक्रमण है।" कहा है कि —

स्वस्थानाद्यत्परस्थान, प्रमादस्य वशाद्गत ।
तत्रैव क्रमण भूय प्रतिक्रमणमुच्यते ॥ १ ॥

भावार्थ —"प्रमाद वश यदि स्वस्थानसे परस्थान चले गये हों तो वहासे वापस उसी स्थानको (अपने स्थानको ही) वापस लौट आना 'प्रतिक्रमण' कहलाता है।"

अथवा प्रतिकूल गमण अर्थात् रागादिकसे विरूद्ध गमन करना 'प्रतिक्रमण' कहलाता है। इसके विषयमें कहा है कि –

क्षायोपशमिकाद्भावादौदयिकवशगत ।
तत्रापि च स एवार्थ:, प्रतिकूलगमात् स्मृतः॥

"क्षायोपशमिक भावसे औदायिक भावमे गये हुए का वापस प्रतिकूल गमन करना अर्थात् क्षयोपशमभावमें आना ऐसा भी अर्थ सिद्ध होता है।"

यहां पर यदि किसी को यह शका उत्पन्न हो कि, "प्रतिक्रमण तो अतीत–पूर्वकालके पापको पडिक्कमवा–छोडनेरूप है। कहा है कि–"अतीतकाल सम्बन्धीमे प्रतिक्रमता हूँ, वर्तमान काल में सवरता हूँ, और अनागत कालमें पाप नहीं करनेका पच्चक्खाण करता हूँ, अर्थात् नया पाप नहीं करनेका प्रत्याख्यान करता हूँ तो फिर यहाँ तीना कालका प्रतिक्रमण क्यो कहा गया है?" उसके समाधानमें कहते है कि–"यहा प्रतिक्रमण शब्द सामान्यसे मात्र अशुभ योगकी निवृत्ति के अर्थमे है, अत अतीत काल सम्बन्धी पाप की निन्दा द्वारा अशुभ योगका निवृत्ति, वर्तमानकालमे सवर द्वारा अशुभ योग की निवृत्ति, और अनागत काल सम्बन्धी प्रत्याख्यान द्वारा अशुभ योग की निवृत्ति समझना चाहिये।"

प्रतिक्रमण दैवसिक आदि पांच प्रकारका प्रसिद्ध है। उनमें उत्सर्गसे दैवसिक प्रतिक्रमणका काल इस प्रकार बतलाया गया है, कि जब सूर्य आधा अस्त होता हो उस समय

गीतार्थ प्रतिक्रमणसूत्र-श्रमणसूत्र[1] कहे। इस प्रकार दैवसी प्रतिक्रमणका समय समझना चाहिये। प्रतिक्रमणके समाप्त होने समय दो तीन तारे आकाशमे उगे हुए नजर आना चाहिये, ऐसा भी कथन है।

रात्रि प्रतिक्रमणका काल इस प्रकार बतलाया गया है कि, "आवश्यक करने के समय आचार्या निद्रा का त्याग कर देते हैं। तत्पश्चात् प्रतिक्रमण की क्रिया ऐसे समयमे आरंभ करते हैं कि प्रात काल प्रतिलेखना-पडिलेहण करने बाद शीघ्र सूर्योदय हो जावे।" उत्सर्गसे ऊपर बतलाये समयमें प्रतिक्रमण क्रिया करनेसे योग्य समयमे खेती करने वाला कृषक सदृश बड़ा फल प्राप्त करता है। अपवादसे तो योगशास्त्रकी वृत्तिमे लिखा गया है कि 'दैवसी प्रतिक्रमण मध्याह्न पश्चात् अर्द्ध रात्रि तक हो सकता है और राई प्रतिक्रमण अर्द्ध रात्रिसे मध्याह्न तक।"

इस प्रतिक्रमण शब्द के भद्रबाहू आदि सूरियोंने आठ पर्याय बतलाये हैं, जिनके नाम आगे बतलाये जायेंगे। उन आठों पर्यायोंको निश्चय पूर्वक ध्यानमे रखे, श्रावकको वैसा प्रतिक्रमण पौषधव्रतमें हर्ष पूर्वक करना चाहिये। इस विषयमे चूलनी पिता श्रावककी कथा सातवें अंग श्री उपासक दशांग सूत्रसे पढिये। इसके विषयमे कहा गया है कि, "जो प्रतिक्रमणयुक्त पोसह करता है उस गृहस्थको धन्य है, और चूलनी पिता सदृश पालन करनेवालेको तो विशेष धन्य है।"

१ श्रावकको यहांपर वंदित्तासूत्र

प्रतिक्रमणके आठ पर्याय अपर नाम

१ प्रतिक्रमण, २ प्रतिचरणा, ३ परिहरणा, ४ वारणा, ५ निवृत्ति, ६ निंदा, ७ गर्हा और ८ शोधि, वे सब एक प्रतिक्रमण वस्तुके आठ पर्याय–दूसरे नाम है ।

प्रतिक्रमण इस प्रथम पर्यायनामका यह अर्थ है कि प्रतिक्रमण शब्दमे प्रति यह उपसर्ग है जिसका अर्थ "उलटा" है और क्रमण शब्द क्रम् धातुसे बना है जिसका अर्थ पादविक्षेप करना या कदम भरना है जिसके अनट् प्रत्यय लगनेसे प्रतिक्रमण शब्द सिद्ध होता है जिसका मतलब प्रति अर्थात् पीछा क्रमण अर्थात् कदम रखना होता है । इससे यह तात्पर्य है कि शुभ योगसे अशुभ योगमें गये हुएका, वापस शुभ योगमे आना प्रतिक्रमण कहलाता है जिसका भावार्थ दृष्टान्तसे जाना जा सकता है । दृष्टान्त इस प्रकार है कि –

किसी राजाने अपने शहरके बाहर महल बनवानेकी इच्छासे किसी क्षेत्रकी भूमिसे अस्थि–हड्डी आदि शल्य निकाल, उस स्थान पर महल बनवानेको निशान बनवाये और वहा रक्षक नियुक्त कर उन्हे यह आज्ञा दी कि "यदि कोई पुरुष इस भूमिमे प्रवेश करे तो उसे मारडालना परन्तु यदि वो शिघ्र वापस लौट जावे तो उसे छोड देना।" ऐसी आज्ञा देकर राजा शहरको लौटा । दैवयोगसे कोई दो ग्रामीण लोग उस भूमिमे प्रवेश किया। शीघ्र ही उन रक्षकोंने उन्हे देखकर

उनसे पूछा कि, 'अरे ! तुम यहां क्यों घुस आये ? इस पर एकने धृष्ट होनेसे उत्तर दिया कि, "इसमें क्या दोष है !" जिसे सुन राजसेवकोंने उसको मार डाला । दूसरा ग्रामीण भयभीत हो कर, रक्षकोंकी आज्ञानुसार तत्काल क्षमा माग कर पीछा लौट गया, इससे वह बच गया । इस दृष्टान्तसे द्रव्य प्रतिक्रमण समझना चाहिये ।

अब भाव प्रतिक्रमण पर उस दृष्टान्तका उपनय समझाते हैं कि-उस राजाके स्थान पर श्री तीर्थकर, महल बनानेके स्थान पर सयम, ग्रामीणोंके स्थान पर कुसाधु, जो रागद्वेषके आधीन थे, यो समझना चाहिये । उन दोनोंके प्रमादवश असयमी होने पर भी जो वापस लौटा उसने शुभ फल प्राप्त किया और अन्तमें निर्वाण सुख प्राप्त किया और जो नही लौटा, वो दु खका भागी हुआ और ससारमे भ्रमण करता रहा । इस प्रकार उपनयरूप दृष्टान्तसे प्रतिक्रमण श ्दका अर्थ समझना चाहिये ।

दूसरा पर्याय नाम "प्रतिचरणा" है । प्रति अर्थात् बार बार उसी भावमे चरण-गमन-सेवन अर्थात् गमन करना या सेवन करना, प्रतिचरणा कहलाता है । उस प्रतिचरणके अप्रशस्त और प्रशस्त ऐसे दो भेद हैं । उनमें मिथ्यात्वादिका सेवन अप्रशस्त, और तिन रत्न-ज्ञान दर्शन और चारित्रका सेवन प्रशस्त प्रतिचरण कहलाता है । इस पर भी एक निम्नस्थ दृष्टान्त है —

कोई एक वणिक उसकी स्त्रीको "तू इस रत्नादिकसे भरे महलको सभालना" यह यह कर देशान्तरको गया। वो स्त्री उसके शरीरकी विभूषा आदिमे ही सदा तल्लीन रही और महलकी बिलकुल सभाल नही की। दैवयोगसे उस महलकी एक दिवालम पीपलके वृक्षका एक अकुर निकला और वो इतना बढा कि उसकी दिवाल टूट कर वह महल ही विशीर्ण हो गया, तो भी उस स्त्रीने उसकी कोई सभाल नही की।

कुछ दिन पश्चात् जब वह वणिक वापस अपने घर लौटा और उस महल की वो दशा देखी तो वो अत्यन्त कुपित हुआ और उसने उस स्त्रीको उसके घरसे बाहर निकाल, महलको वापस नया बनवाया और दूसरी स्त्रीके साथ पुन विवाह किया। कुछ समय पश्चात् पूर्ववत् वह उस नई स्त्रीको उसके महलकी सभाल रखनेको कह फिर विदेश कमाने गया। वो स्त्री त्रिकाल उस महलकी सभाल रखने लगी। इससे जब वह वणिक विदेशसे वापस लौटा और अपने महलको ठीक दशामे पाया तो वो बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उस स्त्रीको अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया।

इसे द्रव्य प्रतिचरण समझना। भावसे इसका उपनय इस प्रकार है कि वणिकके स्थानपर गुरु महाराज और महलके स्थान पर सयम, कि जिसको नित्यप्रति सभालना आवश्यक है वो समझना चाहिये, वणिकरूप गुरुकी आज्ञानुसार जो साधु सातादि गारवमे लीन हुआ, और पुडरीक सदृश एस सयमरूप महलकी सभाल नही रखता वो वणिककी प्रथम

स्त्री सदृश दुःखी होता है, और जो साधु उस संयमरूप प्रासादकी बराबर समाल रखता है वो दूसरी स्त्रीके सदृश परंपरासे निर्वाण-मोक्ष सुख को प्राप्त करता है ।

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ दशोत्तरशताशतम प्रबंध ॥१५३॥

व्याख्यान १५४

प्रतिक्रमणके पर्याय

भावार्थ —परिहरण अर्थात् सर्वप्रकारसे वर्जन । वर्जनके प्रशस्त और अप्रशस्त दो भेद हैं। ज्ञानादिकका त्याग अप्रशस्त, और मोहादिकका त्याग प्रशस्त कहलाता है। यह प्रतिक्रमणका तीसरा पर्याय नाम है इसके विषयमें दूधकी कावडका दृष्टांत प्रसिद्ध है कि —

विस्तरार्थ —किसी कुलपुत्रके दो बहिनें थीं, उनके एक एक युवान पुत्र था। व दोनों, उनके मामाकी पुत्रीके साथ विवाह करनेको एक साथ आये। मामाने उत्तर दिया कि, "तुम दोनोमेंसे जो अधिक चतुर होगा उसे मैं अपनी पुत्री दूंगा।" ऐसा कह, उसने उन दोनोंको एक एक कावड दि, और गोकुलसे दूध लानेको भेजा। वे दोनों वहांसे दूधके दो दो घडे भर वापस लौटे। वापस लौटनेके दो मार्ग थे। एक सरल मार्ग था, जो बहुत लम्बा था, और दूसरा विषम था, जो छोटा था। दोनोंमें से एक लम्बे लेकिन पर्वतादिक रहित

सरल मार्गसे आया इससे वो दूधके कुम्भोको विना फोडे क्षेम-कुशलसे चला आया, और दूसरा छोटे मार्गके लाभसे उत्सुक हो विकट मार्गसे आया, इससे दूधके घडे फुट गये घर आने पर मामाने कुशलक्षेमपूर्वक आये भानजेको अपनी पुत्री विवाह दी।

यह द्रव्य परिहरणा हुई। भावसे इसका उपनय इस प्रकार है कि —"कुलपुत्रके स्थान पर श्री जिनेश्वर भगवन्त, दुधके स्थान पर चारित्र, कन्याके स्थान पर मुक्ति, और गोकुलके स्थान पर मनुष्य जन्मको समझना चाहिये। सम और विषम मार्गके स्थान पर स्थविरकल्प और जिन-कल्प समझना चाहिये। इनमे विषम मार्गमे चलने वाला अर्थात् जिन कल्पी होनेका इच्छुक साधु सहस्रमल्ल दिगम्बर सदृश चारित्ररूप दूधको नही रख सकता व इसके फल-स्वरूप अपनी ईच्छित वस्तुकी प्राप्ति भी नही कर सकता, अर्थात् उसे मुक्ति दुष्प्राप्य है, अब जो स्थविरकल्पी है, वो शनैः शनैः सुगम मार्गसे गमन कर चारित्ररूप दूधका रक्षण कर अन्तमें दुष्प्राप्य सिद्धिको भी प्राप्त करता है।

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ एकशताधिकचतुःपचाशत्तमः प्रबंध ॥ ॥ १५४॥

व्याख्यान १५५

प्रतिक्रमणके पर्याय

भावार्थ — प्रतिक्रमणका चौथा पर्याय नाम वारणा है। वारणा अर्थात् निवारण करना। इस पर एक दृष्टान्त है कि —

विशेषार्थ – किसी राजाने अपने शत्रुके सैन्यको उसपर चढाई करनेको आया जान कर, तलाव आदि जलाशय तथा पुष्प, फल आदि सब वस्तुओंमें विष मिला दिया। यह सूचना जब शत्रु राजा को मिली तो उसने अपनी सर्व सेना को उस राज्य की किसी भी वस्तु को उपयोग करने की मना कर दिया तो भी जिसने स्वेच्छासे अपने राजाकी आज्ञाका उल्लंघन किया, व विष प्रयोगसे मृत्यु को प्राप्त हुए, और जिन्होंने उसकी आज्ञाका पालन किया वे सुखी हुए।

ऊपर के दृष्टान्तका उपनय इस प्रकार है कि, विष समान वे विषय है और उसके निवारण करने वाले राजा सदृश गुरु हैं। उसके सैनिक भव्य प्राणि हैं। जो गुरु आज्ञासे विषयसे विमुख रहे व तर गये और जिन्होंने गुरु वाक्यका अनादर किया वे दुःखी हुए।

प्रतिक्रमणका पांचवा पर्याय नाम निवृत्ति है। उसके प्रशस्त और अप्रशस्त दो भेद है। समिति और गुप्ति आदिसे निवृत्ति अप्रशस्त और प्रमाद आदिसे निवृत्ति प्रशस्त है। इसका दृष्टान्त इस प्रकार है कि –

किसी नगरके राजाकी पुत्री और चित्रकारकी पुत्री दोनों एक दूसरीकी सखियें थीं। इन दोनोंने ऐसा पण किया कि हम दोनो एक ही पतिको वरेगी। एक बार किसी पुरुष को मधुर गायन करते देख, उस पर मोहित हो, वे दोनो सखियें उसके साथ चलने लगी। मार्गमें जाते हुए दोनो पुत्रीने एक गाथा सुनी जिसका भावार्थ यह था कि, "हे

आम्रवृक्ष ! यह करेणका वृक्ष आज चाहे प्रफुल्लित हो जाये परन्तु तुमको इस अधिक मासमें फलना शोभा नही देता क्योंकि नीच पुरुषका आडम्बर करना तो स्वाभाविक ही है, परन्तु उत्तम पुरुषोंको अकालमे ऐसा करना अयोग्य है ।" यह सुन राजपुत्रीने विचार किया कि इस गाथामे वसन्तने आम्रवृक्षको उपालभ दिया है कि करेण वृक्षतो अधम तुच्छ है अत उसका प्रफुल्लित होना तो स्वाभाविक ही है, परन्तु हे आम्रवृक्ष ! तुझे तो इस अधिक मासमें प्रफुल्लित होना शोभा नहीं देता क्या कि तुमतो उत्तम वृक्ष है । क्या तुझे अधिक मासकी सूचना नहीं मिली ? इससे मुझे समझना चाहिये कि यह चित्रकाराकी पुत्री तो इस प्रकार किसी भी अनजान पुरुषके साथ जा सकती है, परन्तु मुझे राजपुत्रीको तो ऐसा करना नितान्त अनुचित है ।" ऐसा विचार कर "मैं मेरे आभूषणोका डिब्बा भूल आई हूँ, सो वापस जा कर ले आऊ" ऐसा कह वह वापस लौट गई और उसके पिताकी कृपासे किसी राजपुत्रके साथ विवाह कर सुखी बनी और वह चित्रकारकी पुत्री धूर्त गायकको वरके अत्यन्त दु खी हुई।

इसका उपनय इस प्रकार है कि कन्याओंके स्थानमे मुनिगण है और धूर्तगायक विषय है । गाथा सुनाने वाले उपाध्यायजी है जिसे सुन उपदेशका तत्व जान असयमसे निवृत्त होनेवाले मुनि राजपुत्री सदृश सुगतिके भाजन होते हैं और दूसरे उससे विपरीत चलने वाले दुर्गतिके भाजन होते हैं ।

प्रतिक्रमणका छट्ठा पर्याय नाम निन्दा है अर्थात् आत्मा

की साक्षीसे आत्माकी निन्दा करना। इसके प्रशस्त और अप्रशस्त दो भेद हैं। अस यमादिक की निन्दा प्रशस्त है। और स म्मादिककी निन्दा अप्रशस्त है। इस पर दृष्टान्त है कि —

कोइ राजा उसका सभास्थान चित्ररहित होनेसे उसे चित्रित करानेके लिये कई चित्रकारोंको बुला कर उनको सभास्थानकी दिवाल चित्रित करनेको बराबर बाट दी। उन चित्रकारोंमें एक वृद्ध चित्रकार था, जिसकी पुत्री उसके लिये सदा सदैव भोजन लाया करती थी। एक बार जब वह मार्गमें आ रही थी तो उसे राजा एक मस्त तूफानी घोडे पर सवार हो, राजमार्गमें जाता हुआ मिला, इससे भयभीत हो बडी कठिनतासे अपने पिताके पास पहुची। उसको आते देख उसका पिता देहचिंताके लिये गया, कि उसी समय राजा वहाँ चित्र देखने आ गया। उस चित्रमें मयूरपीछीका चित्र किया गया था, जिसे भ्रांतिसे सत्य जान वह उसे लेने गया तो उसका नख टूट गया, उसे देख चित्रकारकी पुत्रीने कहा कि, "मूर्खरूप मांचे–पलंगका चौथा पाया अब मिला है।" यह सुन राजाने उससे पूछा कि, "यह क्या ?" चित्रकार की पुत्रीने उत्तर दिया कि, प्रथम पाया तो चौटमें मस्त तूफानी घोडेको दौडाने वाला था, दूसरा पाया मेरा पिता है कि जो भोजन देख देह–चिन्ताको गया, तीसरा पाया इस मयूरपीछीको भ्रमसे पकडने वाले तुम, और चौथा पाया इस ग्रामका राजा कि जिसने युवान, वृद्ध और बालक सर्व चित्रकारोंको दिवालके बराबर भाग बाट दिये हैं।" यह सुन

राजा उसकी विशिष्ट बुद्धि देख अत्यन्त हर्षित हुआ और उसके साथ पिताकी अनुमतिसे विवाह कर लिया।

एक बार राजा जब उसके वासगृहमें रात्रिको सोता था, तो उसकी आज्ञासे दासीने राणीको कोई वार्ता सुनानेको कहा। राजाके कुछ निद्रित होने पर राणीने इस प्रकार वार्ता आरंभ की कि —

किसी एक गृहस्थको एक पुत्री थी, जिसे वरनेके लिये उसके माता पिता और भाई द्वारा आमंत्रित किये हुए भिन्न भिन्न स्थानसे तीन वर एक साथ आये। दैवयोगसे वह पुत्री रात्रिको सर्पदंशसे मर गई। इस पर उन तीन वरोंमें से एक तो उसके साथ ही जल गया, दूसरा वर उसके लिये सदैव उपवास कर, श्मशानमें ही बैठा रहा, और तीसरेने किसी देवका आराधना कर सजीवीनी विद्या प्राप्त कर उसे वापस सजीव किया। यह कह रानीने पूछा की, "हे दासी! बतलाईये कि वो कन्या अब किसको देनी चाहिये?" दासीने उत्तर दिया कि, "आप ही बतलाईये।" राणीने कहा कि आज तो मुझे निन्द्रा आ रही है, इससे मैं अब सोना चाहती हूँ, शेष रही हुई वार्ता कल कहूँगी।" उस समय राजा जग रहा था इससे वो भी उसकी वार्तामें आसक्त हो गया और उसने दूसरे दिन भी वार्ता सूनने उसी राणीके साथ महल आया, कपट निद्रा कर पलंग पर सोया, योग्य अवसर पर जब दासीने कलका उत्तर पूछा तो राणीने कहा कि, "जो उस कन्याके साथ जलके मरा था वो वापस उसीके साथ जीवित हुआ था

इससे वो तो उसका भाई हुआ, और जिसने उसको जीवित किया वो उसका पिता हुआ और उपवास कर यहां बैठा रहा वो ही उसके पति होने योग्य है।"

दासीने जब दूसरी वार्ता कहनेको कहा तो राणी बोली कि, "एक हाथ प्रमाणक प्रासादमें चार हाथके देव रहते हैं," दासीने पूछा कि, 'ऐसा कैसे संभव हो सकता है" राणीने उत्तर दिया कि 'यह कल बतलाऊँगी।" यह जाननेके कौतुकसे राजाने उसे तीसरे दिन भी आनेका अवसर पाया। रातको राणीने उत्तर दिया कि, 'एक हाथके देवालयमें जो चार हाथवाले देव रहते हैं, वे चतुर्भुज देव हैं, चार हाथ ऊँचे नहीं।"

इस प्रकार नई नई वार्ता कह, उस चतुर राणीने छ महिने तक बराबर राजाको उसके वासगृहमें सुनाया इससे ईर्षावश उसकी सपत्नीये उसके दोष ढूंढने लगी। नई राणी सदैव संध्या समय अपने महलमें प्रवेश कर उसकी पूर्वावस्थामें उसके पिता द्वारा दिये गये वस्त्र स्वयं पहनती और राज्यके आभूषण सामने रख, अपनी आत्माको निंदा करती कि, "हे जीव! यह तेरी मूल सम्पत्ति है, तू एक कारीगरकी पुत्री है, तुझे राजाने स्वीकार किया है, इसका तू लेशमात्र भी गर्व न कर।" इस प्रकार उसे करते देख उसकी सपत्नीयोंने राजासे कहा कि, "तुम्हारी नई रानी सदैव कुछ कामण-टूमन (जादू-टोना) करती है।" राजाने गुप्तरूपसे यह सब देखा और सुना इसमें वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसे अपनी मुख्य पट्टरानी बनायी।

इस वार्ताका भावार्थ यह है कि मुनिको आत्मनिंदा करनी चाहिये । सागरचन्द्राचार्य आदि सदृश कभी गर्व नही करना चाहिये । इस प्रकार गर्व करनेवाले सागरचन्द्र मुनिको कालिकाचार्यने बड परिश्रमसे प्रतिबोधित किया था ।

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ पचपचाशदधिकशततमः प्रबंधः ॥ १५५ ॥

व्याख्यान १५६

प्रतिक्रमणके पर्याय

प्रतिक्रमणका सातवा पर्याय नाम गर्हा है, दुसरेकी साक्षीमे अपनी निन्दा करनी वो गर्हा कहलाती है, इसके भी पूर्ववत् प्रशस्त और अप्रशस्त दो भेद हैं । इनमेसे द्रव्य गर्हा पर एक दृष्टान्त है कि —

पुराने समयमें किसी वृद्ध उपाध्यायकी एक तरूण स्त्री थी जो नर्मदा नदीके सामनेके तट पर रहने वाले किसी ग्वाला पर आसक्त थी और सदैव रात्रिको एक घोडे द्वारा नर्मदा नदीको पार कर, उस ग्वाले पास जाया करती थी । वो कुलटा इतनी मायावी थी, कि दिनमे उसके वृद्ध पतिको कहा करती थी कि, मैं तो कौएके शब्दसे भी डरती हूँ । अत वो वृद्ध उपाध्याय जब दिनमे वो स्त्री कौएको बलि देती, तो उसकी रक्षाके लिये अपने छात्रों (विद्यार्थियो) को

उसके पास भेजा करता था। जब कभी पाठकजी उसे किसी पुरुषको बुलानेको कहते तो वह उत्तर देता कि, "मैं तो अन्य पुरुषसे बोलना तक नहीं जानती।" इस पर पाठकजी स्वय उस पुरुषको बुलाते। उस स्त्रीकी ऐसी चेष्टा देख, किसी चतुर विद्यार्थीने विचार किया कि सरलताका लक्षण इतना अधिक नहीं होता, अत यह स्त्री अवश्य ही ढोंग करती है। कहा भी है कि —

अत्याचारमनाचारमत्यार्जवमनार्जवम् ।
अतिशौचमशौच च, षड्विध कूटलक्षणम् ॥ १ ॥

"जहा अति-आचार बतलाया है, वहा अनाचार होता है, जहा अति सरलता बतलाई जाती है, वहा सरलताका नाम तक नहीं होता, और जहा अतिपवित्रता बतलाई जाती है, वहा पवित्रता नहीं होती। अत अति-आचार, अनाचार, अति सरलता, असरलता, अति पवित्रता, और अपवित्रता ये छे कूट-झूठे लक्षण हैं।" ऐसा विचार कर वह विद्यार्थी उसकी दिनचर्या देखने लगा। एक बार उस स्त्रीने रात्रिमे नर्मदा नदीको पार किया, तो दूसरे-कठिन किनारे पर उतरनेसे चोरोंको मगरने पकडा। उसे देख उस स्त्रीने कहा कि, "अरे पुरुषों! तुम इस विकट घाट पर क्यों उतरे? अब भी मगरकी आखें बन्द कर दो, कि वो शीघ्र तुम्हें छोड देगा।" उसके ये शब्द सुन उस छात्रने विचार किया कि, "अहो! इस स्त्रीकी कैसी हिम्मत है!"

इस सब चेष्टाको प्रत्यक्ष देख, वह विद्यार्थी अपने घर लौट आया। दूसरे दिन जब कौएको बली देते वह स्त्री भयभीत होनेका बहाना करने लगी तो वह विद्यार्थी बोला कि –

दिवा बिभेति काकेभ्यो, रात्रौ तरति नर्मदाम् ।
कुतीर्थान्यपि जानाति, जलजन्त्वक्षिरोधनम् ॥ १ ॥

" दिनमें तो कौएसे भी डरती है लेकिन रात्रिमें नर्मदा जैसी विशाल नदीको भी पार कर जाती है। अच्छे और बुरे किनारे-घाटको भी जानती है, और जल-जन्तुओंकी आँखे बन्द करनेका उपाय भी जानती है।"

ऐसा सुन वह स्त्री बोली कि-" क्या करे, यहां तो तेरे सदृश युवान् पुरुष मेरी अभिलाषा पूर्ण नहीं करते इससे वहां जाना पडता है ।" विद्यार्थीने उत्तर दिया कि, "मैं क्या करूं ? मुझे तेरे पतिका भय है ।" इसपर वह स्त्री उसके पाठक पतिको मार उसे एक पेटीमें बन्द कर वनमें डालनेके लीए गई। वहां किसी व्यतरीने उस पेटीको उसके मस्तकके साथ ही स्तंभित कर दी, इससे वह उसी वनमें भटकने लगी और उपरसे मांस उस पर गिरने लगा। उस असह्य पीडासे पीडित और क्षुधातुर हो वह घर घर जा आत्मनिन्दा कर कहने लगी कि, "पति-घातक इस नीच स्त्री को भिक्षा दो" इस प्रकार उसने बहुतसा समय निर्गमन किया। एक बार किसी साध्वीके पैरमें नमन करते समय उसके शिरपरसे पेटी गिर पडी इसलिये उसने तत्काल चारित्र ग्रहण किया।

इस दृष्टान्तसे सयम ईश्वर उत्तम प्राणियाको निरन्तर दुष्प्रयसे गर्हा करना चाहिये ।

इत्यब्दिनपरिमितोपदेशप्रासाद्यायामुपदेशप्रासादवृत्ती पट्पचाशदधिकशततम प्रबध ॥ १५६ ॥

व्याख्यान १५७

प्रतिक्रमणक पर्याय

प्रतिक्रमणका आठवाँ पर्याय नाम शोधि-शुद्धि अर्थात् निर्मल करना है । इसके भी प्रशस्त और अप्रशस्त दो भेद हैं । ज्ञानादिककी शुद्धि प्रशस्त और अशस्त अथवा क्रोधादिककी स्वच्छता अप्रशस्त है । इसमे भी क्रोधादिक रूप मलको दूर कर आत्माको निर्मल करना प्रशस्त शुद्धि है । शुद्धि पर वस्त्र और वस्त्रे दो दृष्टान्त हैं जो इस प्रकार हैं कि —

एक बार श्रेणिक राजाने किसी धोबीको अपने दो वस्त्र धोनेको दिये कौमुदी महोत्सव आजानेसे उन वस्त्रोको उस धोबीन उसकी दो स्त्रियाको पहिनाया, महोत्सवमें श्रेणिक राजाने अपने उन वस्त्रको पहिचान उन पर निशान बनानेको ताम्बूल डाल दिया । धोबीने क्षार आदिसे उन चिह्नाको दूर कर प्रात काल धोबीने वस्त्र राजाको अर्पण किये । राजाने धोबीसे पूछा कि, "इन वस्त्रा की शुद्धिके लिये जो कुछ उपाय तूने किया हो वो यथार्थ बतला " धोबीने सब बात

यथार्थ रूपसे बतला दी । इससे राजा उसकी सन्यना पर अत्यन्त प्रसन्न हो, उसका यथायोग्य सत्कार किया । यह द्रव्य शुद्धि है ।

इसी प्रकार साधु और श्रावकको जो अतिचार लगे हो उनकी उपर श्री उपासकदशांग सूत्रमे कथित सुरदेव तथा चुल्लशतक श्रावक सदृश तत्काल शुद्धि कर लेनी चाहिये ।

सुरदेव श्रावककी कथा इस प्रकार है कि, वाराणसी नगरनिवासी सुरदव श्रावक जब एक वार अपनी पौषध शालामे पोसह लेकर बैठा हुआ था, तो किसी देवने आकर उससे कहा कि, "यदि तू जैनधर्मका त्याग नही करेगा तो मै तेरे शरीरम एक साथ सोलह महारोग उत्पन्न करुगा । देवताके ऐसे भयकारी वचनसे वह अपनी प्रतिज्ञासे चलित हो गया किन्तु बादमें श्री वीरप्रभुके पास जा आलोचना कर, प्रतिक्रमण कर वह निर्मल हो, सौधर्म देवलोकम गया जिहा चार पल्योपमका आयुष्य पूर्ण कर वह महाविदेह क्षेत्रम सिद्धि पदको प्राप्त करेगा । यह भावशुद्धि है ।

शुद्धि पर हि दूसरा दृष्टान्त निम्नस्थ है कि –किसी राजाने उस पर शत्रु सैन्यके चढ आनेसे जलका विनाश निमित्त किसी वैद्यसे विष मागा । वैद्य जब जवके दाने जितना विष लेकर उसके पास गया तो वो अत्यन्त क्रोधित हुआ, इस पर वैद्यने कहा कि, "हे महाराज । क्रोध न कीजिये यह सहस्रघाती विष है ।" इस पर उसकी परीक्षा

करनेके लिये जब एक मृत हाथीका रोम उखाड उसे उसमें रखा तो उस हाथीका समस्त शरीर विषमय हो गया । तब वैद्यने कहा कि जो इस हाथीका भक्षण करेगा अथवा इसे स्पर्श करेगा वो भी सब विषमय हो जायगा । राजाने पूछा कि, ' क्या इस विषके उतारनेकी कोई औषधि भी है ? " वैद्यने उत्तर दिया कि, " अवश्य है । " तत्पश्चात् उस औषधि का एक जब मात्र भाग रखनेसे वह हाथी वापस निर्विष हो गया । इस प्रकार वधके सदृश साधुको भी आलोचना रूप विषको उतार शुद्धि करना चाहिये ।

ये प्रतिक्रमणके आठ पर्याय श्री हरिभद्रसूरिजीकृत श्री आवश्यक सूत्रकी टीकाके आधार परसे लिखे गये हैं, इसलिये इनको यथार्थरूपसे जान कर क्रिया करना उचित है ।

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ सप्तपञ्चाशदुत्तरशततम प्रबंध ॥ १५७ ॥

व्याख्यान १५८

ईर्यावही पडिक्कम कर पौषध करना चाहिये

प्रतिक्रमणश्रुतस्कंधमिर्यापथिकं तथा ।
प्रतिक्रम्य क्रियाः सर्वा, विधेया पौषधादिका ॥१॥

भावार्थ —" प्रतिक्रमण-श्रुतस्कंध अर्थात् ईर्यापथिक पडिक्कम कर पौषध आदि सर्व क्रियाये करनी चाहिये । "

विस्तारार्थ —ईर्यापथिकका दूसरा नाम ही प्रतिक्रमण श्रुतस्कंध है, इसलिये उसे पडिक्कम कर ही सर्व क्रियाये करनी चाहिये। इसके विषयमें श्री विवाहचूलिकामें कहा है कि, "वस्त्र तथा आभूषण आदिका त्याग कर ईर्यावही पडिक्कम द्वारा मुहपत्ति पडिलेह बादमे चार प्रकारका पौषध करे।"

श्री आवश्यकचूर्णिम भी कहा गया है कि, "वहा ढड्ढर श्रावक देहचिन्ता कर उपाश्रय आता है, आकर दूरसे ही निसिहि कह, गृह-व्यापारका त्रिविध रूपसे निषेध कर ऊँच स्वरसे ईर्यापथिकी पडिक्कमता है।" तथा श्री भगवती सूत्रमें भी पुक्खलिक श्रावकके अधिकारमें कहा गया है। इस लिये पोसह लेते समय प्रथम ईर्यावही पडिक्कमना करनी चाहिये।

ईरियावहीमें पाचसो तरेसठ प्रकारके जीवोंको मिथ्या दुष्कृत दिये जाते है। उन जीवोंकी सख्या इस प्रकार है– सात प्रकारके नारकीके पर्याप्त और अपर्याप्तके दो दो भेद गिननेसे चौदह प्रकार होते हैं। पाच प्रकारके स्थावर जीवके पर्याप्त, अपर्याप्त, सूक्ष्म और बादर इस प्रकार चार भेद गिननेसे वीस प्रकार होते है। प्रत्येक वनस्पतिकायके पर्याप्त और अपर्याप्त दो भेद होते हैं। विकलेन्द्रिय अर्थात् बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौरेन्द्रिय जीवके पर्याप्त और अपर्याप्त दो दो भेद होनेसे छ भेद होते हैं। जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प–इन पाच प्रकारके तिर्यच पचेन्द्रियके सन्नी असन्नी तथा पर्याप्त और अपर्याप्त इस प्रकार

चार भेद होनेसे बीस भेद होते हैं। स्थावरसे लगा कर तिर्यंचके सब मिलाकर अडतालीस भेद होते हैं। पदरह कर्म भूमिके और तीस अकर्मभूमिके और छप्पन अंतरद्वीपके इस प्रकार सब मिलाकर एकसो एक भेद मनुष्यके होते हैं। इनमें भी गर्भजके पर्याप्त और अपर्याप्त दो भेद होनेसे दोसो दो भेद होते हैं। उनमें १०१ क्षेत्रके समूर्छिम अपर्याप्तके¹ एकसो एक भेद मिलानेसे मनुष्यके तीनसो तीन भेद होते हैं। भुवनपतिके दस, व्यन्तर और वाणव्यन्तरके सोलह, चर और स्थिर भेदसे ज्योतिषीके दस, वैमानिकके बारह, ग्रैवेयकके नौ, अनुत्तरके पांच, लोकान्तिकके नव, किल्बिषीकके तीन, भरतके पांच और ऐरावतके पांच, मिलकर दस, वैताढय पर रहने वाले तिर्यक्जृंभकके दस और परमाधामिके पन्द्रह, इस प्रकार सब मिलाकर देवताओंके नव्वाणु भेद हैं, इनके पर्याप्त और अपर्याप्त इस प्रकार दो दो भेद गिननेसे एकसो अट्टाणु भेद होते हैं। चारों गतिके एक साथ गिनने पर सब मिलाकर पांचसो तरेसठ भेद होते हैं। (१४+४८+३०३ +१९८=५६३)

५६३ जीव भेदको अभिहया आदि दस पद द्वारा गुणा करने पर ५६३०, उनको रागद्वेष द्वारा गुणा करने पर ११२६०, उनको योग द्वारा गुणा करने पर ३३७८०, उनको तीन करण द्वारा गुणा करने पर १०१३४०, उनको तीन

¹ १ समूर्छिम मनुष्य पर्याप्ति अपर्याप्तपनमें ही मर जाते हैं इसलिये उनका एक भेद ही होता है।

कालके आश्रयसे गुणा करने पर ३०४०२० भेद होते हैं। उनको अरिहंत, सिद्ध, साधु, देव, गुरु और आत्माकी साक्षी से गुणा करने पर अठारह लाख, चौवीश हजार, एकसोवीश होते हैं। इनके विषयमें कहा है कि,

"अठारसयलक्खा, चउवीसमसहस्समयवीसमहिआ,
इरिआमिच्छादुक्कड-पमाणमेव सुए भणिय ॥ १ ॥"

' अठारह लाख, चोवीश हजार, एकसो वीस, इतना ईर्यावहीके मिच्छामिदुक्कडका प्रमाण सूत्रमें कहा है ।

ईर्यापथिकी पडिक्कमते समय तीन बार पग रखनेकी भूमिको प्रमार्जित कर सम्यक् प्रकारसे मन द्वारा अतिमुक्त मुनि सदृश ईर्यावही पडिक्कमना चाहिये। अतिमुक्त मुनिकी कथा इस प्रकार है कि—

पोलासपुर नगरमें विजय राजा और श्रीदेवी राणीको अतिमुक्त नामक पुत्र था। वह जब छ वर्षका हुआ तो एक बार श्री गौतमस्वामीजीको छट्ठके पारणे गोचरी जाते देख उनसे पूछा कि, "तुम कौन हो ? और क्यों फिरते हो ?" गौतम गणधरने उत्तर दिया कि, "हे वत्स! हम साधु हैं और भिक्षाके लिये फिरते हैं।" अतिमुक्तने कहा कि, 'हे भगवन्! चलिये मैं आपको भिक्षा दिलाता हूँ।" ऐसा कह भगवतकी अंगुली पकड राजकुमार उनको अपने घर ले गया। मुनिको आया देख श्रीदेवी राणी अत्यन्त प्रसन्न हुई और उन्हें गोचरी वहोराई-भिक्षा दी। बालक होनेपर भी बुद्धिमें अबाल

उस कुमारने गौतमस्वामीजीसे फिर प्रश्न किया कि, "हे भगवन्! आप कहां रहते हैं?" गणधरप्रभुने उत्तर दिया कि, "हे भद्र! हम हमारे गुरु श्रीवीरपरमात्माके पास रहते हैं।" कुमारने पूछा कि, 'क्या तुम्हारे भी कोई दूसरे गुरु है? चलो, मैं भी तुम्हारे साथ साथ उनके पास चलता हूँ।" गणधरने उत्तर दिया, "—यथा सुख देवानुप्रिय! (हे देवानुप्रिय! तुम्हें जैसे सुख मिले वैसा करो)" तत्पश्चात् वह अतिमुक्तकुमार भगवतके पास गया। भगवतको नमस्कार कर, धर्म सुन वापस घर आ मातापिताको कहने लगा कि, "हे मातापिता! मुझे इस संसारसे निर्वेद-वैराग्य प्राप्त हुआ है इसलिये मुझे दीक्षा लेनेकी आज्ञा प्रदान कीजिये।" मातापिताने उत्तर दिया, "हे वत्स! तू अभी अजान बालक है, दीक्षा क्या और कैसी होती है इसके विषयमें तू क्या जानता है?" कुमारने उत्तर दिया कि, 'हे मातापिता! जो मैं जानता हूँ उसे नहीं जानता, जो नहीं जानता उसे जानता हूँ!" मातापिताने पूछा कि, "वो किस प्रकार?" कुमारने उत्तर दिया कि, "जो मैं जानता हूँ, वह यह है कि जो प्राणी जन्मा है वो एक बार आयु पूर्ण होने पर अवश्य मरेगा। परन्तु मैं नहीं जानता कि, वो कहां कब और किस प्रकार मरेगा?" इसी प्रकार मै नहीं जानता कि, "किस कर्मोंके फल स्वरुप जीव नरकादिमें उत्पन्न होता है?" परन्तु मैं जानता हूँ कि, "जीव अपने कृत कर्मोंके फल स्वरुप ही भिन्न भिन्न गतिको प्राप्त करता है।" इस प्रकार अनेक युक्तियासे

कुमारने उसके मातापिताको समझा कर, मातपिताके किये हुए महोत्सव द्वारा उसने श्रीवीरप्रभुके पास दीक्षा ग्रहण की। प्रभुने उसे शिक्षा देने को स्थविरोंको सौंप दिया।

एक बार अतिमुक्त मुनि स्थविरोंके साथ स्थंडिलको–जंगल गये। मार्गमें प्रथम मेघवृष्टि होनेसे कितने बालक खड्डेमें भरे जल पर खाखरेके पत्तोंकी नाव बना कर तैरा रहे थे और परस्पर यह कह रहे थे कि, 'मेरी नाव कैसी तैर रही है!' उन्हें देख अतिमुक्त मुनिने भी अपने छोटसे पात्रको पानीमें छोड उसे तैराते हुए ऐसा कहने लगे कि, 'देखो, यह मेरी नाव भी तैर रही है।" उतनेमें स्थविर मुनि वहाँ आ पहुँचे यह देख एक स्थविरने उन्हें ऐसा करनेसे रोका। फिर कई साधुओंने श्रीवीरप्रभुसे कहा कि, 'हे भगवन्! यह छ वर्षका बालक जीव रक्षा करना कैसे जान सकता है? अभी तक तो यह षट्काय जीवोंकी हिंसा करते है।" श्रीमहावीरप्रभुने उत्तर दिया कि, "हे मुनियों! तुम इस बालकका अपमान न करो, इसे समझाकर पढाओ, वह तुमसे भी पहिले केवली होगा। यह सुन उन सब मुनियोंने उस बालक साधुको समझाया और आदर किया।

पठन करते वो बालमुनि अल्पकालमें ही एकादशांगी पढ गये। एकबार मार्गमें पूर्ववत् बालकोंको नाव क्रीडा करते देख, अपनी पूर्वकृत क्रीडाकी निन्दा करते हुए वे समवसरणमें आये। वहां ईर्यापथिकी पडिकमते–उसके अर्थ की भावना करते, "दगमट्टी" इस पद द्वारा अपनी की हुई

सचित पानी और माटी मृत्तिकायी विराधनाका स्मरण कर गर्हा आत्मनि-।करने लगा । उस समय शुक्लध्यानके द्वारा तत्काल घातिकर्मोंका नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया । देवतागण जब उनका महोत्सव करने आये तो श्रीवीरप्रभुने कहा कि, "अहो स्थविरो ! देखो, यह नव वर्षका बालक केवली हो गया है ।" तत्पश्चात् सब उन्हें वन्दना करने लगे ।

श्रीअंतगडसूत्रमें और भगवतीजीमें जिस मुनिका वर्णन किया गया है वह यह ही मुनि है और अनुत्तरो पपाति सूत्रमे जो अतिमुक्त मुनि बतलाये गये हैं व यादव चरित्रमें जिसका वर्णन किया गया है वे अतिमुक्त होंगे ऐसा माना जाता है ।

"अतिमुक्त मुनिने छ वर्षकी वयमें श्रीमहावीरप्रभुसे पास दीक्षा ग्रहण की और नौ वर्षकी वयमें ही इर्यापथिकी का अर्थ विचारते हुए केवलज्ञान प्राप्त कर सिद्धिसुखका भोक्ता हुआ ।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ अष्टपञ्चाशदधिकशततमः प्रबंधः ॥ १५८ ॥

व्याख्यान १५९

पौषधव्रतके अतिचार

उत्सर्गादानसंस्तारा अनवेक्ष्याप्रमृज्य च ।
अनादरः स्मृत्यनुपस्थापनं चेति पौषधे ॥ १ ॥

भावार्थ —"१ त्याग करने, २ लेने, ३ संथारा करनेमें बराबर नहीं देखना और प्रमार्जन नहीं करना, ४ क्रियामें आदर नहीं रखना, और ५ क्रियाके समयको नहीं संभालना, ये पौषधव्रतके पांच अतिचार हैं।

विस्तारार्थ —उत्सर्ग अर्थात् लघुनीति-बडीनीति आदि करते समय ध्यान न रखे अर्थात् जीवजन्तुओंसे परीपूरित भूमिको न देखे, न उसे रजोहरण आदिसे प्रमार्जित करे, अथवा विशुद्धिके लिये प्रतिलेखना न करे। उस समय उस कार्यमें प्रतिलेखना प्रमार्जना न करनेसे जो अतिचार लगे वह प्रथम अतिचार कहलाता है।

आदान अर्थात् लेना-उपलक्षणसे रखना अर्थात् दण्ड, पाट, पाटला आदिके उठाते व रखते समय बराबर देखना व पुंजना चाहिये। ऐसा न करने पर जो अतिचार लगता है वह दूसरा अतिचार कहलाता है।

पौषधव्रत धारण करने वालेको रात्रिमें डाभ, घास, कम्बल या ऊनी वस्त्र आदिसे संथारा करना चाहिये। उसके करनेमें यदि न देखे या न पूंजे तो उससे जो अतिचार लगता है वह तिसरा अतिचार कहलाता है।

पौषधव्रत लेनेमें अनादर करे और उस व्रत सम्बन्धी क्रियाको योग्य अवसर पर न करे तो उससे जो अतिचार लगता है वह अनुक्रमसे चौथा और पांचवा अतिचार कह-लाता है।

अन्य ग्रन्थोंमें पांचवा अतिचार भिन्न भिन्न प्रकारसे बतलाया गया है वह इस प्रकार है कि–पौषधव्रतमें विधि विपरीत वर्तना–अर्थात् पौषधव्रत लेकर उसका बराबर पालन नहीं करना अर्थात् आहार पौषध करने पर क्षुधा–तृषादिकी पीड़ासे ऐसा विचार करना कि, "इस पौषहके समाप्त होते ही मैं मेरे लिये अमुक अमुक आहारादि करा कर खाउंगा।" इस प्रकारके विचारसे जो अतिचार लगे उसे पांचवा अतिचार कहते हैं।"

सातिचार पौषधव्रत पर नन्द मणियार श्रेष्ठीकी कथा यहां श्री ज्ञातासूत्रके तेरवे अध्ययनसे उद्धृत कर किंचित् मात्र बतलाई जाती है कि —

नन्द मणियारकी कथा

राजगृही नगरीमें श्री महावीर प्रभुके समवसरणमें प्रथम देवलोकका निवासी दर्दुरांक नामक देव सूर्याभदेव सदृश प्रभुकी भक्तिकर स्वर्ग सिधाया। उस समय श्री गौतमस्वामीजी ने प्रभुसे पूछा कि, "हे प्रभु! इस देवने किस पुण्यसे ऐसी समृद्धि प्राप्त की है?" प्रभुने कहा कि–'राजगृही नगरीमें नन्द मणियार नामक एक श्रेष्ठी था। जिसने हमारे पास श्रावक धर्म स्वीकार किया था। एक वार ग्रीष्म ऋतुमें उसने अट्ठम तपयुक्त पौषध व्रत ग्रहण किया। इस विषयमें सूत्रमें कहा है कि, "अट्ठमभत्तं परिगिण्हति पोसहशालाए जाव" इत्यादि अर्थात "नन्द मणियार श्रेष्ठीने अट्ठम तपका

पच्चक्खाण ग्रहण कर पौषधशालामें पोषह किया था" इत्यादि जल रहित किये हुए इन तीन उपवासोंमें उस श्रेष्ठीको तृषा लगी तृषासे पिडीत होकर उसने विचार किया कि, "अपने द्रव्यसे कुए तथा वावडियें बनाने वालेको धन्य है।" पोषह पार कर उस श्रेष्ठीने श्रेणिक राजाकी आज्ञा ले नगरके बाहर नन्दवापिका नामक चार मुँहवाली एक सुंदर वापिका बनवाई, उसके चारों दिशाओंमे चार उपवन बनवाये। अनेक लोग उसके सौंदर्य की प्रशंसा करने लगे। उसे सुन उस श्रेष्ठीको अत्यन्त हर्ष हुआ। कितनेक दिन बाद भावसे मिथ्यात्वरूप रोगने और द्रव्यसे सोलह प्रकारके रोगोंने उस श्रेष्ठीको आ घेरा। अनेक वैद्योंने व्याधिके प्रतिकारके उपचार किये किन्तु वे सब निष्फल रहे और अन्तमे वह नन्द श्रेष्ठी मर कर उसी नन्दवापिकामें ही गर्भज मेंढक हुआ। उसमें क्रीडा करते उस मेंढकको कई लोगोंके मुखसे उस वापिकाका वर्णन सुन जातिस्मरण ज्ञान हो आया। इससे वह मनमे आत्मनिन्दा करने लगा–" अरे ! मुझे धिक्कार है। मैंने लिये हुए सर्व व्रतोंकी विरोधना की है। अब उन व्रतोंको फिरसे इस भवमें स्वीकार करूं" ऐसा विचार कर उसने अपनी बुद्धिसे अभिग्रह लिया कि, आजसे यावज्जीव तक निरन्तर छट्ठ छट्ठकी तपस्या कर पारणा करूंगा और पाणी भी नन्दापुष्करणीमें नहानेसे कई पुरुषोंके पसीने आदिका मैल पडनेसे कलुषित होकर जो प्रासुक-निर्जीव हो जायगा उसे ही पीउंगा।' इस प्रकार करनेका निश्चय किया। और लोगोंके मुखसे श्रीमहावीर प्रभुका आगमन सुन स्वयं वन्दना करनेको चल पड़ा। मार्गमें श्रेणिक राजाके अश्वके दोनों पैर

निचे कुचल पायल होजाने पर शीघ्रतया एकान्तम जा नमुथ्थुण आदि स्तुति द्वारा धर्माचार्यको नमस्कार कर, मृत्यु प्राप्त कर सौधर्म देवलोक्में दर्दुराक नामक देव हुआ। वो देव ही यहा आया था। "हे गौतम! उसने पूर्वभवमे किये शुभ ध्याना दिक्से ऐसी सम्पत्ति प्राप्त की है। अब वो चार पल्योपम का आयुष्य पूण कर महाविदेह क्षेत्रमे मनुष्य जन्म ले। भव-कर्मका क्षय कर मोक्ष प्राप्त करेगा।"

पूर्वमें इस ग्रन्थम जो दर्दुराक देवका वृत्तान्त लिखा गया है, वह चरित्र ग्रन्थका अनुसरण कर लिखा गया था।

"नन्द मणियार श्रेष्ठी व्रतभङ्ग द्वारा मढक्का अवतार से, उसमे जातिस्मरणज्ञान प्राप्त कर, पूर्व पापकी आलोचना कर दर्दुराक नामक देव हुआ।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ एकोनषष्ठ्यधिकशततम प्रबन्ध ॥ १५९ ॥

व्याख्यान १६०

पौषधव्रत करने वालेकी स्तुति

धर्मपौषधमाराध्य, सम्यक् सागरचन्द्रमा ।
समाधिना विपन्नोऽभूत्, त्रिदिवे त्रिदिवोत्तम ॥१॥

भावार्थ —सागरचन्द्र सम्यक् प्रकारसे पौषधव्रतको आराधना कर समाधि पूर्वक मृत्यु प्राप्त कर स्वर्गमे उत्तम देव हुए।" सागरचन्द्रकी कथा इस तरह है —

सागरचन्द्रकी कथा

द्वारावतीमें बलदेवके पुत्र निषधको सागरचन्द्र नामक पुत्र था। उस नगरके राजा धनसेनकी पुत्री कमलामेलाका उग्रसेनके पुत्र नभसेनके साथ विवाह होना निश्चय हुआ था कि इसी समय नारद नभसेनके घर आ पहुँचे। नभसेनका चित्त विवाह कार्यमें व्यग्र था, इससे वो नारदका यथोचित सन्मान न कर सका। नारद क्रोधित हो सागरचन्द्रके समीप आ कर कहने लगे कि, "धनसेनकी पुत्री कमलामेला सदृश त्रिभुवनमें कोई कन्याका स्वरूप नहीं है।" यह सुन सागरचन्द्रने कहा कि,-"वो कन्या तो किसी दूसरेको दी चुकी है?" नारदने उत्तर दिया कि-"दी जा चुकी है, परन्तु अभी तक उसका विवाह होना बाकी है।" यह सुन उसी दिनसे सागरचन्द्र एक मात्र कमलामेलाके नामका ही रटन करने लगा। वहांसे चल कर नारदऋषि कमलामेलाके पास आये। कमलामेलाने पूछा कि "कोई आश्चर्य देखा हो तो बतलाइये।" नारदने कहा कि, 'मैने दो आश्चर्य देखा है, सागरचन्द्रमें स्वरूप और नभसेनमें कुरूप।" यह सुन कमलामेला सागरचन्द्र पर प्रेमवाली हो सदैव उसीका ध्यान करने लगी।

एक बार शाम्बकुमार सागरचन्द्रको चिन्ता मग्न देख उसके पीछेसे उसकी आंखे बन्द कर खड़ा हो गया। सागरचन्द्रने पूछा कि, "कौन? कमलामेला!" शाम्बकुमारने उत्तर दिया कि, "मैं तो कमलामेलक अर्थात् कमलाको

मिलानेवाला हूँ ।" स्वरसे सांबकुमारको पहचान कर सागर-चन्द्रने कहा कि, "हे भद्र ! यह सत्य है कमलपत्र सदृश दीर्घ लोचनवाली कमलामेलाको केवल तू ही मिला सकता है। इस कार्यमे तेरे अतिरिक्त दूसरा कोई समर्थ नहीं है।"

वचनबद्ध हो जानेसे सांबकुमार ऐसा करनेको प्रद्युम्नसे वचनके छलसे प्रज्ञप्तिविद्या प्राप्त कर जब कमलामेलाका लग्न दिन आया तो वह प्रज्ञप्तिविद्या द्वारा उसे कई यादवों सहित उद्यानमें ले गया और वहा सागरचन्द्रके साथ उसका पाणि ग्रहण कराया । कन्याके पिता और श्वसुरके पक्षवाले उसकी शोध करने लगी । शोध करने पर जब उन्होंने जाना कि, "उसे कोई विद्याधर हर कर ले गया है और वह उद्यानमे है ।" तो उन्होंने इसकी कृष्णसे पुकार की। कृष्ण क्रोधायमान हो सब सैन्य सहित उद्यानमे गया तो सांबकुमारने वैक्रियलब्धिसे अनेकरूप कर उसके साथ महान युद्ध किया और अन्तमें सांबकुमार मूलरूप धारण कर कृष्ण के चरणोंमे आकर नमस्कार किया । वो कन्या सागरचन्द्रको दी गई तबसे ही नभसेन सागरचन्द्रसे द्वेष रख उसके छिद्र ढूंढने लगा ।

तत्पश्चात् सागरचन्द्र श्रीनेमिनाथके पास श्रावकके व्रत अंगीकार कर वैराग्यवंत हुआ । एक बार पर्वके दिन जब वो पौषधव्रत ले कर स्मशानमें कायोत्सर्गध्यानमे खड़ा था कि दैवयोगसे नभसेन भी घूमता-फिरता वहा आ पहुँचा और उस पापीने सागरचन्द्रको देख तत्काल एक अंगारेकी ठीकरी

उसके शिर पर रख दी। उस उपसर्गमें सहन करनेसे सागर चन्द्रकी काया जल गई भावनारूप जलसे सचित हृदयमें दुष्कृत रूप अग्नि प्रवेश न कर सके अत धर्मरूप समुद्रके कल्लोल द्वारा वृद्धि पाते सागरचन्द्रने आठवे देवलोकमें देव सम्बन्धी सुखको प्राप्त किया।

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ षष्ठ्यधिकशततमः प्रबंधः ॥ १६० ॥

व्याख्यान १६१

पोषध व्रतका फल

निरोधः सर्वपापानां, मथनार्थेन पौषधः।
सद्यः फलत्यसौ शुद्ध्या, महाशतकश्रेष्ठिवत् ॥१॥

भावार्थ —" सर्व प्रकारके पापोंके मथन निमित्त पोषध व्रत अवश्य करना चाहिये। इस व्रत शुद्धिपूर्वक करनेसे महाशतक श्रेष्ठी सदृश तत्काल फलकी प्राप्ति होती है।"

विशेषार्थ —पोषध सब पापाश्रवके निरोध करनेका हेतुभूत है। इसके बराबर पालनसे ग्यारह व्रत उत्तम प्रकार से पाले-माने जाते है। यह पोषध यदि शुद्धि सहित, अर्थात् योगशुद्धि, क्रियाशुद्धि और ध्यानशुद्धि आदि युक्त किया जाये तो तत्काल फल देनेवाला है।

ध्यानशुद्धिका लक्षण इस प्रकार है कि —

नेत्रद्वंद्वे श्रवणयुगले नासिकाग्रे ललाटे ।
वक्त्रे नाभौ शिरसि हृदये तालुनि भ्रूयुगान्ते ॥
ध्यानस्थानान्यमलमतिभिः कीर्तितान्यत्रदेहे ।
तेष्वेकस्मिन् विगतविषय चित्तमालम्बनीयम् ॥ १ ॥

"दो नेत्रोंमें, दो कानोंमें, नासिकाके अग्रभागमें, ललाट पर मुंह पर, नाभी पर, मस्तक पर, हृदय पर, तालवे और दो भ्रूकुटियोंमें,—इन स्थानोंमें इस देहमें विद्वानोंने ध्यान करना बतलाया है। इनमें से किसी एकमें अपने चित्तको दूसरे सब विषयोंसे हटा कर लगा देना अर्थात चित्त द्वारा इनमें से किसी एक स्थानका आलंबन कर लेना चाहिये।"

इस प्रकार ध्यानके स्थानमें चित्तको स्थापन कर एकासन पर पौषध व्रत अंगीकार कर बैठ जाना चाहिये। पौषध व्रतके फलके विषयमें कहा है कि, "यदि कंचनमणिके पगथियाका, हजारों स्तंभ युक्त उन्नत और सुवर्णके तलियेका मन्दिर बनवाये तो भी तप संयमके सामने वह कुछ भी नहीं है।" एक मुहूर्तमात्र सामायिकमें "बाणवइकोडिओ" की गाथामें कथनानुसार फल प्राप्त होता है। वो गाथा पूर्वमें सामायिकके सम्बन्धमें बतलाई जा चुकी है। उससे तीस मुहूर्तके अहोरात्रके पौषध से तीस गुणा लाभ बाह्यवृत्तिसे होता है। यह इस प्रकार है—सतावीससो सत्योतर क्रोड़, सत्योतर लाख सत्योतर हजार सातसो और सत्योतर (२७७७७७७७७७) पल्योपमके देवगतिके आयुष्यका बंध एक पौषधसे होता है। सूक्ष्मतया देखनेसे याने भावके अनु-

सार इससे अधिक भी लाभ होता है । ऐसा पौषधव्रत, पौषध करनेवालेको महाशतक श्रेष्ठी सदृश तात्कालिक फल देता है । उसकी कथा इस प्रकार है कि —

महाशतक श्रेष्ठीकी कथा

राजगृह नगरीमें महाशतक नामक एक गृहस्थ रहता था । उसके तेरह स्त्रियें थीं, जिनमें रेवती नामक एक स्त्री बहुत हलके स्वभावकी थी । वह बारह गोकुलकी स्वामिनी थी। अन्य स्त्रियें एक एक गोकुलकी स्वामिनीयें थीं । रेवती बारह कोटी स्वर्णकी स्वामिनी थी, जब कि दूसरी केवल एक एक कोटी की स्वामिनी थी। महाशतक सेठ भी अनेक कोटी स्वर्ण और अनेक गोकुलका अधिपति था ।

एक बार महाशतक शेठने श्री महावीर प्रभुकी देशना सुन, प्रतिबोध प्राप्त कर बारह व्रत अङ्गीकार किये । और चौदह वर्ष श्रावक धर्मका वहन कर और अग्यारह प्रतिमाको वहन कर अवधि ज्ञानप्राप्त किया ।

रेवती सदैव अपनी सपत्नीयों पर द्वेष रखती थी, इसलिये अनुक्रमसे उसने अपनी सब शोक्योंको विष आदि प्रयोगसे मार, स्वय सर्वस्वकी मालिकीनी बन सदैव मद्य, मांस आदिका भक्षण करना वगेरे पापारंभ किया करती थी, एक बार अपने शरीरमें तीव्र कामोत्पत्ति करनेको उसने अपने सेवकसे किसी तुरन्त जन्में बालकको मगवा, उसकी हिंसा करा कर उसके मांसका संस्कार करा भक्षण किया तथा तदुपरान्त मद्य सेवन किया — इससे वह अतिशय काम पीडित हुई, और पौषधशालामें

जहा उमका स्वामी पौषधव्रत लेकर बैठा हुआ था, वहा केश पास छूटे कर, स्तन, साथल, उदर, जघा और दात आदि अगोको अधनम कर, निर्लज्ज हो कामशाह्नतुरपनसे आकर कहने लगी की, "हे स्वामि ! इस पौषधव्रतका त्याग करो, मेरे साथ काम क्रीडा करो, धमका फल भोगका सयोग और उसका अवियोग ही है ।" इस प्रकार अनुकूल उपसर्ग होन पर भी उस अचलमन वाले श्रेष्ठीने उत्तर दिया कि, "हे पापिणी ! धर्म व फलको अधमके साथ क्या मिलाती है ? यहासे दूर भग जा, अवधिज्ञानके प्रभावसे जान कर महा शतक रेवति प्रति बोला, तू आजसे सातवे ही दिन मर कर पहली नरकमें चोरासी हजार वर्षके आउख वाली नारकीमे उत्पन्न होगी।" यह सुन वह दुखित हो वहासे लौट गई और सातवे ही दिन मर पहली नारकीमे उत्पन्न हुई।

महाशतक श्रेष्ठी वीस वर्ष श्रावक-धर्म पाल अन्तम सलेखना कर मृत्यु प्राप्त कर सौधर्म देवलोकमे देवता हुआ। इस कथाको वर्द्धमान देशनामे विस्तारसे पढ सकते हैं।

"महाशतक श्रेष्ठीने पौषधादि व्रत द्वारा तीसरा ज्ञान प्राप्त कर इस जन्ममें ही उसका श्रेष्ठ फल प्राप्त किया और दूसरे जन्ममे प्रथम देवलोकको प्राप्त कर अनुक्रमसे केवल ज्ञान प्राप्त कर महाविदेह क्षेत्रमें मोक्ष सुखको प्राप्त करेगा।"

इत्यब्दिनपरिमितोपदेशसग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ एकपञ्चाशदधिकशततमः प्रबन्धः ॥ १६१ ॥

धर्ममें विशेष रूची थी। उस दम्पतीके सिद्ध और बुद्ध नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे।

एक बार श्राद्ध दिनको अम्बिका किसी मासक्षमणी साधुको भक्तिपूर्वक अत्यन्त आनन्दसे अन्न बहोराया। उसे दान देते देख उसकी कोई पड़ोसी उच्च स्वरसे चिल्लाने लगी कि,-"अरे! आज श्राद्ध दिनको अम्बिकाने सर्व प्रथम एक मलिन साधुको दान दे श्राद्धके अन्न तथा घर दोनोंको अपवित्र बना दिया है।" इस प्रकार वह कुलटा पड़ोसी बारबार बड़बड़ाने लगी। तभी तो शास्त्रोंमें कहा भी है कि, उत्तम पड़ोसमें निवास करो।" यत

स्वामिवञ्चकलुब्धाना-मृषिस्त्रीबालघातिनाम्।
इच्छन्नात्महितं धीमान्, प्रातिवेश्मकतां त्यजेत् ॥ १ ॥

अर्थ —स्वामीको ठगने वाले लुब्ध, और मुनि, स्त्री तथा बालककी हत्या करने वालेके पड़ोसमें आत्महितके अभिलाषी बुद्धिमान् पुरुषको कदापि नहीं रहना चाहिये।" जब अम्बिकाकी सासु जो कहीं कि बाहर गई हुईथी, थोडी देरमें वहांसे वापस घर लौटी तो उस पड़ोसीने उसे सारा हाल कह सुनाया। उसे सुन उसने क्रोधित हो उसके पुत्र सोमभट्टको बुलाकर उसके विषयमें बहुत कुछ भला-बुरा कहा। इस पर सोमभट्ट भी अम्बिका पर कुपित हो उसे कहने लगा कि,- "अरे पापिनी! तूने यह क्या कर दिया? अभी तक न तो कुलदेवताकी पूजा ही कीगई, न पितृओंको ही पिंड दिया-

गया, फिर तूने पहले ही एक मलिन साधुको दान क्या कर दे दिया ? जा, मेरे घरसे बाहर निकल जा।" अम्बिका अपने दोनो पुत्र सिद्ध और बुद्धको साथ ले घरके दूसरे दरवाजेसे बाहर निकल गई, और किसी जगह स्थान न मिलने से नगरके बाहर चलने लगी। मार्गमे जाते थक जानेसे दोनों पुत्रोको जब तृषा लगी, तब वे बारबार जल मागने लगे, परन्तु वहा जल कहा था ? कि उनकी तृषा शान्त की जाय। आगे बढने पर एक शुष्क सरोवर दिखाई पडा, जो अम्बिकाके शीलके-महात्म्यसे जल पूरीत हो गया तथा साथ ही साथ एक शुष्क आम्रवृक्ष भी फलीभूत हो गया। अम्बिकाने पुत्रो को जल पीलाया, हाथमे आम्रफल दिये और स्वय उस आम्रवृक्षकी शीतल छायामे विश्राम लेने बैठ गई।

इस ओर अम्बिकाकी सासुने ज्योंहि अपने घरमे पैर रखा तो क्या दखती है कि मुनिको दान देनेके लिये उठाये पात्र स्वर्णके, धान मोतीके दाणोके, और भोजन पर शिखा चढी हुई आदि दिखाई दी। उसे देख वह अत्यन्त हर्षित हो उसके पुत्रसे कहने लगी की, "हे वत्स! अम्बिका वधु सचमुच पतिव्रता है, तू उसके पीछेपीछे जा उसे और वापस ले आ।" सोमभट्ट भी उसका महात्म्य प्रत्यक्ष देख मनमें पश्चाताप करता हुआ उसकी खोजमे उसके पीछेपीछे चल पडा। दूरसे पतिको आता देख, अम्बिका पुत्र सहित भयभीत हो एक पासके कुएमें बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथका स्मरण कर, अपने दोनों पुत्र सहित कूद पडी। श्री नेमिप्रभुकी शरण कर

मृत्यु प्राप्त करनेसे वह कोहण्डविमानमें बडी समृद्धिवान् अम्बिका नामक देवी हुई। इस विषयमें पूर्वपूर्वजोंने कहा है कि, "उत्तम अध्यवसायसे प्राण त्याग कर अम्बिका देवी हुई।" दूसरे ऐसा भी कहते हैं कि, "गिरनार शिखरसे गिर कर मृत्यु प्राप्त कर सौधर्म देवलोकके नीचे जो चार योजन कोहण्ड नामक विमान है उसमें अम्बिका नामक महर्द्धिक देवी हुई। उस देवीके चार भुजा हैं, दक्षिण दो हाथोंमें आम्रकी लुम धारण किये हुए है व डाये दो हाथो मे दो पुत्र व अंकुश लिये हुए है।"

अम्बिकाका पति सोमभट्ट भी अपनी स्त्रीको कुएमें पडी देख लोकापवादके भयसे "जिसकी शरण मेरी स्त्रीने ली हो, मुझे भी उसकी शरण हो। ऐसा कह उसी कुएमें गिर पडा और मर कर उसी विमानमे अम्बिकाका वाहन रूप सिंह हुआ।

"जिस देवीके किये मुनि दानके प्रभावसे पीतलके पात्र स्वर्णके हो गये, स्वशरीर भी सुवर्णकी कान्तिवाला हो गया और परभवमे स्वयं देवी बनी उस श्री नेमिनाथ-प्रभुभक्त अम्बिका देवीको मैं भावपूर्वक नमन करता हूँ।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ द्विषष्ठ्यधिकशततमः प्रबंधः ॥ १६२ ॥

व्याख्यान १६३

चौथा शिक्षाव्रत-अतिथिसंविभाग

अतिथिभ्योऽशनावाम वास पात्रादिवस्तुन' ।
यत्प्रदान तदतिथिसंविभागव्रत भवेत् ॥१॥

भावार्थ —"अतिथिको अन्न, निवास, वस्त्र और पात्र आदि वस्तुओंका दान देना अतिथिसंविभाग व्रत कहलाता है।"

विस्तरार्थ —जिनमें सासारी तिथिपर्वोत्सव नहीं होते, तथा जिनको हीरा, माणिक, मोति, सुवर्ण, धन और धान्य आदिका लोभ नहीं होता व अतिथि कहलाते हैं। ऐसे अतिथि मुख्यतासे चारित्रधारी मुनि ही होते हैं और उनको अन्न वस्त्र, निवास और पात्र आदिका दान देना अतिथिसंविभागव्रत कहलाता है। श्राद्धसमाचारीमें लिखा गया है कि, "जहा साधुओंका आवागमन हो, जहा जिनमन्दिर हो, और जहा बुद्धिमान साधर्मीकबन्धु रहते हो वहा ही श्रावकको निवास करना चाहिये।" श्रावके प्रभातमें बिना देवगुरुको प्रणाम किये जलपान करना भी अकल्पनीय है। गृहस्थको भोजन समय उपाश्रयमें जा गुरुको निमत्रण कर भक्तिपूर्वक निर्दोष अन्नदान करना चाहिये किन्तु अनादरसे कदापि नहीं। कहा भी है कि —

अनादरो विलम्बश्च, वैमुख्य विप्रिय वच ।
पश्चात्तापश्च दातु स्याद्, दानदूषणपचक ॥१॥

" अनादर, विलम्ब, मुख बिगाडना, अप्रियवचन बोलना, और पश्चाताप करना-ए पाच दातासम्बन्धी दानके दूषण हैं। " तथा —

आनदाश्रूणि रोमाच-बहुमान प्रियं वच ।
तथानुमोदना पात्रे, दानभूषणपचकम् ॥ १ ॥

" दान देते आनन्दके अश्रु आना, रोमाच हो जाना, बहुमान करना, प्रियवचन बोलना, और सुपात्रकी अनुमोदना करना-ये पाच दानके आभूषण हैं।" आत्माको तारनेकी बुद्धिसे दान देने पश्चात् भोजन करना देवभोजन है अन्यथा शेष सब प्रेतभोजन हैं ।

दानमें भी सुपात्र दान बडे फलको देनेवाला है। कहा भी है कि —

दान धर्मेषु रोचिष्णु-स्तच्च पात्रे प्रतिष्ठितम् ।
मौक्तिकं जायते स्वाति-वारि शुक्तिगत यथा ॥ १ ॥

" धर्ममे दान धर्म महा तेजस्वी है वो भी यदि सुपात्रको दिया जाये तो जैसे स्वाति नक्षत्रका जल छीपमे पडा मोती बन जाता है वैसे ही सफल होता है ।" और भी कहा है कि —

केसिं च होइ वित्त, चित्त केसिंपि उभयमन्नेसि ।
चित्त वित्त च पत्त च, तिन्नि पुन्नेहि लभति ॥ १ ॥

" किसीके पास वित्त (धन) ... किसीके पास चित्त

हो और किसी के पास ये दोनों हों, परन्तु चित्त, वित्त और पात्र ये तीनों मिले तो किसी एकको ही पुण्य द्वारा प्राप्त होती हैं।' इस पर एक दृष्टान्त है कि—

कोई दानसे पराङ्मुख राजा एक बार एक अरण्यमें जा पहुँचा वहां उसने एक मधपुडाको देखा कि उसमेंसे मधु बिन्दु गिर रहे थे, और उसके चारों ओर मधु मक्खियें गिन गिना रही थीं। इस देख उसने वहां आये पण्डितोंसे पूछा कि, "यह मधु मक्खियोंसे घेरा हुआ मधपुडा क्या रोता है?" उनमेंसे एकने राजाको प्रतिबोध देने निमित्त उत्तर दिया कि, "हे राजन! जब पात्र मिलता है तो वित्त नहीं होता और जब वित्त होता है तो उत्तम पात्र नहीं मिलता ऐसी चिन्तामें पड़ा हुआ यह मध पुडा अश्रुपात कर रुदन करता है ऐसा मुझे प्रतीत होता है।" यह बात सुन वो राजा उसी समयसे सत्पात्रको दान देनेमें तत्पर हुआ।

राजा कर्ण बड़ा दातार था। उसकी यह मान्यता थी कि, दान करनेसे मोक्ष सुखकी प्राप्ति होती है, वह सवेरे सवेरे सो भार स्वर्ण दान देकर, फिर सिंहासनसे उठता था। एक बार राजा कर्णकी सत्पात्रको दान देनेकी अभिलाषा हुई। उस दिन प्रभातको दो चारण-जिनमेंसे एक श्रावक और दूसरा मिथ्यात्व धर्मसे वासित था, वे सर्व प्रथम वहां आ पहुँचे। इन्हें देख कर्णने विचार किया कि आज मुझे प्रथम सत्पात्रको दान देना है क्यों कि इसीसे सद्‌गति मिलती है। कहा है कि —

व्याख्यान १६४

मुनिदानका वर्णन

पश्य सगमको नाम, सपद वत्सपालकः ।
चमत्कारकरी प्राप, मुनिदानप्रभावत. ॥ १ ॥

भावार्थ —" देखिये, मुनिदानके प्रभावसे सगमक नामक वत्सपाल-ग्वालने आश्चर्यचकित करने वाली सम्पत्ति प्राप्त की थी।"

सगमकी कथा

राजगृह नगरीके पासमें एक शालि नामक ग्राममे धन्या नामक एक गरीब स्त्री रहती थी, जिसको सगम नामक एक पुत्र था। वह पुत्र उस ग्राम लोकोकी गौओ तथा बछडोंको चराया करता था। एक दिन पर्वदिन आनेसे सर्व लोगोंको खीर खाते देख उस गरीब बालकने भी अपनी माके समीप जा खीरकी याचना की। इस पर माताने उत्तर दिया, "हे वत्स! अपने घरमें खीर नहीं है ?" उस पर भी वह बालक हठ कर बारबार खीर मागने लगा। पुत्रकी इच्छा पूरी न कर सकनेसे माताने भी रूदन करना आरभ किया। उसे रोते देख आसपासकी पडोसीनियोंने एकत्रित होकर उससे उसके रोनेका कारण पूछा तो उसने अपना सारा वृतान्त कह सुनाया। पडोसीनियोंको दया आई, इससे

उन्होने उसे दूध आदि खीरकी सब सामग्री ला दी। धन्याने खीर बनाकर, उसका थाल भर सगम पुत्रको दे, स्वयं किसी कार्यवश घरसे बाहर गई।

देवयोगसे कोई मासके उपवासवाले मुनि वहा जा पहुंचे। सगमने मुनिको देखते ही उल्लासपूर्वक उस खीरके थालको उठाकर भावसे सब खीर मुनिको वहोरा दी। दयालु मुनिने उस खीरसे पारणा किया। मुनिके जाने बाद धन्या वापस आई। उसे मुनि सम्बधी कोई बात मालूम न होनेसे उसने वह समझी कि पुत्र सब खीर खा गया है, उसे और खीर रक्खी। सगमने उसे पेट भर खाया परन्तु रात्रिमे उसके न पच सकनेसे विशुचिका हो गई और वह यकायक मर गया। मुनिदानके प्रभावसे वह राजगृही नगरीमे गोभद्र सेठकी भद्रा नामक स्त्रीके उदरमे अवतरित हुआ। उस समय भद्राने स्वप्नमे एक पके शालीका–चावलका क्षेत्र देखा। पूर्ण गर्भसमय होने पर पुत्र रत्नका प्रसव हुआ। गोभद्र सेठने स्वप्नानुसार उसका नाम शालिभद्र रक्खा। पाच धात्रियोसे लालित–पालित वह पुत्र कल्पवृक्ष सदृश वृद्धिको प्राप्त हुआ। पिताने उसे सर्व कलाओंका अभ्यास कराया। उसके युवा होने पर गोभद्र सेठने बडे उत्सवके साथ उसका विवाह बडे बडे सेठोंकी बत्तीस कन्याओंके साथ कर दिया। देवीयोंके साथ इन्द्र सदृश वह शालीभद्र उन स्त्रियोंके साथ आनन्द–विलास करने लगा। रमणीयोंके साथ विलासमग्न शालिभद्रको दिन–रातके अन्तरकी भी शुद्धि न रही।

एक बार श्री महावीरप्रभुकी देशना सुननेसे गोभद्र सेठको वैराग्य हो आया, इससे उसने श्री महावीरप्रभुके चरणोंमें चारित्र अंगीकार किया व अनशनकर स्वर्गमें गया। वहा अवधिज्ञान द्वारा देख कर गोभद्रदेवने पुत्रवात्सल्यवश या उसके पुण्यके आकर्षणसे कल्पवृक्ष सदृश प्रतिदिन दिव्य वस्त्र, अलंकार और सुगंधी पदार्थ स्त्री सहित अपने पुत्रको[१] देना आरंभ किया। घर सम्बन्धी सर्व उचित कार्य तो भद्रा माता करने लगी और शालिभद्र तो केवल भोग सुखका ही अनुभव करने लगा।

एक बार कुछ रत्नकंबलके व्यापारी नेपालसे राजगृहनगरमें आये और उन्होंने रत्नकंबल बेचनेको श्रेणिक राजाको बताये किन्तु उनका मूल्य अधिक होनेसे राजाने उन्हें नही रक्खा, इससे वे व्यापारी बादमें शालिभद्रके यहा आये। वहा गोभद्र शेठकी स्त्री भद्राने उनका मुह-मांगा मूल्य[२] दे खरीद किया। यह वृतान्त सुन चेलणा महाराणीने भी श्रेणिक राजासे एक रत्नकंबल खरीद कर देनेकी याचना की। इस पर श्रेणिक राजाने उस व्यापारिको वापस बुला कर उन्हें एक रत्नकंबल देनेको कहा। व्यापारिने उत्तर दिया कि हमारी रत्नकंबल तो सब भद्रा सेठानीने खरीद करली है अब हमारे पास एक

---

१ बत्तीस स्त्रिये और शालिभद्रके लिये ३३-३३ पेटीवस्त्र अलंकार और सुगंधित पदार्थोंकी सदैव देता था।

२ एकेक रत्न कम्बलका सवा लाख द्रव्य देकर सब १६ रत्नको खरीद ली।

भी रत्नकम्बल शेष नहीं बची है। यह सुन श्रेणिक राजाने आश्चर्य चकित हो अपने एक सेवकको एक रत्नकम्बल खरीद कर लानेके लिये भद्रा सेठानी पास भेजा। उसने जाकर भद्रासे उसकी याचना की तो भद्राने उत्तर दिया कि,—"हे सेवक! उन सोलह रत्नोंके बत्तीस खण्ड कर मेरे पुत्रकी स्त्रियाने उनसे पैर लूंछकर फेंक दिये हैं, तो यदि राजाको इनकी ही आवश्यकता हो तो उससे लूछ कर फेंके हुए खण्ड ले जा।" सेवकने वापस जाकर य सब बाते राजा श्रेणिकसे कही इससे वह अत्यन्त आश्चर्यचकित हो शेठके पुत्रको देखनेका अभिलाषी हुआ। उसने उसकी मा भद्राको बुला कर कहा कि—"हे भद्रे! मुझ तुम्हारे पुत्रको दिखाओ, मैं उसे देखना चाहता हूँ।" भद्राने उत्तर दिया, 'हे राजन्! मेरा पुत्र मक्खन सदृश सुकोमल है, वह कभी घरसे बाहर पैर नहीं रखता, घरमे ही क्रीडा करता है, अत आप स्वय ही कृपा कर मेरे घर पधारनेका अनुग्रह करे।"

राजाने भद्राके घर जाना स्वीकार किया। जब राजा शालिभद्रके घर पहुचे तो वहा उसके घरके वैभवको देखते ही वे अत्यन्त विस्मित हो गये। घरमें प्रवेश करने पर अनुक्रम से पहली, दूसरी व तीसरी भूमिकामें गया तो वह नवरगित अभिनव दिखाई पडे फिर जब चोथी भूमिकामें जा कर सिंहासन पर बैठ गया तो भद्राने सातवीं भूमिकामें जहा उसका पुत्र रहता था वहा जा कर उससे कहा कि, "हे पुत्र! अपने घर श्रेणिक आये हैं इससे तू स्वय

चल कर उन्हें देख।" शालिभद्रने सोचा कि श्रेणिक नामकी कोई वस्तु होगी इससे उसने उत्तर दिया कि, "हे माता! तुम उसका जो मुल्य मांगे वो देकर घरके एक कोनेमें डाल दो।" भद्राने उत्तर दिया, कि 'हे वत्स! श्रेणिक नामक कोइ खरीदने योग्य वस्तु नहीं है, परन्तु ये तो अपने स्वामी श्रेणिक महाराजा हैं।" यह सुन शालिभद्र विचारने लगा कि- "क्या मेरे उपर भी कोइ दूसरा स्वामी है? अरे! इस संसारके सुखको धिक्कार है।" इस प्रकार विचार करता हुआ शालिभद्र माताके आग्रहसे अपनी स्त्रियों सहित राजा श्रेणिकके पास आया और विनयपूर्वक राजाको नमन किया। राजा श्रेणिकने उसे अपनी गोदमें बिठा कर कुशलता पूछी। राजाके उत्संगमें बैठे हुए शालिभद्रको अग्निके संयोगसे पीगलते हुए मोमके पींड सदृश घबराया हुआ जान भद्राने राजासे कहा कि, "हे देव! मेरे पुत्रको छोड दो, यह मनुष्य है, परन्तु मनुष्यके समूहकी गंध तकको सहन नहीं कर सकता, क्योंकि दिव्य भूमिमें गये इसके पिता वहांसे इसके लिये दिव्य वस्त्र, अलंकार और चन्दन पुष्पादि दिव्य पदार्थ भेजते रहते हैं और यह उनका भोक्ता है। इस पर राजाने उसे छोड दिया और वह सातवीं भूमि पर चला गया।

भद्राने आग्रह कर राजा श्रेणिकको भोजनके लिये आमन्त्रण किया। स्नान समय होने पर राजा शालिभद्रकी घरकी वापिकामें ही स्नान करने गया, वहां राजाके हाथकी अंगुलीसे उसकी रत्नमुद्रिका वापिकाके जलमें जा गिरी। राजा

जब इधरउधर उसकी खोज करने लगा तो भद्राने दासीको आज्ञा दी कि, "वापिकाका जल निकाल राजाकी मुद्रिका ढूंढ निकाल।" दासीने जब ऐसाही किया तो राजाको उसकी मुद्रिका अन्य दिव्य आभरणोंके मध्यम कोयले सदृश निस्तेज दिखाई दी। राजाने पूछा कि, "यह क्या है?" दासीने उत्तर दिया कि, "हे स्वामी! ये निर्माल्य आभूषण हैं। मेरा स्वामी शालिभद्र सदैव स्त्रियों सहित स्नान करते समय अपने आभरण इस वापिकामें डाल देता है और नये धारण करता है।" यह सुन राजा श्रेणिकने विचार किया कि, "मैं भी धन्य हूं कि मेरे नगरमें ऐसे ऐसे धनाढय भी निवास करते हैं।" बादमें राजाने परिवार सहित वहां भोजन किया और भद्रा द्वारा वस्त्राभूषणसे सत्कारित वापस अपने महलको लौटा।

इस ओर शालिभद्रको जब संसारके अनित्य सुखसे वैराग्य उत्पन्न हो आया और उसके धर्ममित्रने आ कर सूचित किया कि, 'हे मित्र! इस नगरमें धर्मघोष नामक चतुर्ज्ञानधारी मुनीश्वर आये हुए हैं।" तो वह उत्सुक हो गुरु समीप गया और नमस्कार कर अवग्रह धारण कर बैठ रहा। उस समय मुनिराजने देशना दी कि —

ज्ञानविज्ञानलावण्य रूपवर्णवपुर्बलं।
क्षीयमाणं खलस्नेह इव याति दिने दिने ॥ १ ॥

"ज्ञान, विज्ञान, लावण्य, रूप, वर्ण और शरीरका बल खल पुरुषके स्नेह सदृश दिनप्रतिदिन क्षय होता जाता

है।" यह देशना सुन शालिभद्रने गुरुसे पूछा कि, "हे भगवन्! कैसे कर्म करनेसे हमारे पर दूसरा स्वामी नहीं हो सकता? गुरुने उत्तर दिया कि, "हे भद्र! इस जिन दीक्षाके प्रभावसे दूसरे जन्ममें प्राणी सर्व जगतका स्वामी होता है।" शालिभद्रने कहा कि, "हे प्रभु! यदि ऐसा है तो मैं भी घर जा मेरी माताकी अनुमति ले,तुम्हारे पास आकर व्रत ग्रहण करुगा।" गुरुने उत्तर दिया, हे वत्स! प्रमाद करना नहि। "इस प्रकार शिक्षित शालिभद्रने घर जा माताने विज्ञप्ति की कि "हे माता! आज मैंने श्रीधर्मघोषमुनीश्वरके मुखसे अनादि दुःखसे छुड़ाने वाले और परमानन्द युक्त स्वाभाविक सुखको देने वाले श्री जिन धर्मको सुना है इस संसारमें वो ही एक साररूप है अतः तुम्हारी आज्ञासे मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ।" माताने उत्तर दिया कि, "हे वत्स! तुझे जो व्रत ग्रहण करनेकी इच्छा हुई है वह तो युक्त है, किन्तु केश-लोचन, भूमि-शयन, बेयालिश दोषरहित आहार, पचमहाव्रतका भार, और बावीश परिषह सहन करने आदि क्रिया करनेको तू कैसे समर्थ होगा?" शालिभद्रने उत्तर दिया, "हे माता! इसकी चिन्ता न कर, चिंतामणि रत्नसमान चारित्र रत्नको पाकर तो केवल मूर्ख ही वोहि कौए उडानेको उसे डाल देते हैं, मैं ऐसा कदापि नहीं करुगा।" पुत्रका ऐसा सामर्थ्य जान भद्राने कहा कि, "हे वत्स! यदि तेरी व्रतग्रहण करनेकी ही इच्छा हो तो प्रथम थोडे थोडे पुष्पशय्या, स्त्रीभोग आदिको कम करना आरम्भ कर कि जिससे तुझे व्रत पालनका अभ्यास हो जाये।

इसप्रकार माताकी आज्ञा पाकर शालिभद्र सदैव एक एक स्त्री सहित पुष्पशय्या छोडने लगा।

उसी नगरमें शालिभद्रकी छोटी बहिनका स्वामी भाग्य शाली धन्नाशेठ रहता था, एक बार जब शालिभद्रकी बहिन उस के पतिको स्नान कराते समय अश्रुपात करने लगी तो, धन्नाजीने पूछा कि, " हे सुभ्रे! तू रुदन क्या करती है?" उसने गद्गद् स्वरसे उत्तर दिया कि, " हे नाथ! मेरा भाई शालि भद्र व्रत लेनेकी इच्छासे नित प्रतिदिन एक एक शय्यायें साथ एक एक स्त्रीको छोड रहा है इससे उस दुःखसे दुःखी हो मैं रुदन करती हूँ।' यह सुन धन्नाजी बोला कि, " तेरा भाई सत्वहीन और शियालके सदृश भीरू जान पडता है, कि जिससे सब वैभवको एक साथ नहीं छोड सकता।' उसने उत्तर दिया कि, " हे स्वामीनाथ! बोलना सुकर है, लेकिन करना दुष्कर है, यदि सब वैभव एक साथ छोड कर व्रत लेना सुगम हो तो तुम्हीं स्वयं क्यों नहीं ले लेते?" इसी प्रकार जब धन्नाजीको अन्य स्त्रियाने भी हास्यमें कहा तो उसने उत्तर दिया कि, "मेरे पुण्यसे ही तुम सब मिलकर अनु मति देते हो, अतः मैं अब सत्वर व्रत ग्रहण करूंगा यह सुन स्त्रियोंसे कहा, " हे नाथ! हमने तो केवल हास्यमें कहा है आप क्रुद्ध न हों।" धन्नाजीने उत्तर दिया कि मुझे रीस नहीं है परन्तु स्त्री धन आदि सर्व पदार्थ अनित्य है इस लिये मैं इनका त्याग कर दीक्षाका आश्रय लूंगा। "स्त्रियोंने उत्तर दिया कि " हे स्वामी! यदि ऐसा है तो हम भी

आपके साथ दीक्षा लेंगे।" धन्नाजीने उनका वचन भी अंगीकार किया।

उस समय श्री महावीर प्रभुके वैभारगिरी पर समवसरन की वधांपनीका पा धन्नाजी स्त्रियों सहित जगद्गुरुके पास गया और स्त्रियों सहित दीक्षा ग्रहण की। यह समाचार सुण कर शालिभद्रजी भी श्री महावीर प्रभुके पास गया और ससारके माया जालको छोड कर दीक्षा ग्रहण की। (अन्यत्र दोनोंका साथ साथ दीक्षा लेना कहा गया है।)

धन्नाजी और शालिभद्रजी गीतार्थ मुनि पास अभ्यास कर बहुश्रुत हुए और एक, दो, तीन और चारचार मासके सतत उपवाससे उनके शरीर मास एव रुधिर रहित कृश हो गये। एक बार तीन भुवनके सूर्य सदृश श्री महावीर प्रभुके साथ विहार करते करते जब व दोनों मुनि राजगृही नगरीमें आये और मासक्षमणके पारनेके लिये भीक्षा निमित्त जानेको प्रभुकी आज्ञा मागी, तो प्रभुने कहा कि, "आज तुम्हारा पारणा शालिभद्रकी माताके हाथसे होगा।" प्रभुके वचन सुन कर वहासे शालिभद्र मुनि धन्नाजीके साथ ले भद्राके घर गये। तपस्यासे कृश इन दोनों मुनियोंको किसीने नही पहिचाना। भद्राने भी श्रीमहावीर प्रभु, धन्ना और शालि भद्रको वन्दना करनेको जानेकी तैयारीमें व्यग्रतामे इन दोनों मुनियोंको आये नही जाना। दोनों मुनि क्षण वार वहा खडे रह जब पीछे लौटे और नगरके द्वार पर आये तो वहा शालि भद्रकी पूर्व जन्मकी माता धन्या जो गावमे दधि बेचने जाती

थी । यो मिली शालिभद्रको देखते ही उसके स्तनसे दूधकी धारा बहने लगी, और उसने तत्काल उनको नमन कर प्रेमसे दधि बहोराया ।

दोना मुनियोंने श्री महावीर प्रभुके पास जा गोचरी रख कर बादमे शालिभद्रने श्री प्रभुसे प्रश्न किया कि, "हे स्वामी! आज मेरी माताके हाथसे पारणा क्यों नही हुआ?" इस पर सर्वज्ञ प्रभुने उसे उसकी पूर्वभवकी माताद्वारा सब वृतान्त कह सुनाया। तत्पश्चात् दोनों मुनि दधिका पारणा कर, प्रभुकी आज्ञा ले, पूर्ण वैराग्यवन्त हो वैभार पर्वत पर गये और एक शिला तलकी पडिलेहना कर उस पर पादो पोपगमन अनशन किया।

इस ओर भद्रा और श्रेणिक श्री महावीर प्रभुको वन्दना करने आये। भद्राने प्रभुको नमस्कार कर पूछा कि, "हे स्वामी! वे दोनों मुनि कहा गये हैं? मेरे घर भिक्षा लेने क्या नहीं आये?" प्रभुने उत्तर दिया कि, हे भद्रे! तेरे घर अवश्य आये थे, परन्तु तूने उन्हें नहीं पहिचाना, इससे वे शालिभद्रके पूर्वभवकी मातासे भिक्षा ग्रहण कर, आहार कर, वैभारगिरि पर गये हैं, और आज ही अनशन किया है।" भद्रा तत्काल श्रेणिक सहित वहाँ गई परन्तु उन्हें निश्चल देख बोली कि, "हे पुत्र! मुझे धिक्कार है कि मैंने तुमको मेरे घर आने पर भी नही पहिचान सकी।" ऐसा कह वह जब विलाप करने लगी तो श्रेणिकने उसे समझाया। वे दोनों

मुनि अनशन कर सर्वार्थसिद्ध विमानमे गये हैं, वहासे बादमें मोक्ष प्राप्त करेंगे ।"

"अहो ! उस दानके सौभाग्यका मैं स्तवन करता हू, कि जिसके वशीभूत हुई स्वर्गकी लक्ष्मी अभिसारिका-नायिका सदृश शालिभद्रको मनुष्य भवमें भी प्राप्त होकर भजती थी ।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ चतुष्षष्ठ्यधिकशततमः प्रबंधः ॥ १६४ ॥

व्याख्यान १६५

चौथे शिक्षाव्रतके अतिचार

सचित्ते क्षेपणं तेन, पिधानं काललंघनम् ।
मत्सरोऽन्यापदेशश्च, तुर्यशिक्षाव्रते स्मृताः ॥ १ ॥

भावार्थ —"सचित्त वस्तु पर आहार रखना, सचित्त वस्तु से उसे ढकना, योग्यकालका उल्लंघन करना, मत्सरभाव धारण करना, और दूसरे का व्यपदेश करना (अपना होते हुए भी दूसरे का होना कहना) ये पांच चौथे शिक्षाव्रतके अतिचार हैं ।"

विस्तारार्थ —(१) सचित्त अर्थात् सजीव पृथ्वी, वनस्पति आदि पर देने योग्य अन्नपान आदि को अदानबुद्धि, अनाभोग या सहसात्कारसे रख देना प्रथम अतिचार कहलाता है।

(२) इसी प्रकार सचित्त अर्थात् सूरण, कद, पत्र, पुष्प, फल आदिसे अश्रद्धाबुद्धि द्वारा देने योग्य आहारको ढक देना दूसरा अतिचार कहलाता है ।

(३) काल अर्थात् भिक्षा लेने योग्य जो साधुका समय हो उसका उल्लघन कर बादमें साधुको आमन्त्रण करने जाये अथवा साधु न आवे तो भी पौषधव्रतवाला भोजन कर इसे तीसरा अतिचार लगा कहते हैं।

(४) मत्सर अर्थात् कोप,मागने वाले पर कोप करे अथवा किसी वस्तुके होने पर भी मागने पर न दे, अथवा " इस क्षुद्रमनुष्यने जब दान दिया है तो क्या मैं इससे भी हीन हूँ ?" ऐसी मत्सरतासे दान दे। इससे दूसरे की उन्नति सहन नही कर सकने रूप मत्सरता है। यह चौथा अतिचार है।

(५) अन्य अर्थात् दूसरे के सम्बन्धमें व्यपदेश अर्थात् मिष-बहाना करना । जैसे कि, " यह गुड, सक्कर आदि किसी दूसरे की है, इससे मैं कैसे दे सकता हूँ ? " इस प्रकार झूठा बहाना करना अन्यापदेश कहलाता है। (अपदेशशब्दका कारण, मिष और लक्ष्य अर्थमे उपयोग किया जाता है ऐसा अनेकार्थ संग्रहमें कहा गया है, यह पाचवा अतिचार है । ये पाचो अतिचार चौथे शिक्षाव्रतके बतलाये गये हैं । ये अतिचार अनाभोग आदिसे अर्थात् अनजानपन आदिसे होते हैं तब अतिचार कहलाते हैं, परन्तु यदि जान बूझ कर ऐसा किया जाये तो व्रतका भग होता है। अतिचार सहित दान देनेके विषयमें चपक श्रेष्ठीकी कथा है कि :—

चम्पक श्रेष्ठीकी कथा

धन्यपुर नगरमें चम्पक नामक श्रेष्ठी रहता था, वो चारों पर्वोमे पौषधकर, उनके पारणेके समय सदैव अतिथि सविभाग व्रत करता था। वह सम्पूर्ण पौषधको पार गुरुसे विज्ञप्ति करता था कि "हे स्वामी! मेरे घर भात पाणीका लाभ दीजीये।" तत्पश्चात् अपने घर जा अपने लिये भोजनादि कराने लगा और गोचरीके समय होने पर वापस उपाश्रयमे जा कर साधुको निमत्रण कराता था। उसके निमत्रण पर साधु दूसरे किसी साधु या श्रावकको साथ ले कर उसके घर जाते थे क्योंकि साधु को अकेला विहार करना या किसी स्थानको जाना मना है। साधु के घर आने पर चम्पक सेठ उन्हें अचित्त तथा निदाष अन्नपानादि और वस्त्र, कम्बल तथा औषधादि जिसका खप होता जो विनयपूर्वक देता था। साधु भी उसे घरसे अल्प वस्तु ग्रहण करते थे। (साधुका ऐसा ही आचार है, अन्यथा पश्चात्कर्मादि दोप लगते हैं।) तत्पश्चात वह वन्दना कर साधुको विदाय कर और पीछे पीछे कुछ कदम पहुचाने जाता था। उसके बाद स्वय भोजन करता था। इसमे भी "जो वस्तु साधुको नही दी गई हो उसे श्रावकको न खाना चाहिये" ऐसा आचार होनेसे उस वस्तुको काममे न लेता था। यदि उस ग्राममे कोई साधु नही होता तो वह भोजन समय गृहद्वार पर जा अवलोकन करता और ऐसा विचार करता कि, "यदि अकस्मात इस समय कोई साधु आ पहुँचे तो मैं तैर जाउ।" (इस प्रकार पौषध के पारणे करनेकी विधि भी है) चम्पक श्रेष्ठी इसी प्रकार सर्वदा दान दिया करता था।

एक बार ऐसा हुआ कि चम्पक श्रेष्ठी किसी भिक्षा के लिये फिरते मुनिको देख हर्ष सहित उन्हें बुला लाया और घी बहराने लगा। भावसे अखण्ड धारा द्वारा मुनिके पात्रमें घी इन-डालने लगा जिससे उसने अनुत्तर विमानकी सम्पत्ति उपार्जन की। मुनिने भी पुण्यका लाभ मिलते देख घीकी धारा गिरने दी, अर्थात् दयासिन्धु मुनिवरने निषेध नहीं किया। इस बाजु मुनिजीने मना नहीं किया, इससे चम्पक श्रेष्ठीने मनमें विचार किया कि, अहो! यह मुनिजी लोभी जान पड़ते हैं, स्वयं तो अकेले ही हैं फिर इतना सारे घीको क्या करेगा?" ऐसे चिंतवनसे जिस क्रम द्वारा वह देवगति उपार्जन करते चला था, उसी क्रम द्वारा उसे वापस गिरता देख ज्ञानीमुनिजी बोले कि, "हे मुग्ध! इतना ऊँचा चढ़ वापस न गिर!" चम्पक श्रेष्ठिने उत्तर दिया कि, "हे भगवान्! मैं तो यहां ही हूँ, कहांसे गिरता हूँ?" इस प्रकार असम्बधित वाक्य क्यों बोलते हैं?" फिर मुनि पात्र खींच उसे बारहवें देवलोकमें स्थापन कर बोले कि, 'हे श्रावक! दान देते समय अन्य विकल्प करनेसे वह दूषित हो जाता है। यह सुन चम्पक सेठने अपने पापकी आलोचना की और अन्तमें आयु पूर्ण होनेसे बारहवें देवलोकमें गया। इसके विषयमें कहा है कि —

मातिचारेण यद्दानं, तद्दानं स्वल्पसौख्यदम्।
मत्वेति विधिना श्राद्धैर्वितीर्यं भावधार्मिकैः ॥ १ ॥

भावार्थ —" अतिचार सहित दान अल्प सुखका देनेवाला है ऐसा विचार कर भाविक एवं धार्मिक श्रावकके द्वार आतचार रहित-शुद्ध विधिपूर्वक दान देना चाहिये । "

इत्युपदेशप्रासादटीकेयं लिखिता मया ।
पंचदशभिरख्याभिः स्तंभश्चैकादशः स्तुतः ॥ १ ॥

भावार्थ —" मैंने इस प्रकार उपदेश प्रासादकी टीका लिखी है, और पन्द्रह भिन्नभिन्न प्रबंधोरूप अर्थो-व्याख्यान द्वारा यह ग्यारहवा स्तंभ स्तवित-समहित किया गया है अर्थात् पूर्ण किया है । "

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ पंचषष्ठ्यधिकशततमः प्रबंध ॥ १६५ ॥

अब्दाहमितज्ञातेषु, शताग्रं पंचषष्ठितमम् ।
प्रेमादिविजयादिना, नित्यं व्याख्यानहेतवे ॥

"वर्षके दिन जितने दृष्टान्तोंमेंसे एकसो पैसठ व्याख्यान प्रेमविजयादि मुनिओं निरंतर व्याख्यान देनेके लिये कहे गये हैं । "

इति एकादशः स्तंभः समाप्तः

ग्यारहवा स्तंभ समाप्त

श्री उपदेशप्रासाद ग्रंथे
स्थभ १२
व्याख्यान १६६
गृहस्थोंकी भोजनविधि

मुक्तिकाले गृहस्थेन, द्वार नैव पिधीयते ।
बालादीन् भोजनयित्वा तु, शस्यते भोजन सदा ॥ १ ॥

भावार्थ —"भोजन करते समय गृहस्थ को अपने घर का द्वार बन्द नहीं करना चाहिये और बाल, वृद्ध तथा ग्लान आदि को भोजन कराकर फिर खुद को भोजन करना प्रशसनीय है ।"

विशेषार्थ —भोजन समय गृहस्थको अपने घर का द्वार बन्ध नहीं रखना चाहिये क्योंकि उसे बन्ध देख भिक्षुक आदि निराश हो वापस लौट जाते हैं । आगममे भी बतलाया गया है कि –

नेव दार पिहावेइ, भुजमाणो सुसावओ ॥
अणुकपा जिणिदहिं, सङ्काण नत्थि वारिया ॥ १ ॥

"श्रावकको भोजन करते समय घरका द्वार बध नही करना चाहिये क्योंकि प्रभुने श्रावकोंको अनुकम्पा दान करनेसे निषेध नही किया ।" अपितु पाचवे अग श्री विवाहपन्नत्ति

सूत्रमें तुंगियानगरीके श्रावकके वर्णनके प्रसंगमें कहा है कि वे श्रावक "अभंगुअदुवारा" हैं। इस विशेषणका यह अर्थ है कि, 'भिक्षुक आदि के प्रवेशार्थ लिये वे श्रावक सर्वदा उनके घरके द्वार खुले रखते हैं, कि जिससे कोई भी भिक्षुक निराश होकर वापस न लौट जाये। द्वार बन्ध कर वे धर्मकी निन्दा नहीं कराते।" भोजन समय द्वार बन्ध रखना उत्तम पुरुषों का लक्षण नहीं है। स्वयं श्रीजिनेश्वर भगवंतने भी सांवत्सरिक दानसे दीन लोकोंका उद्धार किया था।

विक्रमके समयसे तेरहसो पन्द्रह वर्ष पश्चात् जब बड़ा दुकाल पड़ा, तब कच्छ देशमें भद्रेश्वर नगरके निवासी श्रीमाली साहुकार जगडुशाहने एकसो बारह दानशालायें खोल कर दान दिया था। कहा है कि,—"उस दुर्भिक्षमें हमीरको बारह हजार मूडे, विशलदेवको आठ हजार मूडे, और दिल्लीके बादशाहको इकीस हजार मूडे धान्यके जगडुशाहने दिये थे।" समृद्धिशाली गृहस्थको भोजन समय विशेषतया दया-दान करना चाहिये, और निर्धनको यथाशक्ति दान देना चाहिये। कहा है कि —

कुक्षिभरी न कस्कोऽत्र, बह्वाधारः पुमान् पुमान्।
ततस्तत्कालमायातान्, भोजयेद् बांधवादिकान् ॥१॥

"अपना पेट तो कौन पुरुष नहीं भरता? परन्तु जो पुरुष दुसरोंका आधारभूत होता है, वह ही पुरुष है अत भोजनकालमें आये हुए बांधव आदिको अवश्य भोजन कराना चाहिये।"

चित्रकूटमें चित्रागद नामक एक राजा था। वो एक बार जब उसके किल्लेको शत्रु सैन्यने आ घेरा, उस समय नगरमें शत्रुके प्रवेशका भय होने पर भी वह धार्मिक राजा भोजन समय द्वार खुले रखता था।

प्रथम श्लोकके तीसरे पदमें जो "बालक आदिको भोजन करा कर फिर करना" कहा गया है उसमें आदि शब्दसे यह प्रयोजन है कि बाल, ग्लान, वृद्ध, माता-पिता, पुत्रवधू, सेवक वर्गको भोजन अथवा गाय आदिको चारा-पानी आदि उचित परिमाणमें देकर फिर नवकार मन्त्रका उच्चारण कर तथा पच्चक्खाण कर भोजन करना चाहिये। भोजन करनेमें समयका उल्लंघन नही करना चाहिये। कहा है कि —

यामममध्ये न भोक्तव्य, यामयुग्म न लघयेत्।
यामममध्ये रसोत्पत्ति, यामयुग्मे बलक्षय ॥ १ ॥

"एक पहरमें-तीन कलाकमें पुन नहीं खाना और दो पहरका उल्लंघन नहा करना चाहिये क्योंकि पहिले पहरमें रसकी उपत्ति होती है और दो पहर तक भोजन नहि करनेसे भोजन नहि करनेसे बलका क्षय होता है।" अपितु योग्य समयमें भोजन करना चाहिये, उसमें भी वर्तमान् ऋतु अनुसार योग्य आहार लेना चाहिये। इसके विषयमें कहा है कि —

"शरद् ऋतुमे जो जल पिया हो, पोष और माघ मासमे जो खाया हो, और जेष्ट और अषाढ मासमें जो

-सोया हो उसीसे मनुष्य जीता है।" अपितु कहा है कि, "वर्षा ऋतुमें लवण-नमक अमृत है,[1] शरद ऋतुमें जल अमृत है, हेमंत ऋतुमे गायका दूध अमृत है, शिशिर ऋतुमें आवलेका रस अमृत है, वसंत ऋतुमे घी अमृत है और ग्रीष्म ऋतुमे गुड अमृत है।"

सर्व प्रकारका भोजन लोलुपता रहित करना चाहिये इसके विषयमे कहा है कि —

क्षणमात्रसुखस्यार्थे, लौल्यं कुर्वन्ति नो बुधा ।
कंठनाडीमतिक्रांत, सर्वं तदशन समं ॥ १ ॥

"प्राज्ञ पुरुष क्षणमात्रके सुखके लिये भोजनकी लोलुपता नही करते, क्योंकि कंठकी नाडीका अतिक्रमण करने बाद तो सब भोजन समान हैं।" अधिक भोजन भी नहीं करना चाहिये। अधिक भोजन करनेसे अजीर्ण, वमन, विरेचन आदि रोग सुलभ हो जाते हैं। कहा है कि —"हे जीभ! खाने और बोलनेका परिणाम तू जान ले, क्योंकि अति आहार करने और अति बोलनेका परिणाम दारुण होता है।" और भी कहा है कि —"हितकारी मित और पथ्य भोजन करनेवाला, दाहिनी बाजु सोनेवाला, सदैव चलनेका स्वभाववाला, मल-मूत्रको नहीं रोकनेवाला, और स्त्री विषयमे मनको वशमे रखनेवाला पुरुष सर्व रोगोंको जीत लेता है।" और कहा है कि –"आकाशमें (छत पर), धूपमे, अंधेरी जगहमे,

[1] वर्षा ऋतुमे ज्येष्ठ और अषाढ मास समझना बाद दो दो मासकी क्रमशः ऋतु समझ लेना आवश्यक है।

वृक्षके नीचे, स्मशानमे, अपने आसन पर ही बैठे बैठे, तर्जनी अगुलीको उपर उठा कर, डावी नासिकाके बहते समय, केवल भूमि पर बैठ कर और जुते पहिन कर कभी भोजन नही करना चाहिये, इसी प्रकार शीत–ठंडा हुए भोजन आदिको फिरसे गरम कर नही खाना चाहिये।"

श्री जिनदत्तसूरिजी निर्मित विवेकविलास ग्रन्थमे कहा है कि, "केवल एक ही वस्त्र पहिन कर, गिला कपडा सिर पर बाध कर, अपवित्रपनसे और अति लोलुपतासे सुज्ञ पुरुषको भोजन नही करना चाहिये। अपितु मल–मूत्रादिसे अपवित्र हुए, गर्भादि हत्याको करने वाले द्वारा देखे गये, रजस्वला स्त्री द्वारा छूये हुए और गाय, श्वान या पक्षियों आदिसे चाट–जूंठ हुए या सुंघ हुए भोजनको नही करना चाहिये। अपितु जल पीनेके लिये कहा गया है कि, भोजनके पहिले जल पीना विष तुल्य, भोजनके अंतम पीना शिला सदृश और मध्यमे पीना अमृत सदृश है। भोजन करने बाद सर्व रससे भर हाथ द्वारा मनुष्यको प्रतिदिन जलका एक चल्लु पीना चाहिये। भोजन कर उठने पर जलसे आर्द्र हाथ द्वारा दोनों लमणाको, दूसरे हाथ या नेत्रोंको स्पर्श नही करना चाहिये, परन्तु उन हाथोंको ढीचण पर ही फेरना श्रेयस्कारी है। भोजन करने बाद दाहिनी बाजु दो घडी तक–निद्रा बिना शयन करना या सौ कदम चलना उचित है। भोजन समय अग्नि, नैऋत्य और दक्षिण दिशा, सध्या काल, सूर्य–चन्द्रका ग्रहण समय, और अपने स्वजनादिकका शब पडा हो उस

समयको वर्जित किया गया है। भोजन समय, मैथुन समय, स्नान करते समय, वमन करते समय, दातन करते समय, मलोत्सर्ग करते समय और मूत्र त्याग करते समय बुद्धिमान् पुरुषको मौन रहना चाहिये। भोजन करने बाद नवकार-मन्त्रका स्मरण कर उठना चाहिये।"

इस प्रकार विधिपूर्वक भोजन करना प्रशसनीय है, अत इसी विधिसे शुद्धात्मा गृहस्थको भोजन करना और अपनी आत्माको सैकडो प्रकार द्वारा गृहस्थ धर्मम आरोपण करना चाहिये।

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ षट्पष्ट्यधिकशततम प्रबध. ॥ १६६ ॥

व्याख्यान १६७

दानकी प्रशसा

पूर्वकर्मादिभिर्दोषै मुक्त कल्प्य शुभाशनम् ।
साधूना पात्रसात्कृत्य भोक्तव्य कृतपुण्यवत् ॥ १ ॥

भावार्थ —"पूर्व कर्मादि दोषसे रहित कल्पित उत्तम आहार साधुके पात्रमे अर्पित कर तत्पश्चात् कृतपुण्यकी सदृश भोजन करना चाहिये।"

कृतपुण्यकी कथा

राजगृही नगरीमें श्रेणिक नामक राजा था, वहा धनेश्वर नामक सार्थवाह रहता था, जिसको सुभद्रा नामक स्त्री और

कृतपुण्य नामक पुत्र था । माता पिताने उसका विवाह धन्या नामक एक गृहस्थपुत्रीके साथ कर दिया । परन्तु यौवन-वयमें भी सत्पुरुषोंके समागमसे कृतपुण्यको विषयसे विमुख देख उसके मातापिताने मोहाधिन होकर विचार कियाकि, "कदाचित् यह पुत्र दीक्षा ग्रहण कर लेगा तो हमारी क्या गति होगी ?" ऐसा विचार कर उन्होंने अपने पुत्र को भोगरसिक पुरुषोंकी संगतिमें रक्खा, जहां व्यसनियोंके संयोगसे कृतपुण्य भी व्यसनी हो गया और अन्तमें वह एक वेश्या पर इतना आसक्त हो गया कि, अपने मातापिता तक को भूल गया । मातापिता उसके उपयोगके लिये सदैव धन भेजने लगे । इस प्रकार वेश्याके घर रहते कृतपुण्यको बारह वर्ष एक क्षण सदृश निकल गये । मातापिताने उसे कई बार बुलवाया, किन्तु वह अपने घर नहीं लौटा अन्तमें वेश्याके घर धन भेजते भेजते उनका सब धन नष्ट हो गया, और एक बार अकस्मात् तीव्र ज्वरके आ जानेसे कृतपुण्यके मातापिता मर गये और कृतपुण्यकी स्त्री धन्या अकेली बच रही ।

एक बार वेश्याकी माता कुट्टिनीकी आज्ञासे नय उसकी कोई दासी कृतपुण्यके घर धन लेने को गई तो जहां उसने जीर्ण होकर गिर पड़े घरमें अकेली धन्याको देखा । अनुमान द्वारा उसको कृतपुण्यकी स्त्री समझ उसने कहा कि, "हे सुन्दरी ! तेरे पाससे तेरा स्वामी धन मंगवाता है, मुझे इसीके लिये भेजा है ।" धन्याने उत्तर दिया, "हे बाई ! मैं मंदभागी हूं, मेरे पास धन कहां है कि, मैं भेजूं ? मेरे

सासु-ससुर तो स्वर्गवासी हो गये हैं, फिर भी मेरे पास मेरे पिताका दिया एक अङ्गभूषण अवश्य है, सो तू इसे ले जा, और मेरे पतिको प्रसन्न कर।" ऐसा कह उसने वह आभूषण उसे दे दिया। दासी वो आभूषण ले वेश्याके घर पहुंची और कृतपुण्यको उसके घरकी सच्ची स्थितिका दिग्दर्शन करा वो आभूषण उसे दे दिया दासीने घर आकर कुट्टिनीको सारा हाल सुनाया, हालतको सुन कुट्टिनी उसे निर्धन जान, उसका अपमान करने लगी तथा उसकी आज्ञासे उसके सेवक भी कृतपुण्यके सामने धूळ उड़ाने लगे। उसे देख अनङ्गसेना नामक वैश्या पुत्रीने उसकी माता—अक्कासे कहा कि,—"हे माता! हम जब इस पुरुषका बहुतसा द्रव्य खा चुके हैं तो अब इसकी इतनी विडम्बना क्यों की जाती है?" अक्काने उत्तर दिया कि, "हे पुत्री! हमारा ऐसा ही कुलाचार है।" उनकी ऐसी बातचीत सुन कृतपुण्य मन ही मन अत्यन्त दुःखी हो, वहांसे निकल अपने घरकी ओर चल पड़ा।

पतिको दूरसे आते देख धन्याने खड़ी हो, सामने जा, आसन आदिसे उसका योग्य सत्कार किया और तत्पश्चात् अपने घरका सब वृतान्त उससे निवेदन किया। सुन कर कृतपुण्य विचारने लगा कि, "अहो! मेरे जीवनको धिक्कार है कि, मैंने मेरे माता पिताको दुःखसागरमें फेंक दिया, और पूर्व संचित सर्व धनका भी विनाश कर दिया।" इस प्रकार उसके पतिको पश्चात्ताप करते देख धन्याने उसे सन्तोष देनेको कहा कि—"हे स्वामीनाथ! जो भावी होनहार है वह तो होकर ही रहता है।" कहा भी है कि:—

गते शोको न कर्त्तव्यो, भविष्यं नैव चिंतयेत् ।
वर्त्तमानेन कालेन, मवर्त्तन्ते विचक्षणा ॥ १ ॥

"गई वस्तुका शोक व भविष्यकी चिन्ता न कर, विचक्षण पुरुष तो वर्त्तमान कालमें ही प्रवृत्त होते हैं।" इस प्रकार प्रियाके वचन सुन कृतपुण्य स्वस्थ हुआ और पत्नी द्वारा दिये द्रव्यसे व्यापार करने लगा। अनुक्रमसे कृतपुण्यके साथ विलास सुख भोगते हुए धन्याको एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

एक बार कृतपुण्यने लोगोंके मुहसे ऐसा सुना कि, "धनश्रेष्ठ पुत्र कृतपुण्यने अपने कुलको कलङ्कित किया, उसके पिताका धनको वेश्याके फंदेमें पड कर खड्डेमें डाल दिया। उसका कोई धन सुकृतमें व्यय नहीं हुआ।" ऐसी लोकवाणी सुन कृतपुण्यने उसकी स्त्रीसे कहा कि, "हे प्रिया! अभी कोई सार्थवाह यहां आया हुआ है इससे मैं भी उसके साथ जा कर अनेक देशोंको देखना व धन उपार्जन करना चाहता हूँ।" या शब्द सुन कुलीन स्त्री धन्याने उत्तर दिया कि, "हे स्वामी! आपको या हि युक्त है, लेकिन इस प्रकार बिना कुछ लिये आपको खाली हाथ जाना उचित नहीं है।" फिर कुछ द्रव्य ला अपने पतिको भेट कर उसे साथके साथ जानेको कह स्वयं पतिके साथ देवालयमें जा उसे मोदकका पाथेय माता साथ ले जानेको दीया और खाट चार पाये पर सुला कर धन्या वापस घर लौटी।

इस बीच ऐसी घटना घटित हुई कि उस नगरमें धनद नामक एक बड़ा गृहस्थ रहता था जिसके चार स्त्रियें

और रुपवती नामक वृद्ध माता थी। वो धनद अकस्मात् किसी तीव्र व्याधिसे मर गया। उसकी माताने चारों वधू ओंसे कहा कि –'यदि अपने राजाको यह ज्ञात हो जायगा कि तुम्हारा पति पुत्ररहित मर गया है, तो वह अपने सब धन छीन लेगा, इससे तुमको इस समय बिलकुल नहीं रोना चाहिये। गुप्त रीतिसे इस शवको भूमिमें छिपा कर, जब तक तुम्हारे पुत्र न हो तब तक दूसरे पुरुषका सेवन करो।" चारों स्त्रियोंने आपत्ति धर्म समझ वैसा ही करना स्वीकार किया इस लिये वृद्ध रुपवती चारो वधुओंके लीये योग्य पुरुषकी खोजमें चल पडी। वहां देवालयमें आने पर उसने कृतपुण्यको सोया हुआ देखा अत उसको वैसे ही सोते हुए को ही पलग सहित उठा कर अपने घर ले चली।

कृतपुण्यकी जब आंखे खुली तो रूपवती उसके गलेमें गला डाल रोने लगी कि, 'हे वत्स! तेरी माताको छोड तू अब तक कहां चला गया था? अभी तेरा बडा भाई मर गया है अत हे पुत्र! अब तू अन्यत्र कहीं मत जाना। तू स्वेच्छापूर्वक तेरे बन्धुकी स्त्रियोंके साथ भोग विलास कर।' कृतपुण्य विचारने लगा कि, "यह क्या बात है? परन्तु अब जो भावी होगा वो होकर ही रहेगा अभी तो जो स्वर्ग सदृश सुख प्राप्त हुआ है उसका उपभोग कर ही लेना चाहिये।" ऐसा विचार कर उसने उत्तर दिया कि, 'हे माता! मैं सब भूल गया था, अब पुण्ययोगसे मुझे माताके दर्शन हुए हैं अत मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करता हूँ।' तत्पश्चात् वह

चारों स्त्रियोंके साथ अनेक प्रकारसे सुख भोगने लगा। ऐसा करते करते आनन्द पूर्वक उसके बारह वर्ष व्यतीत हो गये और अनुक्रमसे चारों स्त्रियोंके पुत्र उत्पन्न हुए।

इसके बाद उस वृद्ध रुपवतीने उसकी वधुओंसे कहा कि, "अब तुम्हारे सबको पुत्र हो गये हैं अत इस पुरुषको जिस स्थानसे लाये हैं, वहीं वापस छोड दो क्योंकि पर पुरुषका अधिक विश्वास करना अनुचित है।" स्त्रियोंको यह बात अनिष्ठ होने पर भी सासुके भयसे उन्होंने ऐसा ही करना स्वीकार कर, कृतपुण्यको पलंग पर सोये हुए देख स्नेहवश एक एक बहु मूल्य रत्न डाल कर चार मोदक बनाकर उसके वस्त्रके कोनमे बाध, उसे निद्रित अवस्थामे ही पहलेके देवालयके स्थानमे छोड आई।

दैवयोगसे पहलेवाला सार्थवाह भी उसी दिन वहां आकर ठहरा। पतिका आया जान उसकी पूर्व प्रिया धन्या भी वहा आई। उसने वहा आकर तलास करते अपने पतिको पूर्ववत् ही पलङ्ग पर सोये देखा। थोडी देर बाद जब वह जागृत हुआ तो पुत्र सहित अपनी पत्नीको वहाँ खडी देख वह विचारने लगा कि, "अहो! स्वप्न सदृश यह क्या हो गया? यह तो बडे आश्चर्य की बात है। मुझे यहा किसी देवता या मनुष्यने ला रखा है?" तत्पश्चात् पत्नीके आग्रहसे वह वापस अपने घर गया। प्रियाने हसते हसते पूछा कि, "हे प्राणेश! विदेशमें जा कर आप क्या क्या लाये हैं?" कृतपुण्य लज्जावश मौन ही रहा मन ही मन विचारने लगा कि, मैं

कहाँ था और कहा आया ? इतनेमे वस्त्रके कोनेमे–छेडे पर कुछ बाधा हुआ देखा, उसे छोड कर देखा तो उसमे सुन्दर, सुगन्धित चार मोदक देरवे । पुत्रको उन मोदकोमे से एक मोदक दिया, पुत्र उसे ले पाठशालाको चल दिया । जब वो मोदक खाने लगा तो उसमेसे एक रत्न निकला, किसी कदोईने उसे जलकांत रत्न जान, उसे थोडीसी मिट्टाई दे उससे वो रत्न ठग लिया और छीपा दिया । कृतपुण्य भी अवशेष मोदकोमे से रत्न नीकलनेसे बहुत सुखी हुआ ।

इसी बीच एक दिन जब श्रेणिक महाराजाका मुख्य हस्तिरत्न सेचनक नामक हाथी गगा नदीमे जल पीने गया, तो वहा उसे किसी जलजन्तुने पकड लिया । सेवकने जब इस बातकी सूचना राजा श्रेणिकको दी तो उन्होने अभयकुमारसे हाथीको छुडा लानेकी आज्ञा दी । बुद्धिमान अभयकुमारने उस हाथीको छुडानेके लिये जब जलकान्तमणिकी खोज कोषागारमे की और उसम वैसी कोई मणि नहीं मिली, उसने नगरमे ढिंढोरा पिटाया कि, "जो कोई जलकान्तमणि लायेगा उसे अर्द्ध राज्य सहित राजपूत्री दी जायेगी ।" इस पर उस कन्दोइने यह बात स्वीकार कर जलकान्तमणि राजाको भेट की । अभयकुमारने वो मणि जब गगानदीमे हाथीके पास रक्खी तो उसके सयोगसे जलके दो भाग हो गये, वह जलजन्तु हाथीको छोडकर उसी समय भग गया और हाथी मुक्त हो गया । राजा श्रेणिक सेचनक पर बैठ राजमहलमें आये और एकान्तमें बैठ

अभयकुमारसे कहा कि "इस कन्दोईको राजपुत्री कैसे दी जायगी?" अभयकुमारने उत्तर दिया कि यह मणि जिस पुरुषकी होगा, उसे मैं ढूंढ निकालूंगा। तत्पश्चात् अभयकुमारने कन्दोईको बुला कर पूछा कि, "सत्य बता तुझे यह रत्न कहांसे मिला?" यदि सत्य नहीं बतायेगा तो कोरडोंसे पिटा जाकर मारा जायगा। 'कन्दोईने मारके भयसे सब बात यथार्थ रूपसे बतला दी, अतः राजा श्रेणिकने कृतपुण्यको बुला कर उसे अर्धराज्य सहित अपनी पुत्री मनोरमा व्याह दी और कन्दोईको भी बहुतसा द्रव्य दे सन्मानित किया।

एकबार कृतपुण्यने अभयकुमारसे बारह वर्ष पहिले जो घटना घटित हुई थी वो बतलाते हुए कहा कि, "हे मंत्री राज! इस नगरीमें मेरी चार पुत्र सहित चार पत्नीयें रहती हैं। उनको मैं नजरसे पहचान सकता हूँ परन्तु उनके निवास गृहको मैं नहीं जानता।" अभयकुमारने उत्तर दिया कि "उनको मैं बुद्धिबलसे ढूंढ निकालूंगा।" तत्पश्चात् मंत्रीश्वरने प्रवेश करने व निकलनेके भिन्न भिन्न द्वार वाला एक प्रसाद बनवाया। उसके मध्यमें शरीरपर कृतपुण्यकी आकृति वाली लेपकी एक यक्ष प्रतिमा स्थापित की फिर नगरमें ऐसा ढिंढोरा पिटाया कि "शहरकी समस्त पुत्रवती स्त्रियें अपने पुत्र सहित उस यक्षकी प्रतिमाको नमन करने आवें।" तत्काल नगरकी स्त्रियें अपने अपने पुत्रोंको साथ ले कर यक्षके दर्शनार्थ वहां आने लगी, और एक द्वारसे प्रवेश कर दूसरे द्वारसे निकलने लगी। इस समय

वह रूपवती वृद्धा भी पुत्र सहित चारों वधुओंको ले यक्षप्रतिमाको नमन करने आई । उन्हें पहचान कृतपुण्य ज्योंही अभयसे कहता है, इतनेमें तो वे चारों छोटे पुत्र यक्षकी आकृति देख उसे अपना पिता जान 'हे तात ! हे तात ! ऐसा वह कर पुकारने लगे और कोई तो उसके पेटसे चीपक पड़ा तथा कोई उसकी दाढी मूंछ पकडने लगा । उस समय अभयने कहा कि, "हे कृतपुण्य । ये तेरे पुत्र और ये तेरी पत्नीये हैं। " फिर अभयकुमार रूपवतीके घर गये और उसका सर्वस्व ला कर कृतपुण्यको दिया । तत्पश्चात् अनग सेना वश्याको भी अपने यहां बुलाया। इस प्रकार कृतपुण्यके सात स्त्रिये हुई ।

एक बार जगद्बंधु श्रीमहावीरप्रभु वहां पधारे कृतपुण्यभी जगदीशको वन्दना करने गय । सर्वज्ञ प्रभुकी धर्मदेशना सुन अन्तम अञ्जलि जोड कृतपुण्यने प्रभुसे पूछा कि, "हे भगवन् ! मेरे किस कर्मके उदयसे मेरे जीवनमें सम्पत्ति और विपत्ति बीच बीचमें आती रही ? "प्रभुने उत्तर दिया कि, "हे कृतपुण्य ! तेरा पूर्व भव सुन —

श्रीपुरनगरमें एक निर्धन गोपालका पुत्र रहता था उसने एक दिन घर घर खीरका भोजन होते देख उसकी मातासे खीरकी याचना की। गरीब माता उसके घरमे खीर बनानेकी व्यवस्था न होसकनेसे रोने लगी । उसे रुदन करती देख पडोसकी दयालु स्त्रियोंने उसे दूध आदि खीरकी सामग्री ला दी। उससे गरीब माता खीर बनाकर पुत्रको परोस

स्वय किसी कार्यवश बाहर गई कि उसी समय मासखमणके पारणेवाले कोई दो मुनि यहा पधारे । उनको देख उल्लासपूर्वक गोपालपुत्रने खीरका एक भाग उनको भेट किया। उसे थोडा देख दूसरा भाग दिया, फिर इसी प्रकार तीसरा भाग दिया । इस प्रकार तीन बार दे कालयोगसे मृत्यु प्राप्त कर वह वत्सपालका पुत्र तू यहा उत्पन्न हुआ है। पूर्वभव में तूने ठहर ठहर कर दान दिया था, इससे तुझे इस भवमें आतरे आतर सुख सपत्ति मिलती रही ।"

इस प्रकार पूर्वभव सुननेसे कृतपुण्यको जातिस्मरण ज्ञान हो आया जिससे उसने अपना पूर्वभव देखा और उनके फलस्वरूप तत्काल वैराग्य हो आनेसे अपने ज्येष्ठ पुत्र पर गृहका भार रख उसने भाव पूर्वक दीक्षा ग्रहण की और तीव्र तप कर पाचवे देवलोकमे गया । वहासे निकलकर अन्तमें मनुष्य हो कर मोक्षमें जायेगा ।

विलम्बरहित भावपूर्वक शीघ्र और स्वशक्ति अनुसार मुनिको दान देना चाहिये क्यों कि वत्सपालका जीव कृत पुण्य दानके प्रभावसे ही अपूर्व सपत्ति प्राप्त कर अनुक्रमसे मोक्ष प्राप्त करेगा ।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ सप्तषष्ठ्यधिकशततम प्रबध ॥ १६७ ॥

व्याख्यान १६८

भोजन समय मुनिको खोजकर दान देना

भोजनसमयेऽवश्य, सस्मार्या मुनिसत्तमाः ।
ततो भोजनमश्नीयात्, धनावहाख्यश्रेष्ठिवत् ॥ १ ॥

भावार्थ —" भोजन समय मुनियोंको अवश्य खोज कर बादमें धनावह श्रेष्ठी तरह भोजन करना चाहिये । "

धनावह श्रेष्ठीकी कथा

एक बार प्रथम तीर्थकरके जीव धनावह सार्थवाहने बहोत सार्थोंके साथ ग्रीष्म ऋतुमें प्रयाण किया । मार्गमें अत्यन्त वृष्टि होनेसे समस्त पृथ्वी कादवसे आकुल हो गई, इससे सार्थवाहको जंगलके मार्गमें ही पडाव डालकर रहना पडा । उसके साथ धर्मघोषसूरिजी भी वहा योग्य स्थलमें रहे । सार्थके लोग भोजन सामग्री समाप्त हो जानेसे वनसे कन्दमूल वगेरे फल ला कर उससे अपना उदर पोषण कर जीवन व्यतीत करने लगे ।

एक बार धनावह श्रेष्ठी सबकी खबर ले भोजन करने बैठा कि उसे सूरिजीका स्मरण हो आया । उसने विचार किया कि, " अहो ! मुझे धिक्कार है। आज पन्द्रह दिन व्यतीत हो चुके हैं किन्तु मैंने सूरिजीकी बिलकुल खबर नही की । वे मुनीश्वर अप्रासुक, अपक्व और उनको उद्देश कर बनाया हुआ भोजन ग्रहण नही करते, अत उनका निर्वाह किस

अकार चल रहा होगा ?" इस प्रकार विचार कर सूरिजी समीप जा, धन्ना कर कहा कि, "हे स्वामी! आप प्रसन्न हो मेरे साथ मुनियोंको वोहरानेको भेजिये।" सूरिजीने धना वहके साथ दो मुनियोंको भेजा। श्रेष्ठीने उनको निर्दोष घी महर्ष वहोराया। सर्व मुनियान उसके द्वारा मास क्षपणका पारणा किया जिस पुण्यके फल स्वरूप धनावह श्रेष्ठीने तरवें भवमें तीर्थंकर पद प्राप्त करनेका विचार किया।" वैद्य लोग भी जो घीको आयुष्य कहते हैं यह मिथ्या नहीं है क्योंकि, धनावह श्रेष्ठिन भी केवल इसके दानसे ही अपना आयुष्य शाश्वत बनाया था।"

वहासे धनावह युगलियामें उत्पन्न हो, वहांसे सौधर्म देवलोकमें देवता हुआ। वहांसे चव महाबल नामक विद्याधरेन्द्र हुआ। वहांसे ललितांग देव हुआ। वहांसे चव वज्रजंघ राजा हुआ। वहांसे फिर युगलिया हुआ। वहांसे पहिले देवलोकमें गया। वहांसे चव महाविदेह क्षेत्रमें जीवानन्द नामक वैद्य हुआ। जिसके चार मित्र थे। एक बार जब वे वैद्यके घर बैठे हुए थे, तो किसी साधुको कुष्ट रोगसे पीडित देख उन्होंने वैद्यसे कहा कि, 'इस मुनिकी चिकित्सा कीजिये।" वैद्यने उत्तर दिया कि, 'लक्षपाक तैल तो मेरे पास है परन्तु यदि रत्न कम्बल और गोशीर्ष चन्दन तुम ला कर दो तो मैं मुनिजीकी चिकित्सा करू।" फिर वे पांचो मीलकर किसी वणिककी दुकान पर गये और उन वस्तुओंकी माग की। वपारी वणिकने उस वस्तुका तुमको क्या प्रयोजन है? यह पूछा। पूछनेसे

साफ साफ कारण कहा गया इससे उस वणिकने वे वस्तुये विना मूल्य ही भेट दी जिसके फल स्वरूप वह वणिकने उसी भवमे सिद्धपद प्राप्त किया। ये पाचों मित्र मिलकर वापस मुनिजीके पास गये। पहले लक्षपाक तेल द्वारा मुनिजीने अङ्गका मर्दन किया, फिर रत्न कम्बलसे उसे आच्छादित किया, जिससे शरीरस्थ समस्त कृमि निकल कर उसमे भर गये फिर गोशीर्ष चन्दनका लेप किया। इस प्रकार तीन बार करनेसे मुनिजीका रोग मूलसे नष्ट हो गया। उन कीडोंको उन्होने मृत गायके कलेवरमें रखा, क्योंकि दयालु पुरुष उन कीडोंको भी निराश नही कर सकते।" फिर रत्न कम्बल और बचे हुए गोशीर्ष चन्दन इन दोनोको वेच, उनसे उत्पन्न हुए द्रव्य द्वारा अति उत्तम जिन प्रासाद बनवाया। आयु क्षय होने पर काल कर व पाचों मित्र बारहवे देवलोकमे गये। जहासे च्यव जीवानन्द वैद्य का जीव चक्रवर्ती हुआ और अन्य चारों क्रमसे बाहु, सुबाहु, पीठ और महापीठ नामक चक्रीके छोटे बन्धु हुए। फिर वे सर्वार्थसिद्ध विमानमे गये। जहासे च्यव धनावहका जीव ऋषभदेव प्रभु हुए। वाहुका जीव भरत, सुबाहुका जीव बाहुबल और पीठ तथा महापीठका जीव ब्राह्मी और सुन्दरी हुआ पूर्व भवमे दम्भयुक्त तपस्या करनेसे उन्होंने स्त्रीपना प्राप्त किया।

इस दृष्टान्तका विशेष वर्णन प्राचीन आचार्य द्वारा रचित अठारह हजार श्लोकके प्रमाण वाले दर्शनरत्नाकर नामक ग्रन्थसे जाना जा सकता है।

"इस प्रकार विधिपूर्वक एक बार दान देनेसे धनावह

सार्थवाहने तरवे प्रथमें उज्ज्वल और सर्वोत्तम तीर्थंकर पदको प्राप्त किया।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ अष्टषष्ट्यधिकशततमः प्रबंध ॥ १६८ ॥

व्याख्यान १६९

जैन राजाओंकी दानविधि

शानपिंड न गृह्णंति, आद्यांतिमजिनर्षय ।
भूपास्तदा वितन्वंति, श्राद्धादिभक्तिमन्वहम् ॥१॥

भावार्थ —"प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरके मुनि राजपिंड ग्रहण नहीं करते इसलिये उस समयके जैन राजा सदैव श्रावक आदिकी भक्ति करते हैं।" इस बातकी पुष्टि श्री कुमारपाल राजाकी कथासे होती है।

कुमारपाल नृपकी कथा

एक समय आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिजीने जब कुमारपाल राजाके समक्ष इस विषयका वर्णन किया कि, "मुनियोंको राजपिंड अकल्पनीय है" तो उन्होंने आचार्यसे प्रश्न किया कि, "हे भगवन्! यदि जैन मुनि मेरे घरका अन्न स्वीकार न करे तो फिर मेरे बारह व्रतका पालन कैसे होगा?" और मैं उत्तम श्रावक धर्मका आराधक कैसे बन सकूंगा? अतः हे गुरुदेव! आप

मेरे घरका आहार स्वीकार कीजिये।" आचार्यश्रीने उत्तर दिया कि, 'हे सोलकी कुल भूषण! प्रथम और अंतिम तीर्थ करके मुनियोंको राजपिंड अकल्पनीय है, परन्तु हे राजन्! आप श्रावक आदिका पोषण करो। पूर्वमें भी जब श्री नाभिराजाके पुत्र ऋषभदेव जब अष्टापदगिरि पर समवसरे-पधारे थे उस समय भरतचक्रीने पांचसो गाड़े विविध जातके पकवानोंसे भर साधुओंको आमंत्रण किया था परन्तु प्रभुने जब उसका निषेध किया तो भरतचक्रीको अत्यन्त खेद हुआ। उस समय इन्द्रने प्रभुसे पूछा कि, "हे भगवन्! अवग्रह कितने प्रकारके है?" प्रभुने उत्तर दिया कि, "हे इन्द्र! अवग्रह पांच प्रकारका है। देवेंद्रावग्रह, राजावग्रह, गृहपत्यवग्रह, सागरिकावग्रह और साधर्मिकावग्रह। यहा राजावग्रहमें भरतचक्रीको, गृहपत्यवग्रहमें मंडलिक राजाका, सागारिकावग्रहमें जिसकी वसती काममें लेवे उस शय्यातरको और साधर्मिकावग्रहमें साधर्मिक अर्थात् सयमीको ग्रहण करना चाहिये। इन पांच अवग्रहोंमें उत्तरोत्तर अवग्रहसे पूर्वपूर्वका बाध समझना चाहिये। जैसे राजावग्रह द्वारा इन्द्रावग्रह बाधित होता है, अर्थात् राजाका अवग्रह लेनेसे इन्द्रके आग्रहका प्रयोजन कम रहता है।" ऐसे वचन सुन इन्द्रने कहा कि, "जो ये मुनि मेरे अवग्रहमें विचरते हैं उनको मैंने अवग्रहकी आज्ञा दे रक्खी है।" इस पर भरतने विचार किया कि, "मैं भी मुनियोंको अवग्रहकी आज्ञा क्यों न दूं कि जिससे मेरी कृतार्थता हो।" ऐसा विचार जब भरतचक्रीने अपने अवग्रहकी आज्ञा दी फिर

लाये हुए पक्वानोंके लिये भरतने इन्द्रसे पूछा, तो इन्द्रने कहा कि 'हे भरत ! तुम जो य पाकमें गाढ पक्वानके लाये हो, इनके द्वारा तुमसे अधिक गुणवान् श्रावकोंकी पूजा-भक्ति करो।" अत भरतने श्रावकोंको बुला कर कहा कि, "तुम सदैव मेरे घर पर आकर भोजन किया करो। कृषि आदि कुछ मत करना धर्मध्यान परायण रहकर जीवन बीताओ और मेरे पास समीप आकर मुझसे कहना कि —

जितो भवान् वर्धते भी, तस्मान्मा हन मा हन।

"आप जीताय गये है, भय बढ़ता जाता है, अत मत मार मत मार।" भरतके वचनानुसार ही नित्यक्रमसे श्रावक करने लगे। इधर भरत सुखमग्न हो गया लेकिन सदैव श्रावकों द्वारा कथित पूर्वोक्त वचन सुन यह विचारने लगता है कि, 'मैं किससे जीता गया हूँ?" अज्ञान और कषायोंसे! "भय किससे बढ़ता है?" उन्हींसे! "किसको नहीं मारना?" आत्माको! इस प्रकार चिंतित कर यह भाव पूर्वक निःस्पृह हस्ते देवगुरुकी स्तुति करने लगता था।

इस प्रकार निरन्तर करते रहनेसे भोजन करनेवालोंकी संख्याम दिनप्रतिदिन वृद्धि होने लगी, और रसोइयोंने भोजन बनानेसे घबरा कर महाराजा भरतको आ कर कहा कि, "इन भोजन करनेवालोंमें कौन श्रावक है और कौन श्रावक नहीं है इसका भी अब तो पता चलाना कठिन है।" इस पर भरतचक्रीने उत्तर दिया कि, 'उनको श्रावकके बारह व्रत पूछ

कर फिर भोजन दिया करो।" फिर उनको पहचाननेके लिये राजा भरतने काकिणी रत्न द्वारा उनके शरीर पर तीन तीन जनोईकी तरह लकीर और वैसे चिह्नवाले बारह व्रतरूप बारह तिलक करनेवाले, और भरतचक्री द्वारा निर्मित चार वेदोंको जाननेवालेको ही श्रावक समझनेकी घोषणा सब नगर्‌ की। छ महीने पश्चात् जब नये श्रावक बने तो उनको भी उसी प्रकार काकिणी रत्नद्वारा जनोइ लांछित किया गया।

भरतचक्रीके पश्चात् उसके पुत्र आदित्ययशाने श्रावकोंको पहिचाननेके लिये उन्हें सुवर्णकी यज्ञोपवीत पहनाई, उसके पश्चात् जो महायशा आदि राजा हुए, उन्होंने प्रथम रूपेकी यज्ञोपवीत कराई व बादमें कई राजाओंने विचित्र पट्टसूत्र आदिकी यज्ञोपवीत बनवाई। तब ही से यज्ञोपवीत पहनना आरम्भ हुआ, जो ब्राह्मण आदिमें अब तक जारी है।

इस प्रकार श्री हेमचन्द्रसूरिजीने कुमारपाल राजाको सर्व स्वरूप बतला कर कहा कि, "हे राजन्! तुमको बारवें व्रतमें साधर्मि वात्सल्य करना उचित है।" इस पर कुमारपालने अपने आधीन क्षेत्रमें रहने वाले श्रावकों परसे समस्त कर उठा दिये, जिसके फल स्वरूप उसे प्रति वर्ष बहत्तर लाख द्रव्यकी क्षति हुइ। अपितु उसने साधर्मी बन्धुओंके लिये चौदह कोटी द्रव्यका व्यय किया।

पारणेके दिन स्वनिर्मित श्री त्रिभुवनपाल विहार नामक प्रासादमें स्नात्र महोत्सवके अवसर पर जब साधर्मि एकत्रित होते थे तो कुमारपाल भी उस समय उनके साथ बैठ भोजन

किया करता था। भोजन समय सैन्य दीन, दुःखी, अज्ञात और क्षुधातोंको अनुकम्पा दान देनेके लिये दुन्दुभी बजवाकर यह अन्न दान देते पश्चात् राजा स्वयं भोजन करता था। उन्होंने कई दानशालायें स्थापित की थीं।

कहा भी है कि, "राजा कुमारपाल घी, भात, अनेक प्रकारकी रसोईसे आदि माण्डा, शाक, बड़ा, दही और तीखा पधारे हुए पदार्थ उत्तम श्रावकोंको सत्कार पूर्वक जीमाते थे। दुःखी श्रावकोंर कुटुम्बको श्रेष्ठ वस्त्र देते थे और जैन-धर्ममें पूर्ण श्रद्धा रख उन्होंने अनेक दानशालायें बनवाई थीं।"

"इस प्रकार श्रावकने बारह व्रतमें साधर्मिक भक्तिको उच्च रूपसे विस्तारित कर कुमारपाल राजाने सम्प्रति राजाका एवं भरतचक्री-आदि राजाका स्मरण कराया था।"

इत्यब्दादिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ एकोनसप्तत्यधिकशततम प्रबंध ॥ १६९ ॥

व्याख्यान १७०

साधर्मिक सेवाका फल

साधर्मिवत्सले पुण्य, यद्भवेत्तद्वचोऽतिगम् ।
धन्यास्ते गृहिणोऽस्य, तत्कुर्वन्ति प्रत्यह ॥ १ ॥

भावार्थ —"साधर्मि वात्सल्य करनेमें जो पुण्य होता है उसका वचन द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता।

जो गृहस्थ सदैव साधर्मि वात्सल्य कर भोजन करते हैं उनको धन्य है।"

विस्तारार्थ —"साधर्मि वात्सल्यका यह मतलब है कि अपने पुत्रादिकके जन्मोत्सव तथा विवाह आदि अन्य अवसरों पर साधर्मियोंको निमन्त्रण कर विशिष्ट भोजन करा ताम्बूल आदिका दान करना और यदि कोई साधर्मि आपत्ति-ग्रस्त हो तो उसे अपना धन व्यय करके भी उद्धार करना। कहा भी है कि —

न कयं दीणुद्धरणं, न कयं साहम्मियाण वच्छल्लं ।
हिययम्मि वियराओ, न धारिओ हारिओ जम्मो ॥ १ ॥

"जिसने दीन जनोंका उद्धार नहीं किया, साधर्मि वात्सल्य नहीं किया और हृदयमें श्री वीतराग प्रभुका स्मरण नहीं किया उसका जन्म ही वृथा-फोगट है।" अपितु धर्ममें अस्थिर लोगोंको स्थिर बनाना, प्रमादीको धर्म सिखाना, अकार्यमें प्रवृत्त लोगोंको उनसे हटाना और शुभ कार्यमें प्रवृत्त होनेकी प्रेरणा बारबार करना चाहिये। कहा भी है कि, "प्रमादीको धर्मकार्यमें प्रवृत्त करना-सारणा, अनाचारमें प्रवृत्त हुएको रोकना-वारणा, धर्मभ्रष्टको उसके अकार्यका बुरा फल बतलाना-चोयणा, और निष्ठुरको धिक्कारना-पडिचोयणा कहलाती है।" इस प्रकार पांच प्रकारके स्वाध्याय आदिमें जिसका जिस प्रकार हो सके उस प्रकार विनियोग करना चाहिये। धर्मानुष्ठान आदि हो सकनेको साधारण पौषध

शाला आदि बनाना, तथा पुण्यवान गृहस्थको श्रावकोंके सदृश श्राविकाओंका भी वात्सल्य करना चाहिये। जिस श्रावकोंका वैभव अन्तरायकर्मके उदयसे क्षय हो गया हो उनको फिरसे धनाढ्य बनानेका अत्यन्त प्रयत्न करना चाहिये। सुना जाता है कि, थरादके निवासी श्रीमाली आभू नामक संघपतिने तीनसो साठ साधर्मियोंको उसके समान धनाढ्य बनाया था। साहित्यमें भी कहा है कि, "वे हेमगिरि अथवा रजताद्रि किस कामके? वे जिन्होंने अपने आश्रित वृक्षोंको अपने सदृश नहीं बनाये, हमें तो केवल मलयाचलको ही आदर्णीय समझते हैं कि जिसके आश्रित आम्र, निम्ब और अन्य कुटवृक्ष भी चन्दनरूप हो जाते हैं।"

श्री सम्भवनाथ प्रभु उनके पूर्वके तीसरे भवमें धातकीखंडके ऐरावत क्षेत्रमें क्षमापुरी नगरीमें विमलवाहन नामक राजा थे, उन्होंने बड़े दुष्काल पड़ने पर साधर्मिकजनोंको भोजन देने मात्रसे तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन किया था। तत्पश्चात् वे दीक्षा ले आनत देवलोकमें देवता हुए बादमें सम्भवनाथ नामक तीर्थंकर हुए। जब वे फाल्गुन शुक्ला अष्टमीको जन्म पाये उस समय वहाँ बड़ा भारी दुष्काल था परन्तु उनके जन्मसे उसी दिन सब ओरसे धान्य आ पहुँचा और नये धान्यका सम्भव हुआ इसीसे उनका नाम भी सम्भवकुमार रखा गया। आदि दृष्टान्तोंसे साधर्मिकवात्सल्यका पुण्य वचन द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता, अतः जो गृहस्थ प्रतिदिन उसका आचरण कर भोजन करता है, उसको धन्य है। इस विषयमें भरतचक्रीके वंशमें हुए तीनखंडके अधिपति दंडवीर्यकी कथा प्रसिद्ध है

जो गृहस्थ सदैव साधर्मि वात्सल्य कर भोजन करते हैं उनको धन्य है।"

विस्तारार्थ —"साधर्मि वात्सल्यका यह मतलब है कि अपने पुत्रादिकके जन्मोत्सव तथा विवाह आदि अन्य अवसरों पर साधर्मियोंको निमन्त्रण कर विशिष्ट भोजन करा ताम्बूल आदिका दान करना और यदि कोई साधर्मि आपत्तिग्रस्त हो तो उसे अपना धन व्यय करके भी उद्धार करना। कहा भी है कि —

न कय दीणुद्धरण, न कय साहम्मियाण वच्छल्ल ।
हिययम्मि वियराओ, न धारिओ हारिओ जम्मो ॥ १ ॥

"जिसने दीन जनोंका उद्धार नहीं किया, साधर्मि वात्सल्य नहीं किया और हृदयमें श्री वीतराग प्रभुका स्मरण नहीं किया उसका जन्म ही वृथा-फोगट है।" अपितु धर्म में अस्थिर लोगोंको स्थिर बनाना, प्रमादीको धर्म सिखाना, अकार्यमें प्रवृत्त लोगोंको उनसे हटाना और शुभ कार्यमें प्रवृत्त होनेकी प्रेरणा बार बार करना चाहिये। कहा भी है कि, "प्रमादीको धर्मकार्यमें प्रवृत्त करना-सारणा, अनाचारमें प्रवृत्त हुएको रोकना-वारणा, धर्मभ्रष्टको उसके अकार्यका बुरा फल बतलाना-चोयणा, और निष्ठुरको धिक्कारना-पडिचोयणा कहलाती है।" इस प्रकार पांच प्रकारके स्वाध्याय आदिमें जिसका जिस प्रकार हो सके उस प्रकार विनियोग करना चाहिये। धर्मानुष्ठान आदि हो सकनेकी साधारण पौषध

शाला आदि बनाना, तथा पुण्यवान गृहस्थको श्रावकोंके सदृश श्राविकाओंका भी वात्सल्य करना चाहिये। जिस श्रावकका धैर्य अन्तरायकर्मके उदयसे क्षय हो गया हो उनको फिरसे धनाढ्य बनानेका अत्यन्त प्रयत्न करना चाहिये। सुना जाता है कि, धाराके निवासी श्रीमाली आभू नामक सङ्घपतिने तीनसौ साठ साधर्मियोंको अपने समान धनाढ्य बनाया था। साहित्यमें भी कहा है कि, "वे हेमगिरि अथवा रजताद्रि किस कामके? कि जिन्होंने अपने आश्रित वृक्षोंको अपने सदृश नहीं बनाये, हमें तो केवल मलयाचलको ही आदरणीय समझते हैं कि जिसके आश्रित आम्र, निंब और अन्य कुटजक भी चन्दनरूप हो जाते हैं।'

श्री सम्भवनाथ प्रभु उनके पूर्वके तीसरे भवमें धातकीखंडके ऐरावत क्षेत्रमें क्षेमापुरी नगरीमें विमलवाहन नामक राजा थे, उन्होंने बड़े दुष्काल पड़ने पर साधर्मिकजनोंको भोजन देने मात्रसे तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन किया था। तदपश्चात् वे दीक्षा ले आनत देवलोकमें देवता हुए बादमें सम्भवनाथ नामक तीर्थंकर हुए। जब वे फाल्गुन शुक्ला अष्टमीको जन्म पाये उस समय वहाँ बड़ा भारी दुष्काल था परन्तु उनके जन्मसे उसी दिन सब ओरसे धान्य आ पहुँचा और नये धान्यका समय हुआ इसीसे उनका नाम भी सम्भवकुमार रखा गया। आदि दृष्टान्तोंसे साधर्मिकवात्सल्यका पुण्य वचन द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता, अतः जो गृहस्थ प्रतिदिन उसका आचरण कर भोजन करता है, उसको धन्य है। इस विषयमें भरतचक्रीके वंशमें हुए तीनखंडके अधिपति दंडवीर्यकी कथा प्रसिद्ध है कि —

राजा दण्डवीर्य सदैव पहले साधर्मिकको भोजन करा, बादमें भोजन करता था। एक बार इन्द्रने उसकी परीक्षा करनेके लिये पूर्व वर्णन किये अनुसार कोटि श्रावकोंको तीर्थ-यात्रा कर आते हुए विकुर्वीत यीये बनाये दण्डवीर्यको बतलाये। राजाने भक्तिपूर्वक उनको निमत्रण कर भोजन कराना आरभ किया। भोजन कराते कराते सूर्य अस्त हो गया। दूसरे दिन भी ऐसा ही हुआ। इस प्रकार करते करते आठ दिन बीते और राजाको आठ उपवास हो गये। तथापि उसका भक्तिभाव कम नही हुआ, बल्के बढता ही रहा। राजाकी ऐसी शुद्ध वृत्ति देख इन्द्र सतुष्ट हुआ और उसने उसे दिव्य धनुष, बाण, रथ, हार और दो कुण्डल दिये। तथा उसके साथ शत्रुजयकी यात्रा करनेकी और महातीर्थका उद्धार करनकी आज्ञा प्रदान की। राजा दण्डवीर्यने भी वैसा ही किया। इस विषयमे यदि विशेष जाननेकी आवश्यकता हो तो शत्रुजय महात्म्यको पढ।

इस विषयमें शुभकर श्रेष्ठिकी एक और सुदर कथा प्रसिद्ध है कि —

शुभकर श्रेष्ठाने उसके जन्ममे एक लाख ज्ञाति बधुओंको भोजन कराया, एक लाख कन्या दान दीया, एक लाख गोदान दे, और एक लाख ब्राह्मणोंको भोजन कराया, अर्थात् चार लाखकी सख्या पूर्णकर मृत्युको प्राप्त हुआ और मर कर वो ही मकानमे जहा पहले द्रव्य रकखा हुआ था, वही सर्प हुआ, और प्रतिदिन उसके पुत्रादिको डराने लगा। उसके

घरके समीप ही धर्मदास नामक एक श्रावक रहता था, जो शुभकर श्रेष्ठीके सदृश धनवान् नही था, अत वह प्रति वर्ष एक मुनि, एक साध्वी, एक श्रावक और एक श्राविकाको भावपूर्वक दान दिया करता था। उस पुन्यसे उसे अवधिज्ञान हुआ। एक बार जब शुभकर श्रेष्ठीके पुत्रोंने मिलकर सर्पके डरानेकी बात धर्मदासको कही तो उसने कहा कि, ' यह सर्प तुम्हारा पिता है। इसने पूर्वभवमें लक्ष ज्ञाति भोजन आदि करा कर पट्कायका आरम्भ किया है। ज्ञाति भोजन करानेसे अनेक पत्रावलियोंका ढेर हो गया, जिनमे विवेक रहितासे द्वीन्द्रिय आदि अनेक जीवोकी विराधना हुई। इस प्रकार चार लाखके दानमें इसने इस प्रकार महापाप उपार्जन किया, इसके विषयमें तुम स्वय विचार करो। इस पापके फल स्वरूप तो यह इस भवमे सर्प हुआ है और गतभवमे इसने मेरे धर्मकृत्यों की निन्दा की थी इससे यह दुर्लभ बोधी जीव हुआ है। जहासे मृत्यु प्राप्त कर यह नरकमे जायेगा।"

इस प्रकार सत्य हकिकत सूचक धर्मदासके वचन सुन शुभकर श्रेष्ठीके पुत्र प्रतिबोधित हो श्रावक बने। धर्मदासने उसी भवमें मुक्ति प्राप्त किया।

"अपने तीसरे भवमे श्री संभवनाथका जीव, श्री दण्ड वीर्य राजा हुआ और धर्मदास साधर्मिक बन्धुओंकी सेवासे परम सुखके स्थानको प्राप्त हुए।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ सप्तत्यधिकशततम प्रबंध ॥ १७० ॥

व्याख्यान १७१

पौषधशाला बनानेका फल

पुण्याय कुर्वते धर्म शालादि ये जनाः सदा ।
तेषा स्याद्विपुल पुण्यमामभूमिपतेरिव ॥ १ ॥

भावार्थ —"जो सदैव पुण्यप्राप्तिके लिये धर्मशाला आदि बनाते हैं उनको आमराजा सदृश बडा फल होता है।"

आम राजाकी कथा

गोपगिरि पर पू आ श्री बप्पभट्टसूरिजीके प्रतिबोधसे श्री आम राजाने सहस्र स्थभ वाली एक पौषधशाला बनवाई। उस पौषधशालामें साधु और श्रावकोंकी सुगमताके लिये प्रवेश और निर्गमके तीन द्वार बनाये। उसके दूर भागमें पट्टशाला मे बैठे साधुओंको पडिलेहण तथा स्वाध्याय आदि सात मडलीका समय बतलानेको मध्यस्तम्भमें एक बडी घडियाल बांधी थी। जिसका टङ्कार उसी समय होता था। उस शालाका व्याख्यानमण्डप तीन लाख रुपय खर्च कर बनाया गया था। वह ज्योतिरूप मणिमय शिलाओंसे आच्छादित था और चन्द्र कान्त मणिसे उसका तलिया बांधा गया था। इससे बारह सूर्य सदृश उसका तेज पडता था इससे रात्रिमें भी सर्व अन्धकारका नाश हो जानेसे पुस्तकके अक्षर पढे जा सकते थे। इस प्रकार सूक्ष्म और बादर जीवोंकी अविराधनाके लिये उसने महा तेजस्वी उपाश्रय बनाया था।

इस विषयमे एक और भी दृष्टान्त–कथा है कि, गुजरात पाटणमे सिद्धराजजयसिंहके सर्व व्यापारका उपरी–अधिकारी, पाच हजार अश्वका स्वामी श्रीमाल ज्ञातिका सातू नामक मन्त्री था। वह स्याद्वाद रत्नाकर ग्रन्थके कर्ता आचार्य श्री वादिदेव सूरिजीका परम भक्त था। उसने चोरासी हजार टङ्कारव द्रव्य खर्च कर राजमहल सदृश एक अपूर्व घर बनवाया था, जिसकी शोभाको देखनेके लिये लोगोंके झुण्डके झुण्ड आने लगे। एक बार अपना घर गुरुजीको बतलाया, किन्तु जब सूरिजीने उसकी कुछ भी प्रशंसा नहीं की, तो मन्त्रीने उसका कारण पूछा जिस पर सौभाग्यनिधान नामक छोटे साधु–क्षुल्लकने कहा कि –

खण्डनी पपणी चुल्ली, जलकुम्भ प्रमार्जनी ।
पंचैते यत्र तिष्ठन्ते, तेन नो वर्ण्यते गृह ॥ १ ॥

"जिसमे ऊँखल, घटी, चूना जलका पनीआरा और सावरणी, ये पाच वस्तुए मात्र होती है ऐसे इस घरकी मैं क्या प्रशंसा करूं।" अपितु 'सुघरी, कौआ, चकला, आदि अनेक पक्षी भी यत्न से अपने घर तो बनाते ही हैं, किन्तु उससे उनको कोई पुण्य नहीं मिलता।" अतः हे मन्त्रीराज! यदि ऐसी पौषधशाला होती तो उत्तम बात थी क्योंकि वो धर्मकी हेतुभूत है तब कि अन्य घर तो पापके हेतुरूप हैं, इसीसे गुरुजीने इसकी प्रशंसा नहीं की। अपितु हे मन्त्री! घर, सरोवर, विवाहादि प्रसंग और युद्ध ये सब आरंभसे होते हैं इस लिये इन सबकी प्रशंसा करना मुनिको योग्य नहीं है।"

इस प्रकार सुनने पर मत्रीने विचार किया कि "साधुओंको वसतिदान करनेसे बडा पुण्य होता है । पूर्वमें भी जयती श्राविका, वकचूल और अवतिसुकुमार आदि वसतिदान करनेसे इच्छित स्थान को प्राप्त हुए हैं, अपितु मेघकुमार एक क्षुद्र जीव (ससला) को स्थान देनेसे बडे भारी सुख को प्राप्त हुआ है । यह मुनिगण तो सर्वजीवोंको अभय देने वाले हैं इनको वसतिदान करने का बडा फल है और जो मुनिआको आश्रय नही देते वे नमुचि प्रधान सदृश दुखि होते हैं ।" ऐसा विचार कर उस मत्रीने उसका यह निर्दोषगृह धर्मनिमित्त अर्पण कर दिया । आधाकर्मी आहार सदृश मुनिनिमित्त किया उपाश्रय भी मुनिको अकल्पित हैं किन्तु इसमे ऐसा कोई दोष भी नही था, इस प्रकार वो स्थान मुनिको-श्रीसघको अर्पण कर मत्रीने अपने जीवनमे दूसरी भी कई धर्मशालाये बनवाई ।

'जो सर्व सिद्धिरूप स्त्रीकी वरमाला सदृश पौषधशाला बनवाते हैं वे सम्यक्त्वरूप बीजकी विशाल और निर्मल लक्ष्मी प्राप्त करते हैं ।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ एकसप्तत्यधिकशततम' प्रबध' ॥ १७१ ॥

व्याख्यान १७२

साधुको अकरनीय दान नहीं देना चाहिये ।

त्यक्तु योग्य विषमिश्र, कुत्सित मस्यवर्जित ।
क्रोधकैतवदुर्मत्या, दत्त दानमनर्थदम् ॥ १ ॥

भावार्थ —"त्याग करने योग्य, विषयुक्त, कुत्सित, अभक्ष्य, क्रोध कपट या दुर्मतिसे दिया हुआ दान अनर्थकारक होता है ।" इस विषयम नागश्रीकी कथा प्रसिद्ध है —

नागश्रीकी कथा

चपानगरीमे सोमदेव, सोमभूति और सोमदत्त नामक तीन सहोदर बधु रहते थे । जिनकी नागश्री, यज्ञश्री और भूतश्री नामक अनुक्रमसे तीन स्त्रियें थी। उन तीनों भाईयोंने गृहव्यवहारकी ऐसी स्थिति थी कि एक एकदिन सब एक एकके घर बारी बारीसे भोजन करते थे । एक बार नागश्री की बारी आने पर उसने अज्ञानम कडवी तुम्बडीका शाक बना दीया उसे हीग आदि द्रव्यसे भलि भाति चमका-बगार कर रसमसे उसन थोडासा चख कर देखा तो कडुवा मालुम हुआ। इस पर लोभसे खर्चे हुए द्रव्यका विचार कर उसने उसे एक पात्रमे पृथकतया रख दिया और दूसरे भोजनसे भर्ता आदि तीनो भाईको भोजन कराया ।

इसी बीच श्रीधमघोषसुरिजीके शिष्य धर्मरुचि नामक मुनि मासक्षमणके पारणेके दिन दैवयोगसे उस नागश्रीके घर आ पहुँचे। नागश्रीने यह विचार किया कि इस शाकमे खर्च

किए हुए द्रव्यका खर्च वृथा न हो इस लिए कडुवा शाक उस तपस्वी मुनिको वहोरा दिया। जिसको ले मुनि गुरुके पास पहुँचे "अहो! उस स्त्रीकी बुद्धिको धिक्कार है, कि जिसके घर कंचन-गिरि सदृश मुनिवर आये जिनको उसने उकरडा सदृश समझे। कल्पवृक्ष, सूर्य, कामकुंभ और पुण्योदधि जसे मुनिको उस पापी स्त्रीने आक, राहु, कुंभारके कुंभ और गदे पाणीका खड्डेके सदृश समझे। धर्मरुचि मुनिने वो आहार गुरुको बतलाया। गुरु चारज्ञानधारी होनेसे उस आहारको अयोग्य (विष मिश्रित) जान, बोले कि, "हे शिष्य! इस आहारको किसी शुद्ध स्थल पर छोड-परठव दो।" गुरुकी आज्ञासे जब धर्मरुचि मुनि वनमें गये तो वहा हस्तस्थित पात्रमेंसे किसी स्थानपर आहारका एक बिन्दु गिर पडा। उस बिन्दुके स्वादसे आकर्षित हो कई किडिये वहा एकत्रित हो गई किन्तु उसके स्वादको लेते ही हजारों किडिय वहा मरती नजर आई। इस पर उस मुनिने विचार किया कि, "जब इस आहारके एक बिन्दु मात्र ही इतना प्राणघातक है, तो फिर यह समग्र आहार तो न जाने कितने जीवोंको भस्मप्राय करेगा, अत अब मैं दूसरे जीवोंको सुखी बनाऊँ या मेरी जिह्वा को? यदि मैं अन्य जीवोंको अभय देकर इस आहारका भोजन करुगा तो मेरी इस जिन्दगीका अन्त होता है, किन्तु उसके साथ ही साथ भव (ससार) का भी अन्त होना सभव है, अन्यथा उलटी भवकी वृद्धि होगी। अथवा जिनाज्ञा पालना या मेरे जीवका पालन करना? अहो! जिनाज्ञा पालना ही योग्य है अपितु मेरे गुरुकी भी आज्ञा यह ही है कि, "शुद्ध निर्जिव स्थलमें जाकर इस

आहारको छोड़ देना।" तो फिर मेरे उदर सदृश दूसरा कौनसा निर्दोष स्थान ढूंढू? अरे जीव! पूर्वमें तूने अनेक जीवों वाले द्रव्यसे मधुर ऐसे मधु प्रमुख अभक्ष्य आहार किये हैं। यह आहार द्रव्यसे दुष्ट है परन्तु परिणाममें जीव दयाके सुन्दर ऐसे रसरूप होनेसे विशिष्ट है, अतः हे जीव! तू स्वयं ही इसे खा जा।" इस प्रकार विचार कर धर्मरुचि मुनिने जैसे सर्प अपनी बामीमें जाता है उसी प्रकार अदीन मन द्वारा उस आहारको अपने कोठेमें डाल दिया। फिर सब जीवोंको खमा कर उसी क्षणमें अनशन कर वे महा मुनि सर्वार्थसिद्ध विमानमें गये।

धर्मघोषसूरिजीने यह बात जान जब लोगोंके समक्ष नागश्रीका पापकी निन्दा की तो स्वजनोंने नागश्रीको घरसे बाहर निकाल दिया। सब स्थलमें भटकती हुई नागश्री अरण्यमें दावानलमें दग्ध हो मृत्युको प्राप्त कर छट्ठी नरकमें उत्पन्न हुई। फिर सातवीं नरकमें दो बार गई और अन्तमें अनन्त काल भव भ्रमण कर अनुक्रमसे पाण्डवोंकी स्त्री द्रौपदी हुई। इस विषयमें विशेष वृतान्त भी ज्ञातासूत्रमें पढ़ियेगा।

"त्याग करने योग्य भोजन मुनिको देनेसे नागश्रीने अनन्त काल संसारमें भ्रमण किया, अतः श्रावकको क्रोधादि दोषोंका त्याग कर सुपात्रको निरन्तर शुद्ध दान देना चाहिये।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ द्विसप्तत्यधिकशततमं प्रबंधः ॥ १७२ ॥

व्याख्यान १७३

दान के अनुमोदन करने वालेको भी फल देता है

फलं यच्छति दातृभ्यो, दानं नात्रास्ति संशयः ।
फलं तुल्यं ददात्येतत्-च श्चर्यं त्वनुमोदके ॥ १ ॥

भावार्थ —" दान दातारको फल देता है इसमे तो कोइ सन्देह नही परन्तु आश्चर्य तो इस बातको है कि वह अनुमोदन करने वालेको भी उतना ही फल देता है।" इस विषयमे बलभद्रमुनि आदिकी कथा प्रसिद्ध है कि —

दानके अनुमोदनमें मृगकी कथा

एक बार जब श्री नेमिनाथप्रभु गिरनार पर्वत पर समवसर्य-पधारे तो यह बधामणी पाकर श्रीकृष्ण वासुदेव उनको वन्दना करने गये। जिनेश्वरको वन्दना कर वैराग्य युक्त देशना सुन श्रीकृष्णने प्रभुसे पूछा कि, 'हे प्रभु! स्वर्ग सदृश इस द्वारिका नगरीका भावीकालमे क्या होगा?" जिनेश्वरने उत्तर दिया कि, 'मदिरापान द्वारा अन्ध बने हुए तुम्हारे साम्ब और प्रद्युम्न नामक दो पुत्रसे कुपित हुए द्वैपायनसे इस नगरीका विनाश होगा, और तत्पश्चात् जराकुमार द्वारा छोडे हुए बाणसे बाये पैरमे विंधित हो तुम मृत्युको प्राप्त हो कर तीसरी नरकमे उत्पन्न होगे।" प्रभुके वचन सुन जराकुमार मैं भाई-ओंका घातक न बनु! यह विचार कर वनमे चला गया, श्रीकृष्ण ऐसा आर्त्तध्यान करने लगा कि, "क्या मैं नरकमें जाउंगा?" उसे देख प्रभुने कहा कि, "हे अच्युत! तुम

आनेवाली चोवीसीमें अमम नामक बारवें तीर्थंकर होंगे, खेद मत करो।" यह सुन कृष्ण हर्षित हो अपनी नगरीमे आये और जितनी मदिरा उस नगरीमे थी, उस सबको निकलवा कर और तत्काल दूर जगलमें फिकवा दिया।

एक बार जब साबकुमार और प्रद्युम्नकुमार वनक्रीडाको दूर गये तो उन्हें गिरनार पर्वतकी गुफाओमें डाली हुई उस मदिराकी गन्ध आई और उसे बिरकाल पश्चात् देखनेसे अति लुब्ध हो यादव कुमारोंने वहाँ जा उसका पान किया। तत्पश्चात् मदसे विकल हो व यथेच्छ वनमें भ्रमण करने लगे। उसी समय जब द्वैपायन तपस्वी उनको दिखाई पडे तो उन समस्त कुमारोंने उन पर प्रगाढ प्रहार किये। जिससे क्रोधित हो द्वैपायनऋषिने तत्काल पण किया कि, "यदि मेरा तप प्रमाण भूत हो तो मैं यादवकी द्वारावती नगरीका नाशक बनु।" यह वृत्तान्त जब कुमारोंने श्री कृष्णको जा कर कहा तो वे तत्काल द्वैपायनके पास गये और उनसे कहने लगे कि, "हे महात्मन्! ऐसे भयङ्कर निश्चयको कृपा कर निष्फल करे।" इस पर द्वैपायनने उत्तर दिया कि, "यो वृथा नहीं हो सकता, परन्तु तुम दोनाको छोड कर अन्य किसीको नहीं बचाया जायेगा। अत अब तुम विशेष कुछ न कहो और अपने स्थानको लौट जाओ।" यह सुन कृष्णने द्वारिकामें आ घोषणा की कि, "हे लोगों! द्वैपायन तपस्वीने कोपसे अपनी नगरीके प्रलय करनेका निश्चय किया है, अत तुम सब जिनेश्वरके ध्यानमे एकाग्र चित्त बनों।" लोगोंने वैसा ही किया। उस

प्रसङ्ग पर श्री नेमिनाथ प्रभुने देशना दी कि, "सन्ध्याकालके बादलका रङ्ग, हस्तीके कान, दर्भके अग्र भागमें स्थित जल बिन्दु, समुद्रकी लहर और इन्द्र धनुष्य सदृश यह संसारिक द्रव्य, यौवन और राज्यसुख सब चपल है।" श्री नेमिनाथ प्रभुकी ऐसी देशना सुन कई लोगोंने दीक्षा ग्रहण की।

द्वैपायनऋषि मृत्युको प्राप्त हो अग्निकुमार निकायमें देव हुए। पूर्वके रोषसे वे द्वारिका नगरीमें उपद्रव करनेको आया, परन्तु कृष्णकी आज्ञासे लोक आयम्बील आदि तप-धर्म करते थे, इससे वो उनका पराभव करनेमें असमर्थ रहा। इस प्रकार अवसर देखते देखते उसे बारह वर्ष व्यतीत हो चुके। बादमें जब लोग लौकिक पर्वके दिन धर्मकार्यमें प्रमादी हो गये तो उस अवसरका लाभ ले उस दुरात्मा द्वैपायनने संवर्तक पवन द्वारा नगरमें तृणकाष्ठका क्षेपन कर उसमें आग लगा दी। उस समय अपने नगरसे बाहर गये यादवोंको भी उसमें ला कर उस अग्निमें डाले। इससे बलदेव-श्रीकृष्ण संभ्रमित हो रोहिणी, देवकी और वसुदेव इन तीनोंको रथमें बिठा कर नगर द्वार पर आये, वहां जब रथका घोडा एक कदम भी आगे न बढ सका तो वे स्वयं रथ खींचने लगे। उस समय द्वैपायन देव बोला कि, "हे बलदेव-श्रीकृष्ण! तुम वृथा प्रयास क्या करते हो? मैं तुम दोनोंके सिवाय अन्य किसीको नहीं छोडूंगा।" इतना कहते ही नगरीका जाज्वल्यमान दरवाजा रथ पर टूट पडा और रथमें बैठे हुए तीनों प्राणी मर गये किन्तु श्री नेमिनाथ प्रभुके ध्यानमें लीन होनेसे वे देवपनाको प्राप्त हुए।

बलराम और श्री कृष्णने उस नगरीका त्याग कर किसी पर्वतके शिखर पर चढ़ उस नगरीको छ महीने तक जलते देखा। तत्पश्चात् वे दोनों पाण्डुपुत्रों की पाडुमथुरा नगरीको जानेको उत्सुक हुए और अनुक्रमसे चलते चलते वो कौशबी नगरीके बनमें पहुँचे जहां दोनों एक वटवृक्षके निचे शिला पर विश्राम करने बैठे। उस समय अत्यन्त तृषातुर हो श्रीकृष्णने अपने भाईसे जलकी याचना की इस पर बलभद्र वहां अकेला कृष्णको छोड़ जलाशयमें पानी लेनेको गया। इस ओर कृष्ण पीताम्बर ओढ़ दीक्षण पर वाम चरण रख वृक्ष के नीचे सो रहा। उसी समय जरा कुमार उस ओर आ निकला। उसने दूरसे श्री कृष्णके पावको सुवर्ण मृगकी भ्रान्तिसे तीक्ष्ण बाण छोड़ा जिससे श्री कृष्णका वाम पर विंध गया और वह तत्काल जागृत होकर बोला कि, 'अहो! किस दुरात्माने यह कृत्य किया है?' यह सुन जराकुमार अपना आत्माको निंदता और लज्जासे अश्रुपात करता श्रीकृष्णके चरणोमें लौट रुदन करने लगा। कृष्णने कहा कि 'हे भाई! रुदन क्यों करता है? भगवन्तने जैसा कहा था वैसा ही हुआ है तो फिर उसमें शोककी क्या बात है? अब तो हे बान्धव! तू मेरा यह कौस्तुभ रत्न ले पाण्डवोंके पास जा और इसे पाण्डवोंको दे द्वारिकाके दाह आदिका सब वृतान्त कह सुनाना, इस कौस्तुभ रत्नकी निशाणीसे उनको सचमुच निश्चय हो जायेगा यदि तू यहांसे अभी नहीं चला जायेगा, तो बलभद्र अभी आते ही तुमको मार डालेगा।" यह सुन जराकुमार कौस्तुभ

रत्न ले पाडवोंकी पाण्डुमथुराके ओर चल पडा । उनके जाने बाद कृष्णने विचार किया कि, "गजसुकुमाल और ढढणकुमार आदिको धन्य है कि जिन्होंने मोहको वश कर परमानंद–मोक्ष प्राप्त किया । तत्पश्चात् जब प्राणान्त समय आया तो कृष्णको नरक योग्य लेश्या उत्पन्न हो आई अत उसने विचार किया कि, "अहो ! यदि मैं मेरी इस सुन्दर नगरी के जलाने वाले पापी वैरीको कदाच किसी प्रकार देख पाऊँ तो मैं उसको मार यमराजका अतिथि बना दू ।" इस प्रकार कुविचार कर मृत्युको प्राप्त कर वह तीसरी नरकमे गया ।

इस ओर बलभद्र कमलपत्रमें जल ले जब वटवृक्षके नीचे आये तो मृत श्रीकृष्णको सम्बोधित कर कहने लगे कि, ' हे बन्धु ! उठो, इस शीतल जलका पान करो। " इस प्रकार कइ बार कहने पर भी जब कोई प्रत्युत्तर नही मिला तो उसने उसके शरीरसे वस्त्र हटाया तो क्या देखता है कि, वो तो वाम पैरमे विंध कर मत्युको प्राप्त हो चुका है। यह देख बलभद्र विलाप करने लगा और मोहसे श्री कृष्णके मृतक शरीरको अपने स्कन्ध पर रख इधर उधर छ मास तक भटकता रहा ।

उस समय बलरामका मित्र सिद्धार्थ नामक देवता उसको बोध देने आया । वह एक कृपकका रूप बनाकर बल रामके सामने एक शिला पर कमलके बीज बोने लगा। उसे देख बलरामने कहा कि ' अरे मूर्ख ! इस शिला पर कमल क्यों कर पैदा होगा ? " कृपकने उत्तर दिया कि, "अरे

भाई ! यदि तेरे स्कन्ध उपरका शव जीवित होगा, तो इस शिला पर कमल भी उगेगा।" उसके इन शब्दोंको विचार न कर बलराम मोहसे शव ले आगे बढे। रास्तेमें जले हुए वृक्षको सींचते हुए एक पुरुषको देखा। बलरामने उससे कहा, "अरे मूढ ! दग्ध वृक्षको सिंचन करनेसे क्या यह कभी नवपल्लवित हो सकता है ? उसने उत्तर दिया, "यदि यह मृत शरीर जीवित होगा तो यह भी अवश्य होगा।" यह सुन बलरामने विचार किया कि, "अवश्य मेरा यह भाई निश्चेष्ट होनेसे मृत्युको प्राप्त हो गया है।" देवताने तत्काल प्रगट होकर कहा कि, 'हे बन्धु ! मैं तुम्हारा सिद्धार्थ नामक सारथी मित्र हूँ। तुमको बोध करनेके लिये ही मैंने यह सब रचना की है। श्री कृष्णको जराकुमारने हो मारा है।" तत्पश्चात् देवताने सब पूर्व वृतान्त कह सुनाया। जिसे सुन बलभद्रने मोहत्याग, श्रीकृष्णके देहको अग्निसंस्कार किया।

उस समय बलभद्रको दिक्षा लेनेमें उत्सुक हुआ जान, श्री नेमिनाथ प्रभुने चारण मुनिको उसके पास भेजा जिससे उसने संयम ग्रहण किया। फिर तुङ्गीका पर्वत पर वा तीव्र तपस्या करने लगे, एक दिन ऐसा हुआ कि, जब राजर्षि मासक्षमणके दिन किसी नगरमें भिक्षा लेनेको जा रहे थे, कि वहा नगरमें प्रवेश करते ही कुएके किनारे कोई स्त्री बालकको साथ ले जल भरने आई, वो बलराम मुनिका स्वरूप देख उस पर मोहित हो गई। उसकी दृष्टि बलरामकी ओर होनेसे उसने रज्जू घडेके बदले बालकके गलेमें डाल दी।

इस प्रकार उस स्त्रीको अनुचित कार्य करते देख बलराम मुनिने उसको सचेत किया और मनमे विचार किया कि, "ऐसे अनर्थकारी मेरे रूपको धिक्कार है! आजसे मैं कभी नगरमें भिक्षा लेने नही जाउगा। वनमे जो काष्ट लेन वाले आते हैं उनके पास जो कुछ भी मिल जायगा वो ही लेकर सन्तोष करूगा।"

एक बार काष्टग्राहकोंने अपन अपने राजाओंसे कहा कि, "वनम कोई पुरुष महान तपस्या करता है।" यह सुन उन राजाआने विचार किया कि, "यह पुरुष तपस्या कर हमारा राज्य ले लेगा अत चलो, उसका वध कर डाले।" ऐसा विचार कर वे सब अपनी अपनी सेनाये ले मुनिको मारने के लिये उसके समीप आये। उसी समय बलरामका मित्र उक्त सिद्धार्थ देव भी जो वैयावन्च करनेके लिये वहा आया हुआ था उसने हजारा सिंह बनाये जिसस वे राजा भयभीत हो मुनिको नमस्कार कर अपने अपने स्थानको चले गये। तभी से लोगामे उसका नृसिंह-नरसिंह नाम प्रसिद्ध हुआ।

बलराममुनिके स्वाध्यायको सुन अनेक बाघ, सर्प, सिंह, मृग आदि प्राणी समकित एव श्रावक व्रतको प्राप्त हुए। उनमेसे कोई एक मृग रामऋषिका पूर्वभवका मित्र था। उसे जातिस्मरण होनेसे वह जब कभी भी समीपमे कोई सार्थवाह आदि आते तो मुनिको वहा ले जा अशनादि प्राप्त कराने आदिसे वैयावन्च-भक्ति करने लगा। वह सज्ञासे मुनिको सब सूचना दे देता था। इस प्रकार बलराममुनिने सो वर्ष पर्यन्त

तीव्र तप किया था। इस विषयमे कहा भी है कि, "साठ मासखमण साठ पासखमण और चार चौमासी तप जिसने किये हैं ऐसे बलभद्रमुनिको मैं नमस्कार करता हूँ।"

एक बार कोई काष्ट इच्छुक रथकार उस वनमें आकर आधे काट वृक्षको उसी प्रकार छोड मध्याह्नकाल हो जाने से भोजन करनेके लिये बैठनेको तयार हुआ कि उक्त मगन उस देख सज्ञासे अपने गुरुको संकेत किया अत मासखमण के कारणे बलभद्रमुनि भी मृग द्वारा दर्शितमार्गसे वहाँ जा पहुँचे। उक्त रथकारने मुनिको देख भावपूर्वक दान दिया और मनमे विचार करने लगा कि, "मैं धन्य हूँ, मैं कृतपुण्य हूँ।" उसी समय वो मग भी ऊँचा मुँहकर राम और रथकारको देख विचारने लगा कि, "अरे! मैं अधन्य हूँ, तिर्यंच योनिमें उत्पन्न होनेसे दूषित हुआ हूँ कि जिससे मैं दीक्षा लेनेके लिए या साधुको भिक्षा देनेको भी असमर्थ हूँ। मैं ही एक मदभागी हूँ। पशुपनसे मृतकतुल्य मुझे धिक्कार है।" ऐसा विचार करते हुए उस राममुनि, रथकार, और मग तीनों पर पवन वेगसे प्रेरित वह अर्धे काटा वृक्ष टूट पडा जिससे वे सब मर कर ब्रह्मदेवलोकमें देवता हुए। राममुनिने सो वर्ष तक सयम पाला।

देवपनको प्राप्त हुए बलराम अवधि ज्ञान द्वारा अपने भाई श्रीकृष्णका स्नेह स्मरण कर शीघ्र ही उससे मिलने जानेको उत्सुक हुए, परन्तु उनके कल्पकी पुस्तकमें लिखे पाच सभाके योग्य आवश्यक देवकृत्य करते करते ही उन्हें ब्यासी हजार

व्यतीत हो गये । तत्पश्चात् शीघ्रतया तीसरी नरकमें आये कृष्णको वहासे लेजानेको खींचने लगे, तो कृष्णने कहा, "हे बन्धु ! मुझे यहीं रहने दो, आकर्षण न करो, तुम्हारे स्पर्शसे मुझे उलटा अतिदु ख होता है, परन्तु ऐसा कार्य करो कि जिससे लोकमें मनुष्य एव देवता दोनों हम दोनोंके यश का गुणगान करे ।"

तत्पश्चात् बलभद्रदेवने वापस उसी स्थल पर यादवोंसे भरपूर कृत्रिम द्वारिका बनाकर लोगोंके वाछित वस्तुकी पूर्ति करना आरभ किया । वो द्वारिका समुद्रमें लुप्त हो गई । इस प्रकार सात बार द्वारिकाको समुद्रमें डूबा दी, जिससे लोगोंमे उनकी महान् प्रतिष्ठाका प्रचार हुआ ।

ब्राह्मणोंके शास्त्रमें कृष्णावतारको हुए अड़तालीससो वर्ष व्यतीत होना कहा है जिसकी सत्यता भी उपरोक्त बात की सत्यता पर ही निर्भर हो सकती है, क्योंकि जैनशास्त्रमे तो उसे आजसे छीयासी हजार वर्ष व्यतीत हुआ, ऐसा श्रीकल्प सूत्रमे कहा है और वृद्धपुरुष भी यह ही कहते हैं ।

दातार जो दान देता है और उसका उस समय जो अनुमोदन करता है अथवा जो शुभ हृदयसे उसकी प्रशसा करता है, वह सारग-मृग सदृश दातार जितना ही लाभ प्राप्त करता है, ऐसा तत्ववेत्ताओंका कथन है ।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ त्रिसप्तत्यधिकशततम. प्रबन्ध ॥ १७३ ॥

व्याख्यान १७४

मुनिको दान देते समय बिंदुपात आदि दोषका त्याग कर देना

घृतादिवस्तुनो बिंदु-र्भूमौ क्षरति नो यथा ।
तथा दान प्रदातव्य, साधूना तच्च कल्पते ॥ १ ॥

भावार्थ —" मुनियोको इस प्रकार दान देना चाहिये कि जिससे देते समय घी आदि वस्तुओंके बिंदु पृथ्वी पर गीर न पडे, ऐसा ही दान साधुओंको कल्पनीय है । " इस विषय पर एक दृष्टान्त प्रसिद्ध है कि —

मुनिदानमें बिंदुपात पर धर्मघोषका दृष्टान्त

चम्पानगरीमें धर्मघोष नामक मंत्री था । उसकी स्त्रिय उस नगरके नगरशेठ सुजात श्रेष्ठीका स्वरूप देख उस पर मोहित हो गई, इससे एक बार उस मत्रीकी एक स्त्री सुजात सेठका वेष बना दासीयोंके साथ क्रीडा करने लगी । ऐसे देख धर्मघोष मंत्री बिना परमार्थ (सत्य बात)को जाने ही उस शेठसे द्वेष करने लगा । एक बार उसने शेठके नामसे एक कूट-खोटा लेख लिखा । उसमे यह दर्शाया कि सुजात शेठ चित्रमरानाको लिखता है कि, " मेरी यह विज्ञप्ति ध्यानमे ले तुम स्वयं यहा सत्वर आओ । मैं हमारा राजा को प्रपचसे मार तुम्हें राज्य दिलाउगा । ऐसा कूट लेख स्वय लिख, गुप्तचर द्वारा उस पत्रको पकडा हुआ यहकर

अपने राजाको बतलाया । राजा क्रोधमें आकर सुजात शेठको मार डालनेके लिये कोई बहाना बनाकर उसे चन्द्रध्वज राजाके पास भेजा और उसके साथ एक लेख लिख भेजा । चन्द्रलेख राजा वो लेख पढ, सुजात शेठको निर्दोष जान विचारने लगा कि, "अहो ! चम्पापतिने ऐसा अयोग्य कार्य मुझे क्या बतलाया ? यह श्रेष्ठी तो निस्पृह जान पडता है ।" फिर उस बातका निश्चय कर उसने उसकी पुत्रीका सुजात शेठके साथ विवाह कर दिया । नवोढा (मुग्धा) स्त्रीके सयोग से (वृद्ध) श्रेष्ठी रोगी हो गया । शेठको रोगी हुआ जान उसकी स्त्री आत्मनिन्दा करने लगी, जिसे सुन श्रेष्ठी बोला कि, "हे स्त्री ! तू शोक क्यों करती है ? इसमे तेरा कोई दोष नहीं है मेरे कर्मका ही दोष है ।" यह सुन उस वैराग्य हो आया, जिससे वह दीक्षा ले अनशन द्वारा मृत्युको प्राप्त हो देवी बनी । वहांसे आ उसने सुजात श्रेष्ठीसे कहा कि, "हे श्रेष्ठी तुम्हारे धर्मवचनको अंगीकार करनेसे मैंने ऐसा पद प्राप्त किया है अतः अब यदि कोई कार्य हो तो बतलाओ ।" सुजातने उत्तर दिया, "मेरा कलक उतारो ।" इस पर वह देवी श्रेष्ठीको विमानमे बिठाकर चम्पानगरीके वनमे ले गई और चम्पानगरी पर शिला बनाकर चम्पापतिको उद्यानमें बुलवाया । उसने वहां आ सुजात श्रेष्ठीसे नमस्कार किया । देवीने पूर्वका सब वृतान्त राजाको कह सुनाया, जिसे सुन राजाने क्रोधसे धर्मघोषमन्त्रीको देश पार किया और सुजात श्रेष्ठीको बडे उत्सव सहित नगरमें लाये । अनुक्रमसे सुजात श्रेष्ठीने दीक्षा ग्रहण की और आत्म साधनमे रत हुए ।

धर्मघोष मन्त्री किसी अच्छे मुनियोंके संयोगसे धर्म समझ कर भावसे चारित्र लिया। शुद्ध चारित्र पाल क्रमशः विचरते पृथ्वीपुर नगरमें वरदत्त मन्त्रीके घर भिक्षा लेने आये। वरदत्त सन्तुष्ट हो पचामृतका दान देनेको उत्सुक हुआ। दान देते समय उसमेंसे घी और दूधका एक बिन्दु पृथ्वी पर गिर गया, जिससे मुनि उस आहारको महा आरम्भकारी होनेसे अकल्प्य जान बिना आहार लिये ही पीछे लोट गये। वरदत्त पश्चाताप करने लगा, कि उसी समय गिरे हुए बिन्दु पर एक मक्खी आ बैठी, उसके भक्षण करनेको छिपकली-गरोली आई, उसे मारने कौआ आया, उसका वध करने बिलाडा दौड पडा, उसे मारने मोहल्लेका श्वान आया, मोहल्लेके श्वानको मारते हुए श्वानके स्वामीने मारा। उसे मारते देख मोहल्लेके लोगोंने आ उसके श्वानको मार डाला, जिससे कुपित हो श्वानका स्वामी मोहल्लेके लोगोंको मारने आया, इस पर उनमें आपस-आपसमे मार पीट और मुक्का-मुकी आदिका युद्ध आरम्भ हो गया। यह सब देख वरदत्तने विचार किया कि, "अहो! इस महा अनर्थको अपने ज्ञान द्वारा जान कर ही उस महामुनिने मेरा आहार अस्वीकार किया था। अहो! ऐसे प्रशंसा करने योग्य उस मुनिके ज्ञान-ध्यानको धन्य है।" ऐसा विचार कर वह मंत्री वैराग्य प्राप्त कर स्वयंबुद्ध हुआ और उन्हे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो जानेसे पूर्वभवमे अध्ययन किये सर्वसूत्रादिका स्मरण हो आया। देवताओं द्वारा दिया हुआ मुनिवेष ग्रहण कर वो मुनि पृथ्वी

को पवित्र करते हुए विचरने लगे। इस विषयमें यदि विशेष जाननेकी इच्छा हो तो उपदेशमालाकी कर्णिका टीका पढ़ीए।

"दूध, घी या शक्कर आदि रस पदार्थका बिन्दु पृथ्वी पर प्रमादसे न पड़े इसका पूरापूरा ध्यान रख श्रावकने मुनिको आहार देना चाहिये, और ऐसा न होने पर मुनियों को भी धर्मघोष सदृश आहारका त्याग कर देना चाहिये।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ चतुस्सप्तत्यधिकशततमः प्रबंधः ॥ १७४ ॥

व्याख्यान १७५

अल्प दान भी महान् फलका देनेवाला होता है

अल्पमपि क्षितौ क्षिप्तं, वटबीजं प्रवर्धते ।
जलयोगात्तथा दानात्, पुण्यवृक्षोऽपि वर्धते ॥ १ ॥

भावार्थ —"जैसे अल्प मात्र-छोटासा बटका बीज पृथ्वीमें डालने पर जलके योगसे बहुत बड़े वृक्षका रूप धारण कर लेता है, इसी प्रकार सुपात्रको दान देनेसे पुण्य रूपी वृक्ष अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त करता है।"

विस्तारार्थ —"बटका बीज अल्प अर्थात् तीलके दानेसे तीसरे भागके बराबर होता है, वो जल दान-सिंचन द्वारा जैसे बड़ा वट वृक्ष हो जाता है वैसे ही दानसे पुण्य रूपी वृक्ष

भी वृद्धिको प्राप्त करता है । इस विषयमें मूलदेवकी कथा प्रसिद्ध है —

मूलदेवकी कथा

कौशाम्बी नगरीमें धनदेव और धनश्रीका पुत्र मूलदेव रहता था । वह कलापात्र था परन्तु व्यसनसे दूषित था, अतः उसके पिताने उसका तिरस्कार कर अपने घरसे बाहर निकाल दिया । अनेक देशोंमें पर्यटन करता हुआ वह मूलदेव एक बार किसी शहरके पास एक देवालयम एक कार्पटिक–याचिक भिक्षुक विशेष साथ सोता था कि उन दोनोंको रात्रिमें सम्पूर्ण चन्द्र मण्डलका पान करनेका समान स्वप्न दोनोंको आया । प्रातःकालम उक्त याचिक–भिक्षुकने जब उसके गुरुके पास जा उस स्वप्नकी बात कही तो गुरुने कहा कि, " हे शिष्य ! आज तुझे कोई घी एव गुड मिश्रीत माडा खिलायगा ।" कहा भी है कि —

सा सा सपद्यते बुद्धि, सा मति सा च भावना ।
सहायास्तादृशा ज्ञेया, यादृशी भवितव्यता ॥ १ ॥

" जैसी भवितव्यता होती है वैसी ही बुद्धि भी हो जाती है, वैसी ही मति होती है, वैसी ही भावना होती है और सहायक भी वैसे ही प्राप्त हो जाते हैं ।"

मूलदेव उस कार्पटिकके गुरुको अज्ञ–अजान समजकर शहरमें किसी प्रवीण स्वप्न पाठकके पास गया और विनय पूर्वक स्वप्नका फल पूछा । उस विद्वान् स्वप्नपाठकने शास्त्रके

भावको सोच-विचार कर कहा कि, "हे मूलदेव ! तुमको आजसे सात दिनके अन्दर सुन्दर राज्य मिलेगा।" ऐसा कह उसने उसकी पुत्रीका विवाह उसके साथ कर दिया।

मूलदेवने कहा कि, "मुझे राज्य मिलेगा तब मैं तुम्हारी पुत्रीको ले जाऊँगा।" तत्पश्चात् नगरमें भटकते हुए उसे किसी गृहस्थके घर उड़द मिले। उन्हें ले जब वह भोजन करने बैठा कि उसी समय कोई मासोपवासी तपस्वी एक मुनि येकायेक वहा आ पहुंचे। मूलदेवने अत्यन्त हर्ष पूर्वक वे उड़द उन्हें वहोरा दिये। उसकी महिमासे वहा आकाशवाणी हुई कि, 'तू अर्धश्लोकम जो मांगेगा सो मिलेगा।" अत मूलदेवने अपनी बुद्धि बलसे विचार कर बोला —

गणिय च देवदत्त, दतिसहस्स च रज्जं च।

इस प्रकारके अर्धश्लोकसे उसने देवदत्ता गणिका, एक हजार हाथी और राज्य मागा। देवने "तथास्तु" कहा।

अनुक्रमसे सातवे दिन आने पर कोई अपुत्रक राजा मर गया उसके मन्त्रियाने पाच दिव्य किये और उसके द्वारा मूलदेव राजा हुआ। यह सूचना जब कार्पटिक-यात्रिकको मिली तो वह बार बार उक्त देवालयमें जा कर वैसे स्वप्नके लिये वहा सोने लगा किन्तु वैसा दुर्लभ स्वप्न फिर कहासे आता? (यह दृष्टान्त मनुष्य भवकी दुर्लभता पर भी है।) इस ओर मूलदेवने राज्य प्राप्त कर दानादि धर्म कर आत्म धर्मका सम्पूर्ण रीतिसे पालन किया।

प्रस्तुत श्लोकके भावार्थ पर नयसार और चन्दन बाला आदिकी कथायें भी हैं । इसी प्रकार इस अवसर्पिणीके पहले दान धर्मके प्रवर्तक श्रेयासकुमारकी कथा भी इस पर घटित हो सकती है । यह सब कथा दान-कुलक नामक प्रकरणमें वर्णित की गई है वहासे भी पढी जा सकती है।

शिष्य प्रश्न करता है कि—सुपात्र दान, अभय दान, उचित दान, कीर्त्ति दान, और अनुकम्पा दान य पाच प्रकारके दान बतलाये गये हैं । तीर्थंकर, साधु आदि सुपात्रम पुण्य बुद्धिसे देना सुपात्र दान, किसी प्राणीको मृत्युसे बचाना-भयसे मुक्त करना अभय दान, माता, पिता, पुत्र, बन्धु, सेवक और राजा आदिको देना उचित दान, कीर्तिके लिये भाट-भोजक-याचक आदिको देना कीर्ति दान, और दीन-दुःखीको देना अनुकम्पा दान कहलाता है । इन पाचो दानोंमें एक सुपात्र दान ही सर्वोत्तम है ऐसा जो बारबार कहा जाता है इसका क्या कारण है ? इसके उत्तरमें परम कृपालु गुरु भगवन्त कहते हैं कि, "इन पाचो दानोंमें प्रथम दो दान मोक्ष देने वाले हैं, इनमें अभय दान सर्व व्रतोंको आदिमे कहा गया है और सुपात्र दान सर्व धनोंमें उत्तम कहा गया है । अन्य तीन दान तो सासारिक सुखोंको देने वाले हैं । अपितु इसी प्रकार प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर सुपात्र दान देने मात्रसे ही सुखी हुए हैं इसीसे सुपात्र दानको सर्वोत्तम कहा गया है ।"

"अल्प दानके माहात्म्यसे ही मूलदेव, नयसार, चन्दन

वाला, श्रेयासकुमार और धनसार्थवाह (श्री ऋषभदेव भगवन्त का जीव) आदि महान् फलको प्राप्त हुए, अत अन्तिम अतिथि संविभाग व्रत सर्व श्रावकोंको अङ्गीकार करना चाहिये ।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ पञ्चसप्तत्यधिकशततमः प्रबंधः ॥ १७५ ॥

व्याख्यान १७६

निश्चय और व्यवहारनयसे बारहव्रतका विवेचन

एकैक व्रतमप्येषु, द्विद्विभेदेन साधितम् ।
तद्विज्ञाय सुधीश्राद्धैः, रुचिः कार्या व्रतादरे ॥ १ ॥

भावार्थ —"इन बारह व्रतोंमे से एक एक व्रत निश्चय और व्यवहार ऐसे दो दो भेदोंसे कहे गये हैं उन्हें बराबर जान सद्बुद्धिवाले श्रावकोंको उन्हें आदरनेकी रुचि पैदा करनी चाहिये ।"

विशेषार्थ –इन बारह व्रतोंमेंसे एक एक व्रत दो दो प्रकारसे अर्थात् निश्चय और व्यवहार नयसे बतलाये गये हैं वे इस प्रकार हैं–जो दूसरेके जीवनको अपने जीव के सदृश क्षुधादि वेदनासे अपना समान जान हिंसा न करे उसे व्यवहार की अपेक्षासे प्रथम व्रत कहते हैं, और यह अपना जीव अन्य जीवोंकी हिंसा कर कर्म बांध दुःख प्राप्त करता है,

अतः अपना आत्माका कर्मादिकसे वियोग करना उचित है। अपितु यह जीव अनेक स्वाभाविक गुणवाला है उससे हिंसा आदि द्वारा कर्म ग्रहण करना इस जीवका धर्म नहीं है। ऐसी ज्ञान बुद्धिसे हिंसाके त्यागरूप आत्मगुणको ग्रहण करनेका निश्चय करना उसको निश्चयनयकी अपेक्षासे प्रथम अहिंसाव्रत कहलाता है।

लोकनिंदित असत्य भाषणसे निवृत्त होना व्यवहारसे दूसरा व्रत है और मुनीश्वर-त्रिकालज्ञानी भगवंत द्वारा वर्णित जीव अजीवका स्वरूप अज्ञान द्वारा विपरीत कहना और आत्मासे पर वस्तु जो पुद्गलादिक है उसे अपनी बतलाना सचमुच मृषावाद है, उससे विरामपाना निश्चयनयसे दूसरा व्रत है। इस व्रत सिवाय अन्य व्रतोंसे विराधना करने वालेको चारित्र भंग होता है, परन्तु ज्ञान तथा दर्शन ये दोनों रहते हैं। जिससे निश्चय मृषावाद व्रतकी विराधना हुई है। उसके ज्ञान, दर्शन और चारित्र इन तीनोंका लोप हो जाता है। आगममें भी बतलाया गया है कि, "एक साधुने मैथुन विरमण व्रतका भंग किया और अन्यने दूसरा व्रतका, तो उनमेंसे प्रथम साधुतो आलोचना आदिसे शुद्ध हो जाता है, परन्तु दूसरा स्याद्वादमार्गका उत्थापक होनेसे आलोचनादि द्वारा शुद्ध नहीं हो सकता।"

जो अदत्त अर्थात् नहीं दी हुई ऐसी पर वस्तु धनादिकको ग्रहण न करे उसका प्रत्याख्यान करे यह व्यवहारसे तीसरा अदत्तादान विरमण व्रत कहलाता है और जो द्रव्यसे

बाला, श्रेयासकुमार और धनसार्थवाह (श्री ऋषभदेव भगवन्त का जीव) आदि महान् फलको प्राप्त हुए, अत अन्तिम अतिथि सविभाग व्रत सर्व श्रावकोको अङ्गीकार करना चाहिये।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ पञ्चसप्तत्यधिकशततम प्रबध. ॥ १७५ ॥

व्याख्यान १७६

निश्चय और व्यवहारनयसे बारहव्रतका विवेचन

एकैक व्रतमप्येषु, द्विद्विभेदेन साधितम् ।
तद्विज्ञाय सुधीश्राद्धै, रुचि॰ कार्या व्रतादरे ॥ १ ॥

भावार्थ —"इन बारह व्रतोंमे से एक एक व्रत निश्चय और व्यवहार ऐसे दो दो भेदोंसे कहे गये हैं उन्हें बराबर जान सद्बुद्धिवाले श्रावकोंको उन्हें आदरनेकी रुचि पैदा करनी चाहिये।"

विशेषार्थ -इन बारह व्रतोंमेसे एक एक व्रत दो दो प्रकारसे अथात् निश्चय और व्यवहार नयसे बतलाये गये हैं ये इस प्रकार है–जो दूसरेके जीवनको अपने जीव के सदृश सुखादि वेदनासे अपने समान जान हिंसा न करे उसे व्यवहार की अपेक्षासे प्रथम व्रत कहते हैं, और यह अपना जीव अन्य जीवोंकी हिंसा कर कर्म बाध दुःख प्राप्त करता है,

अत अपना आत्माका कर्मादिकसे वियोग करना उचित है। अपितु यह जीव अनेक स्वाभाविक गुणवाला है उससे हिंसा आदि द्वारा कर्म ग्रहण करना इस जीवका धर्म नहीं है। ऐसी ज्ञान बुद्धिसे हिंसाके त्यागरुप आत्मगुणको ग्रहण करनेका निश्चय करना उसको निश्चयनयकी अपेक्षासे प्रथम अहिंसाव्रत कहलाता है।

लोकनिंदित असत्य भाषणसे निवृत्त होना व्यवहारसे दूसरा व्रत है और मुनीश्वर-त्रिकालज्ञानी भगवंत द्वारा वर्णित जीव अजीवका स्वरुप अज्ञान द्वारा विपरीत कहना और आत्मासे पर वस्तु जो पुद्‌गलादिक हैं उसे अपनी बतलाना सचमुच मृषावाद है, उससे विरामपाना निश्चयनयसे दूसरा व्रत है। इस व्रत सिवाय अन्य व्रतोंकी विराधना करने वालेको चारित्र भंग होता है, परन्तु ज्ञान तथा दर्शन ये दोनों रहते हैं। जिससे निश्चय मृषावाद व्रतकी विराधना हुई है। उसके ज्ञान, दर्शन और चारित्र इन तीनोंका लोप हो जाता है। आगममे भी बतलाया गया है कि, "एक साधुने मैथुन विरमण व्रतका भंग किया और अन्यने दूसरा व्रतका, तो उनमेसे प्रथम साधुतो आलोचना आदिसे शुद्ध हो जाता है, परन्तु दूसरा स्याद्वादमार्गका उत्थापक होनेसे आलोचनादि द्वारा शुद्ध नहीं हो सकता।"

जो अदत्त अर्थात् नहीं दी हुइ ऐसी पर वस्तु धनादिकको ग्रहण न करे उसका प्रत्याख्यान करे यह व्यवहारसे तीसरा अदत्तादान विरमण व्रत कहलाता है और जो द्रव्यसे-

अदत्त वस्तु नही लेनेके उपरान्त अन्तःकरणमें पुण्यतत्वके ब्यालीस भेद प्राप्त करनेकी अभिलाषासे धर्म कार्य करता है और पांच इन्द्रियोंके तेईस विषय, आठ कर्मकी वर्गणा आदि पर वस्तु ग्रहण करनेकी इच्छा निवृत्त होता है—इससे नियम करता है यह निश्चयसे तीसरा व्रत कहलाता है।

श्रावकके लिये स्वदारासंतोष और परस्त्रीका त्याग तथा साधुओंके लिये सर्वस्त्रियोंका त्याग व्यवहारसे चोथा व्रत कहलाता है और विषय, अभिलाषा, ममत्व और तृष्णाका त्याग निश्चयसे चोथा व्रत कहलाता है। यहा इस बातका विशेषतया ध्यान रखा जावे कि बाह्यसे स्त्री त्याग करने पर भी यदि अन्तरमे उसकी लोलुपताका प्रत्याख्यान-त्याग नही किया जाये तो उसे विषय सम्बन्धी कर्मका बंधन अवश्य होता है।

श्रावकोंको नौ प्रकारके परिग्रहका परिमाण करना और मुनियोंको सर्व परिग्रहका त्याग करना व्यवहारसे पांचवां व्रत कहलाता है। और भावकर्म—राग, द्वेष, अज्ञान तथा द्रव्यकर्म—आठ प्रकारके कर्म तथा देह और इन्द्रियोंका त्याग निश्चयसे पाचवा व्रत कहलाता है। कर्मादि पर वस्तु पर मूर्च्छाका त्याग करनेसे ही भावसे पाचवा व्रत होता है। क्योंकि शास्त्रकारोंने "मुच्छा परिग्गहो वुत्तो" आदि वचनोंसे मुर्च्छाको ही परिग्रह बतलाया है।

छ दिशाओंमें आने जानेका परिमाण करना व्यवहारसे छट्ठा व्रत है और नारकादि गतिरूप कर्मके गुणको जान उसके

प्रति उदासी भाव रखना और सिद्ध अवस्था प्रति उपादेय –ग्रहण करनेका भाव रखना निश्चयसे छट्टा व्रत कहलाता है।

पहले कहे अनुसार भोगोपभोग व्रतमें सर्व भोग्य वस्तुका परिमाण करना व्यवहारसे सातवा व्रत है, तथा व्यवहारनयके अनुसार कर्मका कर्ता एवं भोक्ता जीव ही है और निश्चयनयके अनुसार कर्मका कर्तापन कर्ममें ही है, क्यों कि मन वचन और कायारूप योग ही कर्मके कर्ता है, इसी प्रकार भोक्तापन भी योगमें ही स्थित है। अज्ञानवश तो जीवका उपयोग मिथ्यादृष्टि कर्मग्रहण करनेके साधनमें मिलता है जब कि परमार्थवृत्तिसे तो जीव कर्मबंध पुद्गलोंसे भिन्न हो है और ज्ञानादि गुणोंका कर्ता एवं भोक्ता है। पुद्गल जड चल और तुच्छ है अपितु जगतके अनेक जीवोंसे वमन भोग भोगकर उच्छिष्ठ–जुठे भोजन सदृश फेंक दिये हैं ऐसे पुद्गलोंको भोगोपयोगपनसे ग्रहण करना जीवका धर्म नहीं है इस प्रकार चिंतन करना निश्चयसे सातवा व्रत कहलाता है।

निष्प्रयोजन पापकारी आरंभसे विराम पाना व्यवहारसे आठवा अनर्थदंड विरमण व्रत है और मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग उसके सत्तावन उत्तर भेद जो कर्मबंधके हेतुभूत है और जिससे कर्मका बन्धन होता है उनका आत्मीय भावसे जान उनका निवारण करना निश्चयसे अनर्थदंड विरमण नामक आठवा व्रत कहलाता है।

आरम्भके कार्यको छोड सामायिक करना व्यवहारसे नवमा सामायिक व्रत कहलाता है और ज्ञानादि मूल सत्ता-धम द्वारा सब जीवोंको समान समझ सबके लिये समता परिणाम रखना निश्चयसे नवमा सामायिकव्रत कहलाता है।

नियमित क्षेत्रमें स्थिति करना-रहना व्यवहारसे दसवा देशावकाशिक व्रत कहलाता है और श्रुतज्ञान द्वारा षड्दर्शन का स्वरूप देख पांच द्रव्यमें त्याज्य बुद्धि रख ज्ञानमय जीवका ध्यान करना निश्चयसे दशवा देशावकाशिक-दशावगाशिक व्रत कहलाता है।

अहोरात्र सावद्य व्यापारको छोड आत्म मर्यादित स्वाध्याय ध्यानमें प्रवृत्त होना व्यवहारसे ग्यारहवा पौषधव्रत कहलाता है और आत्माके स्वगुणोंका ज्ञान ध्यानादि द्वारा पोषण करना निश्चयसे ग्यारहवा पौषधव्रत कहलाता है।

पौषधके पारणे अथवा सदैव अतिथिसंविभाग कर (साधुको दान दे) भोजन करना व्यवहारसे बारवा अतिथि संविभाग व्रत कहलाता है और आत्मा तथा दूसरेको ज्ञानादिका दान करना, पठन, पाठन, श्रवण और श्रावण-सुनाना आदि करना निश्चयसे बारहवा अतिथिसंविभागव्रत कहलाता है।

इस प्रकार निश्चय और व्यवहार दोनों प्रकारके भेदोंसे युक्त बारह व्रत पांचवे गुणठाणे रहे श्रावकोंको मोक्षकी प्राप्ति करान वाले हैं और निश्चय रहित केवल व्यवहार मात्रसे अंगीकार किये हुए बारह व्रत स्वर्ग सुखको देने वाले

हैं, मोक्षके देने वाले नहीं । क्योंकि व्यवहार चारित्र और साधु श्रावकके व्रत अभव्य प्राणियोंको भी प्राप्त हो सकता हैं, उससे निर्जरा नहीं होती, अतः निश्चय नय सहित ही इन व्रतोंका पालन करना श्रेष्ठ है । इस विषयमें कहा गया है कि —

निच्छयनयमग्ग मुक्खो ववहारो पुन्नकारणो वुत्तो
पम्मो संवरहेउ, आसवहेउ बीओ भणिओ ॥

"निश्चयनयको मोक्ष मार्ग और व्यवहारनयको पुण्य का कारण कहा गया हैं । प्रथम नय संवरका हेतु है जब कि दूसरा नय आस्रवका हेतु है ।" निश्चयनय ज्ञानसत्ता रूप होनेसे मोक्ष मार्ग हैं और व्यवहारनय पुण्यका हेतु होनसे उसके द्वारा शुभ-अशुभ कर्मका आश्रव होता है, अशुभ व्यवहारसे पापका आस्रव होता है ।

यहां शिष्यको शङ्का होती है कि, "जब कि अनन्तर गाथामें व्यवहारनय आश्रवका हेतुरूप कहा गया है तो हम उसे ग्रहण नहीं करेंगे ।" इसके उत्तरमें गुरु कहते हैं कि, "हे शिष्य ! व्यवहार बिना निश्चयनयका ज्ञान नहीं होता अथवा भी जिनेश्वर भगवन्तकी आज्ञाका भङ्ग होता है । आगममें कहा गया है कि, 'यदि जिनमतको अङ्गीकार करनेकी अभिलाषा हो तो व्यवहार एवं निश्चय इन दोनों नयोंका कभी परित्याग मत करना, क्योंकि एकके बिना शासनका लोप होता है ।" और दूसरे बिना उच्च भावका लोप होता

है।" अपितु व्यवहार नयके त्यागसे सब निमित्त कारण निष्फल हो जाते हैं, जब निमित्त कारण निष्फल हो जाते हैं तो फिर उपादान कारण की सिद्धि भी किस प्रकार हो सकती हैं? अत ये दोनो नय ग्रहण करने योग्य हैं।" निश्चयनयके साथ दूसरा-व्यवहार नय भी प्रमाणरूप है। निश्चयनय सुवर्ण अलङ्कार सदृश और व्यवहार नय साधा मिलाने वाली लाख आदि पदार्थ सदृश है। ' यहा उपनय अपनी ओरसे लगा लेवे ।

"इस प्रकार बारह व्रतोंमेंसे प्रत्येक व्रत व्यवहार और निश्चय दोना प्रकारसे जान श्रावकाको इन व्रतोको ग्रहण करनेमें रुचि उत्पन्न करनी चाहिये यही तत्त्व है। यह सब विषय आगमसार ग्रन्थमेंसे उद्धरित कर यहा लिखा गया है।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ षट्सप्तत्यधिकशततम प्रबध ॥ १७६ ॥

व्याख्यान १७७

ये बारह व्रत बलात्कार पूर्वक भी श्रावकको देने चाहिये

प्रसह्यनाप्यसौ धर्मः, श्रावकाना प्रदीयते ।
यथा पोटिलदेवेन, बोधितस्तेतलेः सुतः ॥ १ ॥

भावार्थ —"यह बारह व्रत ग्रहणरूप धर्म श्रावकोंको बलात्कार पूर्वक भी देना चाहिये जैसे कि पोटिलदेवने तेतलि पुत्रको प्रतिबोध किया था।"

तेतलि पुत्रकी कथा

त्रिवटी नगरमें कनकरथ नामक राजा था उसको तेतलिपुत्र नामक मन्त्री था। वह वहांके नगरसेठकी पुत्री पर मोहित हो गया था। उस पुत्रीका नाम पोट्टिला था, जिसके साथ उसने विवाह भी कर लिया। कनकरथ राजा राज्यमें अत्यन्त लुब्ध होनेसे उसके जो पुत्र होते थे, उनको मार डालता था। एक बार राजाकी कमलावती नामक राणी सगर्भा हुई। उसने उसकी विश्वसनीय दासीको तेतलीपुत्र मन्त्रीके पास भेज कहलाया कि, "यदि मेरे पुत्र हो तो तुम किसी भी गुप्त प्रकारसे उसकी रक्षा करना।" राणीके वचनोंको बुद्धिमान मन्त्रीने शिरोधार्य किया। दैवयोगसे कुछ समय पश्चात पोट्टिला और कमलावतीने साथ ही साथ पुत्री और पुत्रको जन्म दिया इससे मन्त्रीने विश्वासी पुरुषको भेज कमलावतीके पुत्र और उसकी पुत्री पुत्रीका परावर्तन कराया। राजाने जब राणीके परिणाम पूछा तो पुत्रीका जन्म होना कहा। मन्त्रीने राजकुमारका नाम कनकध्वज रक्खा। अनुक्रमसे राजा कनकरथके मरने पर मन्त्री और राणी कमलावतीने मीलकर उस पुत्रका राज्याभिषेक किया। कनकध्वजने कृतज्ञ होनेसे उस मन्त्रीको ही राज्यके सब कार्योंमें मुख्य किया।

बादमें दैवयोगसे किसी कारण वश तेतलीपुत्र मंत्री और उसकी स्त्री पोट्टिलाके बीचमें अप्रीति हो गई इससे पोट्टिलाने किसी साध्वीसे पति वश करनेका मन्त्र पूछा।

साध्वीने धर्मदेशना दे उसे प्रतिबोधित की जिससे उसकी दीक्षा लेनेकी अभिलाषा होनेसे उसने अपने पतिसे दीक्षा लेनेकी आज्ञा मागी, पतिने उत्तर दिया कि, "यदि तू दीक्षा ले कर स्वर्गमें जाये तो वहासे वापस आकर मुझे बोध देनेका पण करे तो मैं तुझे दीक्षा व्रत ग्रहण करनेकी आज्ञा दे सकता हूँ अन्यथा कदापि नहीं।" पोटिलाने इस बातको स्वाकार किया। फिर दीक्षा ले उत्तम सयम पाल कालयोगसे मृत्युको प्राप्त कर स्वर्गमे गई। अवधिज्ञान द्वारा पूर्वभव जान अपनी प्रतिज्ञाको सत्य करनेके लिये वो मत्रीको व्रत लेनेकी प्रेरणा करने लगी, परन्तु विषयलोलुपी मत्रीने श्रावक तथा साधु धर्ममेसे किसी एकको भी अपनानेकी इच्छा नहीं की। देवी हुई पोटिलाके जीवने तब विचार किया कि बिना किसी कष्टमें पडे मत्री कभी भी बोधित नहीं होगा। ऐसा विचारकर उसने एक बार उस पर राजाका कोप बतलाया। जब मन्त्री राजाको नमन करने गया तो राजाने उसे अपना मुह तक नहीं बतलाया इससे मन्त्रीने अत्यन्त क्रोधित हो नगर बाहर जा मरनेको तालपुट विष खाया, परन्तु देवप्रभावसे वो विष भी उसे अमृततुल्य हो गया, तब उसने मरनेके लिये जलप्रवेश, अग्नि-प्रवेश, गलेफास, गिरिपात, वृक्षपात, और शस्त्राघात आदि मरनेके सब उपाय किये, लेकिन देवप्रभावसे वे भी सब निष्फल हुए। एक बार जब वह जा रहा था तो पीछेसे एक उन्मत्त हाथीको दौडे हुए आते देख आकुल व्याकुल हो एक खड्डेमे जा गिरा और मूर्छित हो गया। क्षण बाद

चेतना आने पर उसने कहा कि "अरे पोटिला! तू कहा है? मैं किसकी शरण जाउ? उस समय कृपावश पोटिला देवीने प्रकट हो कर उत्तर दिया कि, "अरे तेतलिपुत्र! मैंने अनेक प्रयत्नोंसे तुझे बोधित करनेका प्रयास किया, परन्तु जब तू नही समझा तो मैंने ही ये सब बाते विकुर्वी बतलाई है।" मन्त्री बोला, "हे देव! मैंने अज्ञान वश कुछ नही समझा परन्तु अब कुछ समय श्रावकधर्मका पालन कर बादमे मुनिपनाका आश्रय लूगा लेकिन तू किसी भी प्रकार राजाको मेरे पर प्रसन्न कर।" देवताने वसा ही किया, इससे राजा सन्तुष्ट हो मन्त्रीके सामने आ उसके अपराधको क्षमा किया। तत्पश्चात् बुद्धिमान् मन्त्री स्वक घर जा दानादि धर्मयुक्त श्रावकके बारह व्रतोंका भावसे पालन करने लगा।

एक बार उसने गुरु समीप जा अपना पूर्वभव पूछा। गुरुने उत्तर दिया कि, 'तू महाविदेह क्षेत्रमे पुडरीकिणी नगरीमे महापद्म नामक राजा था। वहा गुरु देशनासे प्रतिबोध पा तूने चारित्र ग्रहण किया था और अनुक्रमसे चौदह पूर्व-धारी हुआ था। अन्तमें एक महिनेका अनशन कर महाशुक्र देवलोकमे देवता हुआ था। वहासे चव तेतलिपुत्र नामक मन्त्री हुआ है।" यह सुन मन्त्रीको जातिस्मरण ज्ञान हो आया जिससे पूर्व पठित पूर्वोका स्मरण कर उसने शुद्ध चारित्र अङ्गीकार किया और अनुक्रमसे केवलज्ञान प्राप्त कर अव्यय पद-मोक्षको प्राप्त किया।

"उत्तम मुनिवर अनेक युक्तियोंसे उपासकोंको प्रतिबोधित करते हैं। जगतमे सूर्यकी कान्ति सदृश उद्योत करने वाले पुरुष पोटिला सदृश श्लाघाके पात्र हैं।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ सप्तमस्तत्यधिकशततमः प्रबंधः ॥ १७७॥
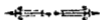
व्याख्यान १७८

महा दुर्लभ मनुष्य भव प्राप्त हुएको शिक्षा-उपदेश

यथाऽन्यायपूरे रत्न-चूडो न मुह्यता-(मूढता) गतः।
मोहादिनधने तद्वत, धर्मधीभिन लुभ्यते ॥ १॥

भावार्थ —"जिस प्रकार अन्यायपुरमें रत्नचूड नहीं लुभाया, उसी प्रकार धर्मबुद्धि वाले पुरुषको मोहादिक बन्धनमें नहीं लुभाना चाहिये।"

रत्नचूडकी कथा

इस भरतक्षेत्रमें ताम्रलिप्ती नामक नगरीमें रत्नाकर नामक एक श्रेष्ठी रहता था, जिसको सरस्वती नामक स्त्री थी और रत्नचूड नामक एक पुत्र था। वो युवान पुत्र नगरके उपवन आदिमें स्वेच्छासे विहार करता था। एक बार राज मार्गमें जाते समय सन्मुख आती हुई सौभाग्यमञ्जरी नामक वेश्या रत्नचूडसे स्वम्भेसे टकराई और कहने लगी कि, "अरे ऐसे विशाल राजमार्गमें भी क्या मुझे तू सन्मुख

आती नहीं देख सकता ? अपनी लक्ष्मीका इतना भारी मद करना तेरे लिये अत्यन्त अनुचित है।" क्योंकि —

पित्रोपार्जितवित्तेन, विलासं कुरुते न कः ।
स श्लाघ्यो यः स्वयं लक्ष्मी-मुपार्ज्य विलसत्यहो ॥१॥

"इस जगतमें पिताके उपार्जित द्रव्यसे कौन विलास नहीं करता ? परन्तु प्रशंसापात्र तो वो ही पुरुष है कि जो स्वोपार्जित धनसे विलास करता है।" ऐसा कह वेश्या उसके स्थानको चल दी। यह सुन रत्नचूडने मनमें विचार किया कि, 'इस वेश्याका वचन अब मुझे सत्य कर बतलाना होगा।" इस प्रकार विचार करता हुआ और मनमें दुःखी होता हुआ रत्नचूड घर पहुँचा। पुत्रका खिन्न वदन देख उसके पिताने पूछा कि "हे वत्स ! तेरे क्या कमी है कि, जिससे तेरा मुख खिन्न और निस्तेज दिख पड़ता है ? तेरी जो भी इच्छा हो, सो बतला दे, मैं उसे क्षणमात्रमें पूरी करूंगा।" रत्नचूडने उत्तर दिया-'हे पिताजी ! आपके उपार्जित द्रव्यसे मैं सुखी होना नहीं चाहता इस लिये आपकी आज्ञा ले स्वभुजासे द्रव्य उपार्जन करने निमित्त मैं देशान्तर जाना चाहता हूँ।" पिताने कहा कि, "हे वत्स ! तू मक्खन सदृश कोमल शरीर वाला है, तू देशान्तर जा कर क्या करेगा ?" कहा भी है कि —

इन्द्रियाणि वशे यस्य, स्त्रीभिर्यो न विलुप्यते ।
यस्तु पथं विजानाति, याति देशान्तराणि सः ॥ १ ॥

" जिनकी इन्द्रिये वशमें हो, जो स्त्रियोंसे लुब्ध न हो, और जो बोलनेमे प्रवीण हो वो, ही देशान्तरमें जा सकता है।" " हे पुत्र ! मैंने जो लक्ष्मी उपार्जन की है, वो तेरे ही लिये है।" इतना कहने पर भी जब रत्नचूडने अपना आग्रह नहीं छोड़ा तो पिताने उसे परदेश जानेकी आज्ञा दे दी। रत्नचूड तत्काल कई जहाजोंमें विविध प्रकारका बहु किमती माल भर जानेको तैयार हुआ। जाते समय श्रेष्ठीने उसे इस प्रकार शिक्षा दी कि, " हे वत्स ! तू कभी अन्यायनगर-अनीतिपुरमें मत जाना, क्योंकि वहां अन्यायप्रिय नामक राजा, सर्वहारक नामका मन्त्री, गृहीतभक्षक नामका नगरशेठ, यमघण्टा नामक वेश्या, और अन्य मुनकार चोर, पारदारिक-व्यभिचारी आदि अनेक ठग लोग रहते हैं।" उनका स्वरूप जाने बिना जो वहां जाता है उसका सब वस्तु वहांके लोग हर लेते हैं, इससे उस नगरको छोड कर शेष कहीं भी जहां तेरी इच्छा हो, वहां तू खुशीसे जा सकता है।" इस प्रकार पिताकी शिक्षा शिरोधार्य कर शुभ दिनको माग लिक उपचार कर रत्नचूड जहाजमें बैठ चला।

अनेक गाम, नगर, द्वीप आदिमें पर्यटन करता हुआ रत्नचूड भवितव्यताके वशसे अनीतिनगरमें ही जा पहुँचा। नगरमें रहने वाले धूर्त लोग उसके जहाजको आते देख अत्यन्त हर्षित हुए और उसके सन्मुख गये। उन्हें देख रत्नचूड शङ्कित हुआ और जब बन्दरगाह पर पहुंचा तो उसने किसी पुरुषसे पूछा कि, " हे भद्र ! इस द्वीपका क्या नाम

है ?" उस पुरुषने उत्तर दिया, "इस द्वीपका नाम चित्रकूट है और यह अनीतिपुर नामक नगर है। यह सुन उसने विचार किया कि, पिताने जिस स्थान पर जानेको मना किया था, दैवयोगसे मैं उसी स्थान पर आ पहुंचा। यह बात अच्छी नहीं हुई परन्तु साथ ही साथ मुझ इस बात की पूरी आशा है कि यहां मेरा मनोवाञ्छित कार्य अवश्य होगा।" कहा भी है कि —

प्रगल्भशकुना यानानुकूलपवनस्तथा।
उत्साहो मनसश्चैतत्, सर्वं लाभस्य सूचकम् ॥ १ ॥

"जिस स्थान पर जाते उत्तम शकुन हो, अनुकूल पवन हो और मनमें उत्साह उत्पन्न हो वे सब लाभके सूचक हैं।" ऐसा विचार कर रत्नचूड जहाजसे बाहर उतरा और बन्दरगाह पर पड़ाव डाला। उसी समय नगरसे चार वणीक व्यापारी आये, जिन्होंने खुशीकी खबर पूछ कर कहा कि, "तुम्हारा सब माल हम खरीद करेंगे और जब तुम अपने नगरको वापस लौटना चाहोगे तब तुम जो जो कहोगे वो वो वस्तु हम तुम्हारे जहाजमें इस मालके बदलेमें भर देंगे।' रत्नचूडने इस बातको स्वीकार किया इस लिये वे धूर्त व्यापारी उसके सब मालका आपस आपसमें हिस्सा कर अपने घर ले गये। तत्पश्चात् रत्नचूड परिवार सहित वस्त्रादिकका आडम्बर कर अनीतिपुरको देखने निकला। मार्गमें किसी कारीगरने सुवर्ण और रुपेसे सुशोभित दो उपानह–जूतेकी जोड़ी

घरमें रह क्या कर सकती हूँ ? तथापि मैं तुमको मेरी माताके पास ले चलती हूँ। वहा बैठ कर तुम तुम्हारे सब प्रश्नोंके उत्तर सुन लेना।' ऐसा कह रत्नचूडको स्त्रीका वेष पहना कर वह चतुरा उसे उसकी अक्काके पास ले गई। माताके समीप प्रणाम कर जब वह बैठ रही तो वो बोली, "हे वत्स ! यह किसकी पुत्री है ? उसने उत्तर दिया, 'हे माता ! यह रूपवती नामक श्रीदत्त श्रेष्ठीकी पुत्री है। यह मुझसे मिलने आई है।"

इसी बीच जिन्होंने रत्नचूडका सारा सामान ले लिया था वे धूर्त व्यापारी यमघण्टाके पास आये। उन्होंने अपना सारा वृत्तान्त उससे कहा, इस पर वह कुट्टिनी बोली कि, "इसमें तुम्हारे सब मनोरथ व्यर्थ होंगे, किसी भी प्रकार का लाभ नही होगा, क्योंकि तुमने उसकी इष्ट वस्तुओंसे जहाज वापस भर देनेका वादा किया है। फिर इच्छा तो कई प्रकारकी हो सकती है, यदि उसने मच्छरकी हड्डियोंसे अपना जहाज भर कर वापस देनेको कहा तो तुम क्या करोगे ?" उन्होंने उत्तर दिया, "उसमें ऐसी बुद्धि कहांसे आयेगी ? क्योंकि वह बालक होकर अभी प्रथम वयका है।" कुट्टिनीने कहा, कोई बालक होते हुए भी बुद्धिमान होता है और कोई वृद्ध होते हुए भी मूर्ख हो सकता है।" यह सुन वे चारों अपने अपने स्थानको चल दिये।

थोडी देर पश्चात् उक्त कारीगर आ हसता हुआ वेश्या से बोला कि, "इस नगरमें कोई एक श्रेष्ठिपुत्र आया

हुआ है । उसको मैंने वो श्रेष्ठ उपानह भेट किये हैं और उसने मुझसे कहा है कि, मैं तुझे खुश करगा । ' तो फिर मैं जब उसका सर्वस्व ले लूगा, तभी खुश हूँगा । " यह सुन अक्का बोली, "अरे कारीगर ! यदि वो तुझसे यह पूछेगा कि, "राजाके घर पुत्र उत्पन्न हुआ है क्या तू इस खबरसे खुश है या नही ?" बतला, तब तू क्या उत्तर देगा ? और फिर तेरी क्या गति होगी ?" इस प्रकार सुन वह भी अपने घर चला गया।

तत्पश्चात् उक्त काणा धूर्त आया, उसने भी जब अपनी धूर्तताका सारी हकीकत वेश्याको सुनाई तो उसे सुन यमघण्टा हसती हुई बोली कि, "तूने उसे धन देकर अच्छा नही किया," काणेने पूछा, "क्यो ?" तब फिर अक्काने कहा कि, "यदि वो किसी दूसरका नेत्र लाकर तरे सामने रक्खेगा, तब तू क्या कहेगा ? तू यह कहेगा कि, "यह नत्र मेरा नहा है ।" परन्तु यह सुन यदि वो तुझसे यह कहेगा कि, "तूने जो एक नत्र मेर पिताके पास गिरवी रखा है उसकी जोडका दूसरा नेत्र जो तरे पास है उसको दीजीए, कि जिसस दोनोको काटम रख देख ले, यदि वे तोलमें दोनो बराबर निकले तो तू ग्रहण करना, अन्यथा नहीं । "ऐसा कहेगा तो फिर तू क्या करेगा ?" लुनकारने कहा, "ऐसी बुद्धिकी कुशलतातो केवल तुम्हीमे है, उसमें दिखाई नहि देती हैं, इससे मैं तो उसका सर्वस्व मेरे हाथमें आया हुआ ही जानता हूँ । यह कह कर वो भी अपने स्थानको चला गया ।

थोडी देर पश्चात् उन चार धूर्तोंने भी आकर अपनी अपनी कथा वेश्यासे कह सुनाई, जिनको सुन यमघण्टा बोली कि, "इस प्रपंचमें तुम्हें कोई लाभ मिले ऐसा मुझे तो दिखाई नहीं देता, क्यों कि यदि वो यह कहेगा कि, "मैं समुद्रके जलका प्रमाण कर सकता हूँ, लेकिन वो शरत है, कि तुम पहिले उसमें गिरने वाली नदीयोंका जल अलग अलग कर दो।" तो तुम ऐसा करनेमें अशक्त होंगे और अपने घरका सर्वस्व हार बैठोगे।" यह सुन वे धूर्तलोग म्लानमुख वाले हो अपने अपने घर चले गये।

श्रेष्ठिपुत्र रत्नचूडने सब युक्तियुक्त उत्तर सुन उनको चित्तमें दृढ कर वहाँसे उठ रणघण्टा-वेश्यापुत्रिके साथ उसके घरमें गया, और हास्य-विनोदकी बातचित्त कर बादमें उसकी आज्ञा ले अपने स्थानको लौटा। वहां उसका द्वारा बतलाई युक्तियोंसे अपना कार्य सिद्ध करना प्रारंभ किया। उस माल ले जाने वाले धूर्तोंसे उसने बलात्कार पूर्वक चार लाख द्रव्य लिया। यह वृत्तान्त सुन नगरका राजा आश्चर्य चकित हो कहने लगा कि, "इस [illegible]का माहात्म्य अद्भुत है कि जिसने इस धूर्तनगरके [illegible] द्रव्य ले लिया [illegible]। विस्मित हुए राजा [illegible] बुलाकर यहां [illegible]। मैं तेरेसे स[illegible] जो [illegible]। [illegible]।" इस [illegible] की और [illegible]

इस प्रकार लाभ ले रत्नचुड मालसे जहाज भर वापस अपनी नगरीको आया और माता-पिताके चरणामें प्रणाम कर सर्व वृत्तान्त पितासे कह सुनाया। जिसे सुन श्रेष्ठीको अत्यन्त हर्ष हुआ।

रत्नचुटकी ख्याति सुन जब सौभाग्यमजरी वेश्या भी उसे देखने आई तब रत्नचुडने उससे कहा कि, "हे भद्रे! मैंने तेरे उपदेशसे ही देशान्तरमें जा यह लक्ष्मी सपादन की है।" फिर राजाकी आज्ञा ले वो सौभाग्यमजरी भी रत्नचुटकी पत्नी बनी। तत्पश्चात् रत्नचुड अन्य अनेक स्त्रियोंके साथ विवाह कर स्वोपार्जित द्रव्य द्वारा दान और उपभोग करने लगा।

चिरकाल सासारिक भोग भोगकर अपने पुत्रोंको गृहभार सौंप सद्गुरुके पास अहिंसा मूलक जिनधर्म सुन, वैराग्य प्राप्त कर रत्नचुडने दीक्षा ग्रहण की और भलीभाति दीक्षा पाल समाधिसे मृत्यु प्राप्त कर स्वर्गमें गया। वहाँसे अनुक्रम महानद पदको प्राप्त करेगा।

इस कथाका उपनय इस प्रकार है कि, "वणिक पुत्र रत्नचुडसे मतलब भव्य जीवसे, उसके पितासे तात्पर्य धर्म दायक गुरुसे, सौभाग्यमजरी वेश्याके वचनोंसे तात्पर्य साधार्मिकके वचनोंसे है, कि जिसके द्वारा दिये उत्साहसे वह पुण्य लक्ष्मीका सचय करनेको उद्यमवत हुआ, उसके पिताने जो मूल द्रव्य दिया उसके स्थान पर गुरुदत्त चारित्र समझना। अनीतिपुर जानेका जो निषेध किया गया है उससे अनीति

थोडी देर पश्चात् उन चार धूर्तोंने भी आकर अपनी अपनी कथा वेश्यासे कह सुनाई, जिनको सुन यमघण्टा बोली कि, "इस प्रपंचमें तुम्हें कोई लाभ मिले ऐसा मुझे तो दिखाई नहीं देता, क्यों कि यदि वो यह कहेगा कि, "मैं समुद्रके जलका प्रमाण कर सकता हूँ, लेकिन वो शरत है, कि तुम पहिले उसमें गिरने वाली नदीयोंका जल अलग अलग कर दो।" तो तुम ऐसा करनेमें अशक्त होंगे और अपने घरका सर्वस्व हार बैठोगे।" यह सुन वे धूर्तलोग म्लानमुख वाले हो अपने अपने घर चले गये।

श्रेष्ठिपुत्र रत्नचूडने सब युक्तियुक्त उत्तर सुन उनको चित्तमें दृढ कर वहाँसे उठ रणघण्टा-वेश्यापुत्रिके साथ उसके घरमें गया, आनन्द-विनोदकी वातचित्त कर बादमें उसकी आज्ञा ले अपने स्थानको लौटा। वहां अक्का द्वारा बतलाई युक्तियोंसे अपना कार्य सिद्ध करना आरंभ किया। उक्त माल ले जाने वाले धूर्तोंसे उसने बलात्कार पूर्वक चार लाख द्रव्य लिया। यह वृतान्त सुन नगरका राजा आश्चर्य चकित हो कहने लगा कि, "इस पुरुषका माहात्म्य अद्भुत है कि जिसने इस धूर्तनगरके लोगोंसे भी द्रव्य ले लिया।" इस प्रकार विस्मित हुए राजाने रत्नचूडको बुलाकर कहा कि, "हे भद्र! मैं तेरेसे सन्तुष्ट हूँ इससे तेरी जो भी इच्छा हो सो कह।" इस पर रत्नचूडने राजासे रणघण्टा गणिकाकी याचना की और राजाकी आज्ञा होने पर वह उसकी स्त्री होकर रही।

इस प्रकार लाभ ले रत्नचुड मालसे जहाज भर वापस अपनी नगरीको आया और माता-पिताके चरणाम प्रणाम कर सर्व वृत्तान्त पितासे कह सुनाया । जिसे सुन श्रेष्ठीको अत्यन्त हर्ष हुआ ।

रत्नचुडकी ख्याति सुन जब सौभाग्यमजरी वेश्या भी उस देखने आई तब रत्नचुडने उससे कहा कि, "हे भद्रे! मैंने तेरे उपदेशसे ही दशान्तरम जा यह लक्ष्मी सपादन की है ।" फिर राजाकी आज्ञा ले वो सौभाग्यमजरी भी रत्नचुडकी पत्नी बनी । तत्पश्चात् रत्नचुड अन्य अनेक स्त्रियोंके साथ विवाह कर स्वोपार्जित द्रव्य द्वारा दान और उपभोग करने लगा ।

चिरकाल सासारिक भोग भोगकर अपने पुत्रोको गृहभार सौंप सद्गुरुके पास अहिंसा मूलक जिनधर्म सुन, वैराग्य प्राप्त कर रत्नचुडने दीक्षा ग्रहण की और भलीभाति दीक्षा पाल समाधिसे मृत्यु प्राप्त कर स्वर्गमे गया । यहाँसे अनुक्रम महानन्द पदको प्राप्त करेगा ।

इस कथाका उपनय इस प्रकार है कि, "वणिक पुत्र रत्नचुडसे मतलब भव्य जीवसे, उसके पितासे तात्पर्य धर्म दायक गुरुसे, सौभाग्यमजरी वेश्याके वचनासे तात्पर्य साधार्मिकके वचनोंसे है, कि जिसके द्वारा दिये उत्साहसे वह पुण्य लक्ष्मीका सचय करनेको उद्यमवत हुआ, उसके पिताने जो मूल द्रव्य दिया उसके स्थान पर गुरुदत्त चारित्र समझना । अनीतिपुर जानेका जो निषेध किया गया है उससे अनीति

मार्गमें जानेसे निषेध करना समझना। जहाजसे प्रयोजन सम्यक्त्व समझना, इसीसे यह संसाररूपी समुद्र तैरा जा सकता है। भवितव्यताके योगसे अथवा प्रमादसे अनीतिपुर गमन अर्थात् अनाचारमें प्रवृत्ति समझना। अन्यायपुर राजासे मत लब मोहसे समझना। मालके खरिददार चार वणिकके स्थानमें चार कषाय समझना। प्राणीको सुमति देनेवाली पूर्वकृत कर्मकी परिणतिको अक्का समझना उसके ही प्रभावसे प्राणी सब अशुभोंको उल्लंघनकर जैसे रत्नचुड कुशलक्षेम जन्मभूमिमें आया, उसी प्रकार जीव धर्ममार्गमें वापस आता है ऐसा समझना चाहिये।" इस प्रकार बुद्धिमान् पुरुषोंको यथायोग्य उपनय समझना चाहिये।

"इस प्रबंधके उपनयको विचार अज्ञान द्वारा आये विकार भारको छोड जीव फिर धर्ममें आता है, और उस मार्गमें चल मनुष्य जन्मको सफल बनाता है।

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ अष्टमस्तम्भे एकसप्ततितम प्रबंधः ॥ १७८ ॥

व्याख्यान १७९

ये व्रत अल्पकालके लिये धारण करने पर भी सुख देते हैं

अल्पकालं धृतान्येतद्, व्रतानि सौख्यदानि हि।
अतः प्रदेशिवद् ग्राह्या-ण्येतानि तत्त्ववेदिभिः ॥ १ ॥

भावार्थ —"इस व्रतको अल्पकालके लिये ग्रहण करने पर भी सुखप्रदायक सिद्ध होता है इस लिये तत्त्ववत्ताओंको परदेशी राजा सदृश इस व्रतको अवश्य धारण करना चाहिये।"

परदेशी राजाकी कथा

एक बार आमलकल्प नामक ग्राममें श्रमण भगवान श्री महावीर प्रभु पधारे। उस समय नये उत्पन्न हुए सूर्याभ देवने स्वर्गसे आ श्री महावीर प्रभुको नमस्कार कर इस प्रकार विज्ञप्ति की कि, "हे स्वामी! गौतम आदिको नये नाटक दिखाने की मुझे आज्ञा दीजिये।" उसने इस प्रकार तीन बार विज्ञप्ति की किन्तु फिर भी प्रभु मौन ही रहे, इससे उसने उस कार्यमें उनकी सम्मति होना मान लिया, क्योंकि "अनिषिद्ध अनुमत" ऐसा वचन भी है। फिर ईशान दिशामें जा उस देवताने उसकी दो भुजाओंसे १०८ देवता और १०८ देवीयें बना बत्तीसबद्ध नाटक दिखाया फिर वह महान् ऋद्धिवाला सूर्याभदेव विद्युत् सदृश प्रकट हो अपने स्वर्गको लौट गया।

उस समय दूसरे लोगोंको प्रतिबोध करानेके लिये श्री गौतम स्वामीने श्री महावीर प्रभुसे पूछा—"यह देव कौन था? और इसको इतनी समृद्धि कहांसे प्राप्त हुई?" इस पर ज्ञातपुत्र श्री महावीर प्रभुने उत्तर दिया कि, "हे गौतम! श्वेताम्बी नगरीमें परदेशी नामक एक नास्तिक राजा था, जिसके सूर्यकान्ता नामक स्त्री और सूर्यकान्त नामक पुत्र था तथा

चित्र नामक प्रधान था । एक बार वो मन्त्री राजकार्यके लिये श्रावस्ती नगरीमे जितशत्रु राजाके पास गया, वहा केशीगणधर पधार हुए होनेसे वह उनसे वन्दना करने गया और उन चतुर्ज्ञानी गुनिके पास गृहस्थ धर्मका-बारह व्रत अगीकार कर उन्हें श्वेताबी नगरी पधारने की विज्ञप्ति कर वापस श्वेताबी नगरीको लौटा ।

केशीगणधर विहार करते करते अनुक्रमसे श्वेताबी नगरीके उद्यानमे पधारे । उद्यानपालक द्वारा गुरुका आगमन जान मन्त्रीने विचार किया कि, "मेरे जैसे मन्त्री होते हुए मेरे स्वामी-राजा नरकमे जावे यह तो उचित मालूम नही पड़ता, अत मैं आज किसी भी बहानेसे राजाको गुरुकी वाणी सुनाउ और इस प्रकार राजाका उद्धारक बनु ।" ऐसा विचार कर चित्रमन्त्री घोडा खेलानेका बहाना कर परदेशी राजाको उस प्रदेशमे ले गया जहा सूरीश्वरजी थे । राजा शान्त हो जब वृक्षकी छायामे बैठा तो दूरसे उसे गुरुकी देशना सुनाई दी । उसे सुन राजाने उद्वेगित हो मुह मोड मन्त्रीसे कहा कि, "आर्त्तजनकी सदृश यह कौन चिल्लाता है ?" मन्त्रीने उत्तर दिया कि, "हे राजन् ! वहा जाने पर ही इसका निश्चय हो सकता है ।" फिर राजाको उनके समीप ले गया । वहा जा राजाने इस प्रकार देशना सुनि की —

मूढास्तत्त्वमजानाना, नानायुक्त्यर्थपेशल ।
असद्वासनया जन्म, हारयति मुधा हहा ॥ १ ॥

"यह बडे खेदकी बात है कि नाना प्रकारकी युक्तियों वाले और अर्थसे कोमल तत्त्वको नहीं जानने वाले प्राणी बुरी वासनाओं द्वारा अपना मनुष्य जन्म व्यर्थ गुमा देते हैं।"

ये शब्द सुन राजाने सूरिवर्यसे पूछा कि, "हे व्रत धारी! परलोक, पाप, पुण्य और जीव तो है ही नहीं! क्यों कि मेरे पिता बडे पापी थे, यदि वे पाप कर नरकमें गये होते तो जब मैं उनको अत्यन्त प्रिय था, ऐसी दशामें उनको आकर मुझे सचेत कर कहना चाहिये कि, "हे पुत्र! तू पाप मत करना, पापसे नरकमें दुःख उठाना पडता है।" इसीसे परलोक और पापका नहीं होना ही सिद्ध होता है।"

(१) मेरी माता अत्यन्त दयालु थी, वो स्वर्गमें गई होगी, फिर वो आकर मुझे स्वर्गका सुख क्या नहीं बतलाती? क्यों नहीं कहती कि, "हे पुत्र! तुझे पुण्य करना चाहिये?" इसीसे सिद्ध होता है कि न तो परलोक है और न पुण्य है।

(२) मैंने किसी चोरको लोहेकी कोठीमें रखा था वो उसमें घबरा कर मर गया फिर जब कोठीको देखा गया तो उसमें कोई छिद्र किसी भी स्थान पर नहीं दिखाई दिया, तो बतलाईये कि फिर उसका जीव कहांसे किस प्रकार बाहर निकल गया?

(३) और उसके मृत शरीरमें कीडे पडे हुए दिखाई दिये, जिनके घुसनेका भी कोई छिद्र दिखाई नहीं दिया, इससे सिद्ध होता है कि, प्रवेश करने वाला और निकलने वाला कोई भी जीव नहीं है।

(४) जगतमें सब जीव एक सरिखे नहीं हैं इसका क्या कारण है ? जैसा भी आप कहेंगे, परन्तु किसीका बाण दूर जाता है और किसीका समीप ही पड़ जाता है, इसी प्रकार सब जीव बराबर नहीं हैं किन्तु इसमें कोई कर्मका कारण नहीं है।

(५) हे सूरीश्वरजी ! मैंने एक चोरको जीवित तराजू पर चढ़ाया और मरनेके बाद भी चढ़ाया फिर भी उसका वजन बराबर ही निकला अतः यदि जीव वास्तवमें हो तो जीवितमें भारी व मरनेके बादमें हलका क्यों नहीं निकला ? इससे जीव सम्बन्धी विचार करना ही व्यर्थ है।

(६) हे सूरीश्वरजी ! मैंने एक चोरके टुकड़े टुकड़े कर देखा, फिर भी उसके शरीरके किसी भी प्रदेशमें जीव दिखाई नहीं दिया।

(७) हे प्रभु ! जिस प्रकार घड़े आदि पदार्थ प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं इसी प्रकार यदि जीव हो तो वो दिखाई क्यों नहीं देता ?

(८) मच्छर-कुंथुवा और हाथीके शरीरमें यदि जीव एकसा हो तो कुंथुवा आदि जन्तुका शरीर छोटा क्यों ? और हाथीका शरीर बड़ा क्या ?

(९) हे मुनिराज ! हमारे कुलमें परम्परासे जो नास्तिक मत चला आता है उसे मैं क्योंकर छोड़ दूँ ?

इस प्रकार परदेशी राजाकी प्रश्नश्रेणी सुन गुरु महाराजने उत्तर दिया कि, "हे राजन् ! यदि तूने तेरी स्त्रीको परपुरु-

थके साथ रमण करते देखा हो और तुम उस पुरुषको
पर कोटवालको मारनेके लिये सौंपा हो, उस समय व
पुरुष कहे कि, "हे राजन्! मुझे मेरे पुत्रसे मिलनेके
घर जाने दो।" तो क्या आप उसके कथनको उस
मानोंगे?" परदेशी राजाने उत्तर दिया कि, "हे सूरीश्व
ऐसे अपराधीके वचन क्योंकर माने जाय?" गुरु
कि, "फिर नरकमें रहने वाले परमाधामी तेरे पिताको
मिलनेको आनेके लिये क्योंकर छोड़े? (१)

'हे राजन्! एक बात सोचो पायखानेमें बैठा
अन्त्यज-चाण्डाल, जब आप सभामें बैठ नायिकाके गा
सुनते हो और पुष्पमाला धारण करते हो उस समय
आपको वो बुलावे तो क्या आप उसके पास जायेंगे
राजाने उत्तर दिया कि, "हे आचार्य महाराज! उस
ऐसा आनन्द छोड़ उसके पास क्योंकर जाया जावे?"
कहा कि 'तब तेरी माता जो प्रबल सुख भोग कर रही
तेरी माता जो प्रबल सुख भोग कर रही होगी वो पाय
सदृश इस मनुष्य लोकमें तुझको समझाने क्योंकर आवे?"

हे राजन्! जैसे "भूमिगृह-भोयरामें जो शङ्ख ब
जाता है, उसका नाद बाहर भी सुनाई देता है, परन्तु
बाहर निकलनेका छिद्र दिखाई नहीं देता, इसी प्रकार लो
कोठीमें रहने वाले जीवकी गति भी जान लेना चाहिए।

जैसे लोहेके गोलेको अग्निमें रखने पर वह अ
हो जाता है परन्तु उसमें अग्निको प्रवेश होनेका छिद्र

दिखाई नही देता, इसी प्रकार उस चोरके शरीरमे कीडोंका प्रवेश भी मान लेना चाहिए।" (४)

यदि कोमल बालक और बलवाला युवान् दोनो अनुक्रमसे बाण छोडे और वे नजदीक या दूर जाये तो उसके कोमल व कठिन देहका ही भेद समझना कि जो देह पूर्वकर्म द्वारा प्राप्त हुआ है। (५)

जिस प्रकार वायुसे भरी धम्मण भारी नही होती है और वायुसे रिक्त-खाली धम्मण नही हलकी होती है, उसी प्रकार तुलामे आरूढ किये चोरके जीव सहित व जीव रहित देहके लिये समझना चाहिये। (६)

हे राजन्! जैसे अरणिके काष्ठमे अग्नि समाई हुई है, किन्तु उसके खड खड करने पर भी वह दिखाई नही देती, वैसे ही इस शरीरके अन्दर भी जीव रहा है, परन्तु वह शरीरके खड खड करने पर भी दिखाई नही देता, इसको तो सर्वज्ञ प्रभु ही देख सकते हैं। (७)

जैसे वायुसे पत्र हिलते हैं परन्तु वायु प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता, वैसे ही जीवके प्रदेशके योगसे शरीर हिलता है, परन्तु जीव प्रत्यक्षतया देखनेमें नही आता। (८)

जैसे बडे घरमें रखा हुआ दीपक सम्पूर्ण घरको प्रकाशित करता है और यदि वो ही छोटी सी हाडीमे रखा जाय तो केवल उस हाडीम ही प्रकाश करता है, वैसे ही जीव जैसा भी छोटा या बडा शरीर पाता है, वैसे ही छोटा या बडामे व्याप्त होकर रहता है। (९)

हे राजन्! तुम्हारा कहना है कि, कुलपरम्परासे आये हुए नास्तिक मतको क्योंकर छोडू ? परन्तु "हे राजन्! जो परंपरासे आई हुई अधम बुद्धिको नहीं छोडता वो लोहेको लेने वाले व्यापारीके सदृश विपत्तियोंका स्थान होता है। वो कथा इस प्रकार है आप सुनो - कोइ चार मित्र द्रव्य उपार्जन निमित्त देशान्तर जाते थे मार्गमें प्रथम लोहेकी खान आई, जिसमेंसे उन्होंने लोहा लिया। वहांसे आगे बढने पर उन्हें रूपेकी खान दिखाई दी। इस पर तीन व्यक्तियोंने तो लोहा फेंक रूपा उसके बदलेमें ले लिया किन्तु उनमेंसे चोथे व्यक्तिने कदाग्रहसे लोहा नहीं छोडा। आगे बढने पर सुवर्णकी खान आइ इस पर उक्त तीन व्यक्तियोंने तो रूपा छोड उसके बदलेमें सोना ले लिया, किन्तु चोथेने तो फिर भी लोहा नहीं छोडा। आगे बढने पर रत्नोंकी खान आई इस पर उक्त तीन व्यक्तियोंने तो सुवर्ण छोड उसके बजाय रत्न ले लिये, परन्तु चोथेने फिर भी लोहा नहीं छोडा। परिणाममें तीन मित्र तो सुखी हो गये परन्तु चोथा दुराग्रही मित्र जन्म पर्यन्त दरिद्री रहनेसे दुःखी रहा। इसी प्रकार लोहेके भारको वहन करने वाले दुराग्रही सदृश परंपरासे आये मिथ्यात्वको नहीं छोडने वाले पुरुष दुःखी होते हैं।" (१०)

इसी प्रकार अपने प्रश्नोंका युक्तियुक्त उत्तर अश्व पर बेठे हुए परदेशी राजाने सुन कर धर्म प्राप्त किया अतः वो अश्व परसे नीचे उतर कर गुरुको विनय पूर्वक नमस्कार कर कहने

दिखाई नही देता, इसी प्रकार उस चोरके शरीरमे कीड़ोंका प्रवेश भी जान लेना चाहिए।" (४)

यदि कोमल बालक और बलवाला युवान् दोनों अनुक्रमसे बाण छोडे और वे नजदीक या दूर जाये तो उसके कोमल व कठिन देहका ही भेद समझना कि जो देह पूर्वकर्म द्वारा प्राप्त हुआ है। (५)

जिस प्रकार वायुसे भरी धम्मण भारी नही होती है और वायुसे रिक्त-खाली धम्मण नही हलकी होती है, उसी प्रकार तुलामे आरूढ किये चोरके जीव सहित व जीव रहित देहके लिये समझना चाहिये। (६)

हे राजन्! जैसे अरणिके काष्ठमे अग्नि समाई हुई है, किन्तु उसके खड खड करने पर भी वह दिखाई नही देती, वैसे ही इस शरीरके अन्दर भी जीव रहा है, परन्तु वह शरीरके खड खड करने पर भी दिखाई नही देता, इसको तो सर्वज्ञ प्रभु ही देख सकते हैं। (७)

जैसे वायुसे पत्र हिलते हैं परन्तु वायु प्रत्यक्ष दिखाई नही देता, वैसे ही जीवके प्रदेशके योगसे शरीर हिलता है, परन्तु जीव प्रत्यक्षतया देखनेमें नही आता। (८)

जैसे बडे घरमें रखा हुआ दीपक सम्पूर्ण घरको प्रकाशित करता है और यदि वो ही छोटी सी हाडीमे रखा जाय तो केवल उस हाडीमे ही प्रकाश करता है, वैसे ही जीव जैसा भी छोटा या बड़ा शरीर पाता है, वैसे ही छोटा या बडामे व्याप्त होकर रहता है। (९)

हे राजन्! तुम्हारा कहना है कि, कुलपरम्परासे आये हुए नास्तिक मतको क्योंकर छोड़ूं? परन्तु " हे राजन्! जो परंपरासे आई हुई अधम बुद्धिको नहीं छोड़ता वो लोहेको लेने वाले व्यापारीके सदृश विपत्तियोंका स्थान होता है। वो कथा इस प्रकार है आप सुनो —कोई चार मित्र द्रव्य उपार्जन निमित्त देशान्तर जाते थे, मार्गमें प्रथम लोहेकी खान आई, जिसमेंसे उन्होंने लोहा लिया। वहांसे आगे बढ़ने पर उन्हें रुपेकी खान दिखाई दी। इस पर तीन व्यक्तियोंने तो लोहा फेंक रूपा उसके बदलेमें ले लिया किन्तु उनमेंसे चोथे व्यक्तिने कदाग्रहसे लोहा नहीं छोड़ा। आगे बढ़ने पर सुवर्णकी खान आई इस पर उक्त तीन व्यक्तियोंने तो रूपा छोड़ उसके बदलेमें सोना ले लिया, किन्तु चोथेने तो फिर भी लोहा नहीं छोड़ा। आगे बढ़ने पर रत्नोंकी खान आई इस पर उक्त तीन व्यक्तियोंने तो सुवर्ण छोड़ उसके बजाय रत्न ले लिये परन्तु चोथेने फिर भी लोहा नहीं छोड़ा। परिणाममें तीन मित्र तो सुखी हो गये परन्तु चोथा दुराग्रही मित्र जन्म पर्यन्त दरिद्री रहनेसे दुःखी रहा। इसी प्रकार लोहेके भारको वहन करने वाले दुराग्रही सदृश परंपरासे आये मिथ्यात्वको नहीं छोड़ने वाले पुरुष दुःखी होते हैं।' (१०)

इसी प्रकार अपने प्रश्नोंका युक्तियुक्त उत्तर अश्व पर बैठे हुए परदेशी राजाने सुन कर धर्म प्राप्त किया अतः वो अश्व परसे नीचे उतर कर गुरुको विनय पूर्वक नमस्कार कर कहने

लगा कि, "हे महाराज ! प्रभातमे मैं तुमको नमस्कार कर मेरे अविनयकी क्षमा-याचना करुगा ।"

दूसरे रोज प्रातःकालमे कोणिकराजा सदृश परदेशी राजाने अत्यन्त उत्सवसे आ गुरुको वन्दना की, और उनसे श्रावकके बारह व्रत ग्रहण किये । तत्पश्चात् गुरुने कहा कि, "हे राजन् ! पुष्प फल वाले बगीचेके सदृश प्रथम दूसरोंको दान देने वाले दातार बना था, अब धर्म प्राप्त कर अदाता मत हो जाना, अर्थात् सूख हुए वन सदृश अरमणीय मत हो जाना, क्योंकि ऐसे बननेसे हमको अन्तराय लगता है और धर्मकी निन्दा होती है ।" परदशी राजाने उत्तर दिया कि, "हे स्वामी ! मैं मेरे सात हजार ग्रामकी उपजके चार विभाग कर दूगा । जिनमेंसे प्रथम भाग द्वारा मेरे राज्यके सैन्य तथा वाहनका पोषण करुगा, दूसरे भाग द्वारा अन्तःपुरका निर्वाह करुगा तीसरे भागसे भण्डारकी पुष्टि करुगा, और चौथे भागसे दानशाला आदि धर्मकार्य करुगा ।" इस प्रकार समझ विचार कर धर्मको अङ्गीकार कर परदशी राजा नगरमे आया और श्रमणोपासक हुआ । परदशी राजा मन ही मन आजके दीनको धन्य मानता था और खुदको भाग्यशाली समझ फूले न समाय, क्यो कि अन्धा क्या चाहे ? दो आखे ।

राजाको कामभोगमे अनासक्त देख उसकी राणी सूर्यकान्ता उसे मारनेका उपाय सोचने लगी । उसने उसके पुत्र सूर्यकान्तसे कहा कि "तेरे पिता देश, मुलक और राज्य की कोई चिन्ता नही करते, वे श्रावक बन इधर उधर घूमते

रहते हैं इससे शस्त्र, मन्त्र, विष, या अग्निके प्रयोगसे तू उनको मार कर स्वयं राज्य ग्रहण कर। सड़े हुए पानको निकाल कर फेंक देना ही उत्तम है।" इस प्रकार अपनी माताके वचन सुन जय कुमार मौन रहा तो रानीने विचार किया कि, "यह पुत्र डरपोक है, इसको मैंने गुप्त भेद (विचार) कह दिया है, जिससे यह अवश्य मन्त्र भेद करेगा।" ऐसा विचार कर उसने छल कर भोजनमें विष मिला कर परदेशी राजाको भोजन कराया जिससे राजाको असह्य वेदना हुई। उसने यह भी जान लिया कि यो कृत्य उसकी रानीका था, तथापि वह उस पर कुपित नहीं हुआ। स्वयमेव पौषधागारमें जा दर्भके संथारे पर पूर्वाभिमुख बैठ, शक्रस्तव-नमुत्थुणंका पाठ कर, मनमें अपने धर्माचार्यका स्मरण कर, यावज्जीव सर्व पापस्थानोंसे छुटकारा ले, समाधि द्वारा काल धर्म प्राप्त कर प्रथम देवलोकमें सूर्याभ विमानमें चार पल्योपमका आयुष्य वाला देवता हुआ।

मात्र उनचालीस दिन तक श्रावक व्रतका पालन करनेसे वह साढ़े बारह लाख योजनके विस्तार वाले विमानमें महर्द्धिक देवता हुआ। उसने परदेशी राजाके भवमें मात्र तेरह छट्ठ कर तेरवें छट्ठके पारणे संथारा किया था।

"देवपनमें उत्पन्न हुए पश्चात् अवधिज्ञान द्वारा उसने समकित प्राप्त करनेके पूर्व गुरु तको जान वो सूर्याभदेव पृथ्वी पर आया और भगवंतके पास नाटक किया। अनुक्रमसे देवगतिमें चार पल्योपमका आयुष्य भोग वहांसे चव महाविदेह क्षेत्रमें मनुष्यपन प्राप्त कर मोक्षगामी होगा।"

इत्यब्दिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ नवसप्तत्यधिकशततमः प्रबंधः ॥ १७९ ॥

व्याख्यान १८०

गृहेऽपि सवसन् कश्चित्, श्रावको निःस्पृहाग्रणी ।
कूर्मापुत्र इवाप्नोति, केवलज्ञानमुज्ज्वलम् ॥ १ ॥

"यदि कोई श्रावक घरमें रहता हुआ भी निःस्पृहमें अग्रेसर होकर जीवन गुजारते हैं तो वह कूर्मापुत्र सदृश घरमें रहता हुआ भी उज्जल केवल ज्ञान प्राप्त कर सकता है।"

कूर्मापुत्रकी कथा

दुर्गमपुरमें द्रोण नामक राजा था जिसके द्रुमादेवी नामक रानी थी और दुर्लभ नामक पुत्र था। वह राज्य और यौवन मदसे दूसरे कई कुमारोंको गेंदकी तरह आकाशमें उछाल सदव क्रिडा किया करता था। एक बार उस नगरके उद्यानमें कोई केवली भगवान पधारे। उनको उस वनकी भद्रमुखी नामक यक्षिणीने पूछा कि, "मेरे पूर्वभवके स्वामीकी क्या गति हुई है?" ज्ञानीने उत्तर दिया कि, "तेरा पूर्वभवका स्वामी इस नगरके राजाका पुत्र हुआ है।" यह सुन पूर्वभव के रूपसे लोभित हो यक्षिणी कुमारको उसके भुवनमें ले गई वहां देवीसे पूर्वभवका स्वरूप सुननेसे उसे जातिस्मरण ज्ञान हो आया इससे वे परस्पर प्रेमी हो रहने लगे। यक्षिणीने अपनी शक्तिसे उसके देहको सुगन्धित बना उसके भोगके

योग्य बनाया। दुर्लभकुमारके माता पिताने गुरु ज्ञानसे उसकी खोज की और तत्पश्चात् अनुक्रमसे दीक्षा ग्रहण की।

यक्षिणीने अवधि ज्ञान द्वारा अपने पतिका आयुष्य अल्प जान उसे उसी वनमें केवलीके पास रख दिया। वहां केवलीके मुहसे उसने यह देशना सुनी कि, "जैसे नीमका किडा नीमके कटुक रसको भी मधुर मानता है, वैसे ही मिट्टीके सुखसे अज्ञान प्राणी भी संसारके दुःखको भी सुखरूप मानते हैं। ऐसी देशना सुन दुर्लभकुमार सभास्थित अपने माता पिताके गलामें गया। हाल विलाप करने लगा। इस पर गुरुने प्रति बोध किया कि, "जो मनुष्य मनुष्यभव पाकर धर्मके विषय में प्रमादी होता है वो प्राप्त किये चिंतामणि रत्नको समुद्रमें डाल देता है।" इस देशनाको सुननेसे देवीको समकित प्राप्त हुआ और कुमारने चारित्र ग्रहण किया। अनुक्रमसे कुमार और उसके माता पिता महाशुक्र देवलोकमें देवता हुए।

उक्त यक्षिणी वहांसे चव कर भ्रमर राजाकी वंशालिका नामक रानी हुई जहां व देवनी धर्माप्त हो स्वर्गमें सिधाये। दुर्लभकुमारका जीव देवलोकसे चव कर राजगृह नगरीमें महेन्द्र नामक राजाकी कूर्मा राणीके उदरमें पुत्र रूपसे उत्पन्न हुआ। शुभ दिन और शुभ लग्नमें उसका जन्म हुआ। दोहदके अनुसार उसका धर्मदेव नाम रक्खा गया। वो पूर्वभवमें बालकाको गठरी सदृश बांध आकाशमें उछाल गेंदके समान क्रिडा किया करता था, इससे इस भवमें उसका शरीर दो हाथके प्रमाण वाला वामन हुआ और लोकमें वह कूर्मापुत्रके नामसे विख्यात हुआ।

कूर्मापुत्रको यौवन वयमें कई स्त्रियाँ चाहती थी। तथापि वो मनसे निरक्त था। एक बार किसी मुनिके मुंहसे सिद्धान्तका पाठ सुन उसे जातिस्मरण ज्ञान हो आया और अनुक्रमसे शुभ भावपूर्वक ध्यानरूप अग्निसे कर्मरूपी ईंधनको भस्म कर उसने केवलज्ञान प्राप्त किया। फिर उस महाशयने विचार किया कि "यदि मैं अभी चारित्र ग्रहण कर लूंगा तो मेरे माता पिता शोकसे मर जायेंगे, इसलिये उनको प्रतिबोध करनेके लिये अज्ञातवृत्तिसे (केवलज्ञान होनेका पता न चल सके इस प्रकार) गृहवासमें ही रहना योग्य है। "ऐसा विचार कर वो गृहवासमें रहा। उसके विषयमें कहा गया है कि, "कूर्मापुत्र सदृश दूसरा कौन धन्य है कि जो मातापिताको प्रतिबोध करनेके लिये केवली होने पर भी अज्ञातवृत्तिसे गृहवासमें रहे थे।'

इस समयके बीच शेष चारों जीव स्वर्गसे चव कर वैताढ्य पर्वत पर खेचर हुए जिन्होंने सांसारिक सुख भोग किसी चारणमुनिके पास चारित्र ग्रहण किया। बाद में जब वे महाविदेह क्षेत्रमें जिनेश्वरको वन्दना करने गये और वहां जो प्रभु देशना दे रहे थे उनको वन्दना कर बैठे तो सभामें बैठे हुए चक्रवर्तीने वैताढ्यसे आये चार मुनियोंको प्रभुके मुखसे जान प्रश्न किया कि, 'हे प्रभु! एक साथ इस प्रकार उत्कृष्टा विहार करते हुए कितने जिनेश्वर भगवन्त हैं?" प्रभुने उत्तर दिया कि, "हे चक्रवर्ती इस मनुष्य क्षेत्रमें पांच महाविदेह क्षेत्र हैं। एक एक महाविदेह क्षेत्रमें बत्तीस बत्तीस विजय हैं इससे बत्तीसको पांच गुणा करने पर एकसो साठ विजय

होवे हैं जिनमें पांच भरत और पांच ऐरावत क्षेत्र मिलानेसे एकसो सित्तरक्षेत्र होते हैं। उत्कृष्ट कालमें इन सब क्षेत्रोंमें इतने श्री जिनेश्वर भगवान विचरते है।" चक्रवर्तीने फिर पूछा कि, 'हे स्वामी! इस समय भरतक्षेत्रमें कोई चक्रवर्ती या केवली है या नहीं?" प्रभुने उत्तर दिया कि, "हे चक्रवर्ती! भरत क्षेत्रमें इस समय कूर्मापुत्र नामक एक केवली गृहवासमें रहे हैं, वह अपने मातापिताको प्रतिबोध करनेके लिये ही गृहस्था वासमें रहे हैं।" फिर उन चार चारण मुनियोंने पूछा कि, "हे भगवन्! हमको केवलज्ञान कहां होगा?" श्री जिनेश्वरने उत्तर दिया कि, "तुमको केवलज्ञान कूर्मापुत्रके पास होगा।" यह सुन चारों विद्याधर मुनि कूर्मापुत्रके पास गये और वहां मौन धारण कर बैठ रहे, इस पर कूर्मापुत्र केवली ने उनसे कहा कि, "तुम भगवंतके वचनासे यहां आये हो, परन्तु तुमने तुम्हारे पूर्वभवका इस प्रकार अनुभव किया है।" ऐसा कह उनके पूर्वभवके स्वरूपको कह सुनाया, जिसे सुन उन्हें जाति स्मरण ज्ञान हो आया और तत्काल क्षपक श्रेणी पर आरूढ हो गये जिससे उनको भी केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। तत्पश्चात् वे वापस श्री जिनेश्वर भगवंत के पास आ केवली होनेसे बिना वन्दना किये ही बैठ रहे। इस पर इन्द्रने प्रश्न किया कि, हे भगवंत! ये चारों मुनि आपको बिना वन्दना किये ही कैसे बैठ रहे? "प्रभुने उत्तर दिया कि, "ये कूर्मापुत्रके मुहसे स्वानुभूत पूर्वभवका स्वरूप जान केवली हो गये हैं।" इन्द्रने फिर प्रश्न किया कि, "हे भगवन्! श्री कूर्मापुत्र दीक्षा कब लेगा?"

उत्तर दिया कि, "आजसे सातवे दिन यह द्रव्यसे संयम स्वीकार करेगा।"

इस ओर कूर्मापुत्रने सातवे दिन मातापिताको प्रतिबोधित कर अपने आप लोच किया और मुनिपना स्वीकार किया। देवताओने सुवर्ण कमल रचा जिस पर बैठ धर्म देशनासे अनेक जीवोंको प्रतिबोध प्राप्त कर अनुक्रमसे सिद्धि सुखको प्राप्त किया।

सिद्धान्तमें कहा है कि जघन्यमे दो हाथ प्रमाणवाला पुरुष और उत्कृष्टसे पांचसो धनुषके प्रमाणवाला पुरुष सिद्धिको प्राप्त करता है "सुवर्ण, रजत, मणि, और रत्नोंसे भरपूर, नृत्य, गीत और युवतियोंसे रमणीय ऐसे भुवनमें भी जिसका मन लुब्ध नहीं हुआ ऐसे गृहस्थावासमें केवलज्ञानी बने हुए कूर्मापुत्रकी हम स्तुति करते है।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ अशीत्यधिकशततमः प्रबंधः ॥ १८० ॥

इति द्वादशः स्तंभः समाप्तः

(बारहवा स्तंभ समाप्त हुआ)

श्री उपदेशप्रासाद ग्रंथे

स्थंभ १३

मङ्गलाचरण

(जिन-स्तुति)

उत्कृष्टकाले विजयेषु भूवन्, षष्ट्युत्तरश्चक्रशतार्हन्ता ।
दिक्क्षेत्रजा कालत्रिकेण गुण्या, त्रिंशन्यग्निनाथ शतानि मम ॥१॥
सीमंधराद्या विहरन्ति ये च, विदेहना विंशतितीर्थनाथा ।
कल्याणकानि वृषभादिकाना, विंशत्यथाग्रैकशतानि चात्र ॥२॥
श्रीवारिषेणो वृषभाननश्च, चन्द्राननोऽर्हन्प्रभुवर्द्धमान ।
एतच्चतु शाश्वतमूर्त्तयश्च, मर्त्योर्ध्वलोकादिषु ता स्तवीमि ॥३॥
एतज्जिनव्यूहमनन्तरोक्त, शत्रुनपाद्रम्तु मदमरट ।
न्यस्त स्तुत तत्सन्दातु निय, ज्ञान ममाभ्युदयमुत्तम मे ॥४॥

भावार्थ —"उत्कृष्ट[1] कालमें पाच महाविदेह क्षेत्रके १६० विजयमें १६० तीर्थंकर होते हैं। उनको, तथा पाच भरत और पाच ऐरावत मिलकर दस क्षेत्रमें होने वाले दस चोवीसीके क्रमसे चालीस जिन होते हैं उनको तीना कालकी

---

१ जब मनुष्य क्षेत्रमें सबसे विशेष संख्यामें हो तब उत्कृष्टकाल कहते हैं। श्री अजितनाथ प्रभुके समयमें उत्कृष्टकाल था उस समयमें पाच महाविदेहमें १६० प्रभु विचरते थे।

तीन तीन चोवीसी लेनेको तीगुना करनेसे सातसो वीस जिनेश्वर होते हैं उनको, तथा महा विदेह क्षेत्रमें सीमधर स्वामी आदि जो वीस तीर्थंकर इस समय विचरते हैं उनको, और भरत क्षेत्रकी वर्तमान चोवीसीके ऋषभदेव आदि २४ तीर्थंकरोंके एकसो वीस कल्याणक हैं उनको, और श्री ऋषभानन, श्री चन्द्रानन और श्री वारिषेण, श्री वर्द्धमान प्रभु इन चार नामवाली शाश्वत मूर्तियां जो ऊर्ध्वलोक आदिमें शाश्वता सिद्धायतनमें रहती हैं, उनकी स्तुति करता हूँ। इन तीन श्लोकोंमें कहे १०२४ जिनेश्वरोंका समूह श्री शत्रुंजयगिरि परके सहस्रकूट पर स्थापित किये हुए हैं वे मुझे ज्ञान, समाधि, और उत्तम उद्यम प्रदान करे।" (इस १०२४ तीर्थंकरो की नामावली श्री जैन धर्म प्रसारक सभाने पुस्तक रूपसे छपवाई हुई है।)

पूर्वके बारह स्थम्भोंमे सम्यक्त्व और बारह प्रकारका वर्णन किया गया है। ऐसे समकितव्रतवाला पुरुष जिन भक्तिमें तत्पर होता है, इससे इस समय क्रम आये श्री जिन भक्तिके फलका अब वर्णन करता हूँ-कहता हूँ।

—○—

व्याख्यान १८१

प्रथमे मध्य मङ्गल

श्री वीर जगदाधार, स्तुवन्ति मन्यह नर.।
तेऽर्थवाद वितन्वन्ति, विश्वे दशार्णभद्रवत् ॥१॥

भावार्थ —" जगतके आधारभूत श्री महावीर प्रभुकी जो पुरुष सदैव स्तुति करते हैं वे दशार्णभद्र सदृश इस विश्वमें अपने अर्थवाद-यशका विस्तार करते हैं।"

दशार्णभद्रकी कथा

दशार्ण नामक देशमें दशार्ण नगरमें दशार्ण नामक राजा था। वो उसकी पांचसो रानियोंके साथ उसके अंतःपुरमें सुख-विलासका भोग करता था। एक बार उसके सेवकोंने संध्या समय उससे कहा कि, "हे स्वामी! प्रातःकाल त्रिजगके स्वामी श्री महावीर परमात्मा हमारे उद्यानमें पधारेंगे। यह सुन राजाने रोमांचित हो कर कहा कि, "मैं प्रभातमें उनकी वन्दना ऐसे ठाठ-बाटसे करूंगा जैसे पहले कभी किसीने आज तक न की हो।" इस प्रकार अहंकारसे प्रातःकालमें सोने चांदी और हाथी दांतकी पालकियोंमें अंतःपुर वासियोंको बिठाकर अत्यन्त ऋद्धि सहित वह श्री महावीर प्रभुको वन्दना करने निकला। उसके साथ अठारह हजार हाथी, चोबीस लाख घोड़े, इक्कीस हजार रथ, इक्काणु करोड़ पैदल, एक हजार सुखपाल और सोलह हजार ध्वजायें थीं। ऐसे बड़े आडम्बर सहित समवसरणके समीप आ, हाथीसे नीचे उतर, पांच अभिगमकी पूर्ति करते हुए उसने प्रभुसे वन्दना की।

उसी अवसर पर सौधर्म इन्द्रने अवधिज्ञान द्वारा यह बात जान, उस राजाका अभिमान हटानेके लिये, श्री महावीर प्रभुको वन्दना करनेको आते समय, अपनी दिव्य ऋद्धि

प्रगट की। उसने पाचसो बारह कुम्भस्थल वाले चोसठ हजार हाथी बनाये, जिनके प्रत्येकके मस्तक पर आठ आठ दन्तुशल, प्रत्येक दन्तुशलमे आठ आठ वापिकाये, प्रत्येक वापिकामे आठ आठ कमल, प्रत्येक कमलके लाख लाख पाखडिये, और प्रत्येक पाखडीमे बत्तीसबद्ध नाटक बनाये। प्रत्येक कमलके मध्यमे कर्णिकाके भाग पर एक एक ईन्द्र प्रासाद बनाया, और उसके अन्दर आठ आठ पटराणीयो सहित ईन्द्र स्वयं बैठा। इस प्रकारकी महान समृद्धि सहित ईन्द्र श्री महावीर प्रभुको वन्दना करने आया।

पूर्वाचार्योने प्रत्येक हाथीके मुखादिककी सख्या इस प्रकार बतलाई है कि, प्रत्येक हाथीके पाचसो बारह मुह, चार हजार छनवे दन्तुशल, बत्तीस हजार सातसो अडसठ वापिकाये, दो लाख बासठ हजार एकसो चुवालीस कमल, उतने ही उन कमलोकी कर्णिकाओ पर प्रासाद और वीस लाख सत्ताणु हजार एकसो बावन ईन्द्राणीये तथा छवीसो इकीस करोड चुवालीस लाख कमलकी पाखडिये थी। इस प्रकार एक हाथीके लिये समझना। ऐसे ६४००० हाथी होने से उस परके ईन्द्र आदिकी सख्याका अनुमान इस ही एकके आधारसे अपने आप समझ लेना चाहिये। और उसमे रहने वाली ईन्द्राणीयोकी सख्या तेरह हजार चारसो इकीस करोड सत्तर लाख अठाइस हजार जानना। प्रत्येक नाटकमे एकसे रूप, शृगार, और नाटकके उपकरण वाले एकसो आठ आठ दिव्य कुमार और एकसो आठ आठ ही दिव्य कन्याये

जानना ऐसी बडी ऋद्धिसे आ इन्द्रने पृथ्वी पर मस्तक झुका प्रभुके चरणमें वन्दना की ।

दशार्णभद्र राजा इन्द्रकी ऐसी समृद्धि देख आश्चर्यसे चिंतवन करने लगा कि, "अहो! इन्द्रकी समृद्धिका कितना विस्तार है? इसके सामने मेरी समृद्धि तो तुच्छ है ऐसी दशामें मैंने व्यर्थ इतना अहंकार-गर्व किया है, अरे! मेरी सम्पत्ति तो इन्द्रके एक हाथीके बराबर भी नही है। अहो! इस इन्द्रने अवश्य मेरे अभिमानरूपी मुह पर थप्पड लगा टटा कर दिया है अत अब मैं अन्तरंग समृद्धि प्रगट कर पुन भी त्रिलोकपतिको वन्दना करता हूँ और फिर देखता हूँ कि अब इन्द्र मेरा क्या कर सकता है? उसकी बाह्य समृद्धिको मेरे आन्तरिक धनसे विनाश करता हू क्यों कि अविरति गुणस्थानमें रहनेवाला यह इन्द्र इस भवमें कदापि इस सम समृद्धि-चारित्र प्राप्त कर प्रभुकी वन्दना नहीं कर सकता। इसमें मैं ऐसा काय करता हू कि जिससे यो उसकी समृद्धिसे मुझ वन्दना करे-मेरी स्तुति करे।" ऐसा विचार कर प्रभुकी देशनाके वादमें प्रतिबोध पाये दशार्णभद्र राजाने राज्यकी सपत्ति आदिको क्षण विनश्वर मान, तत्काल प्रभुके पास दीक्षा ग्रहण की । उसे देख विस्मित हुए इन्द्रने उस राजर्षिको वन्दना कर कहा कि, 'हे महासत्त्वशाली! जब तुमने इस पराक्रमसे मुझे ही जीत लिया है तो फिर दूसरोंकी तो आपके सामने क्या ताकत है? मैं आपसे बारबार क्षमा याचना करता हू! यह आपका मूर्छाका त्याग अद्भुत है। मैं तो

विषयलपट हू, आपको जीतनेमें असमर्थ हू, आप तो नि.स्पृह और माया रहित हैं, आप मुझे धर्म आशिप दे कि, जिससे आगामी भवमें अल्पकालमे ही मेरा ससारका अत हो सके।" इस प्रकार दशार्णभद्र राजर्षिकी स्तुति कर ईन्द्र महाराज स्वर्गको गया। दशार्णभद्र मुनि भी कई प्रकारके तपकरके कर्म क्षय कर मोक्ष सिधाये ।

"इसी प्रकार जो अन्तरकी समृद्धिवाला सुश्रावक अहकारका त्याग कर भक्तिपूर्वक श्री जिनेश्वर भगवतकी स्तुति करता है वो ही इस जगतमे उत्तम और धन्यवादके पात्र हैं।

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ एकाशीत्यधिकशततम॰ प्रबन्ध॰ ॥ १८१ ॥
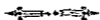
व्याख्यान १८२

श्री जिनभक्तिका फलविधान

नरत्व प्राप्य दुःप्राप्य, कुर्वन्ति भरतादिवत् ।
तीर्थंकरार्चन भक्ति, तेपा स्यात् शाश्वत यश॰ ॥१॥

भावार्थ —"जो दुर्लभ मनुष्यपन प्राप्त कर भरतादिककी तरह तीर्थंकर भगवतकी पूजा और भक्ति करते हैं उनको शाश्वत-अक्षय कीर्ति प्राप्त होती है ।"

यहा भरतसे मतलब श्री युगादि प्रभुके पुत्रसे है और आदि शब्दसे मतलब सगर राजा आदिसे है ।

भरतादिककी कथा

(श्री शत्रुंजय तीर्थके उद्धारोंका वर्णन)

श्री विनीता नगरीके उद्यानमें एक बार भरतचक्रीने श्री प्रथम तीर्थंकरको नमन कर इस प्रकार पूछा कि, "हे स्वामी! पूर्वमें जिस तीर्थमें आप निनाणु पूर्व तक समो सर्वे थे, क्या वो तीर्थ शाश्वत है?" प्रभुने उत्तर दिया कि, "हे भरत! यह सिद्धाचलगिरि पहले आरेमें अस्सी योजन, दूसरे आरेमें सीत्तर योजन, तीसरे आरेमें साठ योजन, चोथे आरेमें पचास योजन, पांचवे आरेमें बारह योजन और छट्ठे आरेमें सात हाथके प्रमाणका होता है, उससे यह तीर्थ प्राय शाश्वत कहलाता है। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणीमें इसकी अनुक्रमसे हानि और वृद्धि होती रहती है।

इस प्रकार सुन भरतचक्री चतुर्विध संघ लेकर एक बड़े उत्सव सहित उस तीर्थ पर गये और वहां इन्द्रके वचनसे उस प्रथम संघपतिने रत्न-सुवर्णमय चोराशी मंडपोंसे अलंकृत त्रैलोक्यविभ्रम नामक एक प्रासाद बनवाया। वह एक कोस ऊँचा, डेढ कोस विस्तीर्ण और हजार धनुष पोना था। फिर उसमें सुवर्ण-रत्नमय श्री जिनबिम्ब स्थापित किया। इस प्रकार उस तीर्थका उद्धार कराया। (१)

इसके पश्चात् अनुक्रमसे श्री ऋषभदेवके सन्तानमें भरतेश्वरके राज्यमें आदित्ययशा, महायशा और अतिबल आदि त्रिखण्डके भोक्ता हुए और भरत सदृश कई राजाने संघपति

हो केवलज्ञान प्राप्त किया । ईक्ष्वाकु कुलमे दूसरे भी कई राजा सिद्धिपदको प्राप्त हुए हैं। पचास लाख कोटि सागरो पम तक सर्वार्थसिद्धिके अतरित चौदह लाख आदि श्रेणि द्वारा[1] वसुदेवहिंडक नामक ग्रन्थमे कहे अनुसार असख्य राजाओने इस क्षेत्रमे सिद्धिपद प्राप्त किया है ।

भरतचक्रीके पश्चात् छ कोटी पूर्व व्यतित होने पर आठवे पाट पर दण्डवीर्य नामक राजा हुआ । उसने सघपति बन शत्रुजय तीर्थका दूसरा उद्धार किया । (२) अनुक्रमसे भरत आदिसे सात पाट होने पर आठवे राजाने भी अरिसाभवनमे केवल ज्ञान प्राप्त किया ।

तत्पश्चात् एकसो सागरोपम व्यतीत होने पर महा विदेह क्षेत्रमे श्री जिनश्वरके मुहसे सिद्धगिरिका अपूर्व वर्णन सुन ईशानेन्द्रने उस तीर्थका तीसरा उद्धार किया । (३)

उसके एक कोटी सागरोपम बाद राजा महेन्द्रने चोथा उद्धार किया । (४)

उसके दस कोटी सागरोपम बाद ब्रह्मेन्द्रने पाचवा उद्धार किया । (५)

और उसके एक कोटि सागरोपम बाद भुवनपति-चमरेन्द्रने छट्ठा उद्धार किया । (६)

---

१ चौदह लाख मोक्ष व एक सर्वार्थसिद्ध फिर चौदह लाख मोक्ष और एक सर्वार्थसिद्ध । इस प्रकार भिन्न भिन्न क्रमश्रेणिय वसुदेव हिंडीम तथा सिद्धदण्डिकामे बतलाइ गइ है ।

श्री आदिनाथ प्रभुके पश्चात् पचास लाख कोटि साग रोपम व्यतीत होने पर श्री सगरचक्रीने इन्द्रके वाक्यसे भविष्यम दुशम समय आनेवाला जान भरत द्वारा निर्मित मणिमय बिम्बको भूमिमे भण्डार दिया और उसने सातवा उद्धार किया । (७)

उसके बाद अभिनन्दन स्वामीके मुहसे महा तीर्थका वर्णन सुन व्यन्तरेन्द्रने आठवा उद्धार किया । (८)

फिर श्री चन्द्रप्रभुके समयमे चन्द्रयशा राजाने नवमा उद्धार किया । (९)

फिर श्री शान्तिनाथके पुत्र चक्रायुद्धने दशवा उद्धार किया । (१०)

फिर मुनिसुव्रतके समयमे श्री रामचन्द्रने ग्यारहवा उद्धार किया । (११)

फिर श्री नेमिनाथके समयमे जब पाण्डवोने अठारह अक्षौहिणी सेना ले कौरवोंके साथ घोर युद्ध कर महा पाप का उपार्जन किया तो उसकी माता कुन्तिने उनसे कहा कि, "हे पुत्रों ! तुमने गोत्रद्रोह कर महापापका उपार्जन किया है, अत अब श्री शत्रुंजय महातीर्थका जिनपूजा आदि कर इस पापको दूर करो।" यह सुन पाण्डवोंने अमूल्य काष्ठमय प्रासाद बनवा कर उसमे लेप्यमय बिम्बकी स्थापना कर बारहवा उद्धार किया । (१२)

फिर श्री महावीर प्रभुके निर्वाणके चारसो सित्तर वर्ष बाद श्री विक्रमादित्य राजा हुआ जिसने श्री सिध्धाचलके सघपतिका विरुद धारण किया । फिर सवत् १०८मे जावड शाह शेठने तेरवा उध्धार किया । (१३)

पाण्डवो व जावड शेठके समयके बीचमे दो करोड, पचाणु लाख, और पचोत्तर हजार सघपति हुए । फिर सवत् ११३मे वर्षमे श्रीमाली बाहडदवने चौदवा उद्धार किया ।(१४)

सवत् १३७१के वर्षमे श्री रत्नाकरसूरिजीके भक्त ओसवाल श्रेष्ठी समराशाने,–जो बादशाहका प्रधान था उसने पद्रहवा उद्धार किया । (१५)

इस समराशा शेठने नो लाख बन्दीवानोंको सोनैया देकर भेजा था । सवत् १५८७ के वर्षमे बादशाह बहादुर शाहके मान्य शेठ करमाशाहने सोलहवा उद्धार किया । (१६) जो साप्रतकालमे भव्य जीवसे वन्दित किया जाता है ।

अब अन्तिम उद्धार श्री दुप्पसहसूरिजीके उपदेशसे श्रावक विमलवाहन राजा करेगा ।

एकवार नागपुरमे पुनड नामक श्रावकने इस प्रकार गुरुकी देशना सुनी कि, " धर्मके स्थानमे स्थापित की हुई लक्ष्मी शाश्वत होती है, और तीर्थयात्राका पुण्य विशेषतया बडा होता है । कहा भी है कि,–आरम्भकी निवृत्ति, द्रव्यकी सफलता, ऊँच प्रकार सघका वात्सल्य, दर्शन–समकितकी निर्मलता, स्नेहीजनोंका हित, प्राचीन चैत्योंका दर्शन, तीर्थकी

उन्नति और प्रभावकी वृद्धि, जिन वचनकी मान्यता, तीर्थंक
गोत्रका बन्ध, सिद्धिका सामीप्य और देव तथा उत्तम मनुष
पदवीका लाभ,-ये सब तीर्थ यात्राके फल हैं। " ऐसी देशन
सुन संवत् १२७४ के वर्षमें पुनडशेठ नागपुर-नागोरसे
यात्राके लिये निकला। उसके संघमें अठारहसो बडे गाडे, ग्य
हजार सेजवाल-सुखपाल, चारसो बैल पांचसो वाजित्र, औ
कई देवालय थे। स्थान स्थान पर उत्सव करता हुआ, ज
यह संघ धोलकाके निकट पहुंचा तो वस्तुपाल मन्त्री उस
संघके सामने गया और जिस दिशासे उस संघकी रज-धुल
पवनसे उडती थी उस दिशामें जाने लगा। तब संघके लोगोंने
कहा कि -" हे मन्त्रीश! इस ओर रज उडती है अत
आप इस ओर पधारो " जिस पर मन्त्रीने उत्तर दिया कि
'ऐसी पवित्र रजका स्पर्श तो पुण्यसे ही प्राप्त होता है।'
इस विषयमें कहा है कि —

> श्री तीर्थपान्थरजसाविरजीभवन्ति,
> तीर्थेषु संभ्रमणतो न भवेभ्रमन्ति।
> द्रव्यव्ययादिह नरा स्थिरसम्पदः स्युः,
> पूज्या भवन्ति जगदीशमथार्चयन्तः ॥ १ ॥

"श्री तीर्थयात्रा जाते हुए संघके पगकी रज लगनेसे
पुरुष कर्मरूपी रजसे रहित हो जाते हैं, तीर्थमें परिभ्रमण
करनेसे प्राणीको संसारमें भ्रमण नहीं करना पडता, तीर्थमें
द्रव्यका व्यय करनेसे सम्पत्ति स्थिर हो जाती है और जग
त्पति श्री जिनराजकी पूजा करनेसे जगतमें पूज्य बनता है।"

इस प्रकार कहता हुआ मन्त्री वस्तुपाल आगे बढा । सघने सरोवरके तीर पर पडाव डाला । मन्त्रीशने सघपतिका गाढ आलिङ्गनकर भेटे और कहा कि, "हे श्रावकवर्य ! कल प्रात काल आप सघ सहित मेरे घर भोजन करने पधारे ।" सघवीने उसकी बात स्वीकार की । दूसरे रोज प्रात काल वह सर्व सघ वस्तुपालके घर भोजन करने गया तो उस समय मन्त्री वस्तुपालने स्वय सबके चरण धो तिलक किया । ऐसा करते मध्याह्न समय हो आया तो उसके लघुभ्राता तेजपालने कहा कि,—"हे देव ! मैं अन्य लोगोंसे इसी प्रकार भक्ति कर लूगा, आप भोजन कीजीये क्योंकि अधिक देरी हो जानेसे आपको परिताप होगा ।" मन्त्रीने उत्तर दिया, "हे तेज-पाल ! ऐसा न कहो, ऐसा अवसर तो बडे पुण्यसे ही प्राप्त होता है ।" उस समय गुरुश्रीने इस प्रकार कहलाया कि —

यस्मिन् कुले य. पुरुष. प्रधान , स एव यत्नेन सरक्षणीय' ।
तस्मिन् विनष्टे सकल विनष्ट, न नाभिभगे शकटा वहन्ति ॥१॥

"जिस कुलमें जो पुरुष प्रधान होता है उसका यत्न पूर्वक रक्षण करना चाहिये क्योंकि उसके विनाशसे सर्व कुलका विनाश हो जाता है । जैसे धुरेके टूट जाने पर गाडी नही चल सक्ती ।' यह सुन मन्त्रीने गुरुसे इस प्रकार कहलाया कि —

अद्य मे फलवती पितुराशा, मातुराशारपिअङ्कुरिताऽद्य ।
यद्युगादिजिनयात्रिकलोकं, प्रीणयाम्यहम शेषमखिन्न. ॥१॥

"आज युगादि प्रभुकी यात्राको जाते सर्व यात्रियोंकी मैं अविच्छिन्नसे सेवा कर प्रसन्न होता हूँ इससे आज मैं मेरे पिताकी आज्ञाको सफल होना तथा मेरी माता के आशीर्वादके भी अंकुर फूट निकला समझता हूँ।"

इस प्रकार निराभिमान भक्ति द्वारा रंजित किया हुआ श्री संघ बहुतसे निश्चल अनुक्रमसे जिनयात्रा करने गया और भलीभांति यात्रा की। इस प्रकार अन्य भी कई वृत्तान्त हैं, जो पूर्व शास्त्रोंसे मालुम पड़ सकता हैं।

"भरतादि राजा और अन्य श्रावक तथा सुर असुरोंका पति इन्द्रादि जिस प्रकार इस महा तीर्थकी भक्ति की है उसी प्रकार अन्य श्रावकोंको भी आत्मशुद्धिके लिये भक्ति करनी चाहिये।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ द्व्यशीत्यधिकशततमः प्रबंधः ॥ १८२ ॥

व्याख्यान १८३

श्री शत्रुंजयकी यात्राका फल

अन्यतीर्थेषु यात्रा–सहस्रैः पुण्यमाप्यते।
तदेकयात्रया पुण्यं, शत्रुंजयगिरौ भवेत् ॥१॥

भावार्थ:—"अन्य तीर्थोंमें हजारों यात्रा करनेसे जितना पुण्य होता है, उतना पुण्य श्री शत्रुंजयगिरिकी केवल एक यात्रा करने मात्रसे होता है।"

नितार्थ —अन्य तीर्थ अर्थात् नदीश्वर आदि तीर्थ। यादववंशी श्री अतिमुक्त केवलीने श्री कृष्णके पूजनीय नारदके समक्ष कहा कि —

जं किंचि नाम तित्थं, सग्गे पायाले तिरियलोगम्मि।
तं सव्वमेव दिट्ठं पुंडरीए वंदिए संते ॥ १ ॥

"श्री पुंडरिक तीर्थके वंदनसे यह समझना चाहिये कि उसने स्वर्ग, पाताल, और तिर्च्छालोकके सर्व तीर्थोंके दर्शन-वन्दन किया।"

अन्य महापुरुषोंने भी कहा है कि, "नंदीश्वर द्वीपकी यात्रासे जो पुण्य होता है उससे दुगुना पुण्य कुण्डलगिरिकी यात्रासे होता है, तीगुना पुण्य रूचकद्विपकी यात्रासे होता है और चौगुना पुण्य गजदंतकी यात्रासे होता है। इससे दुगुना पुण्य जम्बूवृक्ष उपरके चैत्योंकी यात्रासे, व इससे भी छगुना धातकीखण्ड स्थित धातकीवृक्ष पर श्री जिनेश्वरको पूजनेसे, इससे बाईस गुना पुण्य पुष्करवरद्वीपार्धके जिनबिंबोंकी पूजासे और सो गुना पुण्य मेरुपर्वतकी चूलिका पर स्थित श्री जिनेश्वरकी पूजासे होता है। हजार गुना पुण्य सम्मेतशिखरगिरिकी यात्रासे, लाख गुना अंजनगिरिकी यात्रासे दशलाख गुना रैवत-गिरिकी और अष्टापदगिरिकी यात्रासे और कोटि गुना पुण्य श्री शत्रुंजय महातीर्थके स्वाभाविक स्पर्शसे होता है और वो भी यदि मन, वचन, कायाकी शुद्धिपूर्वक और भावकी उत्कटतासे किया जाये उसका पुण्य तो अनंत गुना होता है।"

इस पदमें उस महातीर्थकी यात्रा अवश्य करना योग्य है। कहा भी है कि –

क्षेत्रानुभावतो पूज्यं, मुक्त्यद्रर्महिमा स्मृत ।
प्रेर भवौधमुक्त्यर्थं, यात्रा कार्या दयाभृतं ॥१॥

"पूज्य पुरुषों इस मुक्तिगारिकी महिमा क्षेत्रके अनुभावसे कही है अतः दयालु पुरुषोंको इस भवचक्रसे मुक्त होनेके लिये उसकी यात्रा अवश्य करनी चाहिये।" इस विषय पर कुमारपाल राजाका प्रबंध इस प्रकार है कि –

कुमारपाल राजाका प्रबंध

एक दिन पाटन शहरमें श्री हेमचन्द्राचार्यजीने इस प्रकार उपदेश दिया कि, "यौवन एवं वृद्ध वयमें अज्ञानवश जो पाप किया हो तो वो सब पाप सिद्धगिरिके स्पर्शसे विलीन-नाश होता है। अपितु एकबार भोजन करनेवाला, भूमि पर शयन करनेवाला ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाला, इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला, सम्यग् दर्शनसे युक्त और छः आवश्यक-प्रतिक्रमण करनेवाला पुरुष यदि सिद्धाचलकी यात्रा करे तो उसे सर्व तीर्थकी यात्राका फल मिलता है। हे कुमारपाल राजन्! इस सिद्धगिरि सदृश दूसरा तीर्थ तीना जगतमें नहीं है। इसका पुण्डरीकगिरि नाम श्री ऋषभदेवने प्रथम गणधरसे पड़ा है। इसके विषयमें कहा गया है कि, "चैत्र शुक्ला पूर्णिमाको पांच कोटि मुनियोंके परिवार सहित श्री पुण्डरीक गणधरने जिस तीर्थमें निर्मल सिद्धिसुखको प्राप्त किया उस पुण्डरीक तीर्थकी नव

हो । इसलिये संप्रति-वर्तमानकालमें चैत्रमासकी पूर्णिमाको जो दस, बीस, तीस, चालीस और पचास पुष्पमाला चढाता है, वह अनुक्रमसे एक, दो, तीन, चार और पांच उपवासका फल प्राप्त करता है। "एमा प्रमाण है। अत शास्त्रोक्त विधि द्वारा चैत्रमासकी पूर्णिमाको देववंदन और पुंडरीक उद्यापन आदि क्रिया करनी चाहिये। यात्रामें भी संघवीपद भाग्यसे ही प्राप्त होता है। हे राजन्! इन्द्रादिक पद सुलभ हैं, परन्तु संघपतिकी पदवी दुर्लभ है। कहा है कि यह संघ अरिहन्त प्रभुको भी मान्य और सर्वदा पूज्य है। ऐसे संघका जो अधिपति हो उसे तो लोकोत्तर स्थितिवाला ही समझना चाहिये।"

गुरू महाराजके इस प्रकारके उपदेशसे कुमारपालको संघयात्राका मनोरथ उत्पन्न हुआ, इसलिये अपना विचार गुरु महाराजको निवेदन किया। गुरूने आचारदिनकर आदि ग्रन्थमें लिखी विधि अनुसार आठ स्तुति द्वारा देववंदन शान्तिक एवं पौष्टिक क्रिया करा उसे संघपतिकी पदवी दी। शुभमुहूर्तमें राजाने हस्तिके कुंभस्थल पर सुवर्णका देवालय रखा और प्रयाण किया, उसके बाद पहिले बहत्तर सामंतोंके देवालय, उसके बाद चोईस मंत्रियोंके देवालय और उसके बाद अठारह सो व्यौपारियोंके जिनचैत्य-इस प्रकार अनुक्रमसे संघके आगे चले। कुमारपाल राजाने पाटणके सर्व चैत्योंकी पूजा, अमारी घोषणा, बंदीखानेसे बंदीमोचन, ओर संघभक्ति पूर्वक यात्रा भेरी बजवा कर प्रयाण किया। मार्गमें जिसके

पास भोजन नहीं था, उसको भोजन देता हुआ और सधर्मे आये लोगोंको सहोदरसे अधिक मानता हुआ राजा धीरे धीरे गिरिराजके सन्मुख प्रयाण करने लगा।

मागम जाते कुमारपालने गुरूसे तीर्थयात्राकी विधि पूछी इस पर गुरूने कहा कि —

सम्यक्त्वधारी पथि पादचारी, सचित्तहारी वरशीलधारी।
भुक्त्वापकारी सुकृती सदैका–हारी विशुद्धां विदधाति यात्राम् ॥

"समकित धारण कर, मार्गमे पैरोंसे चल, सचितका त्याग कर, शीलका पालन कर, पृथ्वी पर शयन कर और एक समय भोजन कर, सुकृति पुरुष विशुद्ध यात्रा करते हैं।"

लोकमे भी कहा जाता है कि यात्रामे वाहन पर बैठनेसे आधे फलका नाश होता है, और–हजामत करानेसे तीसरे भागका फलका नाश होता है और प्रतिग्रह–दान लेनेसे यात्राके सर्व फलका नाश होता है।" इस प्रकार सुन कुमारपालने सवारी वाहन और पगरखियों–जूतोंका तत्काल त्याग कर दिया और गुरु महाराजके साथ चलने लगा। राजाको ऐसा करते देख आचार्यने कहा कि, "हे राजन्! अश्वादिक वाहन और उपानह बिना तुम्हारे देहको बहुत पीड़ा होगी।" राजाने कहा, "पूर्वमे दुखितअवस्थामे परवशपनसेमें पैरोंसे क्या कम भटका हूं, परन्तु वो सब व्यर्थ गया है, यह तो पैरसे चलनेका हेतु तीर्थयात्रा है जो अति लाभदायक सार्थक है। इससे तो मेरा अनेक भवोंका भ्रमण टल

जायेगा।" इस प्रकारका उत्तर सुन गुरु अत्यन्त प्रसन्न हुए और राजाको पैरोंसे चलनेको उत्साहित किया।

कुमारपाल राजा मार्गमे स्थान स्थान पर प्रभावना प्रमुख प्रत्येक प्रतिमाको स्वर्णके छत्र, प्रत्येक जिनप्रासाद पर ध्वजारोपण, ग्राम, ग्राम और शहर, शहरमे साधर्मिक सन्मान-पूजा, संघको भोजन, अमारी घोषणा, दो बार प्रतिक्रमण, पर्व दिनको पौषध और याचकोंको उचित दान आदि धर्म क्रिया करता हुआ चलने लगा। जब दूरसे तीर्थके दर्शन हुए तब उसने तीर्थको संघ सहित पंचांग प्रणाम किया और उस दिन वहां ठहर श्री शत्रुंजयको मोतियोंसे बधाया, और तीर्थ सन्मुख सुगन्धी द्रव्यसे अष्टमङ्गल बनाकर तीर्थोपवास और रात्रि जागरण किया। प्रातःकाल देवगुरुकी पूजा पूर्वक पारणा किया। अनुक्रमसे गिरिराजकी तलेटीमे आये, अतः संघ सहित चैत्यवन्दन कर सर्व आशातना टाल कर श्री गिरिराज पर चढ़ने लगे। जिन प्रासादके समीप पहुंच उसके द्वारको सवाशेर मोतीसे बांध फिर अन्दर प्रवेश किया। फिर प्रदक्षिणा करते समय राजाने पूज्य श्री हेमचन्द्राचार्यजीको सरस और अपूर्व स्तुति करनेको प्रार्थना की। आचार्य महाराजने "जय जंतु कप्प० आदि धनपाल रचित पंचाशिकाके पाठ द्वारा भगवानकी स्तुति की। उसे सुन राजा प्रमुख बोले कि, "हे भगवान्! आप स्वयं समर्थ विद्वान् हैं फिर दूसरों द्वारा रचित इस स्तुतिका पाठ क्यों करते हो?" गुरुने उत्तर दिया कि, "हे राजन्! ऐसी भक्ति गर्भित अद्भुत स्तुति मैं नहीं

रच सकता।" गुरुकी ऐसी नम्रता एवं निरभिमानता देख राजा आदि अत्यन्त खुश हुए। फिर वे गुरुकी स्तुति करते हुए रायण वृक्षके नीचे आये। अत गुरुने कहा "हे राजन्! सित्तर लाख और छप्पन हजार कोटि वर्षका एक पूर्व होता है, उस अंकको नयाणु गुना करनेसे ओगणोत्तर क्रोडाक्रोड, पचाशी लाख क्रोड और चालीस हजार क्रोड होते है, इतनी बार श्री आदिनाथ प्रभु इस वृक्षके नीचे समोसर्ये-पधारे है। इस प्रकार सारावलिप्रकरण-पयन्नामें कहा गया है।"

कुमारपाल राजाने गुरुसे कथित विधि अनुसार प्रथम रायण वृक्षकी और प्रभुकी पादुकाकी सम्यक् प्रकारसे पूजा कर बादमें गर्भगृहमें प्रवेश किया। वहा मानों कि तीनो भुवनों का ऐश्वर्य प्राप्त हो गया हो उस प्रकार वह परमानन्दसे व्याप्त हो गया। उस समय बाह्य सर्व व्यापारसे मुक्त हो गये हो उस प्रकार आँखकी पलक मारे विना, और आलसुकी तरह नेत्रोंको स्थिर कर एक क्षणवार प्रभुके मुख पर दृष्टि स्थापित की, हर्षके अश्रुसे पूरित हो पापरूपी सर्व तापको दूर कर स्थित हुए। फिर "हे जगदीश! आपका पूजन मैं रंक सेवक किस प्रकार कर सकता हूँ?" आदि स्तुतिका उच्चारण करते हुए नौ लाख मूल्यके नौ महारत्नों द्वारा नव प्रकारसे जीवहिंसा और भवभ्रमण-जन्म मरण, उससे मुक्त होनेको प्रभुके नौ अङ्गोंकी पूजा की, फिर इस प्रकार विचारने लगा कि —

स्थान रूप इस रैवतगिरि पर अपने वज्रसे खुदरा कर पृथ्वीके अन्दर पूर्वाभिमुख सुन्दर प्रासाद कराया। उसमें रुपेके तीन गर्भगृह-गभारे रच उसमें रत्न, मणि और स्वर्णके तीन बिंब स्थापित किये और उसके सामने स्वर्णका पद्मासण बना उपरोक्त वज्रमय बिंब स्थापन किया। फिर वो ईन्द्र स्वर्गसे च्यव संसारमें भटकता हुआ क्षितिसार नगरमें नरवाहन नामक राजा हुआ। उस भवमें श्री नेमिनाथ प्रभुके मुखसे अपना पूर्व भव स्वरूप जान उस बिंबकी पूजा की, प्रभुके पास संयम ले, केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गया। यहा श्री नेमिनाथ प्रभुके दीक्षा, केवल ज्ञान और मोक्ष इस प्रकार तीन कल्याणक हुए और तबही यहा चैत्य और लेपमय बिम्बकी लोकमें पूजा होने लगी। श्री नेमिनाथ प्रभुके मोक्षसे नौसो नौ वर्ष बाद काश्मीरदशसे रत्न नामक एक श्रावक यहा यात्राके लिये आया। उसने जलसे भरे कलश द्वारा उपरोक्त लेपमय बिंबको स्नान किया जिससे वो बिंब गल गया। उस समय अपने द्वारा तीर्थका विनाश हुआ जान रत्न श्रावकने दो मासका उपवास किया। दो मासके अंतमें अंबिकादेवी प्रकट हुई जिसके आदेशसे उपरोक्त भूमिगत प्रासादमेंसे स्वर्णके पद्मासण परसे वज्रमय बिंब ला कर यहा स्थापित किया गया।

इस प्रकार श्री गिरनार तीर्थका वर्णन गुरुमुखसे सुन सर्व प्रकारके महोत्सव कर आत्माको कृतार्थ करता हुआ राजा कुमारपाल वहा कई दिनों तक रहा। वहा पर भी उपरोक्त जगडुशाहने ही ईन्द्रमाला पहनी। फिर राजाने वहांसे प्रयाण

कर सघ सहित देवपत्तन-प्रभास पाटण जा श्री चन्द्रप्रभ प्रभुकी यात्रा की। यहा पर भी जगडुशाहने ही इन्द्रमाला धारण की। उस समय नव राजाने जगडुशाहसे ऐसे महा-मूल्यवान् रत्नोंकी प्राप्तिका वृतान्त पूछा तो जगडुशाहने उत्तर दिया कि, "मधुमतीपुरी-महुवाम प्राग्वाट-पोरवाड वशी मेरे पिता हसराज रहते थे। उन्होने अन्तिम समयमे मुझसे कहा कि-' ये पाच रत्न ले, इनमसे सिद्धगिरि, रैवताचल और देवपाटणमें तीन रत्न अनुक्रमसे भेट करना और शेष दो रत्नोसे तेरा निर्वाह करना।" इसलिये उनके वचनसे मैंने यह पुण्य किया है।" फिर सब सघकी एक त्रित कर शेष दो रत्न, "ये रत्न आप जैसे सघपतिको ही शोभाके देने है। ' ऐसा कह उन्हें राजाको भेट दिये।

यह देख राजा विस्मित हो कर बोला कि, "हे श्रावक शिरोमणि ! तुमको धन्य है, तुम सबमें प्रथम पुण्य करनेवाले हो, क्योंकि तुमने तीनों तीर्थोंमें ईन्द्रमाल पहिन कर ईन्द्रपद प्राप्त किया है।" इस प्रकार स्तुति कर जगडुशाहको अपने अर्धासन पर बैठा, स्वर्णादिकसे उसका सत्कार कर डढ कोटि धन दे उन दो रत्नोंको ग्रहण किये। और उन दोनों रत्नोंको मध्यमणि रूप डाल मणिओंसे सुन्दर दो हार बनवा श्री शत्रुजय और गिरनार तीर्थ पर प्रभुको पहिनानेके लिये भेजा। फिर सिद्धपुरपाटण जा सर्व सघका सत्कार कर अपने अपने स्थानको सबको विदाय किये ।

"कुमारपाल राजाके सदृश भक्ति सहित विधिपूर्वक पाप समूहका नाश करने निमित्त दूसरोंको भी तीर्थयात्रा करनी चाहिये।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ त्र्यशीत्यधिकशततमः प्रबंधः ॥ १८३ ॥

व्याख्यान १८४

स्नान आदि करने की विधि

स्नानादिसर्वकार्याणि, विधिपूर्वं विधापयन् ।
हिंसाभिभ्यः, मनसा भीरु, सर्वज्ञसेवनापरः ॥१॥

भावार्थ —"सर्वज्ञ भगवन्तकी सेवामें तत्पर पुरुषको मनमें हिंसाका भय रख स्नानादि सर्व कार्य विधिपूर्वक करना चाहिये।"

स्नान विधि

प्रथम स्नान करनेके जलका पात्र जिसके नीचे रखा हुआ हो उस और प्रनालिवाले बाजोट पर पूर्व तथा उत्तर अभिमुख कर बैठना चाहिये। स्नानभूमिमें पांच वर्णकी, निलफूल, कुथुवा, कीडी, मकोडा आदि कोई जीव-जन्तु न हो और जहां धूप बराबर आती हो ऐसे उत्तम भूमि भाग पर स्नान करनेके लिए बैठना चाहिये और स्नान करनेकी जमीनमें

नीचेकी शिला शब्द न करती हो अथात् पत्थर डगमगाता न हो–हलन-चलन न हो वहा स्नान करने बैठना चाहिये । उस स्थानमें नीचे रहे जीवोकी रक्षाके लिये प्रथम पूर्णतासे प्रमार्जित कर धारा और चक्षु द्वारा बार बार देख ऐसे स्थानमें बैठ यदि अपने पच्चक्खाणका समय पूर्ण हुआ जान पडे तो तीन नवकार गिन पच्चखाण करना चाहिये । यदि उपवास का पच्चक्खाण किया होतो दतधावन आदि किये बिना ही उसकी शुद्धि ही है, क्योंकि तपका महाफल है । लौकिक शास्त्रमें भी कहा गया है कि —

> उपवासे तथा श्राद्धे, न कुर्याद्दन्तधावनम् ।
> दताना काष्टमयोगो, हन्ति सप्त कुलानि च ॥१॥

उपवास और श्राद्धके दिन दतधावन-दातण नही करना चाहिये । उस दिन दातके साथ काष्टका सयोग होना सात कुलोंको नाश करता है । '

स्नान करनेका पानी वस्त्रसे छना हुआ, प्रासुक-उष्ण किया हुआ, अचित हुआ, परिमित यानि थोडा, अर्थात् शरीरको धोया जा सके उतना ही लेना चाहिये, अधिक पाणी ढोलनसे पापकी वृद्धि होती है । इस प्रकार स्नान करना कि जलके रले चलनेसे त्रसआदि जीवोका नाश न हो । द्रव्यमें बाह्य मलका नाश करनेके लिये और श्री जिनेश्वर भगवानके परम पवित्र देहको स्पर्श करनेके लिये स्नान करनेका है और भावसे क्रोधादि मलको नाश करनेके

लिये ही द्रव्य स्नान करना कहा गया है। वो द्रव्य स्नान भावशुद्धिका हेतुरूप होनेसे ही उसके लिये आज्ञा दी गई है, अन्य किसी भी कारणसे स्नान करनेकी अनुमति नहीं दी गई है। इस प्रकारके कथनसे द्रव्य स्नानसे पुण्य होना बतलाने वालोंके कथनको असत्य बतलाया गया है ऐसा समझना।

तीर्थस्नानसे भी जीवकी अशमात्र शुद्धि नहीं होती। इस विषयमे काशीखण्डके छट्ठे अध्यायमे कहा गया है कि —

मृदो भारसहस्रेण, जलकुम्भशतेन च।
न शुद्ध्यन्ति दुराचारा, स्नातास्तीर्थशतैरपि ॥१॥
जायन्ते च म्रियन्ते च, जलमध्ये जलौकस।
न च गच्छन्ति ते स्वर्ग-मविशुद्धमनोमला ॥२॥
परदारपरद्रव्य-परद्रोहपराङ्मुख।
गङ्गाप्याह कदाऽऽगत्य, मामय पावयिष्यति ॥३॥

"हजारों भार मिट्टीसे और सैकडा जलके घडासे सैकडा तीर्थमे स्नान करे तो भी दुराचारी पुरुष शुद्ध नहीं होते ॥ १ ॥

जलके जीव जलमें ही उत्पन्न होते हैं और जलमे ही मरते हैं, परन्तु उनके मनका मेल नष्ट न होनेसे वे स्वर्गमे नहीं जा सकते ॥ २ ॥

गगा कहती है कि पर स्त्री, पर द्रव्य और पर द्रोहसे विमुख पुरुष कब आकर मुझे पवित्र करेंगे ? ॥ ३ ॥

यहां पर यदि किसीको यह शंका हो कि जब 'द्रव्य स्नान अप्काय जीवोंकी हिंसाका कारण है तो फिर गृहस्थ पूजाके समय भी उसे क्यों करे ?" तो उसके उत्तरमें कहा गया है कि, "समवसरणमें स्थित प्रभुके पवित्र देहको मल-मूत्र बिन्दु जिसके शरीर पर लगे हुए हों ऐसा कोई भी मनुष्य स्पर्श नहीं करता, क्योंकि यह आशातनाका हेतु है। इसी प्रकार यहां भी स्त्रीका शय्या, लघुनीति, बड़ीनीति तथा दुर्गंधी वालका स्पर्श आदि होनेसे मलिन हुआ शरीर जिन पूजामें भावशुद्धि करनेवाला नहीं होता, क्योंकि, "मैं अपवित्र हूं" ऐसा बारबार पूजकका स्मरण होता रहता है और शुद्धि करनेसे मैं शुद्ध हूं, प्रभुकी पूजाके योग्य हूं "ऐसा विचार करनेसे पूजकके भावकी वृद्धि होती है। देव लोकमें देवता

स्वच्छ देहवाले होते हैं, फिर भी स्वर्गकी वापिकामें स्नान कर, पवित्र होकर शाश्वत प्रतिमाकी पूजा करते हैं, तो फिर मनुष्योंको तो ऐसा करना अवश्य योग्य है अतः जो मनुष्य भावपूर्वक यतनासे द्रव्य स्नान करते हैं उनको महाफलकी प्राप्ति होती है। भाव स्नानके विषयमें लिखते हैं कि– निर्मलबुद्धिके कारणभूत ध्यानरूप जलद्वारा कर्मरूप मलको दूर करना भावस्नान कहलाता है। '

स्नान करनेके पश्चात् बाजोट नीचे रक्खी कुण्डीमें एकत्रित हुए जलको धूप वाले स्थान पर पहिले पूजणीसे पृथ्वीको पूंज किसी दक्ष पुरुषके द्वारा ढलवाना चाहिये।

स्नान कर लेने पर भी यदि शरीर पर गड़गूमड होनेसे रुधिर, तथा पर बहता हो तो उसे प्रभुकी अगपूजा नहीं करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे प्रभुजीकी आशातना होती है। ऋतुवती स्त्रीको चार दिन तक देवदर्शन और सात दिन तक पूजा नहीं करनी चाहिये इस विषयमे कहा गया है कि –

तह जिनभवणे गमण, गिहपडिमाणच्चण च सज्झाय।
पुप्फवइत्थियाण पडिसिद्ध जाव सत्तदिण ॥ १ ॥

"ऋतुवाली स्त्रीके लिये सात दिन तक जिनभवनमे गमन, गृहप्रतिमाकी पूजा और स्वाध्यायका निषेध किया गया है।"

कई मूढ लोग ऋतुवाली स्त्रीको पठन–पाठनका निषेध नहीं करते। वे स्वकल्पनासे कहते हैं कि, "श्री महावीर प्रभुके परिवारकी साध्वीयें ऋतु प्राप्त होने पर भी वाचना नहीं छोडती थी, क्योंकि ऋतुस्राव होना तो देहका स्वाभाविक धर्म है।" इसके विषयमे गुरुका कहना है कि, "ऐसा वचन कहना योग्य नहीं है, क्योंकि वे सब साध्वीयें छट्ठे और सातवे गुणठाने वर्तती होती हैं, इससे उनके लिये उस दोषका लगना सभव नहीं है ऐसा सुना गया है।"

उपर लिखेनुसार श्रावकोंकी स्नान विधि समझना चाहिये। आद्य श्लोकमे जो आदि–विगेरे शब्द है, इससे उसके बाद जो करनेका है उसकी विधि इस प्रकार है —

१ अन्य स्थान पर जिनपूजाका पाच दिनके लिये निषेध किया गया है।

स्नान करने बाद शुद्ध वस्त्रसे अंगको पोछिये फिर स्नान वस्त्र छोड दूसरा पवित्र वस्त्र पहनिये। पगसे आर्द्र पगसे भूमिका स्पर्श न कर, इसी प्रकार काष्ठकी पादुकाको सर्वथा न [1]पहिने। पगको पोंछ पवित्र स्थानमें आ, उत्तराभिमुख कर विना साध दो श्वेत वस्त्र पहिने। कहा है कि—

न कुर्यात् सन्धितं वस्त्रं, देवकर्मणि भूमिप!
न दग्धं न च विच्छिन्नं, परस्य न च धारयेत्॥

'हे राजन्! साधा हुआ, जला हुआ, फटा हुआ और दूसरेका वस्त्र देवपूजाके लिये धारण नहीं करना चाहिये।" पुराणोंमें भी कहा है कि —

कटिस्पृष्टं तु यद्वस्त्रं, पुरीषं येन कारितम् यन न कृतम्।
समूत्रमैथुनं वाऽऽपि, तद्वस्त्रं परिवर्जयेत्॥

"जो वस्त्र कटि पर लगाया हो अर्थात् पहिना हो, जिस वस्त्रको पहिन कर मल, मूत्र या मैथुन किया हो वो वस्त्र देवकर्ममें पूजामें वर्जित है।' और भी कहा है कि —

एकवस्त्रो न भुञ्जीत, न कुर्याद्देवतार्चनम्।
न कञ्चुकं विना कार्या, देवार्चा स्त्रीजनेन तु॥

"पुरुषको एक वस्त्र पहिन कर न तो भोजन करना न देवपूजा करना चाहिये और स्त्रियाको कचुकी बिना देवपूजा नहीं करनी चाहिये।" इससे यह तात्पर्य है कि पुरुषको

१ काष्ठकी पावडी पहिन कर चलनेसे जीवहिंसा अधिक होती है।

दो और स्त्रियोंको तीन वस्त्र पहिने बिना देवपूजा करना योग्य नहीं। "

सिद्धान्तमें भी कहा है कि,-एगसाडीमें उत्तरासंग करेइ "एक वस्त्रका उत्तरासंग करना" इससे उत्तरासंग अखंडवस्त्रका ही करना चाहिये, जोड़वाले वस्त्रका नहीं।"[1] अपितु लोग कहते हैं कि,-रेशमी वस्त्र द्वारा भोजन आदि क्रिया जाय तो वो भी सर्वथा पवित्र है।" यह लोक वचन अप्रमाण है। रेशमी वस्त्रके भी सूतरके वस्त्र सदृश भोजन, मल, मूत्र आदि अशुचि स्पर्शसे वर्जित होने पर ही देवपूजा में धारण करने योग्य समझना चाहिये। पहिनी हुई धोती भी अल्पकाल के लिये ही काममें लानी चाहिये। पसीना, आदि पहिनी हुई धोतीसे नहीं पूछना चाहिये।

देवपूजामें प्रायः दूसरेका वस्त्र काममें न लाना चाहिये उसमें भी विशेषतया बालक वृद्ध एवं स्त्रीका वस्त्र तो वर्जनीय है। इस विषयमें ऐसी कथा सुनि जाती है कि, एकबार कुमारपाल राजाके पूजा करनेका दो वस्त्र बाहड़ मंत्रीने काममें लिये। जिन्हें देख राजाने कहा कि "मेरे लिये नये वस्त्र मंगवा लीजिये।" मंत्रीने कहा, "हे स्वामि ऐसे नये वस्त्रका मूल्य सवा लाख द्रव्य है और ये बम्बेरानगरीमें ही बनते हैं। वे भी वहांके राजाके काममें आने बाद-उच्छिष्ट करनेपर ही यहां आते हैं।" यह सुन राजा कुमार

---

१ दो खंड अर्थात् दो कपड़ों के टुकड़ोंका साधा हुआ अथवा दो पाट-पाटवाला भी नहीं।

पालने बम्बेराके राजासे एक वस्त्र बिना काममे लिया हुआ मागा परन्तु बम्बेरानगरीके राजाने बिना काममें लिया वस्त्र नहीं भेजा, जिससे कुमारपाल राजा उस पर क्रोधायमान हुआ उसने सैन्य सहित बाहड मन्त्रीको उसके साथ युद्ध करनेको भेजा, चौदहसो साढनिया पर सवार हो सुभट शीघ्रतया वहा जा पहुचे और रात्रिमे ही बम्बेरापुरीको जा घेरा। परंतु उस रात्रिको उस नगरमे सातसो कन्याओंका विवाह था इसलिये उसमे विघ्न न होनेके भयसे रात्रिको युद्ध नहीं किया। प्रभातमें किल्ला सर कर, सात कोटि स्वर्ण और ग्यारहसो अश्व दंडके लिये और किल्लेको चूण कर दिया। इस प्रकार बम्बेरानगरी पर अधिकार कर उस देशमे अपने स्वामीकी आज्ञा फैला सातसो सालवी-कपड बनाने वालेको पाटणमें ले आये। फिर उन सालवियोंसे वस्त्र बनाकर कुमार पाल राजा पूजा समय प्रतिदिन नये नये वस्त्र धारण करने लगा। इस प्रकार दूसरोंके काममें बिना लिये वस्त्रको काममें लानेके सम्बन्धमे यह प्रबन्ध जानना।

ऐसे शुद्ध वस्त्र पहिनने बाद चैत्यकी-प्रतिमाकी प्रमार्जना। फिर यत्नपूर्वक पूजाकी सर्व सामग्री रखना यह द्रव्य शुद्धि है। राग, द्वेष, कषाय, आलोक और परलोक सम्बन्धी स्पृहा और कौतुक आदिको त्याग कर एकाग्र चित रखना यह भाव शुद्धि है। इसके विषयमे कहा है कि —

मनोवाक्कायवस्त्रोर्वी,-पूजोपकरणस्थितेः ।
शुद्धिः सप्तविधा कार्या, श्रीअर्हत्पूजनक्षणे ॥१॥

"श्री जिनेश्वर भगवतकी पूजा समय मन, वचन, काया वस्त्र, पृथ्वी, पूजा के उपकरण और स्थिति अर्थात् न्यायोपार्जित द्रव्य इन सात प्रकारकी शुद्धि करना चाहिये।"

"विधिपूर्वक स्नानादि कार्य करनेवाला प्राणी अनंत-अपूर्व ऐसा अक्षय फलको प्राप्त करता है। जैन धर्ममे भावरहित केवल बाह्य क्रिया निर्जराके लिये निष्फल सिद्ध होती है ऐसा कहा है।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ चतुरशीत्यधिकशततमः प्रबंधः ॥ १८४ ॥

व्याख्यान १८५

पुष्प आदि लानेकी विधि

पुष्पादिसर्वसामग्री, मेलनीयाऽर्चन क्षणे ।
अन्तर्दयापरस्तीर्थ-नाथभक्तिभराञ्चितः ॥१॥

"श्री तीर्थंकरकी भक्तिके भारसे सुशोभित श्रावकको अंतरमें दयापूर्वक जिनपूजाके अवसर पर पुष्पादि सर्व सामग्री एकत्रित करनी चाहिये।"

पुष्प लानेकी विधि

पुष्प लानेके लिये प्रथम मालीसे कहना कि, "जो पुष्प सिर पर रख कर लाये गये हो, शरीर परके वस्त्रमें बांध

कर लाये गये हों काखमें रख कर लाये गये हों, पृष्ठ भाग पर, घत्रके छोर पर या पेट पर बांधे गये हों, जीर्ण हो गये हों, पाखडी आदि तोड डाली गई हों, और रजस्वला स्त्रीसे स्पर्श किये गये हों ऐसे पुष्प हमारे काम नहीं आते हैं, इसलिये इन दोषोंसे रहित शुद्ध पुष्प मुझे प्रतिदिन लाकर देना चाहिये, मैं तुझे मनवांछित मूल्य दूंगा ।" ऐसे कहने पर यदि वो निर्दोष पुष्प लाकर दे तो ठीक, अन्यथा पूजाके समयमें आप अपना विश्वासी सेवक अच्छे वेषवाले द्वारा पुष्प मंगा लाना, अथवा स्वयं ही अपने अंगको स्पर्श न हो वैसे इस प्रकार छातीके सामने रख कर लाना चाहिये । इस विषयमें शास्त्रमें कहा गया है कि, "जो पुष्प पत्र या फल हाथसे गिर गया हो, पृथ्वी पर पडा हो, पैरके नीचे कुचला गया हो, सिर पर रखा गया हो, अशुद्ध वस्त्रमें लिया गया हो, नाभिसे नीचे रखा गया हो, दुष्ट लोगोंसे छुआ गया हो, बहुत पानीसे सडा दिया गया हो, और कीडोंसे दुषित किया गया हो, उसे जिनेश्वरके भक्तोंको जिनेश्वर भगवानकी पूजामें प्रयत्नसे त्याग करना चाहिये अर्थात् ऐसे फूल काममें नहीं लेना चाहिये ।" और भी कहा गया है कि, "एक पुष्पके दो भाग नहीं करना चाहिये और पुष्पकी कलीको भी नहीं छेदनी चाहिये, क्योंकि पाखडी या डंडलीको तोडनेसे हत्या जितना पाप होता है ।" फिर

आमसूत्रतन्तुभिः शिथिलग्रथिना ग्रथनीयो हार. ।

"कच्चे सूतके तन्तुआसे शिथिल-ढलकेपनसे ग्रन्थी द्वारा गा०से फूलोका हार गूथना" पच परमेष्ठीके गुणाको स्मरण करते हुए एकसो आठ पुष्पोका हार बनाना या बनवाना चाहिये, अथवा श्री जिनेश्वर भगवतके १००८ लक्षणकी सख्याका स्मरण कर एक हजार आठ पुष्पोंका हार बनाना, या बनवाना चाहिये, अथवा वर्तमान चोवीशीके चोवीश तीर्थकर, तीन चोवीसीके बहत्तर तीर्थकर, विहरमान वीस तीर्थकर, उत्कृष्ट कालसे विचरते हुए एकसो सित्तर तीर्थकर, पाच भरत और पाच ऐरवत इन दस क्षेत्रके दस चोवीसीके दोसो चालीस जिनेश्वर, अथवा तीन कालकी तीन तीन चोवीसी ग्रहण करनेके लिये तीगुने करने पर सातसो वीसकी सख्या होती है, उतने ही तीर्थकरोंका स्मरण कर उसी अनुसार पुष्पोंका हार बनाना। या बनवाना चाहिये, इसी प्रकार अनेक प्रकारकी जिनेश्वरकी सख्याका स्मरण कर उस सख्याके अनुसार ही पुष्प के हार बनाना चाहिये। यदि छूट पुष्प हों तो भगवतके आठ अगा पर आठ प्रकारके कर्मके नामों च्चारपूर्वक उन उन कर्मोंके अभावकी याचना करते हुए आठ पुष्प चढाने चाहिये और नवमे अग पर नवमा मोक्ष तत्वकी याचना कर नवमा पुष्प चढाना चाहिये। इस प्रकारकी भावना अपनी स्वबुद्धिसे जान लेवे।

यदि यहा पर किसीको यह शका हो कि, "जैसे मनुष्यकी अगुली काटनेसे उसको दुख होता है इस प्रकार वृक्षके अवयव पुष्पके तोडनेसे वृक्षको दुख होता है, इसलिये

ऐसा करनेमें महापाप लगता है, अतः पुष्प चढ़ाना योग्य नहीं है। श्री जिनेश्वर भगवंत तो छः कायके रक्षक हैं, वे ऐसा उपदेश क्या किया होगा ?" इसके उत्तरमें गुरुदेवका कहना है कि 'अरे! जिनागमके अर्थ-रहस्यको नहि जानने वाले अज्ञप्राणी! तू सुन! माली द्वारा आजीविकाके लिये विधिपूर्वक लाये हुए पुष्प जो मूल्य देकर खरीद किये जाते हैं उनमें श्रावकको कोई दोष नहीं लगता, क्योंकि वो जीवोंकी दया के लिये ही लिये जाते हैं वो विचारता है कि, यदि कोई मिथ्यात्वी उसस पुष्प खरीद कर होमकुण्ड आदिमें डालेगा तो उन पुष्पके जीवोंका सत्वर वध हो जायेगा, इसी प्रकार यदि व्यभिचारी पुरुष ले जायगा तो चोटी करके, मस्तक पर अथवा हृदय उरस्थल पर रखेगा, अथवा पुष्पकी शय्या बना उस पर सोयगा, अथवा उसका गेंद बना कर खेलेगा, वहां स्त्री-पुरुष के प्रमोद आदिसे पुष्पके कोमल जीव एक क्षणमें नाश हो जावेंगे। और स्त्रियोंके कंठ आदिमें रहे हुए पुष्पहारको देख कर किसीको शुभ भावना नहीं होगी, परन्तु उलटा पापका बंध होगा, अतः उत्तम गृहस्थ पुष्पोंको देख यह भावना करते हैं कि "यदि इन पुष्पोंको कोई पापी पुरुष लेगा, तो वो क्रीडा मात्रमें सहजमें ही इनका नाश कर देगा, इसलिये इनको अभय करनेके लिये मैं इन्हें मूल्य दे ग्रहण करुं यदि मैं इसकी उपेक्षा करूंगा तो मुझ कसाइके हाथमें जाते हुए बकरोंको न छुडाने से जो महान दोष लगता है सो लगेगा।" इस प्रकारके विचारसे

पुरुष खरीद करले पश्चात् यदि उन पुष्पोंमें उनके वर्ण सदृश ही कीड़े आदि जान पड़े तो उन पुष्पोंको अगोचर स्थानमें रखदे कि जिससे उस जीवोंकी हिंसा न हो सके ।

इसके पश्चात् त्रस जीव रहित पुष्पोंका पूर्वोक्त रीति अनुसार हार-माला बना भावकको भगवन्तके कण्ठमें स्थापन करना चाहिये । ऐसा करनेसे स्त्रीके कण्ठमें रहे हार सदृश अशुभ भावना नहीं होती, परन्तु उलटा पुष्पके जीवको अभय देने और आत्माको परमेश्वरके परम गुणकी प्राप्तिका दोना लाभ होता है । उत्तम जीवोंको यह ही विचारना चाहिये कि इसप्रकार प्रभुको पुष्प चढानेसे जितने कालका उन पुण्यवान जीवोंने आयुष्य बांधा हो उतना समय छेदन, भेदन, क्लेदन[1], शुचिकारोपण[2], मर्दन और पंचेन्द्रियादि जीवोंका स्पर्श इन सब दुःखोंके सहन करनेके अभावसे वे सुखपूर्वक जीवेंगे ।

शुद्ध पुष्पोंकी रकाबी भर प्रभुके पास ले जाकर श्रावक इस प्रकार कहे कि, "हे स्वामी! तुम तीनो जगतके स्वामी हो, इन पुष्पोंके जीवोंको मैं हिंसकोंके पाससे छुड़ा लाया हूँ इसलिये इनको और मुझे अभयदान दीजिये ।" इस प्रकार शुभ भावपूर्वक पुष्प पूजा करनेसे कोइ भी दोष नहीं लगता । अवधिज्ञान और सम्यक्त्वसे युक्त तथा जिनोंकी श्री अरिहन्तने प्रशंसा की है, वे देव भी जल तथा स्थलमें उत्पन्न हुए पुष्पोंसे जिनबिम्बकी पूजा करते हैं । श्री राजप्रश्नीयसूत्र तथा श्री जीवाभिगमसूत्रमें कहा गया है कि, "नंदा

१ काटना २ सुइसे बिंधा जाना

पुष्करणी नामक देवताकी वावडीया हैं, उसमे यावत् हजार पाखडीके कमल उत्पन्न होते हैं। उस वापिकामे प्रवेश कर देवता उन कमलाको ग्रहण करते हैं, ग्रहण कर उस वापिकासे निकल जहा शाश्वत जिनमन्दिर हैं वहा जाते हैं इत्यादि।" तथा श्री समवायागसूत्रमे चोत्तीस अतिशयोंके अधिकारमे भी कहा गया है कि, "प्रभुको केवलज्ञान होने पर वायु द्वारा एक योजन भूमिको प्रमार्जना कर-साफ कर, मेघवृष्टि द्वारा उस भूमिको उडता रज रहित कर, फिर उस पर जल तथा स्थलमे उत्पन्न हुए देदीप्यमान बहुतसे पचवर्णिय पुष्पों द्वारा जानु प्रमाण बिछाते हैं।"

यहा कोइ 'जल तथा स्थलमे उत्पन्न हुए पुष्पों सदृश पुष्प" ऐसा भी कहते हैं, परन्तु वह अयोग्य है। क्योंकि इव आदि शब्द उमास्वातिजीने बनाय हुए मूलसूत्रमे ग्रहण नही किये गये हैं। अपितु रायप्रश्नीयसूत्रमे भी जिन प्रतिमाके आगे पुष्पोका पुज बनानेका उल्लेख है। वहा भी जल स्थलमे उत्पन्न हुए सचित्त पुष्पोंका पुज बनाया जाता है ऐसा कहा गया है। इसी प्रकार श्रीज्ञातासूत्रमे समकितधारी द्रौपदी कृत जिनपूजाकी विधि भी सूर्याभदेवके समान ही होना वर्णन किया गया है किसी भी प्रकारसे न्यूनाधिक होना नही बतलाया गया है, इसलिये यदि देवताओं द्वारा किया हुआ पुष्प पुज यदि विकुर्वीत कहा जाय तो भी द्रौपदीकृत श्रीजिनेश्वरके सामनेका पुष्पपुज विकुर्वीत क्योंकर कहा जाये? इसलिये एक ही सूत्रपाठमे पूर्वापर विरोध वाला अर्थ नही करना चाहिये। एक स्थान

पुरुप खरीद करने पश्चात् यदि उन पुष्पोंमे उनके वर्ण सदश ही कीडे आदि जान पडे तो उन पुष्पोको अगोचर स्थानने रखदे कि जिससे उस जीवोंकी हिंसा न हो सके ।

इसके पश्चात् त्रस जीव रहित पुष्पोका पूर्वोक्त रीति अनुसार हार-माला बना श्रावकको भगवन्तके कण्ठमे स्थापन करना चाहिये । ऐसा करनेसे स्त्रीके कण्ठमे रहे हार सदश अशुभ भावना नही होती, परन्तु उलटा पुष्पके जीवको अभय देने और आत्माको परमेश्वरके परम गुणकी प्राप्तिका दोनों लाभ होता है । उत्तम जीवोंको यह ही विचारना चाहिये कि इस प्रकार प्रभुको पुष्प चढानेसे जितने कालका उन पुण्यवान जीवोंने आयुष्य बांधा हो उतना समय छेदन, भेदन, क्लेदन[1], शुचिकारोपण[2], मर्दन और पंचेन्द्रियादि जीवोंका स्पर्श इन सब दुःखोंके सहन करनेके अभावसे वे सुखपूर्वक जीवेंगे ।

शुद्ध पुष्पोंकी रकाबी भर प्रभुके पास ले जा कर श्रावक इस प्रकार कहे कि, "हे स्वामी ! तुम तीनो जगतके स्वामी हो, इन पुष्पोंके जीवोंको मैं हिंसकोंके पाससे छुडा लाया हूँ, इसलिये इनको और मुझे अभयदान दीजिये ।" इस प्रकार शुभ भावपूर्वक पुष्प पूजा करनेसे कोई भी दोष नही लगता । अवधिज्ञान और सम्यक्त्वसे युक्त तथा जिनोंकी श्री अरिहन्तने प्रशंसा की है, वे देव भी जल तथा स्थलमे उत्पन्न हुए पुष्पोसे जिनबिम्बकी पूजा करते है । श्री राज प्रश्नीयसूत्र तथा श्री जीवाभिगमसूत्रमे कहा गया है कि, "नदा

१ काटना २ सुइसे बिंधा जाना

पुष्करणी नामक देवताकी बावडीया है, उसमे यावत् हजार पांखडीके कमल उत्पन्न होते है। उस वापिकामे प्रवेश कर देवता उन कमलाको ग्रहण करते हैं, ग्रहण कर उस वापिकासे निकल जहा शाश्वत जिनमन्दिर हैं वहा जाते है इत्यादि।"
तथा श्री समवायागसूत्रमे चोत्तीस अतिशयोंके अधिकारमे भी कहा गया है कि, 'प्रभुको केवलज्ञान होने पर वायु द्वारा एक योजन क्षेत्रको प्रमार्जना कर-साफ कर, मेघवृष्टि द्वारा उस भूमिको उडती रज रहित कर, फिर उस पर जल तथा स्थलमे उत्पन्न हुए देदीप्यमान बहुतसे पचवर्णीय पुष्पों द्वारा जानु प्रमाण बिछाते है।"

यहा कोई 'जल तथा स्थलमे उत्पन्न हुए पुष्पों सदृश पुष्प" ऐसा भी कहते हैं, परन्तु वह अयोग्य है। क्योंकि इव आदि शब्द उमास्वातिजीने बनाये हुए मूलसूत्रमे ग्रहण नहीं किये गये हैं। अपितु राजप्रश्नीयसूत्रमे भी जिन प्रतिमाके आगे पुष्पोका पुज बनानेका उल्लेख है। वहा भी जल स्थलमे उत्पन्न हुए सचित पुष्पोंका पुज बनाया जाता है ऐसा कहा गया है। इसी प्रकार श्रीज्ञातासूत्रमे समकितधारी द्रौपदी कृत जिनपूजाकी विधि भी सूर्याभदेवके समान ही होना वर्णन किया गया है किसी भी प्रकारसे न्यूनाधिक होना नही बतलाया गया है, इसलिये यदि देवताओं द्वारा किया हुआ पुष्प पुज यदि विकुर्वीत कहा जाय तो भी द्रौपदीकृत श्रीजिनेश्वरके सामनेका पुष्पपुज विकुर्वीत क्योंकर कहा जाये? इसलिये एक ही सूत्रपाठमें पूर्वापर विरोध वाला अर्थ नहा करना चाहिये। एक स्थान

पुष्प खरीद करने पश्चात् यदि उन पुष्पोंमे उनके वर्ण सदश ही कीडे आदि जान पडे तो उन पुष्पोंको अगोचर स्थानमें रखदे कि जिससे उस जीवोंकी हिंसा न हो सके।

इसके पश्चात् त्रस जीव रहित पुष्पोंका पूर्वोक्त रीति अनुसार हार-माला बना भावकरी भगवन्तके कण्ठमे स्थापन करना चाहिये। ऐसा करनेसे स्त्रीके कण्ठमे रहे हार सदश अशुभ भावना नही होती, परन्तु उलटा पुष्पके जीवको अभय देने और आत्माको परमेश्वरके परम गुणकी प्राप्तिका दोनों लाभ होता है। उत्तम जीवोंको यह ही विचारना चाहिये कि इस प्रकार प्रभुको पुष्प चढानेसे जितने कालका उन पुण्यवान जीवोंने आयुष्य बाधा हो उतना समय छेदन, भेदन, क्लेदन[1], शुचिकारोपण[2], मर्दन और पचेन्द्रियादि जीवोंका स्पर्श इन सब दुःखोंके सहन करनेके अभावसे वे सुखपूर्वक जीवेंगे।

शुद्ध पुष्पोंकी रकाबी भर प्रभुके पास ले जा कर भावक इस प्रकार कहे कि, "हे स्वामी! तुम तीनों जगतके स्वामी हो, इन पुष्पोंके जीवोंको मैं हिंसकोंके पाससे छुडा लाया हूँ, इसलिये इनको और मुझे अभयदान दीजिये।" इस प्रकार शुभ भावपूर्वक पुष्प पूजा करनेसे कोई भी दोष नहीं लगता। अवधिज्ञान और सम्यक्त्वसे युक्त तथा जिनोंकी श्री अरिहन्तने प्रशसा की है, वे देव भी जल तथा स्थलमें उत्पन्न हुए पुष्पोंसे जिनबिम्बकी पूजा करते हैं। श्री राज-प्रश्नीयसूत्र तथा श्री जीवाभिगमसूत्रमे कहा गया है कि, "नन्दा

१ कारना २ सुइसे बिंधा जाना

पुष्करणी नामक देवताकी बावडीया है, उसमें यावत् हजार पाखडीके कमल उत्पन्न होते हैं। उस वापिकामें प्रवेश कर देवता उन कमलोंको ग्रहण करते हैं, ग्रहण कर उस वापिकासे निकल जहां शाश्वत जिनमन्दिर हैं वहां जाते हैं इत्यादि।" तथा श्री समवायांगसूत्रमें चोत्तीस अतिशयोंके अधिकारमें भी कहा गया है कि, 'प्रभुको केवलज्ञान होने पर वायु द्वारा एक योजन क्षेत्रको प्रमार्जना कर-साफ कर, मेघवृष्टि द्वारा उस भूमिको उत्ता रज रहित कर, फिर उस पर जल तथा स्थलमें उत्पन्न हुए दैदीप्यमान बहुतसे पंचवर्णीय पुष्पों द्वारा जानु प्रमाण बिछाते हैं।"

यहां कोई जल तथा स्थलमें उत्पन्न हुए पुष्पों सदृश पुष्प" ऐसा भी कहते हैं, परन्तु वह अयोग्य है। क्योंकि इव आदि शब्द उमास्वातिजीने बनाये हुए मूलसूत्रमें ग्रहण नहीं किये गये हैं। अपितु राजप्रश्नीयसूत्रमें भी जिन प्रतिमाके आगे पुष्पोंका पुंज बनानेका उल्लेख है। वहां भी जल स्थलमें उत्पन्न हुए सचित पुष्पोंका पुंज बनाया जाता है ऐसा कहा गया है। इसी प्रकार श्रीज्ञातासूत्रमें समकितधारी द्रौपदी कृत जिनपूजाकी विधि भी सूर्याभदेवके समान ही होना वर्णन किया गया है किसी भी प्रकारसे न्यूनाधिक होना नहीं बतलाया गया है, इसलिये यदि देवताओं द्वारा किया हुआ पुष्प पुंज यदि विकुर्वित कहा जाय तो भी द्रौपदीकृत श्रीजिनेश्वरके सामनेका पुष्पपुंज विकुर्वित क्योंकर कहा जाये? इसलिये एक ही सूत्रपाठमें पूर्वापर विरोध वाला अर्थ नहीं करना चाहिये। एक स्थान

पुष्प खरीद करने पश्चात् यदि उन पुष्पोंमें उनके वर्ण सदृश ही कीडे आदि जान पडे तो उन पुष्पोंको अगोचर स्थानमें रखदें कि जिससे उस जीवोंकी हिंसा न हो सके।

इसके पश्चात् त्रस जीव रहित पुष्पका पूर्वोक्त रीति अनुसार हार-माला बना श्रावकको भगवन्तके कण्ठमें स्थापन करना चाहिये। ऐसा करनेसे प्रभुके कण्ठमें रह हार सदृश अशुभ भावना नहीं होती, परन्तु उलटा पुष्पके जीवको अभय देने और आत्माको परमेश्वरके परम गुणकी प्राप्तिका दोगा लाभ होता है। उत्तम जीवोंको यह ही विचारना चाहिये कि इसप्रकार प्रभुको पुष्प चढानेसे जितने कालका उन पुण्यवान जीवोंने आयुष्य बांधा हो उतना समय छेदन, भेदन, क्लेदन[1], शुचिकारोपण[2], मर्दन और पंचेन्द्रियादि जीवोंका स्पर्श इन सब दुःखोंके सहन करनेके अभावसे वे सुखपूर्वक जीवेंगे।

शुद्ध पुष्पोंकी रकाबी भर प्रभुके पास ले जा कर श्रावक इस प्रकार कहे कि, "हे स्वामी! तुम तीनों जगतके स्वामी हो, इन पुष्पोंके जीवोंको मैं हिंसकोंके पाससे छुडा लाया हूँ, इसलिये इनको और मुझे अभयदान दीजिये।" इस प्रकार शुभ भावपूर्वक पुष्प पूजा करनेसे कोई भी दोष नहीं लगता। अवधिज्ञान और सम्यक्त्वसे युक्त तथा जिनोंकी श्री अरिहन्तने प्रशंसा की है, वे देव भी जल तथा स्थलमें उत्पन्न हुए पुष्पोंसे जिनबिम्बकी पूजा करते हैं। श्री राज प्रश्नीयसूत्र तथा श्री जीवाभिगमसूत्रमें कहा गया है कि, "नन्दा

---

१ काटना २ सुइसे बिंधा जाना

उसकी सगर्भा स्त्रीको सार्थवाहने जानसे मार दी । उसके उदरसे निकल बालक भी पृथ्वी पर पड मर गया । पतिका नाश हो गया । मालवपतिने उस सार्थवाहको निर्दय दो हत्या[1] करने वाला जान देशमेसे तिरस्कार कर निकाल दिया । इससे उसे वैराग्य उत्पन्न होनेसे वह तपस्वी बन तपस्या कर मृत्युको प्राप्त हो जयसिंह[2] राजा हुआ, परन्तु पूर्वभवमे की हुई दो हत्याके पापके फल स्वरूप वह अपुत्र-पुत्र बिना ही रहा ।

नरवीरको देशान्तर जाते हुए मार्गमे यशोभद्रसूरिजी मिले । सूरिजीने कहा,–" अरे क्षत्रिय ! तू क्षत्रियकुलमे उत्पन्न हो जीवहिंसा क्यों करता है ? तू क्षत्रिय है, इससे यह पेका हुआ बाण वापस ले ले, क्योंकि तुम्हारे शस्त्र तो आर्त्त–पीडित प्राणि रक्षणके लिये होना चाहिये निरपराधी जीवोंको लेशमात्र भी दुःखी करनेके लिये नहीं है ।" यह सुन लज्जित होकर उत्तर दिया कि, "हे स्वामी ! क्षुधार्त प्राणी कौनसा पाप नहीं करता ? क्योंकि निर्धन-शक्तिहिन पुरुष तो बहुधा निर्दय ही होते हैं । इस विषयमे पंचतन्त्रमे गंगदत्तकी कथा प्रसिद्ध है । इस प्रकार वो गुरुदेवके उपदेशसे व्यसन रहित–निर्व्यसनी हुआ ।

वहासे घूमता घूमता नरवीर नवलाखतैलङ्ग देशमे स्थित एकशिलानगरीमे पहुँचा, जहां वो उढर नामक श्रेष्टिके घर पर भोजन-वस्त्रकी आजीविका पर सेवक बन रहने लगा ।

---

१ स्त्री हत्या और बाल हत्या २ सिद्धराज जयसिंह

पर पुष्टि करने वाला वो दूसरे स्थान पर खण्डन करने वाला इस प्रकार परस्पर विरोधी न्याय न करना चाहिये। यद्यपि देवताओंमें अनेक प्रकारका सामर्थ्य है तथापि सिद्धान्तमें कपोलकल्पित मति चलाना अयुक्त है। और नारकी विना तेवीस दण्डकमें रहे हुए जीव पुण्य प्राप्त करते हैं और वर्तमान कालमें पुण्यवाले–पुण्यशाली जीव ईशानदेवलोक तक जा सकते हैं। पुष्पपूजा पर कुमारपाल राजाका पूर्वभवका वृत्तान्त इस प्रकार है कि —

कुमारपाल राजाका पूर्वभवका वृत्तान्त

एक समय जब राजा कुमारपालने श्री हेमचन्द्रसूरिजीसे उसके पूर्व भवके विषयमें पूछा तो उस समय श्री सूरीश्वरने सिद्धपुरमें सरस्वतीनदीके तट पर अट्टम तप कर सूरिमन्त्रके दूसरे पीठकी अधिष्ठायिका देवीकी आराधना की फिर देवीने आकर राजा कुमारपालका पूर्वभव बतलाया, इस पर सूरिजीने राजा तथा नगरजन समक्ष इस प्रकार उसके पूर्व भवका वृत्तान्त कह सुनाया कि, "हे राजन्! पूर्व भवमें मेवाडकी सीमामें जयकेशी नामक राजा था, जिसको नरवीर नामक एक पुत्र था। वह पुत्र सात व्यसनोंमें लिप्त होनेसे उसके पिताने उसे अपने नगरसे बाहर निकाल दिया। वह पर्वत श्रेणीमें किसी पल्लिका स्वामि–पल्लीपति हो गया। एक वार जय तिलक नामक सार्थपतिका उसने सम्पूर्ण सार्थ–सब लूट लिया। सार्थपति भागकर पल्लिके राजाकी शरणमें गया और उसकी सैना ला उस पल्लिको घेर लिया। नरवीर वहासे भाग गया।

उसकी सगर्भा स्त्रीको सार्थवाहने जानसे मार दी। उसके उदरसे निकल बालक भी पृथ्वी पर पड मर गया। पहिका नाश हो गया। मालवपतिने उस सार्थवाहको निर्दय हो हत्या[1] करने वाला जान देशमेसे तिरस्कार कर निकाल दिया। इससे उसे वैराग्य उत्पन्न होनसे वह तपस्वी बन तपस्या कर मृत्युको प्राप्त हो जयसिंह[2] राजा हुआ परन्तु पूर्वभवमे की हुई दो हत्याके पापका फल स्वरूप वह अपुत्र-पुत्र बिना ही रहा।

नरवीरको देशान्तर जाते हुए मार्गमे यशोभद्रसूरिजी मिले। सूरिजीने कहा,-" अरे क्षत्रिय! तू क्षत्रियकुलमे उत्पन्न हो जीवहिंसा क्यों करता है? तू क्षत्रिय है, इससे यह फेका हुआ बाण वापस ले ले, क्योंकि तुम्हारे शस्त्र तो आर्त्त-पीडित जनोंके रक्षणके लिये होना चाहिये, निरपराधी जीवोंको लेशमात्र भी दु:खी करनेके लिये नहीं है।" यह सुन लज्जित होकर उत्तर दिया कि, "हे स्वामी! क्षुधार्त्त प्राणी कौनसा पाप नहीं करता? क्योंकि निर्धन-शक्तिहिन पुरुष तो बहुधा निर्दय ही होते हैं। इस विषयमे पंचतन्त्रमे गंगदत्तकी कथा प्रसिद्ध है। इस प्रकार वो गुरुदेवके उपदेशसे व्यसन रहित-निर्व्यसनी हुआ।

वहासे घूमता घूमता नरवीर नवलाखवैलक्ष देशमे स्थित एकशिलानगरीमे पहुँचा, जहां वो उन्नर नामक श्रेष्ठिके घर पर भोजन-वस्त्रकी आजीविका पर सेवक बन रहने लगा।

---

१ स्त्री हत्या और बाल हत्या २ सिद्धराज जयसिंह

उस नगरीमे उदर श्रेष्टिने श्री महावीरप्रभुका एक चैत्य बना रक्खा था जहा पर्यूषण पर्व आनेसे उदर श्रेष्टि सकुटुम्ब पूजा करनेके लिये गया, वहा बडी विधिसे पूजा कर उदर श्रेष्टिके साथमे आये नरवीरसे कहा कि, "ये पुष्प ले और प्रभुकी पूजा कर।" यह सुन नरवीर विचार करने लगा कि, "मैंने ऐसे परमेश्वर तो पहिले कभी नहीं देखे। ये प्रभु तो अपूर्व जान पडते है, और ये प्रभु तो रागादि चिह्नोसे रहित होनेसे सच्चे परमेश्वर जान पडते है। अत ऐसे प्रभुकी पूजा मैं दूसराके दिये हुए पुष्पोंसे क्या करू?" ऐसा विचार कर उसके पास जो मात्र पाच कोडी थी उनके पुष्प खरीद किये और नेत्रोमे आनन्दके अश्रु भर, प्रसन्न हो त्रिकरण–मन वचन और कायाकी शुद्धि द्वारा प्रभुकी पूजा की। फिर पूर्ण भावभक्तिसे बोला कि–"हे स्वामी! आप दयालु होनेसे आपने मुझे इस ससारसे उद्धारा है, क्योंकि ईन्द्रको भी दुर्लभ ऐसी भक्ति करनेका आपने मुझे मौका–समय दिया है। इस प्रकार वारवार कहता हुआ वह उदर श्रेष्टिके साथ वहा आये हुए यशोभद्रसूरिजीके पास आया। वहा गुरुकी धमदेशना सुनी। देशना सुननेके वाद शेठके साथ उसने भी उपवास किया और अनुक्रमसे मृत्यु प्राप्त कर तू यहा त्रिभुवनपाल राजाका पुत्र "कुमारपाल" हुआ है। उदर शेठ उदयन मन्त्री हुआ है और यशोभद्रसूरिजी थे वह मैं हुआ हूँ। यहासे आयुष्य पूर्ण कर तू अन्तमे व्यन्तरजातिमे महर्द्धिकपन प्राप्त कर यहासे चव, भरतक्षेत्रमे भद्दिलपुर नगरमे शतानन्द राजाकी धारणी नामक

राणीके गर्भसे शतबल नामक पुत्रके रूपमे उत्पन्न होगा, और उसी भवमे श्री पद्मनाभ प्रभुका ग्यारवा गणधर हो मोक्ष प्राप्त करेगा।"

इस प्रकार अपना पूर्वभव सुन कुमारपाल प्रसन्न हुआ। फिर उसने गुरुदेवकी आज्ञा ले अपना आप्तजन-विश्वासु पुरुषको उस देशमें भेजा। वो पुरुष वहा जा उदर सेठके पुत्रके मुहसे उसी प्रकार सब कथा सुन वापस लौटा और उसने यह सब समाचार राजा कुमारपालसे कह सुनाया। जिसे सुन राजाने विशेष प्रसन्न हो सर्व संघ समक्ष हेमचन्द्राचार्य गुरुको हर्षपूर्वक कलिकाल सर्वज्ञ विरुद दिया।

यह वृत्तान्त पूजाके लिये विधि पूर्वक पूजा सामग्री एकत्रित करनेके लिये शिक्षारूप है।

"पूर्व भवमें जो अनुचर था उसने राजापन प्राप्त किया और पूर्वमे जो स्वामी था उसने प्रधानपन प्राप्त किया, यह सब कम या अधिक पुण्यकी गिनतीमे नहीं हुआ था परन्तु अधिक भावयुक्त पूजा करनेसे महाफल प्राप्त होता है।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ पचाशीत्यधिकशततमः प्रबंधः ॥ १८५ ॥

—o—

व्याख्यान १८६

अभिमान दोष रहित जिनचैत्य बनवाना

अन्येऽहनि शुभे क्षेत्रे, प्रासादो विधिपूर्वकम् ।
मानादिदोषमुक्तेन, कार्यते पुण्यशालिना ॥ १ ॥

"शुभ दिनको अच्छे क्षेत्रमें अभिमान आदि दोषों रहित पुण्यशाली पुरुषको विधिपूर्वक जिनचैत्य कराना चाहिये ।" जिसकी विधि इस प्रकार है —

श्री जिनचैत्य करानेकी विधि

जिनचैत्य कराने वालेको चैत्य बनवानेके लिये ईंटे या चुनाने अपनी ओरसे नहि पकाना चाहिये और किसीके द्वारा भी नहि पकवाना चाहिये किन्तु तैयार माल खरीद करना चाहिये, लकडी भी सूकी खरीद करना चाहिये, वृक्ष छेदन नही कराना चाहिये । इस विषयमें प्राचीन ग्रन्थके आधारसे स्वय विचार ले। मूल श्लोकमे जो आदि शब्द हैं, उसका तात्पर्य कीर्ति, वध आदि दोषों बतलानेका है इसलिये उन दोषोंसे रहित हो पुण्यवान् जीवने जिनचैत्य कराना चाहिये । इस विषयमें सम्प्रति राजा आदिके अनेक दृष्टान्त हैं । जिनमें से सम्प्रति राजाकी कथा इस प्रकार है कि —

सम्प्रतिराजाकी कथा

सम्प्रति महाराजा जब तीन खंड पृथ्वीको विजय कर सोलह हजार राजाओंके परिवार सहित अवन्तीनगरीको आया

और उसकी माताके चरणामे गिरा तो उस समय उसकी माताका मुह श्याम-अप्रसन्न देख जिसे राजाने प्रश्न किया कि, "हे माता! मैं कई देश विजय कर लौटा हूँ फिर भी तुम हर्षित-खुशी क्यो नही होती?" माताने उत्तर दिया कि, "हे पुत्र! तूने राज्यके लाभसे केवल ससारकी ही वृद्धि की है और मस्तक पर पापके व्यापारका भार वहन कर यहा आया है इससे मेरे लिये यह हर्षका अवसर नहीं है, मुझे तो यदि जिनचत्य आदि पुण्यका काम कर आये तब ही हर्ष होता है, इसके सिवाय हर्ष नहीं होता, "हे वत्स! मैंने आयसुहस्तीसूरिजीसे सुना है कि श्री जिनप्रासाद करानेसे महान् पुण्य होता है।" कहा भी है कि —

काष्ठादीना जिनावास, यावन्त परमाणव।
तावन्ति वर्षलक्षाणि, तत्कर्त्ता स्वर्गभाग्भवेत् ॥१॥

"श्री जिनप्रासाद के काष्ट आदिमें जितने परमाणु हो उतने ही लाख वर्ष तक उस प्रासादका करानेवाला स्वर्ग सुख भोगवता है।"

लौकिकमें परमाणुका लक्षण इस प्रकार बतलाया गया है कि, "घरके छप्पर के सूक्ष्म छिद्रामे से आनेवाले सूर्यकी धूपमें जो रज दिखाई देती है उसका तीसवा भाग व्यव हारसे-परमाणु कहलाता है।"

और भी कहा है कि, "विवेकी पुरुषको नया जिन प्रासाद करानेम जो पुण्य होता है उसका आठ गुण पुण्य उसे

जूने खंडेर मन्दिरके जीर्णद्धार करानेसे होता है। "अग्नि, जल, चोर, याचक, राजा, दुर्जन तथा भागीदार आदिसे बचाया हुआ जिसका धन जिनभुवन आदिमें व्यय किया जाता है उस पुरुषको धन्य है।" माता कहती है कि, "हे वत्स! मैंने इस प्रकार पूज्य सूरिजीसे सुना है और चैत्य करानेमें जो महान् पुण्य होता है उसका यह भी कारण है कि चैत्य परिमित क्षेत्रमें चैत्य करानेवालेने ससारारम के व्यौपारसे हटा कर धर्म व्यौपारमे लगा दिया है। सुना है कि, "जितने क्षेत्रमे चैत्य हो उतने क्षेत्रमें चूल्हा नहीं बनाना तथा रांधना, पिसना, विषयसेवन करना, धूत क्रिया करना, अथवा क्षेत्र खोदना आदि अधम कार्य भी नहीं करने चाहिये, चैत्य क्षेत्रको वैसे कार्यसे सदैव दूर रखना चाहिये। लोकोंके स्थान तो पापक्रियाकी प्रवृत्ति वाले होते हैं, इससे इस स्थानको वैसा नहीं बनाना चाहिये, पुण्यबुद्धिसे उस स्थानको धर्म क्रियाका ही बनाये रखना चाहिये।' और हे वत्स! चैत्य करानेवालेको कुतलादेवी के समान मत्सर ईर्षा भी नहीं करना चाहिये।

राणी कुन्तलाकी कथा

अवनीपुर के जितशत्रु राजाके कुन्तला नामक पटराणी थी। वह अर्हत धर्ममें निष्ठा रखती थी। उसके उपदेशसे उसकी अन्य सपत्नी-शोकें भी धर्मवाली बनी थी। वे सब कुंतलाका अत्यन्त मान करती थी। एकवार अन्य सब सपत्नीयोने श्री जिनेश्वर भगवतके नये चैत्य बनवाये, उन्हे देख

अत्यन्त मत्सरभाववाली कुन्तलाने भी अपना जिनप्रासाद उनसे भी अधिक सुन्दर बनवाया। उसमें पूजा नाट्य आदि भी विशेष कराने लगी और सपत्नीयोंके प्रासाद आदि पर मनसे द्वेष रखने लगी। सरल हृदयवाली सपत्नीये तो उसके कार्यको नित्य अनुमोदन करने लगी। कुंतला इस प्रकारके मत्सरभाव में मस्त होता हुई दुर्दैवयोगसे किसी सख्त व्याधिसे ग्रस्त होनेसे मर गई और चैत्यपूजाके द्वेषसे श्वान-कुतरी बनी। पूर्वके अभ्याससे अपने चैत्यके द्वारके सामने ही पडी रहने लगी। एक बार कोई केवलीभगवन्त वहा पधारे जिनको कुन्तलाकी सपत्नीयोने पूछा कि, "कुन्तला राणी किस गतिमे गई है।" ज्ञानीने यथार्थ बात बतलाई। जिसे सुन उन राणी योंको संवेग उत्पन्न हुआ और वे उस कुतरी बनी कुंतला को स्नेहसे खानको दे कर कहने लगी कि, "हे पुण्यवती बहिन! तूने धर्मिष्ट होकर व्यर्थ हा द्वेष क्यो किया कि जिससे तुझे ऐसा भव प्राप्त हुआ?" इसे सुन कुंतलाको जातिस्मरण ज्ञान हो आया और वह परम वैराग्य प्राप्त कर प्रभुकी प्रतिमाके सन्मुख अपने पापका आलोचन कर अनशन द्वारा मृत्यु प्राप्त कर वैमानिक देवी हुई। अतः हे वत्स! उत्तम कार्य कर उसमें मत्सरभाव नहीं रखना चाहिये।"

इस प्रकार अपनी माताके मुहसे सद्‌बोध शिक्षा प्राप्त कर संप्रति राजाने अनेक नये चैत्य बनाना आरम्भ किया। एकबार जब संप्रति राजाने गुरुके मुहसे सुना कि उसका आयुष्य सो वर्षका है तो उसने ऐसा नियम लिया की प्रतिदिन एक एक

जिनप्रासाद पर कलश चढा सुनकर बादमें भोजन करना इस नियम के अनुसार उसने सो वर्षके ३६००० दिनोंमें छत्तीस हजार नये श्री जिनेश्वरदेवके चैत्य बनवाये।

एकबार राजाने गुरुके मुहसे इस प्रकार देशना सुनी कि —

अप्पा उद्धरिओ चिय, उद्धरिओ तह य तेण नियवंसो।
अन्ने य भव्वसत्ता, अणुमोयंता य जिणभवणं ॥ १ ॥

" श्री जिनभुवन बनानेवाला अपनी आत्माका, अपने वंशका और उसको अनुमोदन करनेवाले अन्य भव्य प्राणियोंका उद्धार करता है ऐसा समझना चाहिये।" इस प्रकार देशना सुन संप्रति राजाने अन्य ९० नवु हजार जीर्णोद्धार कराये इस प्रकार सब मिलाकर सवा लाख जिनचैत्य होते हैं।

एक बार गुरु मुखसे ऐसा सुना कि, " सर्व लक्षण युक्त एवं सर्व अलंकारो युक्त प्रासादमें रही प्रतिमाको देख कर जितना मन हर्षित होता है इतनी इतनी निर्जरा होती है अत जिनबिम्बको मणि, रत्न, सुवर्ण, रूपा, काष्ट, पाषाण और मृत्तिका अथवा चित्रमे बनाना चाहिये।" और " मेरुगिरि के समान दूसरा कोई गिरि नही, कल्पवृक्ष सदृश दूसरा कोई वृक्ष नही, इसी प्रकार जिन बिम्ब निर्माण सदृश अन्य कोइ बडा धर्म नहीं है।" " यदि धन खर्च करनेकी शक्ति हो तो पांचसे धनुष्य प्रमाणवाली प्रतिमा बनानी चाहिय, यदि वैसी शक्ति न हो तो कमसेकम एक अंगुली प्रमाण भी बिम्ब कराना मुक्तिके सुखके निमित्त होता है।" कहा भी है

कि, "जो पुरुष श्री ऋषभदेवसे महावीर भगवन्त तक किसी भी प्रभुका अङ्गुष्ठ प्रमाण भी बिम्ब करा देता है, वो स्वर्गमें विशाल समृद्धिके सुखका भोग कर अन्तमें अनुत्तर पद-मोक्ष को प्राप्त करता है।" इस प्रकार गुरु महाराजका उपदेश सुन सम्प्रति राजाने शिल्प ग्रन्थोंमें लिखे अनुसार संचार भाग प्रमाण बराबर सवा करोड़ जिन बिम्ब बनवाये।

एक बार आर्यसुहस्तिसूरिजीको कि जिनको उसने पूर्व भवमें देखा था, देखकर राजाको जातिस्मरण ज्ञान हो आनेसे उसने अपना पूर्वभव जान, गुरुको पहिचान, नमस्कार कर अपना पूर्वभव पूछा जिस पर गुरुने श्रुतज्ञानके बलसे कहा कि, "हे राजन्! पूर्व जन्ममें तू भिक्षुक था। एक बार अत्यन्त विस्तृत अलंकार युक्त राजा, मन्त्री, श्रेष्ठि आदिको बड़ी समृद्धि सहित हमारे चरणोंकी वन्दना करते देख तुझे विचार हुआ कि, "मैं भी इन सूरिराजके चरण कमलको क्यों न सेऊँ।' फिर तूने जब मेरे शिष्यसे भोजनकी याचना की, तो उस मुनिने उत्तर दिया कि, "यदि तू हमारे जैसा हो जाय तो ही हम तुझे भोजन दे सकते हैं।" इस पर तूने दीक्षा ग्रहण की, परन्तु गले तक अन्न खा लिया, जिससे तुझको तत्काल अजीर्ण हो गया। उस समय तूने अनेक मुनियोंके मुखसे धर्म वाक्य सुने, जिसकी तूने अनुमोदना की और तेरा आयुष्य पूर्ण हो जानेसे तू वहांसे मर कर एक दिनकी दीक्षाके प्रभावसे यहां तीन खण्डका महाराजा हो गया।"

इस प्रकार सुन प्रतिबोध प्राप्त कर उसने देशविरति धर्म ग्रहण किया ।

" धर्मबुद्धिसे श्री जिनेश्वर भगवन्तके चैत्यादि कार्यकी विधि सहित क्रियाका सर्व प्रकार आयोजन कर श्री सम्प्रति महाराजाके दृष्टान्तका स्मरण करना चाहिये । "

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ षडशीत्यधिकशततम प्रबन्धः ॥ १८६ ॥

व्याख्यान १८७

श्री जिनेश्वर भगवन्तकी स्थापनाका वर्णन

जिनमूर्तिर्जिनैस्तुल्या, विज्ञेया विधिपूर्वकम् ।
द्विधा सूत्रोक्तयुक्तिभ्या, स्थापना स्वर्गसौख्यदा ॥ १ ॥

भावार्थ —" श्री जिनेश्वर भगवन्तकी प्रतिमाको श्री जिनेश्वर भगवन्त तुल्य समझ सूत्रोक्त आधार एवं युक्ति द्वारा उसकी विधि पूर्वक स्थापना करना वो स्वर्गका सुखको दिलाने वाला है । " इसमें प्रथम जो सूत्रोक्त द्वारा स्थापना करना कहा गया है उसका प्रमाण बतलाते हैं कि —

श्री ठाणागसूत्रके दूसरे ठाणेमें बतलाया गया है कि,

" तिविहे सच्चे नामसच्चे ठवणसच्चे दव्वसच्चे य । "

" तीन प्रकारके सत्य —नाम सत्य, स्थापना सत्य, और द्रव्य सत्य ' इस प्रकार स्थापना सत्य बतलाया गया है।

युक्ति द्वारा स्थापनाका प्रमाण भी इस प्रकार है कि– जैसे महाव्रतधारी मुनिको चित्रमे चित्रित पुतलीको भी नहीं देखना चाहिये, क्योंकि उसका भी रागजनक होना कहा गया है उसी प्रकार श्री जिनप्रतिमाको भी सदैव देखना चाहिये, क्योंकि यह भी वैराग्यका कारण है। जैसे बालक मुहसे अक्षरोका उच्चारण करता है, परन्तु उनकी आकृतिको देखे बिना निर्धारित किये ककार आदि अक्षरोंको देखने पर जैसा तैसा प्रलाप करता है, परन्तु यदि उसने वर्णाकृति नेत्रसे निर्धारित की हो तो फिर सर्व कार्यमे ककारादि वर्ण देख यह " क " है ऐसा तुरन्त कह देता है, इसी प्रकार *श्री जिनेश्वरके चोवास नामोका उच्चारण किया जा सकता* है परन्तु उनकी आकृति देखे बिना ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादि की मूर्तियां और उनकी मूर्तियोंको भिन्नता एव स्वरूपका यथार्थ अवधारण–निश्चय कैसे किया जा सकता है? अत श्री जिनेश्वरकी स्थापना करना भी न्याय युक्त है।

लौकिकशास्त्रमे भी मूर्तिकी सेवासे कार्य सिद्धि होना कहा गया है, इस विषयमे भी एक दृष्टान्त आता है कि–

श्री महावीर प्रभुसे चोराशी हजार वर्ष पहले श्री बावीशमें श्री नेमिनाथप्रभुके शासनमें पांडव वगैर हुए हैं।

पाण्डवादिक द्रोणाचार्यके पास धनुर्विद्या शिखते थे। उनमेसे अर्जुनने वो विद्या सत्वर प्राप्त ... अर्जुनने

गुरुचरणमे नमन कर कहा कि, "हे विद्यागुरु! तुमने जैसी विद्या मुझे सिखाई है वैसी किसी अन्यको मत सिखाना।" "द्रोणाचार्यने सहर्ष इस बातको स्वीकार किया। एक बार कोई एकलव्य नामक भीलने जब द्रोणाचार्यसे उसे धनुर्विद्या सिखानेकी याचना की तब द्रोणाचार्य मौन ही रहे। उसपर भक्तियुक्त भीलने गुरु बुद्धिसे द्रोणाचार्यकी मट्टीकी मूर्ति बना एक वृक्षके निचे शुद्ध स्थानमे स्थापित कर, प्रतिदिन प्रातःकालमें उसके चरणमे विनयपूर्वक नमन कर कहता था कि, "हे गुरु! प्रसन्न हो कर मुझे विद्या दान दो।" फिर वो गुरुके समक्ष हाथमे धनुष्य ले वह बाण चढा चिन्हित पत्राको निरखता रहता था और इसी प्रकार पत्रमे हाथी, घोडे आदिका रूप भी बाण द्वारा छेद छेद कर बनाया करता था। एक बार अर्जुन भी उस वनमे जा पहुंचा। उसने उन छेदित पत्राको देख विचार किया कि अवश्य गुरुने अपनी प्रतिज्ञाका विस्मरण्कर-भूलकर किसीको धनुर्विद्या सिखलाई जान पडती है, अन्यथा ऐसा अद्भूत कार्य कौन कर सकता है? फिर उसने गुरुसे जाकर कहा कि "हे गुरु! जान पडता है कि आपने आपकी प्रतिज्ञाका भंग कर दिया है।" गुरु द्रोणने उत्तर दिया कि, "हे अर्जुन! मेरी प्रतिज्ञा तो पाषाणकी रेखा सदृश अचल है।" फिर संशयको हटानेके लीए वे दोनो वनमे गये, जहां उन्होंने द्रोणाचार्यकी एक मट्टीकी प्रतिमा देखी। उपरोक्त भील प्रातःकाल उस प्रतिमाके पास आ नमस्कार कर

कहने लगा कि, "हे गुरु ! अर्जुन सदृश मुझ धनुर्विद्या सिखलाओ !" ऐसा कह वह वृक्षके पत्रको बाणसे छेदित करने लगा, जिसे देख उन्होंने भीलसे पूछा कि, "तेरा गुरु कौन है ?" भीलने उत्तर दिया कि, मेरे गुरु द्रोणाचार्य हैं।' फिर उसने मट्टी-मृत्तिकाकी मूर्ति बतलाकर कहा कि, "इस प्रतिमाने मुझे धनुर्विद्या सिखलाई है, भक्तिसे क्या क्या नहीं होता ?" उसे देख अर्जुन अत्यन्त खेदित हुआ। फिर द्रोणाचार्यने भीलसे कहा कि, "मेरी कृपासे तुझे विद्याकी सिद्धि हुई है, इसलिये मैं जो मागू वो गुरुदक्षिणाके रूपमे दे। उसने उत्तर दिया कि, "हे गुरु ! यह शरीर ही तुम्हारा है, इससे जो तुम्हारी रुचि हो वो माग लो।" इस पर जब द्रोणाचार्यने उसके जिमने हाथका अगूठा मागा तो गुरुभक्त भीलने तुरन्त ही उसे काटकर दे दिया। जिमने हाथके अगूठेके अभावमे उसकी धनुर्विद्या अर्जुनसे कुछ न्यून हो गई, तथापि भीलको द्रोणाचार्य पर लेशमात्र भी खेद नहीं हुआ। इस प्रकार स्थापनासे कार्यकी सिद्धि बतलाई गई है।

(महानुभाव सोचीए, श्रद्धावालेको कोई कार्य असभवित नहि है, श्रद्धा फलति सर्वत्र)

लोकोत्तर शास्त्र-जैनशास्त्र मे भी प्रतिमासे कार्यसिद्धि होना कहा गया है। श्री ज्ञातासूत्रमे कथा आती है कि-मल्लिनाथ भगवतकी कराइ हुई स्वर्णमय स्त्रीकी पुतलीसे पूर्वभवके छ मित्र पुरुषोको वैराग्य प्राप्त हुआ था। अभयकुमार द्वारा बनवाई कयवन्ना शेठकी प्रतिमा देख उसके पुत्रोको मोह हो

आया और वे बारबार उसके उत्संगमें आकर बैठने लगे। इस प्रकार सब दृष्टान्तों से यह सिद्ध होता है कि मूर्ति द्वारा कार्यसिद्धि होती है। और भी जिनप्रतिमाका देखना भी गुणकारी है। इस पर एक कथा है कि —

पृथ्वीपुर नगरमें जिनदास नामक एक श्रावक था, जिसको देवदत्त नामक एक पुत्र था। जो सातों व्यसनोंका सेवन करने वाला था। जिनदास उसको प्रतिदिन धर्मशिक्षा देते रहता था, परन्तु उसके स्वभावसे ही वक्र होनेसे शठपनसे उस शिक्षाका उस पर लेशमात्र भी असर नहीं होता।

बादमें उसपर कृपा कर उसके पिताने गृहद्वार—घरके दरवाजेके सामने ही शुभ स्थल पर एक जिनमूर्ति स्थापन की और प्रतिदिन उसकी पूजा कर इस प्रकार स्तुति करने लगा कि, "हे तीनों जगतके आधारभूत प्रभु! आपकी प्रतिमा मुझे आत्मस्वरूपका दर्शन करानेमें दर्पणरूप है और वो मेरी अनादि कालकी भ्रांतिका निवारण करती है जैसे कोई हंसका बालक बगुलेके झुण्डमें आ मिला हो और उन बगुलाके साथ ही दीर्घकाल तक रह बड़ा हुआ है। परन्तु बादमें कभी किसी राजहंसके वहां आने पर उसे देख वो हंसका बालक विचारने लगा कि, "अहो इस पक्षीकी कांति, स्वरूप, वर्ण, स्वर और गति तो मेरे सदृश ही जान पड़ती है, व मुझमें और इसमें कोई अन्तर मालूम नहीं होता।" इस प्रकार विचार कर उसने उसके सुघड़ राजहंसके स्वरूप का भलिभांति निर्णय किया हो। और फिर स्वबुद्धिसे

बककुलको उसकी क्षुद्रकी जातिके आचार आदिसे सर्वथा भिन्न जान उनका त्याग कर राजहसके साथ ही अपना राजहसपनाम मिलकर रहना स्वीकार किया । इस कथका उपनय इस प्रकार है कि, राजहसके स्थान पर तो जिनेश्वर, दूसरे बालकके स्थान पर इस जीवको और ससारमें घट वान वाले आठ कर्म और मिथ्यात्व–कुगुरु माग बतलाने वाले कुगुरुको बगलेके झुण्डके स्थान पर समझना चाहिये । जीव अनादिकालके अभ्याससे इनके साथ वृद्धि प्राप्त करता है परन्तु इस बीच कुछ लघु कर्मपना प्राप्त होनेसे श्री जिन-प्रतिमारूप राजहसको देख उसके स्वरूपको अपने कुदरत स्वरूपके साथ मिलाकर स्वपर विवेचन द्वारा स्वधर्मको प्रकट करता है ।" इस प्रकार स्वबुद्धिसे विचार ले। हे वीतराग प्रभु ! हमके बालक सदृश मेरा उद्धार करनेके लिये तुम्हारी स्थापना ससारका अन्त करनेवाली है । "

इस प्रकार वो श्रेष्ठि नित्य उन श्री जिनेश्वरप्रभुकी स्तुति किया करता था उसका पुत्र भी उन प्रतिमाको देखा करता था परन्तु वो न तो स्तुति करता था न तो वन्दना करता था। इसलिये उस श्रेष्ठिने अपने घरका द्वार कुछ नीचा करा दिया जिससे श्रेष्ठिपुत्र नीचा झुक गृहमें प्रवेश करता था और सन्मुख श्री जिनेश्वर बिम्बको देखा करता था । इस प्रकार श्रेष्ठिने द्रव्यसे पुत्रसे वन्दना कराई परन्तु भावसे न करा सका, क्योंकि भाव तो आत्माके ही आधीन है फिर वो श्रेष्ठिपुत्र आयुष्यके क्षयसे मृत्यु प्राप्त कर अन्तिम स्वयभूरमण

समुद्रमे मत्स्यपणको प्राप्त हुआ । यहा समुद्रमे भटकते भटकते एक बार जिनप्रतिमा सदृश आकृतिवाला एक मत्स्य उसे दिखाई पडा । "नलिया और वलयके आकार सिवाय नर आदि अनेक प्रकारकी आकृतिवाले मत्स्य होती है, ऐसा ज्ञानी पुरुष कहते हैं ।" उस मत्स्यकी जिनबिम्ब सदृश आकृति देख उसे जातिस्मरण हो आया जिसमे पूर्वभवका स्मरण कर वो पश्चाताप करने लगा कि, 'अहो ! मेरे पिताने मुझे अनेक प्रकारसे बोध किया था परन्तु मैं फिर भी बोधित नही हुआ मुझे धिक्कार है ? मैंने सर्व दोषोसे मुक्त श्री जिनेश्वर भगवन्तकी भी भक्ति नही की । अब मैं तिर्यंच हो गया हूँ इसे क्या कर सकता हूँ ? तथापि इस तिर्यचके भवमे जितना हो सके उतना तो धर्म करु ।" ऐसा विचार कर उसने सूक्ष्म मत्स्य और सचित जलकी हिंसा न करनेका मनहीमें नियम लिया । फिर धीरे धीरे बाहर निश्चल चोवीस प्रहरका अनशन भली भाति कर मृत्यु प्राप्त कर स्वर्गमे देवपदको प्राप्त कीया । यहा शाश्वती जिन प्रतिमाकी पूजा करते हुए अवधिज्ञान द्वारा अपना पूर्वभवका सर्व स्वरुप जान जिनबिम्बके दर्शनका महान् उपकार लोगोको दिखानेके लिये भावजिनके आगे आकर बारह पर्षदाके समक्ष बोला कि, "हे वीतराग प्रभु ! तुम्हारी प्रतिमा भी साक्षात् प्रभुके-आपके सदृश उपकार करनेवाली है, मैंने इसका बराबर अनुभव किया है ।" ऐसा कह उसने स्वर्गको अलकृत किया । उसके जाने बाद पर्षदाने उसका वृत्तान्त पूछा जिस पर प्रभुने उसका

सर्व वृत्तान्त यह सुनाया, जिसे सुन सर्व सभा जिनप्रतिमाकी वन्दना आदि करनमें तत्पर हुई।

"श्री जिनेश्वर भगवन्तकी प्रतिमाको जिस किसी भी रीतिसे देखा हो फिर भी वो श्री जिनेश्वर भगवन्त सदश आगामीकालमें सुख देनेवाली है, इस युक्तिसे स्थापनाकी यहां स्तुति की गई है।"

इत्यब्दिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ सप्ताशीत्यधिकशततमः प्रबंधः ॥ १८७ ॥

व्याख्यान १८८

दवीनंकि समक्ष जीव वध न करनेके विषयमें

कई मिथ्यात्वी लोग नवरात्रिके दिनोंमें अष्टमीके दिन से चंडी, दुर्गा, बहुचरा, भवानी आदि देवीयोंकी पूजाके लिये अनेक मूक प्राणियोंका वध करते हैं। उनका निषेध करनेके विषयमें यशोधर नृपकी कथा प्रसिद्ध है —

मेषादिघातेस्तनुते कृपाघ्नो, दुर्गादिपूजां नवरात्र्यहस्सु।
मात्राज्ञया पिष्टकुर्कुटं घ्नन्, यशोधरः सोऽत्र ददर्श(ददौ)भवौघम्॥१

भावार्थ —"निर्दयी लोग नवरात्रिके दिनोंमें बकरे आदिका वध कर दुर्गा आदिकी पूजा करते हैं, परन्तु यशोधरने माताकी आज्ञासे मात्र आटे-लोटका बना हुआ कुकडा

समुद्रमे मत्स्यपणको प्राप्त हुआ । यहा समुद्रमें भटकते भटकते एक बार जिनप्रतिमा सदृश आकृतिवाला एक मत्स्य उसे दिखाई पडा । "नलिया और वलयके आकार सिवाय नग आदि अनेक प्रकारकी आकृतिवाले मत्स्य होती हैं, ऐसा ज्ञानो पुरुष कहते हैं ।" उस मत्स्यकी जिनबिम्ब सदृश आकृति देख उसे जातिस्मरण हो आया जिससे पूर्वभवका स्मरण कर वो पश्चाताप करने लगा कि, 'अहो ! मेरे पिताने मुझे अनेक प्रकारसे बोध किया था परन्तु मैं फिर भी बोधित नही हुआ मुझे धिक्कार है ? मैंने सर्व दोषोंसे मुक्त श्री जिनेश्वर भगवतकी भी भक्ति नहा की । अब मैं तिर्यच हो गया हूँ इसे क्या कर सकता हूँ ? तथापि इस तिर्यचके भवमें जितना हो सके उतना तो धर्म करु ।" ऐसा विचार कर उसने सूक्ष्म मत्स्य और सचित जलकी हिंसा न करनेका मनहीम नियम लिया । फिर धीरे धीरे बाहर निकल चोबीस प्रहरका अनशन भली भाति कर मृत्यु प्राप्त कर स्वर्गम देवपदको प्राप्त कीया । वहा शाश्वती जिन प्रतिमाकी पूजा करते हुए अवधिज्ञान द्वारा अपना पूर्वभवका सर्व स्वरूप जान जिनबिम्बके दर्शनका महान् उपकार लोगोको दिखानेके लिये भावजिनके आगे आकर बारह पर्षदाके समक्ष बोला कि, "हे वीतराग प्रभु ! तुम्हारी प्रतिमा भी साक्षात् प्रभुके--आपके सदृश उपकार करनेवाली है, मैंने इसका बराबर अनुभव किया है ।" ऐसा कह उसने स्वर्गको अलकृत किया । उसके जाने बाद पर्षदाने उसका वृत्तान्त पूछा जिस पर प्रभुने उसका

सर्व वृत्तान्त कह सुनाया, जिसे सुन सर्व सभा जिनप्रतिमाकी वन्दना आदि करनेमें तत्पर हुई।

"श्री जिनेश्वर भगवन्तकी प्रतिमाको जिस किसी भी रीतिसे देखा हो फिर भी वो श्री जिनेश्वर भगवन्त सदृश आगामीकालमें सुख देनेवाली है, इस युक्तिसे स्थापनाकी यहा स्तुति की गई है।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ सप्ताशीत्यधिकशततम प्रबंध ॥ १८७ ॥

व्याख्यान १८८

देवीयोंके समक्ष जीव वध न करनेके विषयमें

कई मिथ्यात्वी लोग नवरात्रिके दिवस अष्टमीके दिन से चण्डी, दुर्गा, चामुण्डा, भवानी आदि देवीयोंकी पूजाके लिये अनेक मूक प्राणियोंका वध करते हैं। उनका निषेध करनेके विषयमें यशोधर नृपकी कथा प्रसिद्ध है —

मेषादिघातसंयुते रूपाग्नौ, दुर्गादिपूजा नवरात्र्यहस्सु।
मात्राज्ञया पिष्टकुर्कुट घ्नन्, यशोधर सोऽत्र दधौ(हतो)भवौघम्॥१॥

भावार्थ —"निर्दयी लोग नवरात्रिके दिनोंमें बकरे आदिका वध कर दुर्गा आदिकी पूजा करते हैं, परन्तु यशोधरने माताकी आज्ञासे मात्र आटे-लोटका बना हुआ कुकडा

माग था, जिस पर भी उसको माता सहित कई भवामें भटकना पड़ा था।" उसकी कथा इस प्रकार है —

राजपुर नगरमें मारीदत्त नामक राजा था, जिसके चण्डमारी नामक गोत्र देवी थी। राजा मारीदत्त उस गोत्र-देवीकी प्रतिदिन पुष्पादिकसे पूजा कर स्तवना किया करता था। आश्विन मासके आने पर शुक्ल पक्षसे आरंभ कर नवमी तक कन्दमूल, दूध, घी, और फलादिकका ही आहार कर उसके समक्ष बैठ रहता था। लोकमें प्रसिद्ध नवरात्रिक पर्वमें वो जब उसकी आराधना करता था, तब गोत्र देवीकी तृप्तिके लिये होमका बलिदान निमित्त एक लाख बकरे आदि जीवोंका वध करता था और दो पुरुषको भी मारता था, इसमें भी अष्टमीके दिन तो जीवोंका विशेष होम करता था।

एकबार गुणधर नामक सूरिजीने उस नगरमें चातुर्मास किया। उनके अभयरुचि नामक एक महात्मा-साधु शिष्य और अभयमति नामक एक संयम, तप और क्रियामें तत्पर साध्वी शिष्या थी। महातपोधन और शीलरूप पवित्रतासे युक्त अभयरुचि मुनि एक दिन जब चार प्रकारका अभिग्रह ले नगरमें आहारके लिये फिर रहे थे, उस समय राजपुरुषोंने उन्हें पकड राजाके पास ले गये तब राजाने अभयरुचि मुनिसे पूछा कि, "हे शास्त्रोपदेशक मुनि! तुम्हारे शास्त्रमें नवरात्रिक दिनोंमें गोत्र देवीकी पूजाका क्या फल बतलाया है। और होमक्रिया किस प्रकार करनेका वर्णन किया है?" संयमी

अभयरुचि मुनिने उत्तर दिया कि 'हे राजन्! मैंने पूर्वभवमें एक पिष्ट-आटेका कुक्डा-मुर्गा मारा था, जिसके पापसे मैं सात भव तक अनेक कष्ट सहता हुआ भटकता रहा हूँ, तो फिर आपकी तो न जाने क्या गति होगी ?।" राजाने इनके सात भवोंका वर्णन पूछा, जिस पर अभयरुचि मुनिने उत्तर देते कहा कि —

अवन्तिनगरीमें यशोधर नामक राजा था। जिसके चन्द्रवती नामक माता, नयनावली नामक स्त्री और गुणधर नामक पुत्र था। एक बार संसारसे उद्वेगित और वैराग्यमें तत्पर हो राजा यशोधरने अपनी रानी नयनावलीसे कहा कि, "हे प्रिये! मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ।" दैवयोगसे उसी रात्रिको राजाको स्वप्न आया कि, "महलके सातवें खण्डके झरोखेसे उसकी माताने उसे नीचे पृथ्वी पर फेंक दिया।" प्रभातमें जब इसने यह बात इसकी मातासे कहा तब माताने यशोधरसे कहा कि, "हे वत्स! ऐसे खराब स्वप्नके निवारणार्थ तू चामुण्डा देवीको बकरे आदिका बलिदान दे।" राजाने उत्तर दिया कि, "प्राण जाने पर भी मैं ऐसा कार्य कदापि नहीं कर सकता।" ऐसा उत्तर सुन माताने अनेक उपालम्भसे इसे लज्जित कर बलात्कार पूर्वक एक पिष्ट-आटेका कुक्डा-मुर्गा बना उसे दिया जिसका वध कर इसने शक्ति देवीको भोग चढ़ाया।

रानी नयनावलीने किसी गाते हुए कुबड़े पुरुषको देख उस पर मोहित हो, माया प्रपंच द्वारा राजाकी आज्ञा प्राप्त कर

उसे अपने आवासके पास रक्खा और रात्रिमें राजाके सोजाने पर मोरा पा स्वेच्छा पूर्वक उसके साथ भोग-विलास करने लगी। एक बार राजाने यह बात जाना और स्वयं अपनी आंखोंसे भी देखा, उस पर भी वह क्षमा रख बिलकुल मौन रहा। दूसरे दिन प्रातःकाल गुणधर पुत्रको राज्य दे दीक्षा लेनेको तत्पर हुआ। उसे देख राणीने विचार किया कि, "मेरे स्वामीने अवश्य मेरा कुचरित्र जान लिया है, इससे यहि उत्तम है कि, मैं भोजनमें विष मिलाकर उसे मार डालूं, अन्यथा वह मेरे पुत्रको मेरी यह बात कह मुझे कुपट पुरूषके सुखसे भ्रष्ट कर देगा।" ऐसा विचार कर उसने भोजनमें विष मिश्रीत कर राजाको खिलाया और विष चढ़नेसे जब राजा आकुल-व्याकुल हुआ तो उसने उसे गलेमें अंगुठा टान मार डाला। इसके कुछ ही दिन पश्चात् उसकी माता भी मर गई।

राजा वहांसे मर कर मयूर हुआ और उसकी माता श्वान कुत्ती हुई। दैवयोगसे किसी वनचरने उन दोनोंको पकड क्रीडाके लिये राजा गुणधरको भेट किये। राजा इससे अत्यन्त खुश हुआ। मयूरको पींजरेमें रक्खा और श्वानको बांध कर रक्खा।

एक बार जब मयूरने नयनावलीको उस कुबडेके साथ देखा तो उसे जातिस्मरण ज्ञान हो आया और वो जब जब नयनावली उसे हाथसे पकडने जाती तो अपनी चांचमें उसे

बारबार प्रहार करने लगा। एक बार राजमाता नयनावलीने जब चाबुक प्रहार करने पर उस मयूरको अपने आभूषणसे मारा तो वह झरोंखेसे नीचे जा गिरा और राजाके समीप बैठे उक्त श्वानने वहां जा कर उसको कमरसे ग्रहण किया। राजाने उसे छुड़ानेका अत्यन्त प्रयत्न किया परन्तु कुत्ताने उसे नहीं छोड़ा। इस पर राजाने कुत्ते पर जोरसे चोपाटके चोकटका प्रहार किया जिसके फल स्वरूप वे दोनों प्राणी मर गये।

मयूर मर कर नालिया हुआ और श्वान मर कर सर्प हुआ। वहां भी परस्पर लड़ कर मर गये। वहांसे वे दोनों शिप्रा नदीमें मत्स्य हुए। चन्द्रमता मत्स्यके जीवको मच्छिमारने मार डाला और उसके कुछ दिन पश्चात् यशोधरके जीवरूप मत्स्यको भी नयनावली तथा गुणधरको अर्पण किया, जहां नयनावलीने जब उसे खाया तब उसे जातिस्मरण ज्ञान हो आया।

मत्स्यपणसे मर कर चन्द्रमता गुणधर राजाके पशुपाल के घर बकरीके रूपमें उत्पन्न हुई। और यशोधर उस बकरीका पुत्र हुआ। तरुण वय होने पर वह उसकी माता बकरीके साथ विषय भोग करने लगा जिसे देख पशुपालने उसे मार डाला। वह मर कर अपने ही वीर्यमें उत्पन्न हुआ। उस गर्भिणी बकरीको गुणधरने सेवकसे मरवा कर मरवा डाली और उसके गर्भसे बकरेको खींच अपने घर रख उसका पालन पोषण किया।

एक बार गुणधरने पूवजोक्त मृत्यु दिनको पन्द्रह पाडे मारे और ब्रह्म भोज कराया। ब्राह्मणोंने आशीर्वाद दिया कि, "तुम्हारा पिता स्वर्गमे क्रीडा करे।" यह सुन बकरेको जातिस्मरणज्ञान हो आया। उसी समयमें पापके उदयसे नय नावलीको कुष्टकी व्याधिने आ घेरा। उस व्याधिसे दु खित देख उक्त बकरा हर्षित होने लगा। एक बार राजाके भोजन समय उक्त बकरेको पुष्ट हुआ जान रसोइयोंने उसे मार पका कर राजाको दिया।

चद्रमतीका जीव कलिग देशमे पाडा हुआ जो सार्थ वाहके साथ उज्जयिनी नगरीमे आया, जहा राजाका अश्व जब पानी पीनेको आया तो उसे उस पाडेने मार डाला, जिससे राजा क्रोधित हो उस पाडेको बाध अग्नि द्वारा भुज दिया। उसके बाद छट्ठे भवमे वे दोनो वापस कुक्डे-कुकर हुए जिनको किसीने ले जा कर गुणधर राजाको अर्पण किये। राजा इन दोनोको परस्पर युद्ध कराया करता था और अत्य त हर्षित रहता था, ऐसा करते करते वे राजाके अत्यत प्रिय पात्र बन गये। एक बार नव राजा वनमे क्रीडा करने गया तो कामदट नामक कान्स्टल भी उन दोनों कुकडोंको ले वनमें गया। जहा किसी मुनिको देख उन दोना कुकडोको जातिस्मरण ज्ञान हो आया। फिर पूर्वाभ्यासमे उनको वन्दना कर बोले कि, "हे स्वामी! हमने अज्ञानसे किये कर्मके बहुत फल भोगे है, अब इस ससार दु खकी परम्परासे मुक्त होनेके लिये हमे कोई व्रत ग्रहण कराइये। तुम्हें देख हम

संसारसे उद्वेगित हो गये हैं।" मुनिने उन दोनों मुर्गोको धर्म सुनाकर अनशन कराया कि उसी समय गुणधर राजाने, जो उसी वनमे एकान्तमे अपनी राणीके साथ बैठा हुआ था, उसने शब्दवेधी बाणके द्वारा उन दोनों कुकडाको मार डाला।

वहासे मर व सातवे भवमे गुणधर राजाकी स्त्री जयावलीके उदरमें उत्पन्न हुए। यशोधरका जीव अभयरुचि नामक पुत्र हुआ और चन्द्रमतीका जीव अभयमती नामक पुत्री हुई। वे दोनों परस्पर अत्यन्त स्नेहवाले और एक दूसरेका वियोग नही सहन करनेवाले हुए, वो जब आठ वर्षके हुए तब राजा गुणधर उनको साथ ले एकवार वनमे मृगया शिकार खेलने गया। वहा शशाल आदि जीवोंको मारनेके लिये श्वान-कुत्ते छोडे गये। उस वनमें किसी ध्यानस्थ मुनिको देख उसके प्रभावसे वे श्वान शक्तिहीन हो गये। अनेक प्रकारसे प्रेरणा करने पर भी जब वे वापस लौटने लगे तो राजा अत्यन्त लज्जित हो विचार करने लगा कि, 'अहो! मैं इन पशुओंसे भी निकृष्ट पापात्मा हूँ कि, वे श्वान जीववध करनेकी इच्छा नही रखते, तब पर भी मै इनको वारवार प्रेरणा करता हूँ।" उसी समय अर्हद्दत्त नामक किसी श्रावकको मुनिका वन्दना करने जाते देख राजाने उससे पूछा कि, 'हे भद्र! तुम कहा जाते हो?" उसने उत्तर दिया कि, 'मैं मुनिके पास धर्म सुनने जाता हूँ।" राजाने कहा, 'चल, मैं भी तेरे साथ आता हूँ।" फिर वे मुनिके समीप पहुँचे। श्रावक पाच अभिग्रह पूर्वक तीन बार दाहिनी ओरसे प्रदक्षिणा कर वन्दना

पर मुनिके पास बैठा। फिर उन्होंने इस प्रकार देशना सुनि कि,-" अहो! दैव मित्र सदृश कभी दया करता है और कभी शत्रु सदृश निःशक हो मार डालता है।" इत्यादि देशना सुन राजाने मुनिसे अपने मातापिताकी गतिके विषयमें पूछा। मुनिने उत्तर दिया कि,-" हे राजन्! तू क्या पूछता है? वो चरित्र तो तुझे लज्जा उत्पन्न करनेवाला है। तूने तेरे पिता और पितामहीका उनके मृत्युके दिन ही कई बार भ्रमण किये है।" ऐसा कह यशोधर और चन्द्रमतीके साता भवोंका वृतान्त कह सुनाया। जिसे सुन राजा मूर्छित हो गया और पश्चाताप करने लगा। अभयरुचि और अभयमतीने भी जातिस्मरणज्ञान प्राप्त कर, अपनी अनुभवकी बातोंसे प्रत्यक्ष आर गुणधर राजासे कहा कि,-"हम दोनों अब दीक्षा लेंगे" यह सुन राजाको भी वैराग्य हो आया। अतः पुत्र, पुत्रीके साथ और उसी प्रकार यशोधरका वृत्तान्त सुन संसारसे उद्वेगित हुए अन्य पांच हजार सामन्तादिक सहित राजाने पुत्रको राज्य पर बिठा, पुत्र द्वारा किये निष्क्रमणोत्सव द्वारा दीक्षा ग्रहण की और सब महा तप करने लगे। वे ही गुणधर आचार्य आज इस नगरीमें पधारे हैं।

इस प्रकार अभयरुचि मुनिके मुहसे सुन मारीदत्त राजाने कहा कि,-" हे अणगार! वे गुणधर मेरे बहनोई होते है और तुम मेरे भाणेज। अहो! ऐसे गुरुके योगके अभावमें मुझ पापीने नवरात्रिके दिनोंमें गोत्र देवी समक्ष लाखों जीवोंको मार डाला है।" फिर उस समय बलिदान

निमित एकत्रित किये एक लाख जीवोंको राजाने गुरु वचनसे मुक्त कर दिये और सारे नगरमें अमारीकी घोषणा करा दी ।

अभयकुमार के उपदेशसे चन्डमारी देवी भी शान्त हो गई । "अहो ! कन्द फल और मद्यपान भोक्ता शाक्त लोग नवरात्रके दिनोंमें देवीका नलिन्याज खा कर कहते हैं कि,— "हमने उपवास किया है ।" यह कैसी आश्चर्यकी बात है । "इन दिनोंमें अत्यन्त हिंसा होनेसे ही बारह दिनोंकी अस्वाध्याय कही जाती है और साधु श्रुतपाठ नहीं करते ।

"इस प्रकार मिथ्यात्वी पर्वको जान मारीदत्त प्रमुख जनियाने उनका त्याग किया और ऐसा करनेसे उन्हें बादमें आत्मधर्मकी प्राप्ति हुई ।"

इत्यब्दिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ अष्टाशीत्यधिकशततम प्रबन्ध ॥ १८८ ॥

व्याख्यान १८९

अब चैत्य शब्दका अर्थ बतलाते हैं

प्राहुर्जिनौकस्तद्बिम्बं चैत्यशब्देन सूरय ।
अतस्तद्भावतो वन्द्य महात्म गुणदायकम् ॥ १ ॥

पर मुनिके पास बैठा। फिर उन्होंने इस प्रकार देशना सुनि कि,-" अहो! दव मित्र सदृश कभी दया करता है और कभी शत्रु सदृश निशक हो मार डालता है।" इत्यादि देशना सुन राजाने मुनिसे अपने मातापिताकी गतिके विषयमें पूछा। मुनिने उत्तर दिया कि,-' हे राजन्! तू क्या पूछता है? वा चरित्र तो तुझ लज्जा उत्पन्न करनेवाला है। तूने तेरे पिता और पितामहीका उनके मृत्युके दिन ही कई बार भक्षण किये हैं।" तथा यह यशोधर और चन्द्रमतीके साता भवोंका वृत्तान्त कह सुनाया। जिसे सुन राजा मूर्छित हो गया और पश्चाताप करने लगा। अभयरुचि और अभयमतीने भी जातिस्मरणज्ञान प्राप्त कर, अपनी अशुभकारी बातोंको प्रत्यक्ष जान गुणधर राजासे कहा कि,-"हम दोनों अब दीक्षा लेंगे" यह सुन राजाको भी वैराग्य हो आया। जब पुत्र, पुत्रीके साथ और उसी प्रकार यशोधरका वृत्तान्त सुन ससारसे उद्वेगित हुए अन्य पांच हजार सामन्तादिक सहित राजाने पुत्रको राज्य पर बिठा, पुत्र द्वारा किये निष्क्रमणोत्सव द्वारा दीक्षा ग्रहण की और सब महा तप करने लगे। वे ही गुणधर आचार्य आज इस नगरीमें पधारे हैं।

इस प्रकार अभयरुचि मुनिके मुहसे सुन मारीदत्त राजाने कहा कि,-" हे अणगार! व गुणधर मेरे बहनोई होते हैं और तुम मेरे भाणेज। अहो! ऐसे गुरुके योगके अभावमें मुझ पापीने नवरात्रिके दिनोंमें गोत्र देवी समक्ष लाखों जीवोंको मार डाला है।" फिर उस समय बलिदान

निमित्त एकत्रित किये एक लाख जीवोंको राजाने गुरु वचनसे मुक्त कर दिये और सारे नगरमें अमारीकी घोषणा करा दी ।

अभयरुचिके उपदेशसे चन्मारी देवी भी श्राविका हो गई । "अहो ! कंद फल और मद्यके भोक्ता शाक्त लोग नवरात्रके निमित्त देवीका नक्तिनाम ढाक कर कहते हैं कि,—"हमने उपवास किया है ।" यह कैसी आश्चर्यकी बात है । "इन दिनोंमें अत्यन्त हिंसा होनेसे ही बारह दिनोंकी अस्वाध्याय कही जाती है और साधु श्रुतपाठ नहीं करते ।

"इस प्रकार मिथ्यात्वीके पर्वको जान मारीदत्त प्रमुख जनिमान उनका त्याग किया जाय ऐसा करनेसे उन्ह बादमें आत्मधर्मकी प्राप्ति हुई ।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ अष्टाशीत्यधिकशततमः प्रबंध ॥ १८८ ॥

—०—

व्याख्यान १८९

अब चैत्य शब्दका अर्थ बतलाते हैं

प्राहुर्जिनौकस्तद्‌बिम्बं चैत्यशब्देन सूरयः ।
अतस्तद्‌भावतो यत्र यद्भात्म गुणदायकम् ॥ १ ॥

भावार्थ —" विद्वान् सूरीश्वरजी चैत्य शब्दका अर्थ जिनालय और जिनबिम्ब बतलाते हैं । ये दोनों आत्माको गुणकारक होनेसे चैत्य भावसे वन्दना करने योग्य हैं।"

अपने और दूसरोंके शास्त्रोंके शब्दार्थको नहीं जानने वाले कई अज्ञलोग चैत्य शब्दका अर्थ ज्ञान, मुनि, वन आदि कल्पनासे करते हैं । परन्तु वह असत्य है, क्योंकि, कोष आदि शब्दशास्त्रमें चैत्य शब्दका अर्थ प्रतिमा ही होता है । वो इस प्रकार कि—व्याकरणमें 'चिति संज्ञाने'(चित्यते)ऐसा धातु है। "जिससे काष्ठादिककी प्रतिकृति-प्रतिमा को ही संज्ञा देखनेसे उत्पन्न होती है कि, " यह अरिहन्तकी प्रतिमा है । " यह चैत्य कहलाता है, ऐसी व्युत्पत्ति होती है, तथा धातुपाठकी वृत्तिमें "चित चयने ' यह धातुका चैत्य ऐसा प्रयोग होता है। तथा नाममालाकोशमें लिखा गया है कि, " चैत्य विहारे जिन सद्मनि " " चैत्य शब्द विहार और जिनालयके अर्थमें प्रवृत्त होता है ।" उस ग्रन्थकी स्वोपज्ञवृत्तिमें 'चीयते इति चितिः तस्य भावः चैत्यम् " ऐसी व्युत्पत्ति कर "भावे यण्' प्रत्यय आया है ऐसा लिखा गया है । और अमरकोषमें "चैत्यमायतनं प्रोक्तं " ऐसा कहा गया है । हेमअनेकार्थ संग्रहमें "चैत्यं जिनौकस्तद्बिम्बं चैत्यमुद्देशपादपः ' चैत्य अर्थात् जिनालय, जिनबिम्ब और उद्देशवृक्ष[१] ऐसे तीन अर्थ बतलाये गये हैं । आगममें भी कहा गया है कि, 'चेइ अठे

१ जिसके नीचे केवलज्ञान प्राप्त हुआ हो वो वृक्ष अथवा समवसरणवाला मध्यवृक्ष ।

निज्जरठिय ३ णिसिसह (य) बहुविह करेई । ' इसकी टीकामें कहा गया है कि-चैत्य अर्थात् जिन प्रतिमा-उसका अर्थ बतलाये गये हैं। इसकी टीकामें कहा गया है कि-चैत्य अर्थात् जिनप्रतिमा-उसका अर्थ अर्थात् प्रयोजन । निजराका अर्थ कर्मक्षयकी इच्छासे वैयावृत्यके योग्य क्रिया द्वारा उपष्टंभन करना (कीर्ति आदिकी इच्छा बिना निरपेक्षपणसे) ऐसा अर्थ श्री प्रश्नव्याकरणकी वृत्तिमें किया गया है । इसी सूत्रमें आश्रव द्वारमें भी चैत्य शब्द कहा गया है । उससे यह प्रयोजन है कि संसारके हेतुरूप कीर्ति आदिकी अपेक्षासे जो चैत्यादि कराया जाता है उसका आश्रवमें अंतर्भाव होता है, अथवा एकदम चैत्य आदि बनवाना आश्रव कहलाता है ।

सूत्रमें सर्व स्थान पर जिनादिककी वन्दना करनेमें उत्सुक ऐसा भावुक हृदयमें ऐसा विचार करता है कि-यतोह कल्लाणं मङ्गलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासामि । 'मैं कल्याणकारी, मङ्गलमय, देवतारूप चैत्यके सदृश विनयसे सेवा करूं" इस सूत्रपाठका अर्थ कई अज्ञानी बालककी तरह ऐसा करते हैं कि "देव अर्थात् धर्मदेव, साधु, उनको चैत्य अर्थात् अन्तिम ज्ञान (केवल ज्ञान) हुआ हो तब देवता उनकी जिस प्रकार स्तुति करते हैं।" यह उनका कल्पित अर्थ युक्ति संगत नहीं है उसका खण्डन इस प्रकार है कि-पांचवें अंग श्री भागवतीजीसूत्रमें तामलि श्रेष्ठिने इस प्रकार विचार किया कि, "मैं मेरे सगे संबंधियोंको अठारह प्रकारके शाक बनवा कर भोजन कराउं, कल्याणकारी-मङ्गलकारी देवताके चैत्य सदृश

विनय द्वारा उनकी सेवा करू।" इस स्थान पर उपरोक्त अज्ञानीका-बालक बुद्धिका अर्थ क्योंकर घटित होगा? क्योंकि वो श्रेष्टि मिथ्यात्वी था, वो जैन धर्मकी प्रशसा करने योग्य बात क्योंकर जाने? इससे आबालगोपाल प्रसिद्ध ऐसा ही अर्थ करना चाहिए वो इस प्रकार है कि-"देव अर्थात अपने इष्ट, ईश्वर, उसका चैत्य अर्थात् बिंब उसकी तरह मै पूजा करू या स्तुति करु।" यह अर्थ सर्व प्रकारसे घटित है।

कोई मिथ्यात्वी ऐसा कहे कि, "जीवकी विराधना जो धर्मके लिये करना है उसका भी मदबुद्धि कहा गया है।" दशवे अग श्री प्रश्नव्याकरण सूत्रमे कहा गया है कि "प्रतिमाको घडते या पूजते समय जो जीव हिसा करता है, वो मदबुद्धि पुरुष है।" जो ऐसा अर्थ करते है, परन्तु उनका यह अर्थ अयुक्त है। यहा मदबुद्धिसे तात्पर्य उन पुरुषोंसे है, जो यज्ञादि कार्यमे जीव अजीवको नही जाननेवाले धर्म बुद्धिसे बकरे आदिका वध करते है, वे समजना चाहिये। अरे मूर्ख! जो तू इस अर्थको यहा जिन चैत्यादि शुभ-क्रियाम लगाता है, तो तेरको पूछता हु कि नदी उतरनेमे, विहार करनेमे, धर्मक्रिया करनेमे, गुरु वन्दना करनेको जानेमे और उपाश्रय आदि धर्मस्थान करनेमे सर्वत्र जीव वध होता है, कि नही? यदि होता है तो तू भी मदबुद्धि हो गया। इस विषयमे कहा है कि "यत्नपूर्वक प्रवृत्ति करनेमे जो विराधना होती है वो सूत्रके अनुसार चलनेके कारणसे धर्म क्षयरूप निर्जराका कारण होता है और इससे आत्म स्वरुपकी शुद्धि होती है।"

जा जयमाणस्स भवे विराहणा सत्तविहिसमग्गस्स ।
सा होइ निज्जराफला अज्जत्थ विसोहिजुत्तस्य ॥ १ ॥

इस गाथाका अर्थ बराबर विचार करने योग्य है। जो अपने कुटुम्बके लिये भी आरम्भ नहीं करता ऐसी प्रतिमाधारीको तो जिनबिम्बका भी पूजा विधान नहीं करना चाहिये । उसे मात्र प्रतिमाको मानना ही योग्य है । श्रावकके योग्य ऐसी प्रतिमा विधानादि क्रिया द्रव्यके आधीन है। जो बारह व्रतधारी श्रावकके करने योग्य है । पांच महाव्रतमें द्रव्य पूजा आदि नहीं है, क्योंकि मुनिको परिग्रहका अभाव है अन्यथा शिक्षाव्रतकी तरह समकितमें भी वो कर्तव्य है । इस विषयमें श्री उववाईसूत्रमें जो अंबड परिव्राजकका दृष्टान्त है । जिसका अर्थ इस प्रकार है कि, "अन्य चरकादिक परिव्राजक-गुरुओं, अन्य तीर्थके हरिहरादिक देव और अन्य तीर्थी तापस आदि अपने चैत्यमें स्थापित किये गये हों-अपने हरिहरादि देवरूपसे माने हों, ऐसे अरिहंतके चित्यको वन्दना करना, पूजना अथवा पर्युपासना करना अंबडके लिये अकल्पनीय है।"

श्री भगवतीसूत्रमें आरम्भ द्वारा भी धर्मकी प्राप्ति होना कहा गया है जो इस प्रकार है कि, "हे भगवन्! श्रावक उस प्रकारके श्रमण-मुनि महाराज हैं उनको अप्रासुक-सचित और अनेषणीय ऐसे अशनादि द्वारा प्रतिलाभे-आहारादि बोराव तो वो क्या उपार्जन करता है?" "हे गौतम! वो कई-बहुत कर्मोंकी निर्जरा करता है और बहुत अल्प

पापका नष्ट करता है, सूत्रमें ग्लान आदि साधुओंको आधाकर्मी आहारकी भी आज्ञा दी गई है तो सो जीव हिंसा बिना नहीं होता, उसी प्रकार जिनबिम्ब आदिके लिये भी जान लेना। अथवा यदि किसी मुनिके देहमें कीड़े पड़े दिखाई दें तो श्रावक अनुबन्ध हिंसाके अभावमें जीवानन्द वैद्यके तरह सावद्य औषध करे। इसी प्रकार यहां चैत्य विषयमें भी समझ लेना।

यदि यहां पर किसीको शंका हो कि, "साधु स्वयं चैत्यादि नहीं करते परन्तु श्रावकोंकी की हुई ऐसी क्रियाका अनुमोदन करते हैं और चैत्यादि क्रियामें उनको प्रेरणा करते हैं, फिर करना, कराना और अनुमोदन करना इन तीनोंका सबको एकसा फल मिलता है, इससे जो यह तीनोंका संयोग कहा गया है, इसमें यदि दोका आदर करे और एकका आदर न करे-यून करे तो वे मार्गके लोपक होते हैं। गुरु कहते हैं कि, "अरे! निबिड़ अंधकारसे व्याप्त पुरुष ऐसी शङ्का करना अयोग्य है, क्योंकि चार प्रकारके धर्मोंमें दान धर्मको प्रथम स्थान दिया गया है, वो दान मुनि स्वयं नहीं देते, परन्तु दाताको अनुमोदन करते हैं और उस क्रियामें श्रावकको प्रेरित भी करते हैं, बस बातको तुमने क्योंकर स्वीकार किया? उसी प्रकार यदि कोई चिड़िमार या माछी-मत्स्यादिकको हिंसामें तत्पर हो और उस समय कोई मुनि पात्रमें भोजन ले कर जा रहे हो उन्हें देख वो हिंसक कहे कि, "हे मुनि! यदि आप मुझे भोजन दे दें तो मैं इन

सब जीवोंको छोड दू और जीते हुओंको भी वापस जगम छोड दू, अन्यथा इन सबको मार डालूगा ।" इस प्रकार सुन उनमें अनेक लाभ देखकर फिर भी भगवन्तकी आज्ञाके लोपके भयसे उसको अपने आहारमेंसे किंचित् भी न दे और श्रावकोंको उस कार्यके लिये सत्प्रेरणा कर, तथा अनुमोदना करे । उसी प्रकार यहाँ भी बुद्धिसे अर्थ लगाना चाहिए।

यदि यहा कोई शका करे कि, "पाषाणकी प्रतिमाकी पूजादिक सन्मान करनेमें क्या लाभ है ? क्योंकि पूजादिक करनेसे वह सतुष्ट या तृप्त नहीं होती और जब सतुष्ट या तृप्त नहीं होती तो फिर उसे कैसे किसी प्रकारके फलकी भी प्राप्ति नहीं होती ।" इसके उत्तरमें कहते हैं कि अचेतन ऐसे चिंतामणि रत्न आदिसे भी फलकी प्राप्तिका विरोध नहीं है अर्थात् फल प्राप्ति होती है, इसके विषयमें वीतरागस्तोत्रमें कहा भी गया है कि —

अप्रसन्नात्कथं प्राप्य, फलमेतदसंगतम् ।
चिन्तामण्यादयः किं न, फलन्त्यपि विचेतनाः ॥८॥

"प्रसन्न न हों, वे फल क्योंकर दें ? ऐसा मानना-विचारना असगत है, क्योंकि अचेतन ऐसे चिन्तामणि आदि क्या फल नहीं देते ?"

श्री जिनप्रतिमामें वीतरागके स्वरूपका आरोप कर पूजा विधि करने योग्य है । इसके विषयमें श्री भगवतीसूत्रमें चारण श्रमणके अधिकारमें कहा गया है कि, "हे भगवन्त !

द्याचारण मुनिका तीरछा गति विषय प्रमाण कितना कहा गया ? " भगवन्त फरमाते है कि, "यहासे एक उत्पादसे-एक दमसे मानुषोत्तर पर्वतपर जाकर समवसरण करे-पधारे और हाके चैत्यकी वन्दना करे, दूसरे उत्पादसे वहासे नन्दीश्वर पमें जा समवसरण करे और वहाके चैत्यकी वन्दना करे, हासे वापस लौटने पर एक उत्पादसे यहा आकर यहांके त्योकी वन्दना करे ।' " हे भगवान् ! विद्याचारण मुनिका र्ध्वलोकमें गति विषय प्रमाण कितना है ?" भगवन्त कहते है क, " हे गौतम ! एक उत्पादसे नन्दनवनमे समवसरण करे, हाके चैत्यकी वन्दना करे, दूसरे उत्पादमे पाण्डुक वनमे हुच वहाके चैत्यकी वन्दना करे । फिर एक उत्पादसे यहां ौट यहाके चैत्यकी वन्दना करे । " यहा इन द्वीपोंके शाश्वत त्यसे ही प्रयोजन है । यहा बहुवचन है इसलिये चैत्य ब्दसे मतलब जिनबिंबसे ही है, आदि अनेक युक्तियोंसे त्य शब्दका अर्थ ज्ञान नहीं होता और इसीलिये कोशकारने हा है कि, "चैत्य अर्थात् जिनालय या जिनबिंब " ऐसा र्थ युक्तियुक्त सिद्ध होता है । इस विषयमें अब अधिक हना अनावश्यक होगा ।

जिनबिंब भावसे वन्दना करने योग्य हैं । वन्दनाका फल ी पद्मचरित्रमे इस प्रकार बतलाया गया है कि, "चैत्यका अर्थात् दर्शन करने जानेका मनमे चिन्तवन करने पर चोथ भक्तका फल होता है, वहा जानेके लिये उठनेसे छट्ठका फल होता है, जाना आरम्भ करनेसे अट्ठमका फल होता है; कुछ

दूर जानेसे दशम–चार उपवासका फल होता है, कुछ अधिक दूर जानेसे पाच उपवासका फल होता है, मार्गके मध्यमें आनेसे पक्ष उपवासका फल होता है, जिनमुख देखनेसे मास उपवासका फल होता है, जिनभुवनको प्राप्त हुआ पुरुष छ मासी तपका फल प्राप्त करता है, मन्दिरके द्वार पर पहुचनेसे संवत्सर तपका–वर्षके उपवासका फल मिलता है, प्रदक्षिणा करनेसे सो वर्षके उपवासका फल मिलता है, जिनबिम्बके पूजनसे हजार वर्षके तपका फल मिलता है और श्री जिनेश्वर भगवतकी स्तुति करनेसे अनन्त गुणा फल मिलता है।" और भी कहा गया है कि, "जिनबिम्बका प्रमार्जन करनेसे सो गुणा, विलेपन करनेसे सहस्र गुणा, पुष्पमाला चढानेसे लाख गुणा और गीत वाजित्रसे अनन्त गुणा पुण्य होता है।"

यत जिनबिम्बका दर्शन कई जीवोंको अनेक प्रकारसे गुणकारी है। इसके विषयमें श्री दशवैकालिककी निर्युक्तिमें कहा गया है कि, "जो जिनप्रतिमाके दर्शनसे प्रतिबोध पाये, मनकके पिता और श्री दशवैकालिकके रचयिता श्री शय्यभव गणधरको मैं वन्दना करता हू। उसकी कथा इस प्रकार है कि —

श्री शय्यभवसूरिजीकी कथा

श्री जम्बुस्वामीजीके पाट पर श्री प्रभवसूरिजी हुए, जिन्होने श्रुतज्ञान द्वारा अपने शिष्योमें या गच्छमे उनके पदके योग्य जब किसी मुनिको नहि पाया तो अपनी श्रुतदृष्टिसे राजगृही नगरीमें शय्यभव नामक एक श्रेष्ट ब्राह्मणको उनके पदके योग्य देख वे उसको बोध करने चले, उस समय शय्यभव ब्राह्मण

अनेक ब्राह्मणोंको एकत्रित कर यज्ञकर्म करा रहा था। उसको बोध करानेके लिये उन्होंने दो चतुर साधुओंको यज्ञस्थल पर भेजे। जिन्होंने वहा पहुच इस प्रकार श्लोकके दो पदोंका उच्चारण किया कि —

" अहो कष्ट-अहो कष्ट, तत्त्व न ज्ञायते पर "

" अहो! कष्टकी बात है कि महाकष्ट करते है, परन्तु परम तत्त्वको नही जानते।" इस प्रकार दो पद बोलकर वे शिष्य वापस लौट गये। उन्हें सुन शय्यभव ब्राह्मणने विचार किया कि, " ये साधु कदापि मृषाभाषी नहीं हो सकते, अत यज्ञाचार्यसे इसका तत्त्व पूछु। ऐसा विचार कर जब उसने यज्ञाचार्यसे तत्त्व पूछा तो उसने उत्तर दिया कि, " यज्ञ ही तत्त्व है।" तथापि सशयसे भरा हुआ शय्यभव शीघ्रतया उन साधुओंकी पीछे पीछे गया और प्रभवसूरिजी समीप जा उसने सूरिजीसे इसके विषयमे पूछा। सूरिजीने उत्तर दिया कि, " हे भद्र! यदि तू यज्ञाचार्यको भय दिखलायेगा तो वह स्वय ही तुझे तत्त्व बतला देगा। इस पर उसने वापस लौट खड्ग खींच यज्ञाचार्यसे कहा कि, " तत्त्व बतलाओ, अन्यथा मैं इस खड्ग द्वारा तुम्हारे शिरका छेद कर दूगा।" इस पर यज्ञगुरुने भयभीत हो यज्ञके स्तम्भ नीचे स्थापित की हुई श्री शान्तिनाथ प्रभुकी मूर्ति उसे निकाल बतलाई। मूर्तिको देख उसे विचार किया कि, " अहो! यह मूर्ति निरूपम है।" फिर उस मूर्तिको ले वो शय्यभव ब्राह्मण सूरिजीके पास आया और उस देवका स्वरूप पूछा,

सूरिजीके एक ही उपदेशसे प्रतिबोधित हो उस शय्यंभवने पर परागत मिथ्यात्वका त्यागकर आशातना रहित भूमिपर मूर्तिको स्थापित कर, दीक्षा ग्रहण कर अनुक्रमसे द्वादशांगीका अध्ययन किया । इस पर सूरिजीने उसे अपने पद पर स्थापित कर दिया ।

शय्यंभवने दीक्षा ली उस समय उनकी पत्नी सगर्भा थी । जिससे गर्भस्थिति पूर्ण होने पर पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका मनक नाम रखा । मनक आठ वर्षके होने पर जब वह अन्य बालकोंके साथ क्रीडा करने लगा तो बालकोंने उसे अपितृक-बिना बापका कह तिरस्कार करना आरंभ किया । मनकने लज्जित हो अपनी मातासे जब इसके विषयमें पूछा तो माताने गद् गद् स्वरमें उत्तर दिया कि, "हे वत्स ! तेरे पिताने किसी जैन गुरुसे दीक्षा ग्रहण की है, मैं क्या करूं ? किसी श्वेत वस्त्र वाले साधुने कुछ यह बदला दिया—ठग लीया है । वे इस समय मुनीश्वर बन पाटलीपुत्रमें और स्थिर रह रहे हैं ।" यह सुन मनक तत्काल माताकी आज्ञा ले पिताके दर्शनार्थ पहुंच हो उस नगरमें आया और मार्गमें जाते हुए मुनियोंके समूहमें जा कर पूछा कि, "शय्यंभव मुनि कौन है ?" ऐसा प्रश्न करते ही शय्यंभव सूरिजीने श्रुतज्ञानके उपयोगसे इसे अपना पुत्र होना जान उपाश्रयमें ला प्रतिबोध कर दीक्षित किया, परन्तु उसकी आयु मात्र छ महिनेकी ही अवशिष्ट जान द्वादशांगीसे उद्धार कर दशवैकालिक नामक सूत्र रच इसे पढाया । उस सूत्रके अध्ययन बाद उसका आयुष्य पूर्ण हुआ, अत मृत्यु प्राप्त होने

पर यह देवता हुआ। उसके मृत्यु समय सूरिजीको अश्रुपात हो आया जिसे देख अन्य मुनि कहने लगे कि, " हे स्वामी ! यदि तुम्हारे जैसे भी जब मोहरुपी राक्षससे ग्रस्त हो अश्रु- पात करने लगेगे तो फिर धीरता कहा रहेगी ? " सूरीश्वरने उत्तर दिया कि, " मैं मोहवश अश्रुपात नहि करता परन्तु इस लिये कि जब मेरे इस पुत्रने अल्प समयके लिये हुए चारित्र पालने पर हि स्वर्ग प्राप्त कर लिया है, तो फिर यदि इसका लम्बा आयुष्य होता तो इससे भी अधिक महद् पद प्राप्त कर सकता, इसी हेतुसे मुझे खेद हुआ है।" यह सुन सब मुनियोको विस्मय एव विषाद साथ साथ हो आया। उन्होंने गुरुसे कहा कि, " यदि यह आपका पुत्र था तो कमसे कम हमको कहना तो था कि जिससे हम उसका अधिक सन्मान वैयावच्च करते।" गुरुने उत्तर दिया कि, " एसा कहनेसे उसकी आत्माकी कार्यसिद्धि शीघ्र नही होती।"

युगप्रधान श्री शय्यभवसूरिजी चिरकाल भव्यजीवोको प्रतिबोध दे अन्तमें स्वर्ग सिधाये।

" प्राज्ञ पुरूषोंने जो चैत्य शब्द द्वारा जिनेन्द्रमूर्ति कहा है यह सत्य है, क्योंकि विद्वान् शय्यभव ब्राह्मणने चैत्यको- मूर्तिको देख उस शब्दमे स्थित धातुके अर्थको चित्तमें धारण कर उत्तम गतिको प्राप्त किया है।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ एकोननवत्यत्यधिकशततमः प्रबंध. ॥ १८९ ॥

व्याख्यान १९०

श्री जिनेश्वर देवकी पूजा विधि यहा बतलाते है

कल्याणकानि पचापि, स्मर्त्तव्यान्यर्चनक्षणे ।
पचैवाभिगमा धार्या, विधिमनुल्लङ्घ्य पूजनम् ॥१॥

भावार्थ —"पूजाके समय पाच कल्याणकका स्मरण करना, पाच अभिगम धारण करना और पूजा विधिका उल्लघन नही करना आवश्यक है।"

विशेषार्थ —पूजा समय पाच कल्याणकका स्मरण इस प्रकार करना चाहिये कि-पूजा करनेसे पूर्व दोनो हाथोंको जोड सन्मुख-सामने विराजमान प्रभु सम्बन्धी च्यवन कल्याणक इस प्रकार विचार करना कि, "हे जिनेन्द्र ! तुम अमुक विमानसे चव कर अमुक माताके उदरमे अवतरित हुए हो, हम जैसे जीवोंको तारनेके लिये तुमने मनुष्य स्वरूप धारण किया है, अहो ! हमारा अहोभाग्य है। इस प्रकार चिन्तवन कर प्रभुके देहसे निर्माल्य पुष्प आदिको हटाकर, जहां कुथुआ आदि जीवकी उत्पत्ति न हो सके उस स्थान पर डालना चाहिये। फिर मोर पीछी द्वारा प्रभुके अगको प्रमार्जित कर सुगन्धित जलसे भरे कलशको हाथमे ले प्रभुको स्नान कराना चाहिये। उस समय जन्म कल्याणक सम्बन्धी सर्व स्वरूपका चिन्तवन करना चाहिये। फिर शुभ वस्त्रसे अग पोंछ न्हवणके जलको जहा जीवहिंसा तथा आशातना न हो, ऐसे स्थल पर डाल देना चाहिये।

अगको पोछे बाद प्रभुके सन्मुख खडे हो दाढी-मूछ आदिसे रहित प्रभुके अगको देख, " अहो ! इन जिनेश्वरने इतने साधुओं सहित ससारका त्याग कर, केसका लुचना कर दीक्षा ग्रहण की है। " आदि दीक्षा कल्याणक सम्बन्धी भावनाको विचारनी चाहिये।

फिर अगपूजा कर छत्र, चामर, भामडल आसन आदि सर्व समृद्धि देख आठ प्रातिहार्य युक्त केवलज्ञान कल्याणककी भावना हृदयमे विचारनी चाहिये।

फिर चैत्यवदनादिकके समय पर्यकासनवाली अथवा कायोत्सर्गादि अवस्थावाली प्रतिमाको देख, ' अहो ! ये प्रभु पर्यकासन अथवा काउस्सग्ग मुद्रासे चिदानदमय सिद्धि पदको प्राप्त हुए है। " इस प्रकार मोक्ष कल्याणककी भावना विचारनी चाहिये। इस प्रकार पच कल्याणकका स्मरण करना चाहिये।

प्रभुके समक्ष पाच अभिगमका इस प्रकार धारण करना चाहिये कि —

(१) प्रभुके मन्दिरमे गमन करते समय पुष्प,[१] ताम्बूल, सुपारी, बदाम, छरी, कटारी, सूडी, मुकुट और वाहन आदि सचित अचित द्रव्यका त्याग करना।

(२) मुकुटके[२] अतिरिक्त अन्य आभूषणादि अचित द्रव्य का त्याग नहीं करना।

---

१ यहां अपने उपयोगमे आने वाले पुष्प ताम्बुलादिसे प्रयोजन है।

२ मुकुटसे प्रयोजन पगडी पर शिरपेच सरीखा बाधे जाने वाले आभूषणसे है।

(३) एक बडा और बिना फटे या सिये वस्त्रका उत्तरासंग करना ।

(४) प्रभुके दर्शन होते ही मस्तकके पास अजलि जोड " श्री जिनाय नमः " कह कर भावसे नमस्कार करना और

(५) मनमें एकाग्रता करना ।

विधिसे बिना उल्लघन किया पूजा करनेसे यह तात्पर्य है कि पूर्व सूरियोंने इसकी विधि इस प्रकार बतलाई है- "स्नान कर, गृह मन्दिरके समीप जा, प्रथम भूमिका प्रमार्जन करना फिर योग्य वस्त्र पहन आठ पडवाला मुखकोष बांधना । (१)

पूजाविधिमें -पुरुषको स्त्रीका वस्त्र, और स्त्रीको पुरुषका वस्त्र नहीं पहिनना चाहिये । (२)

शल्य रहित शुद्ध स्थानमें बुद्धिमान् पुरुषको देवालय बनाना चाहिये और उस घरमें प्रवेश करते पर दाहनी ओर जमीनसे डेड हाथ ऊँचा बनाना चाहिये । (३)

चार विदिशा और दक्षिण दिशाको छोड कर बनाना चाहिये तथा पूजकको पूजा करनेके लिये पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठना चाहिये । (४)

दिशाओंके फल इस प्रकार बतलाये गये हैं कि—पूर्व दिशाके सामने बैठनेसे लक्ष्मी मिलती है, अग्नि दिशामें संताप होता है, दक्षिण दिशामें मृत्यु होती है, नैऋत्य दिशामें उपद्रव

होता है, पश्चिम दिशामें पुत्रका दुःख होना है, वायव्य दिशामें अपुत्रपणा होता है, उत्तरदिशामें महालाभ होता है और ईशानमें धर्मवासना-भावना बढती है। (५ ६)

जिन आज्ञा मुझे मान्य है, यह मनमें समजकर अपने ललाटमें प्रथम तिलक करना।

विवेकी पुरुषको प्रथम प्रभुके चरण,[1] जानु-हाथ, खभे[2] और मस्तक पर अनुक्रमसे पूजा करनी चाहिये। बादमें ललाट पर, कण्ठ पर, हृदय पर और उदर पर इन चार स्थान पर तिलक करना चाहिये। इस तरह नव अंग हुए। चन्दन सहित बिना केसरके पूजा नही करनी चाहिये। (७-८)

प्रभातमें सुवास-वासक्षेपसे, मध्याह्नमें पुष्पोंसे[3] और सायंकालमें धूप-दीपसे विवेकी पुरुषको प्रभुकी पूजा भाव भक्तिसे करनी चाहिये। (९)

कभी संयोगवश इस प्रकार त्रिकाल जिनपूजा न हो सके तो श्रावकको त्रिकाल देववन्दना करनी चाहिये। इसके विषयमें आगममें कहा गया है कि, "हे देवानुप्रिय! आजसे आ-जीवन पर्यन्त त्रिकाल एकाग्र चित्तसे चैत्यवन्दना करनी चाहिये। इस अशुचि, अशाश्वत और क्षणभंगुर मनुष्याव-तारमें मात्र यह ही सार है। इसलिये दिनके प्रथम प्रहरमें जबतक चैत्य और साधुको वन्दना न कर ली जाय तबतक

१ पैरके अंगुठे। २ प्रथमके चारों अंग युग्म-दो-दो जानना।
३ पुष्पोंसे कहनेका तात्पर्य अष्टप्रकारकी पूजासे है।

जलपान भी नहीं करना चाहिये। मध्याह्नमें जबतक चैत्यमें जा अष्ट प्रकारकी पूजा करके चैत्य वन्दना न हो तबतक भोजन नहीं करना चाहिये और इसी प्रकार अपराह्नके-सन्ध्याके लिये भी समझ लेना चाहिये।

भगवान् अर्हन्तके दक्षिण भागमें दीपक रखना चाहिये व इसी प्रकार ध्यान, चैत्यवन्दन भी दक्षिण भागमें रह कर -बैठ कर करना चाहिये। बाइनी ओर धूप रखना चाहिये। और भी कहा गया है कि, "प्रातःकालकी की हुई पूजा रात्रिके पापका नाश करता है, मध्याह्न कालकी की हुई जिन पूजा जन्ममें किये पापका नाश करती है और रात्रिको-सन्ध्याको की हुई पूजा सात जन्मके पापको नाश करती है।" और भी कहा गया है कि, "जो प्राणी त्रिकाल जिन पूजा करते हैं व सम्यक्त्वको शुद्ध करते हैं और श्रेणिक राजा सदृश तीर्थंकर नाम कर्मका बंध कर सकता है।"

जिनपूजाकी विधि द्रव्य और भावसे दो प्रकारकी है। चैत्यवन्दन भाष्य अथवा श्री प्रवचनसारोद्धारकी वृत्तिमें कही हुई "दहतिग अहिगमपणग" आदि गाथामें बतलाये हुए चोवीस मूल द्वार और उसके दो हजार चोहत्तर उत्तर भेद द्रव्यभाव पूजाकी विधिमें योजने योग्य हैं। उसके उत्तर भेद यदि पूजकने अपने नाम सदृश कण्ठाग्र कर रखे हों तो उस पूजकको पूजामें महान फल प्राप्त होता है। विधिपूर्वक किया हुआ देवपूजनादि सर्व अनुष्ठान अतिशय प्रशंसनीय है और

होता है, पश्चिम दिशामे पुत्रका दुःख होता है, वायव्य दिशामें अपुत्रपणा होता है, उत्तरदिशामे महालाभ होता है और ईशानमें धर्मवासना–भावना बढती है। (५ ६)

जिन आज्ञा मुझे मान्य है, यह मनमें समजकर अपने ललाटमें प्रथम तिलक करना।

विवेकी पुरुषको प्रथम प्रभुके चरण,[1] जानु–हाथ, खभे[2] और मस्तक पर अनुक्रमसे पूजा करनी चाहिये। बादमे ललाट पर, कण्ठ पर, हृदय पर और उदर पर इन चार स्थान पर तिलक करना चाहिये। इस तरह नव अंग हुए। चन्दन सहित बिना केसरके पूजा नही करनी चाहिये। (७–८)

प्रभातमें सुवास–वासक्षेपसे, मध्याह्नमे पुष्पोंसे[3] और सायंकालमे धूप–दीपसे विवेकी पुरुषको प्रभुकी पूजा भाव भक्तिसे करनी चाहिये। (९)

कभी संयोगवश इस प्रकार त्रिकाल जिनपूजा न हो सके तो श्रावकको त्रिकाल देववन्दना करनी चाहिये। इसके विषयमे आगममे कहा गया है कि, "हे देवानुप्रिय! आजसे आजीवन पर्यन्त त्रिकाल एकाग्र चित्तसे चैत्यवन्दना करनी चाहिये। इस अशुचि, अशाश्वत और क्षणभंगुर मनुष्यावतारमे मात्र यह ही सार है। इसलिये दिनके प्रथम प्रहरमे जबतक चैत्य और साधुको वन्दना न कर ली जाय तबतक

१ पैरके अंगुठे। २ प्रथमके चारो अंग युग्म–दो–दो जानना।
३ पुष्पोंसे कहनेका तात्पर्य अष्टप्रकारकी पूजासे है।

जलपान भी नहीं करना चाहिये। मध्याह्नमें जबतक चैत्यमें जा अष्ट प्रकारकी पूजा करके चैत्य वन्दना न हो तबतक भोजन नहीं करना चाहिये और इसी प्रकार अपराह्णके-सन्ध्याके लिये भी समझ लेना चाहिये।

भगवान् अर्हन्तके दक्षिण भागमें दीपक रखना चाहिये व इसी प्रकार ध्यान, चैत्यवन्दन भी दक्षिण भागमें रह कर-बैठ कर करना चाहिये। बाईनी ओर धूप रखना चाहिये। और भी कहा गया है कि, "प्रातःकालकी की हुई पूजा रात्रिके पापका नाश करती है, मध्याह्न कालकी की हुई जिन पूजा जन्मसे किये पापका नाश करती है और रात्रिको-सन्ध्याकी की हुई पूजा सात जन्मके पापको नाश करती है।" और भी कहा गया है कि, "जो प्राणी त्रिकाल जिन पूजा करते हैं वे सम्यक्त्वको शुद्ध करते हैं और श्रेणिक राजा सदृश तीर्थंकर नाम कर्मका बंध कर सकता है।"

जिनपूजाकी विधि द्रव्य और भावसे दो प्रकारकी है। चैत्यवन्दन भाष्य अथवा श्री प्रवचनसारोद्धारकी वृत्तिमें कही हुई "दहतिग अहिगमपणग" आदि गाथामें बतलाये हुए चोवीस मूल द्वार और उसके दो हजार चोहत्तर उत्तर भेद द्रव्यभाव पूजाकी विधिमें योजने योग्य हैं। उसके उत्तर भेद यदि पूजकने अपने नाम सदृश कंठाग्र कर रखे हो तो उस पूजकको पूजामें महान फल प्राप्त होता है। विधिपूर्वक किया हुआ देवपूजनादि सर्व अनुष्ठान अतिशय प्रशंसनीय है और

यदि सातिचार किया जाये तो अपायादिक[1] भी प्राप्त होती है। अविधिसे किये चैत्यवंदनादिकका आगममे भी प्रायश्चित बतलाया गया है। श्री महानिशीथसूत्रके सातवें अध्ययनमे इस प्रकार सूत्र है कि, "अविधिसे चैत्यवंदना करे उसे उसका प्रायश्चित बतलाना चाहिये क्योंकि अविधिसे चैत्यवंदन करनेवाला दूसरोंको अश्रद्धा उत्पन्न करता है।" अत देव-पूजा समय विधिमे सावधान रहना चाहिये, मुख्य वृत्तिसे उस समय मौन रहना ही अधिक श्रेष्ठ है, यदि मौन न रहा जाय तो कमसे कम पापहेतु वचनका तो सर्वथा त्याग करे। क्योंकि जिस समय निसीहि कहा गया है, उस समय ही गृहादिकके व्यापारका निषेध किया गया है। और उस समय पापहेतु कोई संज्ञा भी नहीं करना चाहिये। इसके विषयमे धोलकाके निवासी जिनदास श्रेष्ठिका दृष्टान्त है —

जिनदास श्रेष्ठिका दृष्टांत

धोलकामें जिनदास नामक निर्धन श्रेष्ठि रहता था। एक बार घीके कुण्ड और कपासके बोझेको उठा खेदित हो उस श्रेष्ठिने भक्तामरस्तोत्रका स्मरण किया जिस पर शासन देवीने सन्तुष्ट हो उसे वशीकरण मन्त्र दिया। एक बार मार्गमें उसे दुष्टकर्मके निर्यात तीन चोरको देख इस पर उसने अपने पासके अधिक दूसरे बाण तोड़ दिये और चोरोंकी संख्या अनुसार तीन बाण अपने पास रक्खे[2]। वे चोर

[1] कष्ट आदिकी। [2] यह बतलाने के लिये के चोर तीन हैं, इससे इनसे अधिक बाण रखना व्यर्थ है।

अब उपद्रव करनेको उसके पास आये तो उसने उक्त रत्नके प्रभावसे तीन बाण छोड उन तीनोंको मार डाला ।

उस समय पाटण नगरमें भीमदेव राजा राज्य करता था । जिसने यह अद्भुत वृत्तान्त सुन उस शेठको बुलवाया और बहुमानपूर्वक देशकी रक्षाके लिये उसे खड्ग दे पुलिसका अधिकारी बनाया । उस समय शत्रुसल्य नामक सैनापति इर्षासे भरकर बोला कि —

खडो[1] तास समप्पिइ, जसु खाडइ अभ्भास ।
जिणहाटनरु समप्पिइ, तुल चेलउ कपास ॥ १ ॥

"हे राजा ! खड्ग तो उसे देना चाहिये कि जिसको खड्ग रखनेका अभ्यास हो, वणिकको तो तोला, वस्त्र या कपास देना चाहिये ।" शेठने इसका उत्तरमें कहा कि,

असिधर घणुधर, कुतधर सत्तिधराऽन्वि बहुअ ।
सत्तसछ जे रण सूरनर, जणणि ते विरल पसुअ ॥१॥

"हे शत्रुशल्य ! खड्गधारी, धनुषधारी, भालाधारी और शक्तिधारी तो जगतमे बेहुत हैं, परन्तु इसमेंसे शूर पुरुषको तो कोई विरली माता ही जन्म देती है । और भी कहा गया है कि, "अश्व, शस्त्र, शास्त्र, वाणी, वीणा, नर और नारी ये सब पुरुष विशेषको प्राप्त करके ही योग्य अथवा अयोग्य हो जाते हैं ।" इन वचनासे हर्षित हो राजाने उसे कोटवाल बनाया । यह बात सुनते ही चोर मात्रने चोरी करना छोड दिया ।

१ इसमें उसे अत्यंत पराक्रम बतलाया है ।

एक बार किसी सौराष्ट्र देशके जैनी चारणने यह जाननेके लिये कि "शेठका मन पूजामें कैसा एक मग्न है।" किसी ऊँटनी–सादजीकी चोरी की। ग्रामरक्षकोंने सादनीकी शोध करते हुए उसे उक्त चारणके मकानमें देखा और उस चारणको बांध सुभटोंने वणिक् शेठ–कोटवालके पास सवेरे देव पूजाके समय लाये। शेठ पूजा करता था इसलिये पुष्पके डींटे तोड उस *सूचक द्वारा उसने सेवकोंसे अपना अभिप्राय बतलाया।* उस समय अवसर देख चारण बोला कि —

जिणदानइ जिणवरह, न मिले तारोतार।
जिण करे जिणवर पूजिइ, सो किम मारणहार ॥१॥

"जिनदास शेठ और श्री जिनेश्वर एकरूप नही हुए हैं, अन्यथा जिस समय जिन हाथोंसे श्री जिनेश्वरकी पूजा की जाति है उन्ही हाथोंसे दूसरेको मारनेका इसारा क्यों किया जाता?" और भी चारणन कहा कि —

चारण चोरि किम करे, जो खोलडे न माय।
तु तो चोरि ते करे, जे त्रिभुवनमा न माय ॥ १ ॥

"हे शेठ! विचार तो कर कि अपने खोलड–झूपडेमें न समा सकनेवाले ऊँटकी चोरी चारण क्यों करने लगा? परन्तु तू तो तीनों भवनमें न समा सके ऐसी चोरी कर रहा है।" चारणके भावगर्भित इन शब्दोंसे लज्जित हो जिनदासशेठ विचारने लगा कि, "अहो! मैंने श्री जिनेश्वर भगवानकी आज्ञाका लोप कर अब तक मात्र द्रव्य पूजा ही की है, परन्तु जो तत्त्व इस

चारणने यह बतलाया है उसका मैंने कभी आदर नहीं किया, मुझे धिक्कार है।" फिर उसने उस चारणको गुरु सदृश समझ कर कहा कि, "हे उपकारी पुरुष ! तूने सम्यक् प्रकारसे मेरा इस भवकूपसे उद्धार किया है।" इसके बाद जब कभी भी जिनदास शेठ पूजा करने बैठता था तब विधि पूर्वक एकाग्रतासे और भावपूर्वक पूजा किया करता था। पूर्वमें अविधिसे की पूजाका प्रायश्चित भी साधुके समक्ष कर निर्मल हुआ था।

"सद्‌बुद्धिवाले पुरुष उसी प्रकार प्रवृत्ति करते हैं कि जिसमें प्रायश्चित न आवे। आज्ञापूर्वक विधिसे ही धन्य पुरुषोंकी भक्ति सफल है-शोभा देती है।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ नवत्यधिकशततमः प्रबन्धः ॥ १९० ॥

—०—

व्याख्यान १९१

"अविधिसे पूजा करनेकी अपेक्षा तो पूजा नहीं करना ही अच्छा है ऐसा कहनेवालोंके लिये शिक्षा।"

"अविधिसे करनेकी अपेक्षा तो नहीं करना ही अच्छा है" ऐसा जो कहते हैं वे उत्सूत्र वचन कहते हैं, क्योंकि, "नहीं करनेसे भारीकर्मी और करनेसे लघुकर्मी होता है।" सूत्रमें भी ऐसा ही वचन है कि —

अविहिकया वरमकय, उस्सुयवयण भणयन्ति समयन्नु ।
पायच्छित्त अकए गुरुअ, वितहकए लहुअ ॥ १ ॥

"अविधिसे करनेके बनिस्वत नही करना अच्छा है।" ऐसा जो कहते हैं यह शास्त्रोके अर्थ जानने वाले मुज्ञ पुरुषोंके कथनानुसार उत्सूत्र वचन है क्योंकि क्रियाके न करनेसे गुरु बडा और अविधिपूर्वक करनेसे लघु प्रायश्चित आता है।" इसलिये सर्वदा धर्मक्रिया करते रहना चाहिये किन्तु उसके करते समय सर्व शक्तिसे विधिपूर्वक करना चाहिये। कहा भी है कि —

धन्नाण विहिजोगो, विहिपखाराहगा सया धन्ना ।
विहिबहुमाणी धन्ना, विहिपखाऽदुसगा धन्ना ॥ १ ॥

"विधिका योग धन्य पुरुषोंको होता है, विधि पक्षके आराधन करनेवाले सर्वदा धन्य है, विधिके बहुमान करने वाले भी धन्य हैं और विधिपक्षको दोष नही देनेवाले भी धन्य हैं।" खेती, व्यापार आहार, पौषध और दृवतादि का सेवन यदि विधिपूर्वक किया जाय तो अवश्य फल देता है। इसके विषयमे एक दृष्टान्त भी प्रसिद्ध है —

विधिपर चित्रकारका दृष्टान्त

साकेतपुर नगरमें सुरप्रिय नामक एक यक्ष था, जो सत्य देवके नामसे प्रसिद्ध था। प्रति वर्ष जब उसकी यात्रा-मेला भराती थी, तो उस समय उसकी मूर्तिको चित्रित किया जाता था परन्तु चित्रित किये बाद वो यक्ष चित्रकारको मार डालता

था और यदि नहीं चित्राई जाती तो लोगोंको मार डालता था। इस प्रकार उस यक्षने कई चित्रकारोंको मार डाला। इससे त्रासित होकर साकेतनगरके सब चित्रकार पलायन कर दूसरे गाम चले गये, यह बात सुन राजाने प्रजाके नाशके भयसे सुभटोंको भेज उन चित्रकारोंको वापस बुलाये और उन सबके नामकी चिट्ठीयं बना एक घटेमें डाल रखी। फिर उन चिट्ठीयोमसे एक चिट्ठी प्रतिवर्ष कुमारी कन्या द्वारा घडेसे बाहर निकलवाकर उसमे जिसका नाम निकल आवे उससे ही यक्षकी मूर्ति चित्रित करा जाय इस प्रकार निश्चय किया।

एक बार कौशाबी नगरीसे कोइ चित्रकारका पुत्र अपनी चित्रकलाकी कुशलता सिद्ध करनेके लिये वहां आया और एक ही पुत्रवाली किसी चित्रकारकी वृद्धा स्त्रीके घर ठहरा। उस वर्ष उस वृद्धाके पुत्रके नामकी ही चिट्ठी उस घडेसे निकल आइ इसलिये यमराजके आमन्त्रणपत्र सदृश उस बातको सुन वो वृद्धा हाथसे छाती कूट कर बहुत रुदन करने लगी। उसे दुःख ग्रस्त नजर आये हुए चित्रकारने वृद्धासे पूछा कि "हे माता! तु क्यों रोती है?" वृद्धाने जब सारी हकीकत सत्य कह सुनाइ तब कौशाबीसे आये चित्रकारने कहा कि, "हे माता! स्वस्थ हो, मैं भी तुम्हारा पुत्र हूँ, अत तुम्हारे पुत्रके बदलेमे आज मैं स्वय जाऊंगा।" वृद्धाने उत्तर दिया कि, 'हे वत्स! तू मेरा महमान है, तुझे मरनेको क्या कर भेजूं?" इस प्रकार वृद्धाने उसे अनेक युक्तियोंसे समझाया, परन्तु उसने अपनी बात नहि छोडी और वो

वृद्धाके पुत्रके स्थानमें चल दिया। वहां जा उसने प्रथम छठ्ठ तप किया। फिर स्नान कर अङ्ग पर विलेपन कर दो धोये हुए शुद्ध वस्त्र पहिने। फिर सुन्दर चन्दन, कस्तूरी, कपूर और अगरसे मिश्रित रङ्गके नये कचोले भर, नई पींछिये बना, मुह पर अष्टपुट वस्त्र बांध, वह चित्रकार निर्भय और स्वस्थ चित्त हो यक्षकी मूर्तिको चित्रित करने लगा। जब वह चित्र पूर्ण हुआ, तब उसने यक्षके चरणोंमें गिर नमस्कार कर इस प्रकार विनय पूर्वक बोला कि —"हे यक्ष देव! तुम्हारे योग्य चित्र करनेमें कोई समर्थ नहीं है इसलिये मैंने यदि कोई अयुक्त किया हो तो उसके लिये मुझे क्षमा करना।" आदि स्तुति वचन कह कर फिर यक्षके चरणोंमें गिरा। इस पर यक्षने प्रसन्न हो कर कहा कि, "हे चित्रकार! तेरी जो ईच्छा हो सो मांग।" उसने उत्तर दिया कि, "हे तात! इस नगरसे मारीका निवारण कर सर्व चित्रकारोंको अभयदान दीजिये, इतना परहित होनेसे ही मैं प्रसन्न हूंगा।" यक्षने कहा, "हे परोपकारी! आजसे इस नगरके लोगोंको और चित्रकारोंको मेरा भय नहीं रहेगा और उनका कल्याण होगा, परन्तु तू तेरे लिये भी कुछ मांग ले।" युवान चित्रकारने उत्तर दिया, "हे नाथ! यदि आप मुझसे संतुष्ट हो तो मुझे ऐसा वरदान दीजिए कि जिससे मैं किसी भी मनुष्यके शरीरका एक भाग अंश मात्र देखनेसे उसके समस्त रूपका यथार्थ चित्र खिंच सकुं।" यक्ष "तथास्तु" कह वरदान दे अंतर्ध्यान हो गया। चित्रकार वरदान प्राप्तिसे हर्षित हो वापस कौशांबी नगरीको लौट आया।

एक दिन जब किसी दूतने शतानीक राजाकी सभामें दूर देशके आ समाचार कहे तो उसने पूछा कि, "हे दूत! अन्य राज्योंके बनिसबत मेरे राज्यमें क्या न्यूनता है?" दूतने उत्तर दिया कि, "हे राजन्! तुम्हारे राज्यमें सब कुछ है परन्तु एक चित्रसभा नहीं है इसलिये देवसभा तुल्य एक चित्रसभा बनवाइये।" उसके ये वचन सुन राजाने अपने राजमहलके समीप सुधर्मा सदृश एक सभा बनवा कर सर्व चित्रकारोंको उसमेंसे थोडा थोडा विभाग चित्रित करनेको दिया। यक्षके वरदानको प्राप्त करनेवाले चित्रकारको भी अंतःपुरके समीपवाला भाग मिला। दैवयोगसे मृगावती रानीकी दिव्य आकृतिमेंसे उसका देदीप्यमान पगका अंगूठा जालियोंमेंसे चित्रकारको कोई एक समय दिखाई पडा। मात्र अंगूठेको देखनेसे उस चित्रकारने मृगावतीके सर्व रूपको यथार्थ जान लिया। उसके चित्रको चित्रित करते समय उसकी जंघा पर काले रंगका एक बिन्दु गिर पडा। चित्रकारने उसे पोंछ डाला, परन्तु काम करते पुनः उसी जगह काले रंगका बिन्दु गिरा, इस प्रकार दो तीन बार गिरनेसे चित्रकारने जान लिया कि कदाच देवीके इस अंग पर ऐसा तल-लांछन होगा इसलिये उसने वहां लांछन बना दिया और जैसी मृगावती थी वैसा ही चित्र चित्रित कर दिया। दिव्य प्रभावसे उसमें कुछ भी न्यूनाधिकपन नहीं रहा। चित्रकार उसे चित्रित कर दो पहर हो जानेसे भोजन करने घर गया कि, उसी समय शतानिक राजा चित्रसभा देखनेको वहां आ

उस चित्रसभाको देख राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ, कि उसी समय रानी मृगावती सर्वांग सुन्दर छबी उसे दिखाई दी। जब चारिक दफे भीतरसे जंघाके भागको देखा और उस स्थान पर मषीका लांछन भी देखा तो क्षणभरमें राजा अत्यन्त कुपित हुआ, 'अरे यह क्या ? इस चित्रकारने मेरी रानीकी जंघा परके लांछनको कैसे देखा ? अवश्य इस पापीने मेरी स्त्रीके साथ प्रेम किया होगा, अन्यथा जंघाका लांछन कैसे जान सकता है ? फिर क्रोधसे सेवकोंको आज्ञा दी कि, 'हे सेवकों ! इस चित्रकारको शुली पर चढा दो।" यह सुन सब चित्रकारोंने एकत्रित हो राजासे विनती की कि, "हे स्वामी ! आप किस अपराधसे इसे मरवाते हैं ?" राजाने उत्तर दिया कि, 'इसने रानी मृगावतीकी जंघा परका लांछन क्या कर जाना ?" चित्रकारोंने कहा कि, "हे स्वामी ! यक्षके वरदानसे यह चित्रकार किसीके रूपका एक अंश-भाग देख लेने मात्रसे उसके स्वरूपको यथास्थित चित्रित कर सकता है। इसलिये इसने जब रानी मृगावतीके पैरका अंगूठा देखा तो उस परसे ही इसने उसका सारा रूप चित्रित किया है।" यह सुन जब राजाने उसकी प्रतीतिके लिये किसी कुब्जा दासीका मुंह झरोखेमेंसे दिखलाया, तो उसने उसका भी सारा स्वरूप यथार्थ चित्रित कर दिया, तथापि क्रोधवश उस राजाने उस चित्रकारके दाहिने हाथके अंगूठेको कटवा दिया। चित्रकारने फिरसे उस यक्षकी आराधना कि और उसने प्रसन्न हो उसे बायें हाथसे चित्र बनानेकी सिद्धि दी। तभीसे वो चित्रकार बायें हाथसे ही चित्र बनाने लगा।

एक बार उस चित्रकारने मनमें विचार किया कि, "मेरे ज्ञानको धिक्कार है कि जिसके लिये मेरे निरपराधी होते हुए भी राजाने मेरे दाहिने हाथका अंगूठा कटवा मुझे वृथा हैरान किया है। इसलिये यदि इस राजाको मैं जड़ मूलसे निर्मूल करुं तब ही मेरा नाम चित्रकार है। यद्यपि मैं अशक्त हूँ फिर भी बुद्धिमान हूँ, इसलिये मैं इस शक्तिसंपन्न राजाको मूलसे उखाड फेकूंगा, क्योंकि बुद्धिवानके आगे इन्द्रकी भी क्या गिनती है?" इस प्रकार विचार कर उस चित्रकारने पट पर मृगावतीका सुन्दर रूप चित्रित कर, अपने परिवारको साथ ले कौशाम्बी नगरीसे निकल, अवंतिके प्रचंड शासनवाले चंडप्रद्योत राजाके शतानीक राजाका बलवान शत्रु जान वह अवंती गया।

चण्डप्रद्योत राजाके समक्ष उसने मृगावतीका सुन्दर चित्र रखा और नमन कर खड़ा हो रहा। चण्डप्रद्योत पट पर चित्रित मृगावतीको देख उस पर मोहित हो गया और मनमें उसके रूपका वर्णन करने लगा कि, "अहो! रम्भासे भी अधिक रूप! चमत्कारी लावण्य! और अति सुन्दर आकृति, फिर राजाने चित्रकारसे पूछा कि, "हे चित्रकार! तूने अपनी कलाकी कुशलता दिखलानेको उस सुन्दरीका रूप चित्रित किया है? या किसीकी नकल की है? सत्य सत्य बतला।" चित्रकारने उत्तर दिया, "हे राजेन्द्र! मैंने किसी स्त्रीके रूपकी पट पर प्रतिकृति चित्रित की है।" परन्तु उसका जैसा असली रूप है उसे चित्रित करनेको तो

भी असमर्थ है तो फिर मेरे जैसे सामान्य पुरुषकी तो क्या शक्ति है !" चण्डप्रद्योतने कहा, "तो बतला कि यह किस स्त्रीका रूप है ?" चित्रकारने उत्तर दिया कि, "हे राजन् ! शतानीक राजाकी स्त्री मृगावतीका यह रूप है। वह इन्द्रकी इन्द्राणीसे भी रूपमें अधिक है। वो तो आप जैसे महाराजाके ही योग्य है, परन्तु विधिकी विपरीततासे वह उस राजाको मिल गई है। अब दैवकी अनुकूलतामें वह तुम्हारी पत्नी होगी।" इस प्रकार कह कर वह चित्रकार पट पर चित्रित मृगावती उसे भेंट कर अपने स्थानको लौट गया।

इस ओर चण्डप्रद्योतने उसी दिनसे निश्चय किया कि, इस मृगावतीको शतानीक राजाको समझा कर या बलात्कार पूर्वक भी मैं ग्रहण करुंगा। फिर उसने शतानीकको एक पत्र लिख कई प्रकारकी शिक्षा दे वज्रजंघ नामक दूतको भेजा। उसने कौशाम्बीमें जा शतानीकको नमन कर चण्डप्रद्योतका सन्देशा कह सुनाया कि, "हे राजेन्द्र ! मेरे स्वामीका सन्देशा सुनीये। मूर्खको जैसे मणि शोभा नहीं देती उसी प्रकार तेरे पास मृगावती शोभा नहीं देती, इसलिये उसको मेरी तरफ भेज दे, क्योंकि मणि चरणोंमें शोभा नहीं देती, वो तो मुकुटमें ही शोभा देती है। यदि जो तेरा जीवित और राज्यकी अभिलाषा हो तो मृगावतीको यहां भेज कर उसकी रक्षा कर, क्योंकि विचक्षण पुरुषको एक अंशका नाश करके भी सर्व अंशको बचाना योग्य है। इस प्रकार दूतके वचन सुन शतानीक राजा क्रोधित हो रक्त लोचन कर दूतके प्रति बोला

कि, "हे दूत! क्या तेरा स्वामी विह्वल हो गया है, या वह अपना जीवनसे घबरा गया है। क्या मेरे हाथसे मर कर नरकमें जानेकी उसको इच्छा है? कि जिससे वह मृगावतीकी याचना करता है।

ऐसा यह उसका अत्यन्त तिरस्कार करते कहा, "तू दूत होनेसे अवध्य है, बाद उसको पीछली आरकी खड़कीसे निकाल दिया। शतानीक द्वारा अपमानित कर निकाला हुआ वह यथातथ दूत चण्डप्रद्योतके पास आया। और शतानीकने जो कुछ कहा था, वह सब निवेदन किया। फिर चण्डप्रद्योतने चौदह राजाओं सहित अपना लश्कर लेकर कौशाम्बीकी ओर प्रयाण किया। उसकी सैन्यके चलनसे इतनी रज उडी कि सूर्य भी निस्तेज हो गया। इसी प्रकार उस सैन्यके भारसे पृथ्वी कम्पने लगी। इस प्रकार अविच्छिन्न प्रयाण करता हुआ चण्डप्रद्योत अल्प दिनोंमें ही कौशाम्बी नगरीके समीप जा पहुंचा। राजा शतानीक उसे आया जान अत्यन्त भय भीत हो गया। उसे ऐसा भय लगा कि उसे अतिसारका महाव्याधि हो गई और वह अल्पकालमें ही यमद्वार पहुंच गया। अहो! मृत्युका उल्लंघन कोई नहीं कर सकता। कहा भी है कि —"दिव्य ज्ञानके धारक, तीनों जगतके वन्दनीय, अनन्त वीर्यवान और देवेन्द्र तथा असुरवृन्द, जिनके चरणोंमें नमन करते हैं ऐसे श्री जिनेश्वर, पराक्रमी चक्रवती, बलवान वासुदेव, बलभद्र और प्रतिवासुदेव भी यमराजके मुहमें अशरण होकर प्रवेश करते हैं। सचमुच विधि हैं।

पातालमे रहने वाले भुवनपति देवता, स्वेच्छाचारी व्यन्तर, ज्योतिष्क विमानमें रहने वाले चन्द्रसे लगाकर तारे तकके देवता और सौधर्म आदि देवलोकमे सुख पूर्वक रहने वाले वैमानिक देवता ये सब भी जब यमराजके निवासमें जाकर रहते हैं तो फिर किसका शोक करे ?"

चण्डप्रद्योत राजाके भयसे शतानीक राजा मर गया इस लिये मृगावतीने विचार किया कि, "मेरा पुत्र बालक और अल्प बलवाला है, इससे कोई प्रपंच कर शील और पुत्रकी रक्षा करु ।" ऐसा विचार कर उसने अवन्तिपतिसे कहलाया कि, "अब तो मैं तुम्हारे आधीन हू, परन्तु मेरा पुत्र अभी बालक है इससे आसपासकी सीमाके राजा मेरा राज्य ले लेंगे, इसलिये प्रथम मेरे नगरके बाग और मजबूत किला बना दो और इस नगरीको जल तथा अन्न आदिसे परिपूर्ण करा दो।" राजाने मृगावती परके मोहसे अवन्तिसे ईंट मंगवा कौशाम्बीके चारों ओर मजबूत कोट बनवा दिया और उस नगरको जल तथा अन्नसे परिपूर्ण कर दिया । फिर रानीने अपने मन्त्रियोंको बुला कर कहा कि, "यह किला अब ऐसा मजबूत हो गया है कि बारह वर्ष तक इसे कोई नहीं ले सकता, इसलिये अब मेरी शीलकी रक्षाके लिये दुर्गरोध करो अर्थात् दरवाजे बन्द कर दो ।' मन्त्रियाने वैसा ही किया ।

अब जब चण्डप्रद्योत राजाने मृगावतीको बुलवाया तो उसने उत्तर भेजा कि, "हे राजा ! मैं चेटक राजाकी पुत्री होनेसे स्वप्नमें भी ऐसा अकार्य नहीं कर सकती हू ।"

यह सुन चण्डप्रद्योत निलखित होकर विचारने लगा कि, "अहो ! इसने छलकर मेरा सर्वस्व हर लिया, अब यह युद्ध करनेको सज्ज है, इसलिये अब वापस मेरे नगर जा मैं भी सज्ज होकर वापस आऊँ।" ऐसा निश्चय कर राजा अपने नगरमे जा वापस आ फिरसे उस नगरीको बडी सेना द्वारा घेर लिया । उस समय मृगावतीने विचार किया कि, "इस समय यदि श्री महावीर प्रभु यहा पधार जावे तो अधिक उत्तम हो।" उसके पुण्यबलसे श्री महावीर प्रभु उसी अर्से-समयमे वहा आ पहुचे। मृगावती महान समृद्धि सहित उनको वन्दना करने गई । वहा चण्डप्रद्योत भी वन्दन करनेको आया, उस अनुकूल समय जान मृगावतीने अपने पुत्रको चण्डप्रद्योतकी गोदमे रख, उसे उसकी भलामण दे उद्धरने श्री महावीर प्रभुके पास दीक्षा ग्रहण की और उसी भवमे केवल ज्ञान प्राप्त कर मुक्त हुई-मुक्तिमे गई ।

इस दृष्टान्तमें पीछली कथा तो प्रसगोचित लिखी गई है अन्यथा यहा तो उसके प्रारम्भके भागसे इतनी ही शिक्षा लेनी है कि, "यक्ष दुष्ट था, परन्तु विधिवत् पूजनेसे प्रसन्न हो गया था। अत पूज्य सर्वज्ञ प्रभु द्वारा मानित अत्यन्त शुद्ध विधिसे ही पूजनाने श्री जिनपूजा करनी चाहिये ।

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ एकनवत्यधिकशततम प्रबध ॥ १९१ ॥

व्याख्यान १९२

देवद्रव्यके भक्षणसे लगनेवाले दोष

अक्षतादेस्तु देवस्य, भक्षको दु'खमाप्नुयात् ।
तत्ततो यत्नतो रक्ष्य, देवद्रव्य विवेकिभि' ॥ १ ॥

भावार्थ —अक्षतआदि देव द्रव्यको खाने वाले दुःख पाते हैं, इसलिये विवेकी पुरुषको देवद्रव्यका यत्न पूर्वक रक्षण करना चाहिये।" इसका स्पष्टार्थ नीचेकी शुभकर श्रेष्ठी की कथासे सिद्ध होता है ।

शुभकर श्रेष्ठी की कथा

कांचनपुर नगरमे शुभकर नामक एक धनाढ्य श्रेष्ठी रहता था । वह सदैव जिनपूजा एव गुरुवन्दना करता था । एकबार जब वह जिनमूर्तिके समक्ष नमनकर खड़ा हुआ था कि किसी देवता द्वारा किये भगवतके सामने दिव्य अक्षतके तीन ढेर उसे दिखाई दिये । वे बिना पके ही अत्यन्त सुगध फैला रहे थे । उसे देख जीभके स्वादमे वशीभूत हुए शुभकर शेठने अपने घरसे उससे तीगुने चावल मगवा वन्हे वहा रखे और उन दिव्य चावलोंको उसके घर लेजा उनकी खीर बनवाई, जिसकी मनोहर सुगध चारो ओर फैल गई ।

इसी समय कोई मासक्षमणी सत्क्रियावान् मुनि उस श्रेष्ठीके घर भिक्षा लेनेको आ पहुचे, शेठने उस खीरमे से थोडीसी उन्हे वहोराई मुनि बिना परमार्थ जाने उस खीरको

पात्रमें ले आगे बढ़े । वे मुनि बेतालिस दोष रहित आहारको लेनेवाले होनेसे शुद्ध हृदयवाले थ परन्तु इस अयोग्य आहार की सुगन्ध मात्र ग्रहण करनेसे वे मुनि विचारने लगे कि, "अहो ! इस सेठीका अवतार हमसे श्रेष्ठ है । क्योंकि यह ऐसा अति मनोहर भोजन यथेच्छपनसे सदैव खाता है ।" अनुचित आहारकी गन्ध मात्रसे मुनिका चारित्र ध्यान दूर चला गया, इससे ऐसा दुर्ध्यान करता हुआ वह गुरुके पास पहुंचा । और वह विचारने लगाकि, "ऐसे मनोज्ञ आहार की गुरुके समक्ष आलोचना करनेकी क्या आवश्यकता है? क्योंकि आज अति मनोहर आहार मिला है, इसलिये कदाच स्वादके लोभसे गुरु सबही खा जाये तो मैं क्या करू ? इसलिये आलोचना नहीं करना ही अधिक उत्तम है।" ऐसा कुत्सित विचार कर बिना गुरुको बतलाये ही यह मुनि सत्वर भोजन करने बैठा । भोजन करते समय विचार किया कि, "अहो ! इसका स्वाद देवताओंको भी दुलभ है । आज सचमुच जीवन साथक हो गया है । इतने समय तक मैंने वृथा ही देहका दमन व शरीरको शोषित किया था । ऐसा आहार जिसको नित्य मिलता है उसका जीवन सफल है। "ऐसा विचार करते हुए व भोजन कर सुख पूर्वक सो रहे। उनको ऐसी निद्रा आई कि आवश्यक क्रियाके समय भी न उठे । इस पर सूरिजीने विचार किया कि "ये शिष्य सर्वदा सुविनीत होने पर भी आजही प्रमादी हुआ है उसका कारण अशुद्ध आहार करना जान पड़ता है ।" उसी समय

प्रात काल हो जानेसे उक्त श्रावक गुरुके पास वदना करने आया । वहा उसने उन मुनिको सोते देख जब इसका कारण पूछा तो सूरिजीने उत्तर दिया कि, ' हे श्रावक ! कलसे यह मुनि आहार कर सोया है और उठाने पर भी नहीं उठता । " यह सुन श्रेष्ठीने कहा, " हे पूज्य ! कल तो इनोंने मेरे घरसे आहार लिया था । " गुरुने पूछा कि, " हे शेठ ! तुम्हारे द्वारा वहोराया हुआ आहार सर्व दोषासे रहित था या नही ? " शेठने उत्तर दिया, " मेरे जाननेमे तो कोई दोष नहीं आया, परन्तु मैने जो चावल पकाये थे वे मेरे घरसे तीगुने चावल रख जिनमदिरके चावल लाकर पकाये थे । इस प्रकार भद्रिक भावसे उसने सब सत्य वृतान्त कह सुनाया जिसे सुन गुरुने कहा कि, " हे श्रावक ! तेरा यह कार्य अनुचित था क्योकि सिद्धान्तमें कहा है कि, " यदि जिन प्रवचनकी वृद्धि करनेवाले और ज्ञानदर्शन गुणके प्रभावक श्रावक देव द्रव्यका भक्षण करता है तो वह अनत ससारी होता है, इसी प्रकार यदि वह श्रावक निज द्रव्यका रक्षण करता है तो परित्त-मर्यादित ससारी होता है । इसके विषयमें एक दृष्टान्त भी है उसे सुनिये —

किसी एक नगरमे द्रव्यवान् शेठ रहता था । वह सदैव अपने पडोसीको कष्ट दिया करता था इसलिये उस निर्धनने विचार किया कि, "किसी भी प्रकारसे यह धनाढय शेठ मेरे सदृश निर्धन हो जावे ऐसा उपाय करू । एक बार जब वह श्रेष्ठी नया घर बनवा रहा था, तो उसे देख उक्त

निर्धनने जिन चत्यके ईटोंमें खडका गुप्त रूपसे उसमें चुन दी। देव द्रव्यके उपयोगसे वो धनाढ्य श्रेष्ठी उसमें रहनेसे अनुक्रमसे निर्धन हो गया। तब उक्त निर्धनने कहा, ' मेरी विडबना करनेका यह सब फल है जो तुझे प्राप्त हो रहा है और यह सब मेरा ही कृत्य है। " फिर जब उस श्रेष्ठीने शाम वाक्यसे उसे सतुष्ट किया तो उसने अपना कृत्य बतला दिया। जिसे सान उस श्रेष्ठीने अपने घरकी भीतमेंसे उक्त इटोंके खण्ड निकला दिये और उसके प्रायश्चितमें एक नवा चैत्य बनवाया। फिर वो वापस सुखी हुआ।

इस प्रकारकी कथा कह कर सूरिजीने कहा कि, ' हे श्रेष्ठी! तूने देवद्रव्य भक्षण किया है, इससे तुझे बडा भारी पाप लगा है।' यह सुन भयभीत हो वह श्रेष्टि बोला कि, "मुझे भी गत कलको ही कफी द्रव्य हानि हुई है।" सूरिजीने कहा, "हे शेठ! तेरा तो बाह्य धन ही गया है, परन्तु इस मुनिका तो अतरग धन चला गया है। अब इसकी आलोचनामें तुझे इतना करना योग्य है कि तेरे घरमें इस समय जितना द्रव्य हो उससे एक जिन चैत्य बनवा।" श्रेष्ठीने वैसा ही किया। फिर आचार्यने उक्त मुनिको रेचक पाचक औषधियें दे उसका कोठा शुद्ध किया और जिस पात्रमें उसने आहार लिया था, उस पात्र पर छाण और रक्षाका लेप कर तीन दिन तक धूपमें रक्खा उसके बाद वह ग्रहण करने योग्य हुआ। उस मुनिने सूरिजीके समक्ष उस पापकी आलोचना की और तपस्या द्वारा शुद्ध हो सयम द्वारा आत्मसाधन किया।

इसका भावार्थ यह है कि, देव द्रव्यकी बोलीका द्रव्य एक क्षणमात्र भी घरमें नही रखना चाहिये । दूसरोंके करजको चुकानेमें भी जब विवेकी पुरुष विलम्ब नही करते तो फिर देव द्रव्य देनेमें तो विलम्ब क्या करे ? यदि कोई शीघ्र देनेम असमर्थ हो तो पहलेसे ही पक्षमे या सप्ताहमे देनेकी स्फुट रीतिसे अवधि कर लेना चाहिये । फिर यदि उस अवधिका उल्लंघन हो जाये तो पूर्वोक्त देवद्रव्यके उपभोगके दोषका प्रसग आता है । विलम्ब करने पर उत्तम श्रावकको भी दुर्गति प्राप्त होती है । इसके विषयमें निम्नस्थ दृष्टान्त है । ”

ऋषभदत्त श्रेष्ठीकी कथा

महापुर नगरमें ऋषभदत्त नामक परम आर्हत् श्रेष्ठी रहता था । एक वार पर्व दिनको वह चैत्यमे गया जहा श्रावक जीर्ण चैत्यके उद्धारके लिये एक टीपणी-फालाकी नोध बनवा रहे थे । उसमे द्रव्य नही होनेसे ऋषभदत्तसे कुछ द्रव्य उधार देनको कहा और नोंध कराई । बादमें अनेक कामकी व्यग्रतासे वह तत्काल न दे सका । कुछ दिन पश्चात् उसके घरमे चोर आ उसका सर्वस्व लूट कर ले गये । उस समय शेठने चोरोंको भयभीत करनेके लिये शस्त्र उठाया, किन्तु चोरोंके शस्त्राघातसे वह मारा गया और मर कर उसी नगरमें किसी निर्धन दरिद्र और कृपण महिषग्राहके घर पाडा हुआ । वो फिरसे प्रत्येक घर निरन्तर उस पाडे द्वारा जल आदिका भार वहन कराने लगा। यह नगर ऊँचाई पर बसे हुए होनेसे उस पाडाको अहोरात जलादिका भार ले उपर

पडता पडता था; इसलिये, निरन्तर क्षुधातुर रहनेसे और चाबुक आदिके प्रहार सहनेसे वो बहुत बड़ा व्यथा पाता था।

एकबार कोई नया चैत्य बाधा जा रहा था, जिसके किल्लेके लिये वह जल वहन करने गया तो वहां चैत्यपूजा आदिके देखनेसे उसे जाति-स्मरण ज्ञान हो आया और वह हृदयसे चैत्य भक्ति करने लगा, फिर ज्ञानीके वचन से उसने अपने पिताका जीव जान उसने पूर्वभवके पुराने द्रव्य दे कर छुड़वाया और पूर्वभवका शेष रहा हुआ देवद्रव्यका हजार गुणा दे कर उसे अऋणी किया। पाडा अनशन कर स्वर्ग सिधाया। यह देवद्रव्यके देनेमे विलंब करने के विषयमें दृष्टान्त है।

देवद्रव्यकी वृद्धि बुद्धिमान् पुरुषको निर्दोष वृत्तिसे करना चाहिये अर्थात् उस द्रव्यमे व द्रह कर्मदान और झूठे व्यौपार किये बिना शुभ व्यवहारादिकसे ही देवद्रव्यकी वृद्धि करना चाहिये। कहा है कि "प्रभु की आज्ञा विनाके पाप द्वारा देवद्रव्य बढाने पर भी कइ मूढ जीव मोहवश अज्ञानी हो कर भवसागरमें डुबते हैं। श्रावकको भी देवद्रव्य व्याज पर भी नही देना या लेना चाहिये। श्रावकके अतिरिक्त अन्यको कुछ अधिक किमतका गहना आदि रख व्याज द्वारा उसकी वृद्धि करना पाप है। सम्यक्त्व सत्तरीकी टीकामें शंकाशकी कथाके प्रसंगमें ऐसा कहा गया है।

देवद्रव्य का विनाश होते देख जो उसकी रक्षा नहीं करता उसे भी दोष लगता है। कहा है कि, "श्रावक यदि

देवद्रव्य खाये तथा उसके खानेवाले पर उसकी उपेक्षा करे तो वह बुद्धिहीन होकर पाप कर्म द्वारा लिप्त हो जाता है ।" अपितु देवद्रव्य भक्षण करना यह उत्कृष्टी आशातनामें गिना जाता है । प्रतिमासे धूपधाणा आदिका टकरा जाना अथवा श्वास लगाना या वस्त्रका छोर अड जाना आदि जघन्य आशातना कहलाती है । यहां पर यदि किसी को यह शंका हो कि "तब तो प्रभुकी प्रतिमा पर बालाकूंची घीसने से भी अवज्ञा (आशातना) होनी चाहिये ।" ऐसा कहना उचित नहि है, क्यों कि आशातना कैसे होती है उसके अभिप्राय को समझे बिना यह शंका की गई है । लोक प्रसिद्धि से भी ऐसा है कि अपमान या तिरस्कारकी बुद्धि से जो क्रिया की जाती है वह आशातना है । परन्तु सत्कार या हित आदिकी बुद्धिसे जो क्रिया की जाये वो आशातना नहीं है । इसलिये इन्द्र द्वारा किया स्नात्र पूजा है जबकि कमठ द्वारा वृष्टिरूप-स्नात्र आशातनामें । लोकमें भी जो राजा आदिके चरणोंको सेवक तेल द्वारा मर्दन करे, मुष्टी से ताड़न कर चापे, उसे अपमान नहीं कहा जाता इसी प्रकार यहां भी बालाकूंची घिसना, वस्त्र से मर्दन करना (लूंछना) ओर जल स्पर्श करना (जल डालना) आदि से आशातना होना असंभव है । एक ही प्रकारका आचरण अभिप्रायकी भिन्नतासे अमृतरूप और विषरूप हो जाता है ।

बिना धोये वस्त्रसे पूजन करना, प्रमाद से बिंबका पृथ्वी पर गिर जाना आदि मध्यम आशातना है और प्रतिमा

के पैर लगाना, बडखा आदिका छोटी देना, देवद्रव्य भक्षण करना, जिनकी मोडना और उसका अपमान करना आदि उत्कृष्ट आशातना है ।

कभी कोई श्रावक ज्ञाति सम्बन्धसे आमन्त्रण करे और उस श्रावक देवद्रव्य भक्षक होते हुए भी यदि कभी उसके घर खाना पडे तो जितनी कि मतका भोजन किया हो उतना द्रव्य जिनालयमें भेट कर दे, तो भोजन करनेवाला निष्पाप हो जाता है ऐसा वृद्ध वचन है ।

" अपने गुरुके द्रव्य सदृश ही यत्न द्वारा देवद्रव्य की रक्षा एवं वृद्धि करना चाहिये, ऐसा करनेसे जीव जिनाज्ञाका आराधक होता है ।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ द्विनवत्यधिकशततम प्रबन्ध ॥ १९२ ॥

व्याख्यान १९३

देवद्रव्य के अल्पमात्र लेने से भी दोष लगता है ।

देवस्वभक्षणे दोष, अहो कोपि महामन ।
सागरश्रेष्ठिनो ज्ञात, धार्यं देवस्वरक्षकै ॥ १ ॥

भावार्थ—' अहो ! देवद्रव्य भक्षण करनेमें कितना दोष है, इस विषयमें महात्मा सागरश्रेष्ठीका दृष्टान्त देवद्रव्यके रक्षकोंको ध्यानमें रखना चाहिये ।"

सागर-श्रेष्ठिकी कथा

साकेत नगरमें सागर नामक श्रेष्ठी था। उसे सुधर्मी (अच्छी निष्ठावाला) जान अन्य श्रावकोंने चैत्य द्रव्यका वहीवट सौंपकर कहा, "इस द्रव्यमे से तुम चैत्यके कार्य करनेवाले सुथार आदि पुरुषोंको वेतन चुकाना।" लोभ से पराभव पाकर वह शेठ सुथारआदि मजूरोंको रोकड द्रव्य न दे आटा, गुड आदि चिजे देवद्रव्य से संग्रह कर देने लगा और उससे होनेवाला लाभसे वह स्वय फायदा उठाने लगा इस प्रकार करते हुए उसने एक रूपयेका अस्सीवा भाग जो काकिणी कहलाता है वैसी एक हजार काकिणी[1] एकत्रित की, परन्तु इस प्रकारके द्रव्य संचयसे उसने घोर दुष्कर्म बांधा और अन्तकालमें बिना आलोचना किये ही मरकर समुद्रमें जलमानुष[2] हुआ।

समुद्र स्थित जलचर जन्तुओंके उपद्रव टालनेवाले जातिवंत रत्नोंके इच्छुकोंने उसको मांसादिकसे लुभा वज्रकी चक्कीमें डाल पीस डाला और उसके अंगसे निकली हुई अंडगोली प्राप्त की। जलमनुष्य मर कर तीसरे नरकमें गया वहांसे निकल पांचसो धनुष्यके प्रमाणवाला महामत्स्य हुआ। वहां माछीए द्वारा की हुई कदर्थनासे मृत्युको प्राप्त हुआ। मरकर चोथे नरकमें गया। इस प्रकार एक या दो भवों के अन्तरसे सातोंहि नरकमें दो दो बार उत्पन्न हुआ।

---

१ सा बारह रुपय। २ मनुष्य आकृतिका मत्स्य।

देवद्रव्यकी एक हजार काकिणीद्रव्य खानेसे अन्तर सहित या अन्तर रहित हजार बार श्वान हुआ । इसी प्रकार एक हजार भव ग्रामशूकर के, एक हजार भव बकरे के, एक हजार भव गाडर के, एक हजार भव मृग के, एक हजार भव खरगोश के, एक हजार भव साबर के, और एक हजार भव श्रगाल के किये । इसी प्रकार हजार हजार भव शियाळ, मार्जार, ऊंदर, छिपकली-गरोली और सर्प हुआ । पांच थावर और वेइन्द्रियमे हजारों भव कर इसतरह लाखों भव संसारमे भटका । इनमें भी प्राय सब भवों मे शस्त्र घात आदि की पीडा सहन कर ही वह मृत्युको प्राप्त हुआ ।

इस प्रकार कई दुष्कर्मोंके क्षीण होने पर वह वसंत पुरके कोटिश्वर वसुदत्त नामके शेठके घर पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआ । उसके गर्भमे आते ही उसके पिताका सर्व द्रव्य नष्ट हो गया । जन्मके दिन ही पिता मर गया और पांच वर्ष की आयु होने पर माताका देहान्त हो गया । इसलिये लोगोंने उसका नाम निष्पुण्य रक्खा । अनुक्रम से भिखारी व रंकके सदृश वह बडा हुआ । एक बार उसके मामा उसे दयासे अपने घर ले गये जहां रात्रीमे ही चोरोंने उसका घर लूट लिया । बादमे वह अभागी जहां जहां जाता था वहां अग्नि आदि के उपद्रव होते रहते थे । इसलिये लोग उसके जहा कहीं जाने पर महा उत्पात का सूचक आना मानने लगे । इस प्रकार असह्य निन्दासे उद्वेग पा उसने देशा न्तर को चल दिया । चलते चलते ताम्रलिप्ती नगरमे जा

विनयधर नामक एक धनाढय शेठके वहा सेवक रूपसे रहने लगा । उसके धरमे भी उसी दिन अग्नि काण्ड हो गया इसलिये उसने भी उसे अपने घरसे निकाल बाहर किया । इससे महादुःखी हो वह अपने पूर्व कर्मोंकी निन्दा करने लगा । कहा भी है कि, "हरेक प्राणी अपने स्वाधीनतासे कर्म करता-बाधता है, परन्तु उसके उदय के समय वह परवश हो जाता है, जिस प्रकार वृक्ष पर मनुष्य स्वेच्छासे चढ़ता है, परन्तु जब गिरता है तब परवश होकर गिरता है।"

बादमें वह किसी व्योपारीके जहाजमें चढा और उस धनाढय शेठके साथ कुशलक्षेमसे दूसरे द्वीपमें जा पहुचा । वहा वो विचार करने लगा कि, "अहो ! अब मेरा भाग्य जगा हुआ जान पडता है कि जिससे यह जहाज नही टूटा, अथवा ऐसा मालूम होता है कि कही मेरा दुर्दैव मुझ भूल गया है, अब यदि यहासे वापस लौटते समय भी मेरी दैव मुझे भूल जाये तो अधिक अच्छा हो ।" ऐसा मनोरथ करते वह वापस लौटा, कि उसी समय दुर्दैव से उसके मनोरथके साथ ही साथ उसे जहाजके भी टूटकर सैकडो टुकड हो गये । आयुष्य बलसे एक पाटिया-फलक उसके हाथ लग गया जिसके सहारेसे वह तैरकर समुद्रके किनारे किसी ग्राममे जा पहुचा और उस गावके ठाकुरकी सेवा करने लगा । दुर्दैव के योगसे उस ठाकुरके मकान पर चोरोंने आक्रमण किया और उस निष्पुण्यको ठाकुरका लडका जान उसे बाध अपनी पालमे ले गये । उसी दिन दूसरे पालके

स्वामीने उस पालको छोड दिया, इसलिये उन्होंने उस अप शुकनियेको यहा से भी निकाल दिया । कहा है कि, "चाहे जितने उद्यम करो परन्तु भाग्य बिना कोई फल प्राप्त नही होता । देखो राहू चन्द्रके अमृतका पान करता है फिर भी उसके अग पल्लवित नही होते।" इस प्रकार वो निपुण्य नो सो ननानन स्थानो पर फिरा और उन सब स्थानोमे चोर, अग्नि तथा चलन उपद्रव होनेसे वो सब स्थानासे निकाला गया इसलिये अत्यन्त दु खी हुआ, वो फिरता हुआ एक अटवीमे आया और शेलक नामक यक्षका आराधन करने लगा। इकीस उपवास करने पर यक्ष सतुष्ट होकर कहने लगा कि, "हे भद्र ! प्रतिदिन सध्याकालको मेरे समक्ष एक सुदर सुवर्णकी हजार पाखवाला मयूर आकर नृत्य करेगा और प्रतिदिन उसकी कलासे सुवर्णके पख यहा गिरेंगे उनको तू ले लेना ।" इस प्रकार प्रतिदिन लेनेसे उसके पास नौसो पख इकट्ठे हो गये । हजारमें सो बाकी रहे उस समय दुष्कर्मसे प्रेरित उसने विचार किया कि "अब सो पख लेनेके लिये मैं इस जगलमे कहा तक फिरु ? इसलिये अच्छा तो यह है कि आज मोरके आने पर एक मुष्टि से ही सब पख एक साथ ले लू ।" इसलिये जब उस दिन नृत्य करने मोर आया और वह उसके सब पख एक साथ मुष्टि से लेनेको गया कि वह मोर उसी समय कौआ बनकर उड गया और पूर्व एकत्रित किये पख भी सब नष्ट हो गये । कहा है कि, "देवको उल्लघन कर जो कार्य किया जाता है वो कार्य कभी सफल नहीं होता जैसे चातक पक्षी-बपैया। यदि

सरोवरका जल पीता है तब वह उसके गलेके छिद्रोंमें से वापस निकल जाता है।" फिर उसने विचार किया कि, "मुझे धिक्कार है। मैंने वृथा हि उद्यम किया।"

इस प्रकार खिन्न होता हुआ वह इधर उधर फिरने लगा कि उसे कोइ ज्ञानी मुनि दिखाई दिया। उसको देखते ही वन्दन कर उसने उनसे अपने पूर्वभव का स्वरूप पूछा। मुनिने जब उसके पूर्वभव का वृतान्त यथार्थ कह सुनाया तब उसने देवद्रव्यके उपभोगका प्रायश्चित मागा मुनिने कहा, "प्रथम उपभोग के लिये द्रव्यसे अधिक द्रव्य वापस दे और देवद्रव्यकी रक्षा कर, कि जिससे दुष्कर्मका नाश होगा।" उस पर उसने लिये हुये द्रव्य से हजारगुना द्रव्य देवभक्ति में देने और उसके पूरे होने तक वस्त्र, आहार आदि जीवन निर्वाहसे अधिक किसी भी प्रकारका द्रव्यको एकत्रित नही करनेका मुनिके समक्ष नियम ग्रहण किया। उसके बाद वह प्रत्येक व्यापारमे अत्यन्त द्रव्य उपार्जन करने लगा और देवद्रव्यमे देने लगा। इस प्रकार उसने थोडे ही दिनोंमें पूर्व काममे ली हुई एक हजार काकिणीके स्थानमें दस लाख काकिणी देवद्रव्यमे दी और देवका अनृणी हुआ। फिर अनुक्रमसे बहुत सा द्रव्य उपार्जन कर अपने नगरको लोटा जहा वह मुख्य शेठके नामसे विख्यात हुआ। फिर उसने नये चैत्य बनाने, देवद्रव्यका रक्षण करना, योग्य युक्तिसे उसे बढाना आदि द्वारा अद्भुत पुण्य उपार्जन कर तीर्थंकर नाम कर्म बाधा। अवसर आने पर दीक्षा

ले, प्रथम भी अरिहंत पद द्वारा आराधन कर तीर्थंकर नाम कर्म निकाचित किया । वहासे आयु पूर्ण कर सर्वार्थ सिद्ध विमानमें देवता हो वहासे च्यव महाविदेह क्षेत्रमें ऋद्ध तत्री समृद्धि धोग सिद्धि पदको प्राप्त हुआ ।

"देवद्रव्य ग्रहण करनेसे अत्यंत दोष लगते हैं, ऐसा पूर्वसूरियों का कथन है उसे जान श्रावक देवद्रव्यकी किंचित् मात्र भी स्पृहा नहीं करते ।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ त्रिनवत्यधिकशततम प्रबंधः ॥ १९३ ॥

व्याख्यान १९४

चैत्य कराना सावद्य है ऐसा कहनेवालेके प्रति शिक्षा वचन ।

सावद्य वचनं नोच्यं, मुनिभिर्धर्मनायकैः ।
तद्वाक्येन महादुःखं, सावद्याचार्यवल्लभेत् ॥ १ ॥

भावार्थ —धर्मके जानकार मुनियों को सावद्य वचन नहीं बोलने चाहिये, सावद्य वचन कहनेसे सावद्याचार्य सदृश महान् दुःखको प्राप्त होते हैं ।" यह स्पष्ट अर्थ है । इसमें सुचित सावद्याचार्यका दृष्टान्त इस प्रकार है कि —

सावद्याचार्यकी कथा

एकवार श्री महावीरप्रभु गौतमस्वामीको मिथ्या बोलनेके फलके विषयमें पूर्वके दृष्टान्त बतलाते थे कि, "गौतम !

पूर्वमे अनन्तकाल बीते जो अनती चोवीसी हो गई है उसमें आजसे वर्तमान अवसर्पिणी सदृश अनतवी अवसर्पिणीमें मेरे जैसे धर्मश्री नामक अन्तिम तीर्थंकर हुए थे। जिनके तीर्थमें सात आश्चर्य हुए थे। उनमें असयमी की पूजारूप आश्चर्यमें अनेक असयमी श्रावकोसे द्रव्य ले अपने अपने बनवाये चैत्यमें रहते थे और उनके मालिक बन आनन्द मानते थे। यहा कुवलयप्रभ नामक एक तपस्वी आये जिनको उन चैत्यवासियोंने नमन कर कहा कि, "आप यहा एक चातुर्मास कीजिये कि जिससे आपके उपदेशसे अनेक चैत्य बनेगे।" उन्होने उत्तर दिया की, "यहा जो जिनालय हैं व सब सावद्य हैं, इसलिये ऐसे सावद्य कार्यके लिये मैं उपदेश नही करता।" ऐसे दृढता पूर्वक सत्य वचन कहनेसे उन्होने जिननाम कर्म उपार्जन किया और इस ससाररूप समुद्रको एक भवावशेष किया अर्थात ऐसा कर दिया कि ससार समुद्रमे केवल एक भव ही रहना पड़े। उक्त वेषधारियोंने द्वेषसे उनका नाम सावद्याचार्य रक्खा, तिसपर भी उनको क्रोध न आया। इसलिये मुनियों को यह कहना चाहिये कि, "चैत्यादिक करनेमें महा लाभ है।" परन्तु इस प्रकार नही कहना चाहिये कि, "इस चैत्य, उपाश्रय या गरम पानीको करो।" ऐसा उपदेश करना चाहिये किन्तु आदेश नही। इस प्रकार साधुको भाषामें विवेक रखना चाहिये।

एक बार उक्त वेषधारियोंमें शास्त्रसम्बन्धी विवाद हुआ। किसीने कहा कि, "यदि गृहस्थका अभाव हो तो साधुको चैत्यकी रक्षा करना चाहिये, चैत्यको संभालना चाहिये, उसके सम्बन्धमें दूसरा भी कोई आरंभ करना चाहिये इसमें साधुको कोइ दोष नहीं लगता। किसने कहा कि, "संयम ही मोक्षको लेजानेवाला है इसलिये दूसरा कुछ नहीं करना चाहिये। कइ बोले कि, "चैत्य की पूजा भी मोक्ष ले जानेवाली है इसलिये उसे करना चाहिये।" उनका यह विवाद समाप्त न हुआ इसलिये उन सबोंने मिलकर पूर्वोक्त कुवलयप्रभसूरिको बुलवाया जिन्होंने मुनि का आचार सत्यरूपसे यह बतलाया।

एकबार किसी साध्वीने उन आचार्यकी प्रदक्षिणा कर, पैरोंमें श्रद्धासे मस्तक रख स्पर्श कर वंदना की, जिसको उक्त लिंगीयोंने अपनी आखोंसे देखा। उसके बाद एकबार महानिशीथसूत्रमें यह गाथा आइ कि, "यदि कोइ मुनि कारण प्राप्त होने पर निरागीपनसे भी स्त्रीके हलका स्पर्श करे तो इ गौनम! उसके मूल गुणकी हानि हो गइ है ऐसा जानना।" उससे यह प्रयोजन है कि जिस गच्छमें निरागी साधु भी किसी कारण के प्राप्त होने पर भी स्त्रीका स्पर्श करे तो उसके मूल गुणकी हानि होती है। इस प्रकारकी गाथा कह उसके अर्थको विस्तारते हुए सूरिने विचार किया कि "प्रथम तो इन लिंगधारियोंने मात्र इनके चैत्योंको सावद्य कहनेसे ही मेरा नाम सावद्याचार्य रक्खा है। अब

इस गाथाका अर्थ सुनकर तो मुझे और भी निरुप करेंगे, परन्तु जो होना हो सो होगा। इस गाथाका अर्थ तो यथार्थ ही कहना चाहिये। क्योंकि अन्यथा कहुंगा तो महा दोपका भागी होउंगा। ऐसा विचार कर उन्होंने उस गाथाकी यथार्थ व्याख्या की। उसे सुन उन उक्त लिंगधारियोंने जो उन्हें स्पर्श कर साध्वीको वन्दना करते देखा था, उस वृत्तान्तको कहकर कहा कि, "तब तो तुम खुद भी मूलगुणहीन साधु ही हैं। उस समय सूरिने अपकीर्तिके भय से कहा कि," अयोग्यको उपदेश देना ही योग्य नहीं है। कहा भी है कि, "कच्चे घड़ेमें डाला हुआ जल जिस प्रकार उस घड़ेका ही विनाश कर देता है उसी प्रकार अल्पमति वालेको बतलाया हुआ सिद्धान्तका रहस्य भी विनाश पाता है।" उन्होंने कहा, "तू ही मिथ्याभाषी है, इसलिये हमारी दृष्टिमार्गसे दूर भग जा।" सूरिने उत्तर दिया "स्याद्वाद मतमें उत्सर्ग और अपवाद ऐसे दो मार्ग हैं, जिन्हें तुम नहीं जानते। कहा है कि एकान्तवाद मिथ्यात्व है और अनेकान्तवाद स्याद्वाद मार्ग है।" लिंगधारियोंने उस वाक्यको मान्य किया, परन्तु उस वाक्यके बोलनेसे जो पाप लगा था, उसकी बिना आलोचना किये मर जानेसे वे सूरि व्यंतर हुए।

वह देव वहांसे च्यव प्रतिवासुदेवके पुरोहितकी पुत्री, जिसका पति परदेश गया हुआ था, उसकी कुक्षिमें अवतरित हुआ। कलंकसे भयभीत हो उसके मातापिताने उसे देशसे बाहर निकलवा दी। परदेशमें जा वह किसी कुम्हारके घर

दासी बनकर रहने लगी । वहां भी चोरी कर मास आदि खाने लगी, इस पर राजाकी आज्ञा से चोरीके अपराधमें उसे वधकारकोंके सिपुर्द की । उसने प्रसव होने तक उसे जिन्दा रक्खा इसलिये प्रसव होते ही वह बालकको वहां छोड़ भग गई । अनुक्रमसे वह बालक पांचसो कसाइयोंका अधिपति हुआ । वहांसे मर अन्तिम नरकके अन्तिम भागमें उत्पन्न हुआ । वहांसे एकोरुक नामक अंतरद्विपमें सर्प हुआ । वहांसे मरकर पाड़ा हुआ । फिर वापस मनुष्य हुआ । उसके बाद वासुदेव हुआ । मर कर नरकमें जाने बाद अनार्यमें मनुष्य हुआ । मर कर सातवी नरकमें गया । वहांसे निकलकर पाड़ा हुआ । वहांसे किसी ब्राह्मणकी विधवा स्त्रीकी कुक्षिमें उत्पन्न हुआ । वहां गर्भपात करनेको माता द्वारा खाई हुई क्षार औपधिके फलस्वरूप गलत कोढ़वाला हो वह गर्भसे निकला । उस जन्ममें सातसो वर्ष, दो महिने और चार दिन जीवित रह व्यंतर हुआ । फिर कसाइयोंका अधिपति हुआ । मरकर सातवें नरकमें गया । वहांसे निकल बैल हुआ । इस प्रकार अनन्त कालतक भटक कर महाविदेह क्षेत्रमें मनुष्यपनको प्राप्त हुआ । उस भवसे लोक की अनुवृत्तिसे जिनेश्वरको प्रणाम करने पर प्रतिबोध प्राप्तकर दीक्षा ग्रहण कर श्री पार्श्वनाथ प्रभुके समयमें सिद्धिपदको प्राप्त हुआ ।

इस प्रकार श्री महावीरप्रभुके मुखसे सुन गौतमने पूछा कि, "हे स्वामी ! उस सूरिने ऐसा कौनसा महापाप किया

था ? उसने कोइ मैथून नहि किया ।" प्रभुने उत्तर दिया, हे गौतम ! उस सूरिने "उत्सर्ग तथा अपवाद द्वारा सिद्धान्तकी मर्यादा है"। ऐसा कहकर अपना मिथ्या-खोटा बचाव करनेसे महापाप उपार्जन किया था, क्योंकि स्याद्वाद मार्गमे भी सचित्त जलका भोग, अग्निका समारंभ, और मैथुन इतने तो उत्सर्ग द्वारा निषिद्ध किये गये है, इसलिये इससे उत्सर्ग अपवाद दोनोंकी स्थापना करना योग्य नही था ।"

यहा उत्सर्ग और अपवादके संयोग द्वारा छ खण्ड-भेद होते हैं, जिनका वर्णन आगे किया जायगा । अपितु उस सूरिने साध्वीके स्पर्श होने पर पैरको संकुचित नहीं किये थे, आदि द्वारा उसने अनंत भव बढ़ाये थे, अब उत्सर्ग और अपवादका स्वरूप बतलाया जाता है ।

कष्ट आदि उपस्थित होने पर यदि धैर्य न रख सके तो अपवाद मार्गको सेवन करते हैं, कई तो ऐसे प्रसंग पर भी उत्सर्ग मार्गका सेवन करते हैं ।"

भावार्थ इस प्रकार है कि, कष्ट उपस्थित होने पर कार्तिक श्रेष्ठी सदृश कोई निषिद्ध जैसे अपवाद मार्गका आचरण करते हैं और कोई पुरुष कामदेव श्रावक सदृश उत्सर्ग मार्गको ही सेवन करते हैं । इन दोनोंके संयोगसे छ खण्ड होते हैं । जो इस प्रकार हैं-१ उत्सर्ग, २ अपवाद, ३ उत्सर्ग स्थानमें अपवाद, ४ अपवाद स्थानमे उत्सर्ग, ५ उत्सर्ग-उत्सर्ग, ६ अपवाद-अपवाद ।

१ उत्सर्गका दृष्टान्त

न किंचि वि अणुण्णाय पडिसिद्ध वा जिणवरिंदेहि ।
मुत्तुण मेहुणभाव न त विणा रागदोसेहि ॥ १ ॥

"प्रभुने मैथुन सेवन विना अन्य किसी भी बातकी (एकान्तसे) आज्ञा नहीं दी, इसी प्रकार एकान्तसे निषेध भी नहीं किया, मात्र मैथुन सेवनका ही एकान्तसे निषेध किया गया है, क्योंकि वो रागद्वेष विना नहि हो सकता ।१।

२ अपवादका दृष्टान्त

सव्वत्थ सजम, सजमाओ अप्पाणमेव रक्खिज्जा ।
मुचइ अइवायाओ, पुणोऽवि सोही नया विरइ ॥२॥

"सवथा सयमका रक्षण करना, सयमसे भी आत्मा को बचाना, यदि आत्मा बच जायगा तो आलोयना आदिसे उसकी शुद्धि हो सकती है और वापस विरति प्राप्त हो सकती है ।" ।२।

३ उत्सर्गमे अपवादका दृष्टान्त

उस्सग्गे अववाय आयरमाणो विराहगो भणिओ ।
अववाये पुण पत्ते उस्सग्गनिसेवओ भयणा ॥ ३ ॥

'उत्सर्गके स्थानमें यदि अपवादका सेवन किया जाय तो वो विराधक होता है और अपवादमें प्राप्त होने पर उत्सर्गका सेवन किया जाय तो विराधक होता है, या नहि भी होता है-भजना है ॥ ३ ॥

४ अपवादमें उत्सर्गका दृष्टान्त भी उपर कीया था सो ही समझ लेना ।

५ उत्सर्ग-उत्सर्गका दृष्टान्त श्रीनिशीथसूत्रमे कहा गया है कि —

ज पुण गोयमा ? त मेहुण एगतेण निच्छयओ वाढ, । तहाआउ तेउ समारभ च स उपयारेहि सजयं विवज्जेज्जा मूणी।

भगव त कहते है कि, हे गौतम ! जिस कारणसे यह मैथुन एका त निश्चयसे अत्य तपनसे वर्जित किया गया है, उसी प्रकार स यमीको अपकाय तेउकाय जीवका समार भ भी सर्व प्रकारसे वर्जित करना चाहिये ।

६ अपवाद-अपवादका दृष्टान्त—यदि कोई साध्वी नदीमे डूबती हो और कोइ साधु उसके अ गका स्पर्श कर उसे बाहर निकाले तो उसकी शुद्धि अल्प आलोचनासे ही हो सकती है । अथवा मेघ वर्षता हो उस समय कोई वेश्या उपाश्रयमे घुस गई हो और रात्री होने पर भी वहांसे न गई हो अर्थात् गुरु आज्ञासे किसी वृद्ध साधुने स्थभके साथ बाध दिया हो प्रात काल राजाके पास पुकार होने पर राजाने गुरुसे पूछा जिस पर गुरुने उत्तर दिया कि, " हे राजन् ! यदि साष्टाग लक्ष्मीसे भरे राजाके भण्डारमे चोर घुस जाये तो क्या राजा उसे बाधता है या नही ? इसी प्रकार ये हमारे शिष्य ज्ञानादि रत्नके भण्डार हैं उन्हे हरण करनेको आई हुइ इस वेश्याको हमने बाध दिया है । " इसे सुन सत्य न्याय देख राजा खुश हुआ और अत्यन्त संतुष्टित हुआ।

ऊपर बतलाये अनुसार उत्सर्ग अपवादके छ ही मार्गों को मनमें धारण कर और विचार कर फिर बोलना चाहिये। इसके विषयमें "प्राकृतरूप माला"में कहा गया है कि, "इस प्रकार छ भाग होने से यदि किसी मुनि को बड़ी झाड़ीमें नारीका प्रसग हो जावे तब वह आलोचना लेनेसे छूट जायगा, परन्तु यदि उसका स्थापन करेगा तो वह अनन्त ससारको बढायेगा। यद्यपि प्रवचनमें उत्सर्ग अपवादके विषयमें अनेकांतकी स्थापना है, तथापि मैथुन सेवन आदि तो एकान्त रूपसे निषेध किये गये हैं, इसलिये उनमें अपवाद का स्थापन करनेसे सूत्रका उल्लघन होता है और उन्मार्ग प्रगट होता है। इससे जिनाज्ञा के भग होने से अनन्त ससारीपन प्राप्त होता है। और जो अपने हीन आचार आदि दोषोंको छिपाने के लिये जिनागम की अनेक युक्तियें दे अपना पाप छिपाते हैं और अपना गुण प्रगट करते हैं वे मायावी ऊपर कहे सावद्याचार्य सदृश बहुल ससारी ही होते हैं।

"जो मुनि चैत्य क्रियामें पाप बतलाते हैं वे अनन्त ससारी होते हैं, क्यों कि यह उत्सूत्र वचन है। देखो सावद्याचार्यने जो तीर्थंकर नामकी सामग्री उपार्जित की थी वो भी नाश हो गई। ऐसा उत्सूत्र प्ररूपणाका ताडव है।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ चतुर्नवत्यधिकशततम प्रबंध ॥ १९४ ॥

व्याख्यान १९५

नवकार गिननेका काल और उसका फल

तुर्ये यामे त्रियामाया, ब्राह्मे मुहूर्ते कृतोद्यम: ।
मुक्तनिद्रा सुधी पंचपरमेष्ठिस्तुतिं पठेत् ॥१॥

अर्थ —" रात्रिके चोथे प्रहरमें ब्राह्ममुहूर्तमें-चार घडी रात्रिके शेष रहने पर, सद्बुद्धिवाले पुरुषको उठनेका उद्यम कर निद्रा छोड देना चाहिये और पंचपरमेष्ठीकी स्तुति करना चाहिये ।"

भावार्थ —इस प्रकार है कि कदाच निद्राकी आधीनतासे कभी रात्रिके चोथे प्रहरमें न उठा जा सके तो पन्द्रह मुहूर्तकी रात्रिमें जघन्यपनसे चौदवे ब्राह्ममुहूर्तमें तो अवश्य उठना चाहिये । फिर शय्याके वस्त्र त्याग कर दूसरे शुद्ध वस्त्र पहिन, पवित्र भूमि पर खडे रहकर या बैठकर या पद्मासन लगा श्रावकको ईशान दिशा तरफ मुंहकर जाप करना चाहिये । जाप करनेके तीन प्रकार हैं । १ उत्कृष्ट २ मध्यम और ३ जघन्य, इनमें यदि पद्मादि विधिद्वारा किया जाय तो उत्कृष्ट और जपमालासे किया जाये तो मध्यम जाप होता है । पद्मादि विधि इस प्रकार है कि चित्तकी एकाग्रताके लिये हृदयमें अष्ट दल कमल स्थापित करना, उसके मध्यकर्णिकामें प्रथमपद और पूर्वादि चार दिशाओंमें दुसरा, तीसरा, चौथा और पांचवा ये चार पद और अग्नि आदि चार विदिशाओंमे शेष चार पदकी स्थापना करनी चाहिये । इस क्रमानुसार जाप करना उत्कृष्ट जाप कहलाता है । जप माला-नवकारवाली आदिसे जो जाप किया जाता है वह इससे-न्यून

अर्थात् मध्यम जाप कहलाता है। उत्कृष्ट जापका महान् फल है जिसके विषयमें योग-शास्त्रमें कहा गया है कि—

त्रिशुद्धया चिंतयन्नस्य, शतमष्टोत्तरं मुनि ।
भुञ्जानोऽपि लभेदेव, चतुर्थतपम फल ॥१॥

"त्रिकरण शुद्धिद्वारा ऊपर बतलाये अनुसार एकसो आठवार (अष्टदल कमलकी स्थापना कर) जाप करनेवाला मुनि भोजन करते हुए भी चतुर्थ तप (उपवास)का फल प्राप्त करता है।"

अब जघन्य जापका स्वरूप बतलाया जाता है कि —

विना मौन विना सख्या, विना चित्तनिरोधनम् ।
विना स्नान विना ध्यान, जघन्यो जायते जप ॥२॥

"मौन बिना, सख्या बिना, मनके रोध किये बिना, स्नान बिना और ध्यान बिना जो जाप किया जाता है वो जघन्य जाप कहलाता है।

जाप करनसे इस लोक आश्रित क्या फल होता है यह बतलाया जाता है। "बिच्छु, सर्प आदि डसा हो अथवा दानव (व्यतरादि तुच्छ दवों)की ओरसे उपद्रव हुआ हो तो पच नमस्कार (नवकार मत्र) के जापसे सर्व दु खोसे जीव मुक्त हो जाते हैं। "यहा पर यह विशेषतया समझना चाहिये कि बिच्छु आदिका विषउतारनेको पश्चानुपूर्वी द्वारा इकीसवार नवकार मन्त्रका जाप करना चाहिये इत्यदि आम्नाय है जो गुरुगमसे जानी जा सकती है। नवकार मत्रके जापसे राक्षसके उपद्रवसे रक्षा करनेके विषयमें निम्नरथ कथा है कि

नवकारके जाप पर कथा

क्षितिप्रतिष्ठित नगरमें बल नामक राजा राज्य करता था। एकबार नवीन मेघके वर्षनेसे नदीमें, बाढ़ आया जिसको देखनेके लिये कई लोग एकत्रित हुए कि, उस समय जलमें एकबड़ा बीजोरा तैरता हुआ दिखाई पड़ा। किसी तैराकने पानीमें कूद उसको उठा लिया और उसे लाकर राजाको अर्पण किया। सुगंधीत और मधुर रसवाले उस बीजोरेके फलको राजाने चक्खा और अत्यन्त हर्षित हो उससे पूछा कि, "यह फल तुम कहांसे लाये।" उसने उत्तर दिया, हे स्वामी? नदीके पानीमें बहता हुआ यह फल मिला है, जिसे सुन राजाने कहा, "अरे पुरुष? उस नदीके तट, जिस स्थानसे यह फल बहकर आया हो तू वहां जा और इसी प्रकारके दूसरे फल भी ला दे।"

उक्त पुरुष उस तटका पता चलाता चलाता वहां गया और ज्योंहि वो उस स्थानमे प्रवेश करनेको तत्पर हुआ कि समीपवर्ती लोगोंने उससे कहा कि, "अरे भद्र! इसमें प्रवेश न कर। जो कोई पुरुष यहां प्रवेशकर फल पुष्पादि लेने जाता है वह यहां ही मर जाता है।" लोगोंके ऐसे वचन सुन वह वापस लोटा, और सारा वृतान्त राजासे जाकर निवेदन किया। जिसे सुन रसलपट राजाने कहा, "अरे कोटवाल! तू नगरमे जा सब मनुष्योंके नामकी चिट्ठिये लिख ला और उन सब चिट्ठियोंको एक घडेमें रख प्रभातकालमें किसी कुमारिकासे उस घडेमेंसे कोई एक चिट्ठि [illegible] और फिर जिसके नामकी चिट्ठि निकल आती उसे

ह। 'यह फल। लेने भेज।" राजाकी ऐसी आज्ञा होनेसे उसने वैसा ही किया। फिर जिसके नामकी चिट्ठी उस घड़ेमेंसे निकलती वह जीनेकी आशा छोड़ कम्पने लगता कोटवालके पुरुष उस भयभ्रांतको पकड़ उक्त नदीके तटकी वाटिकामें भेजने लगे। वह वहांसे एक बीजोरा तोड़ नदीमें तैरता हुआ फेंक देता था और उस समय नगर द्वार पर रहनेवाला कोटवाल उसे ले राजाको भेजकर देता था, और वह पुरुष तो वहीं मर जाता था। इस प्रकार प्रवर्तनसे नगरवासियोंके लिये वो नगर विष तुल्य हो गया। परन्तु राजाके हृदयमें न तो लेशमात्र भी दया आई और न तो विषमपनसे दूर हुआ।

एकवार उस नगर निवासी जिनदास श्रावकके नामकी पत्रिका निकली। उस पत्रिकाको ले जिनदास निर्भय हो घर आया और स्नानकर घरके देवालय तथा नगरके बड़े मन्दिरमें पूजा की। फिर सब लोगोंसे क्षमा सागारी अनशन अंगीकार कर वह उस वनमें गया जहां उच्चे स्वरसे नवकार मंत्रका उच्चारण करते हुए उसने प्रवेश किया। उस समय वनके अधिष्ठायक व्यंतरदेवने नवकार मंत्र सुन विचार किया कि, "अहो! ऐसे अक्षर तो मैंने पूर्वमें भी कभी सुने जान पड़ते हैं।" फिर ज्ञानके उपयोगसे उसे उसका पूर्वभव दृष्टिगोचर हुआ जिससे वह विचार करने लगा कि, "अहो! मैंने पूर्वभवमें दीक्षा ली थी, परन्तु यथार्थ नहीं पाली, इससे मरकर मैं यहां व्यंतर हुआ हूँ। प्रमादके वश हो मैंने वृथा दीक्षा हार दी है। इस प्रकार पश्चाताप करता हुआ वह

जिनदास श्रावकके समक्ष आया और दोनों हाथ जोड उसके पास खडा रह चरणोंमे नमनकर बोला कि, "हे सत्पुरुष! तूने मुझे धर्मस्थानमे प्रवृत्त किया है, इससे तू मेरा गुरु है, तो कोई वरदान मागो।" श्रेष्टिने कहा, "हे भद्र! तुम सब जीवोंको हिसा निवारो यह ही मेरा वर है, यदि तुम प्रसन्न हो तो ऐसा वर दो।" राक्षसने कहा, "हे श्रेष्टि! तुमने यह वरदान तो मेरे आत्महितके लिये मागा है। जैन धर्मसे वासित अतःकरणवाले तुम्हारे जैसे गुरुके दर्शन विना मैंने अब तक केवल विनोदके लिये ही अनेक जीवोंकी हिसा की व कराई है। अब मैं न तो कभी जीवोंकी हिसा करूगा न कराउगा। फल ग्रहण करनेके बहाने तुमने यहा आ मेरे हृदयमे अनेकान्त धर्मको दृढ कराया है, परन्तु अविरतिके उदयसे देवताओंको श्रावक धर्म उदय नहीं आता, तथापि तुम्हारे दर्शनसे मेरे अतःकरणमें समकित गुण उदय हुआ है, इसीसे सब कुछ अच्छा होगा। हे पूज्य गुरु! अब तुम यहा आनेका प्रयास न कर। मैं प्रतिदिन प्रभातको तुम्हारे दर्शनोंके लिये आया करूगा और उस समय वृक्षसे जो फल पक्व होकर ताजा उतरेगा वो मैं लाकर तुम्हारे आगे भेट धरुगा।" ऐसा कह उसने उस श्रेष्टिको एक फल सहित एक क्षण मात्रमें उसके घर पहुचा दिया। श्रेष्टिने राजाके समक्ष जा वो फल राजाको भेट किया। जिसे देख राजाने कहा कि, "हे भद्र! तू अक्षत शरीरसे वापस कैसे आ गया?" शेठने उत्तर दिया, "हे स्वामी! नवकार मंत्रकी महिमासे क्या सिद्ध नहीं होता?" राजाने कहा, "मुझे भी

यह महामंत्र सिखलाइये।" उसने उत्तर दिया कि, "समय आने पर आपको सिखाउगा।"

बाद में किसी ज्ञानी आचार्य के वहीं आने पर वह श्रेष्ठी राजाको ले कर उनके पास वन्दना करने गया। जहां श्रेष्ठीने गुरु से कहा, "हे पूज्य! हमारे राजा को नवकार मंत्रका फल बतलाइये।" इस पर गुरुने इस प्रकार नवकार मंत्रका फल बतलाया कि, 'नवकार का एक अक्षर सात सागरोपम का पाप टालता है, नवकार का एक पद पचास सागरोपम का पाप टालता है और समस्त नवकार पांचसो सागरोपम का पाप टालता है। जो प्राणी एक लाख नवकार गिने और नवकार मंत्र की विधि से पूजा करे वह तीर्थंकर नामगोत्र को बांधता है इस मे लेश मात्र भी संदेह नहीं है। जो कोई आठ करोड़, आठ लाख, आठ हजार, आठसो आठ नवकार गिनता है वह तीसरे ही भव में सिद्धिपद को प्राप्त करता है।" संक्षेप नवकारकी गुली (प्रतिमणके एकपद गिनने वाली) पचास माला गिने तो साढेपांच वर्ष में एककोटि जाप होते हैं, और बंधी हुई (प्रतिमाणके संपूर्ण नवकार गिननेवाली) छ माला गिने तो पांच वर्ष में एक कोटि जाप होते हैं इसकी संख्या की धारणा बराबर करना चाहिए, इस लोक संबंधी फल इस प्रकार है कि उल्टी तरहसे-पश्चानुपूर्वी द्वारा एक लाख नवकार गिनने से तत्काल सांसारिक क्लेशका नाश हो जाता है। जो मात्र हाथ द्वारा जाप आदि करने मे आसक्त हों तो उसे सूत्र या रत्नादिक की जपमाला (नवकारवाली) हृदयके समश्रेणीमें रख पहिनने के वस्त्रों को

न छूट सके इस प्रकार, मेरु का बिना उल्लंघन किये, आदि विधि द्वारा जाप करना चाहिये। पृथ्वी को प्रमार्जित कर, बैठका-पटासणे पर बैठ, मुख वस्त्र (मुहपत्ति) रख यदि जाप किया हो तो वह जाप स्वाध्याय की गिनती मे आता है। जापके सबन्धमे कहा गया है कि, "अंगुलीके अग्र भाग द्वारा मेरुका उल्लंघन कर व्यग्र चित्तसे जो जाप किया गया हो उसका प्राय अल्प फल मिलता है।

"जाप करते थक जावे तो ध्यान करना और ध्यान करते थक जावे तो जाप करना और यदि दोनों से थक जावे तो स्तोत्र पाठ करना ऐसा गुरु भगवन्तने फरमाया-कहा है। अनानुपूर्वी द्वारा नवकार मंत्र गिननेसे क्षणमे भी छ मासी तप आदि का पुण्य-फल प्राप्त होता है।"

इस प्रकार नवकार मंत्र के जाप का फल ज्ञानी मुनि महाराजके मुहसे सुन राजा भावसे श्रावक हुआ और श्रद्धा पूर्वक नवकार मंत्रको गिननेमे तत्पर हो स्वर्ग सिधाया।

जिसमे श्री जिनेश्वर भगवंत आगे बिराजते है, ऐसा नवकार मंत्र इस लोक और परलोक मे सुखदायक है। इस प्रकार जानकर जो श्रावक नवकार मंत्र के पद का जप करता है वो गुणवंत प्राणी सम्पूर्ण विश्व का वशीय होता है।"

इत्यब्दिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ पञ्चनवत्यधिकशततम प्रबंध ॥ १९५ ॥

इति तेरशः स्तंभः समाप्त.

(तेरहवा स्तंभ समाप्त हुआ)

श्री उपदेशप्रासाद ग्रंथे स्थम १४

व्याख्यान १९६

श्री तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन करनेके हेतु

सर्वं तीर्थकरास्तु स्युरितस्तृतीयजन्मनि ।
विंशत्या सेवितैः स्थानैस्तीर्थकृन्नामहेतुभिः ॥१॥

अर्थ —"सब तीर्थंकर भगवन्तो तीर्थंकर नामकर्मके हेतु रूप वीशस्थानक तपके सेवनसे उसके तीसरे भवमें तीर्थंकर होते हैं ।"

विशेषार्थ —सब अर्थात् जो पूर्वे अतीतकालमें हुए हैं वर्तमान कालमें जो विद्यमान हैं और जो भाविकालमें होंगे वे सब अनंत तीर्थंकरो पीछले तीसरे भवमें विशस्थानककी आराधनाके फल स्वरूप तीर्थंकर होते हैं । अर्थात् जो जीव तीर्थंकर नामगोत्रको बांधते हैं व इस वीशस्थानकर्म से एक, दो, तीन आदि स्थानके अथवा सर्व स्थानके सेवन करनेसे तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन करते हैं । व जीव पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद वाले एसे तीन प्रकारके होते हैं । इनमें नपुंसक कृत्रिम हि समझना, स्वभावसे नपुंसक वेदी नही समझना । श्री भद्रबाहुस्वामीजीने कहा है कि, "निश्चयसे मनुष्य गतिमें वर्तनेवाला स्त्री-पुरुष अथवा नपुंसकवेदी विशुद्ध लेश्यावाला कोई भी जीव अत्यन्त विशुद्धिसे वीशस्थानकमें से किसी भी पदको आराधनेसे जिननामको उपार्जन करता

है। "वह विशस्थानक श्री ज्ञातासूत्रमें इस प्रकार बतलाया गया है कि —

(१) अरिहंत, (२) सिद्ध, (३) प्रवचन, (४) आचार्य गुरु, (५) स्थविर, (६) उपाध्याय (बहुश्रुत) और (७) तपस्वी अर्थात् साधु वे सात पदकी भक्ति करना तथा (८) ज्ञान, (९) दर्शन, (१०) विनय, (११) चारित्र, (१२) शील (ब्रह्मचर्य), (१३) क्रियाके विषे निरतिचारपना, और (१४) तप, (१५) दान, (१६) वैयावृत्य, (१७) समाधि, (१८) अपूर्वज्ञानका ग्रहण (१९) श्रुतभक्ति और (२०) शासनकी प्रभावना–इन वीशस्थानकके आराधनसे जीव तीर्थंकरपना प्राप्त करता है।

अरिहंत —नामादि चार निक्षेपा द्वारा सेवा करने योग्य है। (१)

तथा निष्पन्न हुए गुणवाले, कर्ममलसे रहित, वापस लौटकर संसारमें न आना पडे ऐसी गतिवाले सर्व कार्य और उद्योगमात्र पूर्णकर निश्चित होकर सुखसे सोनेवाले गृहस्थ सदृश फिरसे न करना पड उस प्रकार संसारके सर्व कार्य समाप्त कर, परमसुखका अनुभव करनेको शाश्वत पदको जो प्राप्त हो चुके हैं उनको सिद्ध समझना, ऐसे सिद्ध भगवन्तोंका ध्यान करना चाहिये। (२)

प्रवचन अर्थात् सबश्रुतके आधारभूत चार प्रकारके संघ समझना चाहिए। (३)

गुरु अर्थात् छत्तीसो छत्तु गुणोंसे अलकृत ऐसे आचार्य महाराज समझना । (४)

स्थविर अर्थात् वृद्ध ये तीन प्रकारके हैं। जिनकी वय साठ वर्षकी हो गई हो वे वयस्थविर, दीक्षा लिये जिनको वीस वर्ष हो गये हो वे पर्यायस्थविर और जो मात्र चौथा अग श्री समवायाग सूत्रका अर्थ जानते हो वे श्रुत-स्थविर। इस प्रकार तीन प्रकारके स्थविर समझे । (५)

वहुश्रुत अर्थात् उस समय वर्तित वहुत श्रुतको जाननेवाले अथवा उप-जिनके समीप रहकर अध्याय-अध्ययन किया जा सके वह उपाध्याय अथवा वाचक समझे । (६)

अनशन आदि विचित्र विविध-प्रकारके उग्र तप करनेवाले मुनिको साधु समझे । इन सात स्थानकका वात्सल्य करना अर्थात् इनके यथार्थ गुणोंका वर्णन करना और उन पर भक्तिराग रखना । (७)

सदैव ज्ञानका उपयोग धारण करना आठवा स्थानक है। (८)

तत्त्व पर श्रद्धा रखना सम्यक् दर्शन, (९) वडिलोका विनय करना विनय, (१०) आवश्यक क्रियामें वर्तना, (११) चारित्र-शीलको धारण करना शीलव्रत, (१२) तरवा क्षण लव नामक स्थान, अर्थात् प्रति क्षण प्रतिलव वैराग्य भावयुक्त क्रिया करना । (१३) तप अनेक प्रकारका समझना । (१४) त्याग दान पद्रहमा स्थान है । उसे कहते है कि गौतम आदिको यथायोग्यपनसे अन्नादि देना । (१५)

बाल, ग्लान आदिकी सेवा करना वैयावृत्य नामक सोलवा स्थान कहलाता है। इसके विषयमें श्री प्रश्नव्याकरणमें कहा है कि, "किस प्रकार फिर इस व्रतकी आराधना की जाये? यह बतलाया जाता है कि उपधि, भात, पानी आदिके संग्रहमें तथा दानमें कुशल ऐसा मुनि अत्यन्त बाल, दुर्बल, वृद्ध, क्षपक, प्रवर्तक, आचार्य, उपाध्याय, साधर्मिक, तपस्वी, कुल, गण, संघ और चैत्य-इन सबको मिलाकर तेरह पदकी दश प्रकारकी वैयावच्च निर्जराका अर्थिन अविश्रामतापसे बहु रितिसे करना चाहिये।" यहां यदि किसीको यह शंका होगी कि जिन प्रतिमाको उपधि आदिका दान देना संभव नहीं तो फिर चैत्यका वैयावृत्य किस प्रकार किया जाय?" इसके समाधानमे कहा है कि "कोई यक्ष मेरी वैयावृत्य करता है, इससे इसने इन कुमारोंको मारा हैं। ऐसा हरिकेशी मुनिका वचन है। इस प्रकार यदि कोई चैत्यकी अवज्ञा करते हों तो उनको निवारण करनेसे भी चैत्यका वैयावृत्य होना है। (१६) सत्तरवा समाधिस्थान-अर्थात् दुर्ध्यान छोड चित्तको स्वस्थ करना स्वस्थता चारित्र विनय आदिसे होती है। (१७) अपूर्व ज्ञान ग्रहण करनेका आदर अठारवा स्थान कहलाता है। (१८) श्रुतका बहुमान करना उन्नीसवा स्थान है। (१९) और प्रवचनकी प्रभावना करना, तीर्थका उद्योत करना यह बीसवा स्थान है। इन स्थानों द्वारा जीव प्रभुपनको प्राप्त करता है। (२०)

इस तपकी विधि संप्रदायसे इस प्रकार है कि "बीस स्थानकका तप करना हो तो बीस उपवास करनेसे उस

तपकी एकावलि समाप्त होती है । यदि एक के बाद एक इस प्रकार बीस उपवास करने की शक्ति न हो तब आंतरे आंतरे उपवास कर छ मासके अन्दर तो बीसकी एक पंक्ति पूर्ण करना ही चाहिये । इस प्रकार की कुल बीस पंक्ति द्वारा यह तप पूर्ण होता है । इसलिये इसमें कुल चारसो उपवास होते हैं । इस प्रकार शक्ति के अनुसार बीस बीस छट्ठ अट्ठम आदि से लगाकर बीस बीस मासक्षपन करने तक का तप ज्ञानी पुरुष कहते हैं । इस तप में जिस दिन तप करें उस दिन पांच नमोत्थुणं का पाठ वाला उत्कृष्ट चैत्य[1] वन्दन विधि पूर्वक अवश्य करना चाहिये । उस की एक एक पंक्ति में एक एक दिनद्वारा भक्तिपूर्वक एक एक स्थानकका आराधन कर कुल बीस स्थानक का आराधना करनी चाहिये । पहिले दिन "नमोऽर्हद्भ्य यानी नमो अरिहंताणं" इस पदको हजार जाप करना और स्तवन आदि से अर्हतकी भक्ति विशेषतया करनी चाहिये । दूसरे दिनोंमें क्रमश पहिले बतलाये गये सिद्ध आदि स्थानकी क्रिया, ज्ञान तथा ज्ञानाभ्यासके आदर आदिसे आराधना करनी चाहिये । कई तो एक एक पंक्तिसे (बीस ही दिन) एक एक स्थानकी इस प्रकार बीस पंक्तियों-द्वारा बीस स्थानककी आराधना करते हैं । सांप्रत कालमें उन उन करनेके पदार्थों सम्प्रदायसे जान लेना । यदि कोई-संपूर्ण तप करनेमें अशक्त हो तो इस व्यक्तिने एक स्थान, दो स्थान अथवा सबस्थानकी शुद्धायमान भक्ति द्वारा श्रेणिक

[1] जीवको वर्तमानकालमें उत्कृष्ट चैत्यवन्दन-देववंदन कहते हैं ।

राजा आदिके सदृश यथा शक्ति आराधना करनी चाहिये। इस प्रकार, साधु, साध्वी, श्रावक या श्राविका इन स्थानकोंके आराधनसे तीर्थंकरपनकी उत्तम संपत्तिको प्राप्त करते है।"

श्रीजिनेन्द्रके भवके पूर्वके तीसरे भवमे तीर्थंकर गोत्र बांधे बाद कहा जाते है यह बतलाया जाता है, "जिसने तीर्थंकर पद प्राप्त किया है अर्थात् जिसने तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन कीया है वे जीव वैमानिक देवता होते है। परन्तु किसी जीवने पूर्वमे आयुष्य बाधा हो तो वह मर कर नरक भूमिमे भी जाता है।" इसका यह भावार्थ है कि अरिहंतपद तीर्थंकरनामकर्म सम्यक्त्व प्राप्त होने पर ही बाधा जाता है। इसलिये वह जीव मरकर वैमानिक देवता होता है, परन्तु यदि सम्यक्त्व और तीर्थंकर नाम कर्मके बंधकी प्राप्ति होनेसे पहिले यदि किसी जीवने नारकीका[१] आयुष्य बाधा हो, और बादमे तीर्थंकरनामकर्मके बंधकी प्राप्ति हो, तो वह जीव दशार्णसिंह, (कृष्ण) सत्य कि, और श्रेणिक आदि सदृश नरकमे भी जाता है और वहासे नीकलकर तीर्थंकर होता है। जीर्ण संग्रहणीमें कहा गया है कि "पहली तीन नारकीसे निकले हुए जीव उसके बादके भवमें तीर्थंकर हो सकते है शेष चार नारकीसे निकले तीर्थंकर नही हो सकते। चौथी नारकीसे निकले सामान्य केवली होते हैं, किन्तु जिनेन्द्र

१ जीवने सम्यक्त्वके पहिले तीर्थ बधा या मनुष्यका आयुष्य बांधा हो, वह जीव उस भवमें फिर तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन नहि कर सकते इसलिये यहां नारकीका आयुष लिखा है।

नही होते । पांचवी नारकीसे निकले हुए सर्व विरतिरूप साधुपन प्राप्त करते हैं परन्तु केवल ज्ञान प्राप्त नही कर सकते । छट्ठी नारकीसे निकले हुए पांचवा गुणठाना (श्रावकपन) प्राप्त कर सक्ते हैं, परन्तु मुनिपन प्राप्त नही कर सकते । सातवी नारकीसे निकले हुए जीव सम्यक्त्व-सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सक्ते हैं किन्तु अन्य गुण प्राप्त नही कर सकते । "इस अर्थको ही विशेषरूपसे बतलाते हैं कि, पहली नारकीसे निकल चक्रवर्ती होते हैं । दूसरी नारकीसे निकल वासुदेव बलदेव होते हैं, तीसरीसे निकल जिन-तीर्थंकर होते हैं । चोथी नारकीसे निकल अन्तक्रिया करते हैं अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त कर सामान्य केवली होकर मोक्षमें जाते हैं । पांचवीसे निकल मनुष्यपन और साधुपन प्राप्त करते हैं । [1]छट्ठी नारकीसे निकले हुएको अनन्तरभवमें मनुष्य होनेकी भजना है । कोई मनुष्य होते हैं और कोई नही भी होते । जो मनुष्य होते हैं वे भी सर्व संयमके लाभसे रहित होते हैं, देशविरति हो सक्ते हैं । सातवी नारकीसे निकले हुए निश्चयरूपसे मनुष्यपन प्राप्त नही कर सक्ते, परन्तु तिर्यंच योनिमें उत्पन्न होते हैं जहां समकित पा सकते हैं । (यह प्रसंगसे लिखा गया है) "

---

१ पहिली पांच नारकीसे भी नीकल कर जीव भजनाए हि मनुष्य होते है, लेकिन पहिली पांच नारकीमें छट्ठी नारकीसे अधिक विशुद्धि होनेसे मनुष्यपनकी प्राप्ति सुलभ है, और छट्ठी नारकीमें संक्लिष्टता होनेके कारणसे दुष्कर है इसलिये एसा किया जाता है ।

यहा प्रश्न होता है कि चार देव निकायमेंसे किस निकायसे आये जिन होते हैं ? " इसके उत्तरमें कहा गया है कि-वैमानिक निकायमेंसे ही आकर जिन होते हैं। कहा है कि, "बलदेव और चक्रवर्ती सब देवनिकायसे आकर होते हैं और अरिहंत तथा वासुदेव ये केवल विमानवासीमें से ही आकर होते हैं। वसुदेवके चरित्र (वसुदेव हिंडी)में तो नागकुमारसे निकल अनंतर चवन ऐरावत क्षेत्रमें आ अवसर्पिणी कालमें जिन होना बतलाया गया है। तत्त्व तो केवल ज्ञानी ही जानते हैं। " जिसने स्फुरायमान तीर्थंकर नामकर्म प्राप्त किया हो वे ही कर्मके उदयसे यहा मनुष्यगतिमें जगत्पति जिनेश्वर होते हैं। "

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ षण्णवत्यधिकशततमः प्रबंध ॥ १९६ ॥

व्याख्यान १९७

तीर्थंकरोंका च्यवन कल्याणक कहते हैं

देवभवं च तत्सौख्यं भुक्त्वा च्युत्वेह सत्कुले ।
श्रीमत्या भूपते पत्न्या कुक्षावुत्पद्यते जिन' ॥ १ ॥

भावार्थ —"देवताका भव और देवगति-संबन्धी सुख छोड़ वहांसे चव किसी भी राजाकी उत्तम राणीकी कुक्षीमें जिनेश्वरका जीव उत्पन्न होता है। "

विशेषार्थ —जो जीव तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन करते है वह देव भव सम्बन्धी सुख छोडकरके चव इस मनुष्य क्षेत्रमे धर्म भूमिमे उत्तम कुलमे धनाढय राजा की शील आदि गुणोंसे सम्पन्न राणीके कुखीमे अवतरित होते है । यद्यपि प्रत्येक देवताका जब छ मासका आयुष्य शेष रहता है तब उसके इस प्रकार चिह्न होते है । पुष्प माला म्लान होती है, कल्पवृक्ष कम्पित होता है, लक्ष्मी तथा लज्जाका नाश होता है प्रमाद उत्पन्न होता है, काम-राग बढते है, अग दुखता मालूम पडता है, दृष्टि भ्रान्त होती है, शरीर कम्पित होता है तथापि तीर्थंकर होनेवाले देवता तो पुण्यके उत्कर्षपनमे इससे विपरित विशेष कांति विज्ञानादि युक्त होते हैं। कहा है कि,

तेनोऽस्मिनर्थते तेषा, देवाना च्यवनावधिम् ।
न मादुर्भवन्ति चिह्नानि, च्यवनस्यान्यदेवत् ॥१॥

" तीर्थंकर होनेवाले देवताका तेज च्यवनकाल तक घटता जाता है। अन्य देवताओ सदश उनको च्यवन सबधी दूषित चिह्न नहीं होते। " अन्य देवताओंमसे कई जब उपरोक्त चिह्न देखते हैं तब ऐसा विचार करते हैं कि, "अहो ! हमारा यह सुख चला जायगा ? दुर्गधसे भरा हुआ गर्भ आदिका दुख उठाना पडेगा ? अरे ! हमारी इन देवागनाओंका स्वामी कौन होगा ? " इस प्रकार विचारकर वे आक्रद करते हैं और शोकमग्न होते हैं। जो परमायुको

जाननेवाले सुलभ बोधियुक्त होते हैं, वे अपने आत्माकी इस प्रकार विडंबना नहीं करते हैं, वे तो भावीभाव मानकर इस प्रकार विचार करते हैं कि, "हम कब मनुष्यपन प्राप्त कर जिनमार्गका अनुसरण करेंगे ?"

यहां पर विशेषतया यह जानना आवश्यक है कि च्यवनका काल एक समयका होनेसे सूक्ष्म है और छद्मस्थपना होनेके कारणसे ज्ञानका उपयोग जघन्यसे भी अंतर्मुहूर्तका होता है। इससे च्यवन समयका पता नहीं चलता।

अब च्यवन कल्याणककी महिमा बतलाई जाती है। तीर्थंकर भगवतको जीवका जब च्यवन काल होता है तब पृथ्वी परके अशिव उपद्रव आदिका अन्त हो जाता है, और नारकीके जीव भी क्षणवार सुख मिलनसे हर्षित होते हैं। जब तीर्थंकररूप सूर्य उदय होनेको सन्मुख होता है तब इन्द्र आसन कंपसे इस हकीकतको जान हर्षित होते हैं। फिर तत्काल सिंहासन छोड, विनयपूर्वक पादुकाका त्याग कर, श्री जिनेश्वरकी दिशाके सन्मुख सात आठ कदम (उठ) चलते हैं फिर पंचांग प्रणिपात द्वारा श्री जिनेश्वरको नमन कर अंजलि जोड शक्रस्तव द्वारा स्तुति करते हैं। श्री आवश्यककी वृत्तिमें श्री ऋषभदेव प्रभुके गर्भावतारके सम्बन्धमें श्री हरिभद्रसूरिजी कहते हैं कि, "शकेन्द्र आसन कंपसे प्रभुका च्यवन होना जान सत्वर यहां आता है और यावत् जिनेश्वरकी माताको कहता है कि, तुम्हारा पुत्र धर्मचक्रवर्ती होगा।"

कई कहते हैं कि, "बत्तीस[1] इन्द्र आकर इस प्रकार कहते हैं।" इस प्रकार प्रथम कल्याणकके उत्सवकी पद्धति बहुश्रुत विद्वानोंसे जान लेवें ।

अब गर्भावासमें जिनेश्वरदेवके आनेपर उनकी माताको जो होता है वह बतलाया जाता है —

उस समय स्वर्गभवन सदृश वासगृहमें स्वर्ण समान सदृश शय्या पर सुखसे निद्रावाली मानों हुई होती है, वे निरोगी और धर्मानुराग प्रसन्न चित्तसे रात्रिमें साक्षात् सदृश चौदह स्वप्न देखती है, उन चौदह स्वप्नोंका वर्णन प्रसिद्ध है, इसलिये यहां नहीं लिखा जाता है, अन्य उत्तम पुरुषोंकी माता कितने स्वप्न देखती हैं, इसके विषयमें कहा गया है कि, चक्रवर्तीकी माता जिनेश्वरकी माता सदृश चौदह स्वप्न देखती है, परन्तु वह जिनमातासे अपेक्षामें कुछ न्यून कांतिवाले देखती है। जिसका पुत्र एक ही जन्ममें चक्री और तीर्थंकर होनेवाला हो, उसकी माता उन चौदह स्वप्नोंको दो दफे देखती है, ऐसा पूर्वाचार्योंका कथन है। शान्तिनाथ प्रभुकी शीलवती माता अचिरा रानी रात्रिके शेष भागमें चौदह स्वप्न दो दफे देखे थे ऐसा वृद्ध शत्रुंजय माहात्म्यमें कहा गया है। वासुदेवकी माता इन चौदह स्वप्नोंमेंसे कोई भी सात स्वप्न देखती है, बलदेवकी माता इनमेंसे चार स्वप्न देखती है, मांडलिक राजाकी माता इनमेंसे

---

१ यहां बत्तीस इन्द्र व्यंतर सिवाय तीन निकायके जानना चाहिये।

एक स्वप्न देखती है, प्रतिवासुदेवकी माता इनमेंसे तीन स्वप्न देखती है, और किसी महात्मा मुनिकी माता इनमेंसे एक स्वप्न देखती है, जैसा कि मेघकुमार आदिकी माताने देखा था, ऐसा स्वबुद्धिसे जान लेवे ।

अब प्रभुके विषयमें सम्बन्ध कहा जाता है कि, "तीन ज्ञानवाले भी जिनेश्वर भगवान भी गर्भस्थमें अधर रहते हैं। अहो! जगतके प्रवाहको जिनेश्वरने भी उल्लंघन नहीं किया है। स्वर्गसे च्यवनकर यद्यपि वे गर्भमें गुप्तरूप से रहते हैं तथापि सम्पूर्ण विश्वमें प्रगट होते हैं और इन्द्रादि उनकी स्तुति करते हैं।

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ सप्तनवत्यधिकशततमः प्रबंध ॥१९७॥

व्याख्यान १९८

जन्म कल्याणक वर्णन

तीन ज्ञानवाले सर्व जिन आकर उत्पन्न होते हैं उनके विषयमें कहा जाता है कि —

स्वर्गाद्वा नरकाद्वा ये, यस्मादायान्ति तीर्थपा ।
ज्ञानत्रय ते तत्रत्य, बिभ्रते गर्भगा अपि ॥१॥

अर्थ —"तीर्थंकर चाहे स्वर्गसे या नरकसे आवे परन्तु वे गर्भसे ही तीन ज्ञानके धारण करनेवाले होते हैं।"

यहां मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान इन तीन ज्ञानोंसे प्रयोजन है। ये तीन ज्ञान अन्य देवताओंसे अनिस्वत तीर्थंकर होनेवाले देवताओंमें अनंत गुणे श्रेष्ठतर होते हैं और उन तीन ज्ञानों सहित वे आकर गर्भमें अवतरित होते हैं। जब जिनेश्वर गर्भमें अवतरित होते हैं तब उस गर्भके प्रभावसे माताका शरीर स्वच्छ पुद्गलमय तथा सुगंधमय हो जाता है। अन्य माताओं सदृश गर्भस्थल विभत्स दिखाई नहीं देता है। जिनेश्वरके उत्पन्न होने योग्य गर्भस्थान कस्तूरी बरास आदिसे अनिस्वत भी अत्यन्त सुगंधित होता है। वहां प्रभुका जीव मुक्ताफलकी अथवा हीराकी जैसे उत्पन्न होता है। उस स्थानमें अशुभ पुद्गलकी स्थिति या सत्त्व नहीं होता, माता जो आहार लेती है, वह भी शुभ रूपका परिणाम देता है प्रभुके प्रभावसे, जैसे मेघ द्वारा ग्रहण किया हुआ खारा जल भी जिस प्रकार मधुर हो जाता है उसी प्रकार सब पुद्गल निर्मल हो जाते हैं। और प्रभुके गर्भमें आ जाने बाद उस माताके गर्भमें फिर दूसरा जीव उत्पन्न नहीं होता अर्थात् उसके बाद गर्भस्थिति ही नहीं होती। इसलिये स्तुतिसे अगोचर दिव्यरूप ऐसी योनिक्षेत्रमें अन्य असंख्यात स्त्रियोंको छोडकर प्रभु उत्पन्न होते हैं। अर्थात् पुण्यके पात्ररूप उभय कुल शुद्ध, धर्मदर्शनमें तत्पर, अनन्त धर्मकार्यके प्रभावसे जिसने दीपना प्राप्त किया है, जो अगणित पुण्य कारणयुक्त है और जो बाल्यवयसे ही शीलधर्मकी धुराको धारण करनेवाली है- उसी स्त्रीको ही

जिनेश्वर माता रुपसे स्वीकार करते हैं और यह ,जिनमाता भी ऐसे प्रभाविक पुत्रको प्रगट करनेके लिये प्रबल पुण्याढ्या होने से ही जगत्पतिकी जननीका विरुद धारण करती है। इसके विषयमे श्री भक्तामरस्तोत्रमे कहा गया है कि —

स्त्रीणा शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुत त्वदुपम जननी प्रसूता ।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मि
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदशुजालम् ॥

"हे स्वामी! सेकडों स्त्रिये सेकडो पुत्रोंको जन्म देती है, परन्तु तुम्हारे सदृश पुत्रको तो कोई दूसरी माता जन्म नही दे सकती । दृष्टान्तरूपसे सर्व दिशा नक्षत्रोंको तो धारण करती हैं, परतु स्फुरायमान किरणोंवाले सूर्यको तो केवल पूर्व दिशा ही जन्म दे सकती है।"

यहा पर यदि किसीको यह शका हो कि दूसरे जीवकी तरह प्रभुको भी गर्भमे दुख अवश्य होता होगा। परन्तु ऐसी शका यहा नही करना चाहिये। कहा है कि "गर्भमे आये जिनेन्द्र वहा किसी भी प्रकारका दुख नही पाते और प्रसवादिकमें भी उनको या उनकी माताको किसी भी प्रकारका किचित् मात्र भी दुःख नही होता।" शास्त्रमें ऐसा कथन है कि अन्य जीवोंको गर्भमे अत्यन्त दुख होता है वह इस प्रकार है कि-"हे गौतम! सूईको अग्निमें तपा रोमेरोममे प्रवेश करने पर जैसा जीवको दुःख होता है

उससे आठ गुणा दुःख प्राणीको गर्भमें होता है और गर्भसे निकल योनि यन्त्रमें पीलात समय उससे भी लाख गुणा अथवा कोटि गुणा दुःख होता है।" भावार्थ ऐसा है कि कोई देवता साढे तीन क्रोड सूइयोंको अग्निमें तपा प्राणीके साढ तीन क्रोड छिद्रोंमें एक साथ समकलसे वींधे, तो उस समय उनसे जसको जैसा दुःख होता है उससे आठ गुणा दुःख जीवको गर्भमे होता है। ऐसे सर्व प्रकारके दुःख जाहसे मुक्त नाथ करका गर्भ होता है ऐसा कहा जाता है, इमका तत्त्व तो केवल केवली ही जानते है। उसका वर्णन करना अपनी शक्तिके बाहरकी बात है।

श्री जिनेश्वर अपना च्यवन समय नहीं जान सकते क्योंकि यह काल अति सूक्ष्म है। कहा है कि —जिनेश्वर भगवान अतीत और अनागत एक भव असंख्य न समयकी बात जानते हैं, परन्तु च्यवनकी बात नहीं जानते, क्योंकि च्यवनकाल एक समयका होनेसे अति सूक्ष्म है। इसलिये प्रभु च्यवेंगे ऐसा जान सकते हैं, परन्तु च्यवन क्षण नहीं जानते, च्यवनके बाद च्यवे ऐसा जान सकते है। इस प्रकार प्रभुके गर्भोत्पत्ति कालका वर्णन किया गया है अब जिनेश्वरके जन्म उत्सवका वर्णन किया जाता है।

सर्व जगत् हर्षवंत हो और निमित्त शुकनादि अच्छे होते हों उस समय अर्ध रात्रिको जैसे निधानको पृथ्वी प्रसवती है उसी प्रकार जिनमाता जिनको जन्म देती हैं। उसी समय सब दिशा हर्षित हुई हो इस प्रकार

प्रसन्न दिखाई देती है। और जहां निरंतर अंधकार रहता है वैसे नरकमें भी क्षणमात्रके लिये प्रकाश हो जाता है। इसके विषयमें ठाणांगसूत्रमें कहा गया है कि, "अरिहंतके जन्मके समय, दीक्षाके समये, केवल ज्ञान प्राप्तिके समय, और मोक्षमें जानेके समय-इन चार कालमें सारे लोकमें उद्योत होता है।"

जन्म समय तत्काल छप्पन दिक्कुमारिये आसनकंप होनेसे अवधिज्ञान द्वारा प्रभुका जन्म हुआ जान वहा आती है। उन छप्पन दिक्कुमारियोंका कृत्य-कार्य इस प्रकार है कि —

भोगंकरी आदि अधोलोकवासी आठ दिक्कुमारिये परस्पर बुलाकर कहती है कि, "यहा रहनेवाली तीन कालकी दिक्कुमारियोंका ऐसा आचार है कि वे जिनेश्वर भगवंतका जन्मोत्सव करे, इसलिये चलो, हम भी वहा जाये। हमारे जीवनको धन्य है कि सबसे पहले श्री जिनपतिके दर्शन हमको होगे।" ऐसा निश्चयकर प्रत्येक कुमारिका अपने अपने सेवक देवतासे योजन प्रमाण विमान बनवाकर प्रत्येक चार हजार सामानिक देवता, चार महत्तरा, सोलह हजार आत्म रक्षक देव और सात हजार कटकका परिवारसे, अपने अपने विमानमें बैठ, अरिहंतके जन्मगृहके समीप आ, विमानमें से उतरती है। फिर श्रीजिनेश्वर और जिनमाताको तीन प्रदक्षिणा कर भगवंत और भगवंतकी माताकी इस प्रकार स्तुति करती है कि, "हे विश्वदीपिका ! तुम त्रिभुवनके तारक

ऐसे थी अरिहंत प्रभुकी माता हुई हो इससे तुम कृतार्थ हो।" इत्यादि स्तुतिकर कहती है कि, "हे माता! तुम मत डरो, हम हमारे सदृश अनंत जीवोंके स्वामी ऐसे तुम्हारा पुत्रका जन्मोत्सव करनेको आई हैं।" ऐसा कह संवर्तक वायु द्वारा प्रभुके जन्मगृहसे एक योजन प्रमाण क्षेत्रकी रज, अस्थि-हड्डी, मल तथा तृणादिकसे रहितकर स्वकार्य बनाकर गायन करती हुइ खडी रहती हैं।

अन्य दिक्कुमारियोंके आनेकी पद्धतिकी रीति भी इसी प्रकार है। उनके कार्यमें जो कुछ विशेषता है वो अब बतलाई जाती है। मेघंकरा आदि आठ ऊर्ध्वलोकवासी दिक्कुमारियें, जो इस समभूतला[1] पृथ्वीसे पांचसो योजन ऊँचे नन्दनवनमें पांचसो योजन ऊंचे शिखर पर रहनेवाली हैं। वे वहांसे पूर्ववत् आकर सुगंधी मेघकी विकुर्वी, प्रथम साफ किये योजन प्रमाण क्षेत्रको सुगंधी जलधारा द्वारा शीतल करती है। फिर जानु प्रमाण ऊंची पंचवर्णी पुष्पकी वृष्टि एक योजन प्रमाण क्षेत्रमें करती हैं तथा चारों ओर धूपके धूमसे व्याप्त करती हैं।

फिर नंदोत्तरा प्रमुख आठ पूर्वरुचक निवासी दिक्कुमारियें वहां आ जिनको तथा जिनमाताको नमन कर हाथमें दर्पण ले गाती हुई सामने खडी रहती है। समाहारा आदि

---

[1] समभूतलासे ९०० योजन पर्यन्त तिर्च्छालोक है उसके बाद ऊर्ध्वलोक है, इससे इनको ऊर्ध्वलोकवासी मानी गइ है।

प्रसन्न दिखाई देती है। और जहा निरंतर अंधकार रहता है वैसे नरकमें भी क्षणमात्रके लिये प्रकाश हो जाता है। इसके विषयमें ठाणांगसूत्रमें कहा गया है कि, "अरिहंतके जन्म समय, दीक्षाके समय, केवल ज्ञान प्राप्तिके समय, और मोक्षमें जानेके समय–इन चार कालमें सारे लोकमें उद्योत होता है।"

जन्म समय तत्काल छप्पन दिक्कुमारिये आसनकंप होनेसे अवधिज्ञान द्वारा प्रभुका जन्म हुआ जान वहा आती है। उन छप्पन दिक्कुमारियोंका कृत्य–कार्य इस प्रकार है कि —

भोगंकरी आदि अधोलोकवासी आठ दिक्कुमारिये परस्पर बुलाकर कहती है कि, "यहा रहनेवाली तीन कालकी दिक्कुमारियोंका ऐसा आचार है कि वे जिनेश्वर भगवंतका जन्मोत्सव करे, इसलिये चलो, हम भी वहा जाये। हमारे जीवनको धन्य है कि सबसे पहले श्री जिनपतिके दर्शन हमको होगे।" ऐसा निश्चयकर प्रत्येक कुमारिका अपने अपने सेवक देवतासे योजन प्रमाण विमान बनवाकर प्रत्येक चार हजार सामानिक देवता, चार महत्तरा, सोलह हजार आत्म रक्षक देव और सात हजार कटकका परिवारसे, अपने अपने विमानमें बैठ, अरिहंतके जन्मगृहके समीप आ, विमानमें से उतरती है। फिर श्रीजिनेश्वर और जिनमाताको तीन प्रदक्षिणा कर नमस्कार और भगवंतकी माताकी इस प्रकार स्तुति करती है कि, "हे विश्वदीपिके ! तुम त्रिभुवनके तारक

ऐसे श्री अरिहंत प्रभुकी माता हुई हो इससे तुम कृतार्थ हो। " इत्यादि स्तुतिकर कहती है कि, "हे माता! तुम मत डरो, हम हमारे सदृश अनंत जीवोंके स्वामी ऐसे तुम्हारा पुत्रका जन्मोत्सव करनेको आई हैं।" ऐसा कह संवर्तक वायु द्वारा प्रभुके जन्मगृहसे एक योजन प्रमाण क्षेत्रको रज, अस्थि-हड्डी, केश तथा तृणादिकसे रहितकर स्वच्छ बनाकर गायन करती हुई खडी रहती हैं।

अन्य दिक्कुमारियोंके आनेकी पद्धतिकी रीति भी इसी प्रकार है। उनके कार्यमें जो कुछ विशेषता है वो अब बतलाई जाती है। मेघकरा आदि आठ ऊर्ध्वलोकवासी दिक्कुमारिये, जो इस समभूतला[1] पृथ्वीसे पांचसो योजन ऊंचे नंदनवनमें पांचसो योजन ऊंचे शिखर पर रहनेवाली हैं। वे वहांसे पूर्ववत् आकर सुगंधी मेघकी विकुर्वी, प्रथम साफ किये योजन प्रमाण क्षेत्रको सुगंधी जलधारा द्वारा शीतल करती है। फिर जानु प्रमाण ऊंची पंचवर्णी पुष्पकी वृष्टि कर योजन प्रमाण क्षेत्रमें करती हैं तथा चारों ओर धूपके धूमसे व्याप्त करती हैं।

फिर नंदोत्तरा प्रमुख आठ पूर्वरुचक निवासी दिक्कुमारिये वहां आ जिनको तथा जिनमाताको नमन कर हाथमें दर्पण ले गाती हुई सामने खडी रहती है। समाहारा आदि

[1] समभूतलाकी ९०० योजन पर्यन्त तिर्छालोक है उसके बाद उर्ध्वलोक है इससे इनको उर्ध्व लोकवासी मानी गई है।

आठ दक्षिण रुचकवासी दिक्कुमारियें हाथमें पूर्ण कलश ले प्रभुके दक्षिण तरफ गीत गाती हुई खड़ी रहती हैं। इलादेवी आदि आठ दिक्कुमारियें पश्चिम रुचकसे आ, हाथमें, पंखा ले प्रभुके पश्चिम ओर खड़ी रहकर गायन करती है। अलवूसा आदि आठ दिक्कुमारियें उत्तर रुचकसे आ प्रभुके उत्तर तरफ खड़ी रहकर चामर ढोलती हैं। चित्रा आदि चार दिक्कुमारियें विदिशाके रुचकसे आ प्रभु तथा प्रभुकी माताको नमन कर हाथमे दीपिका ले चारो विदिशाओंमे गाती हुई खड़ी रहती हैं और रुपा आदि चार दिक्कुमारियें मध्य रुचकमें रहनेवाली परिवार सहित आ प्रभुकी नाल चार अंगुल छोड़कर छेदती हैं और उस नालको पृथ्वीमें रख उस खड्डेको उत्तम रत्नोसे भर देती है। फिर अरिहंतके अंगको आशातना न हो ऐसी बुद्धिसे उस स्थान पर पीठ चोतरा बांध दुर्वाके अंकुरको वपन करती है, फिर पश्चिम बिना अन्य तीनों दिशाओंमें कदलीके तीन घर विकुर्वी—बनाकर उनमेसे प्रत्येकमे एक एक सिंहासनवाला चतुःशाल बनाकर इसके बाद जिनको करसंपुटमे ले जिन माताको हाथका सहारा-टेका दे आगे कर दक्षिण दिशाके घरमे ले जाती है। वहां भद्रासन पर बैठा दिव्य तैलसे मर्दन कर सुगंधित तैलसे उनके अंगको उद्वर्तन करती हैं फिर पूर्वके कदली गृहमे पूर्व सदृश सिंहासन पर बैठा सुगंधित पुष्पसे वासित जलसे स्नान कराती हैं, फिर उनको अलंकारसे भूषित करती है। इसके बाद उत्तरकी ओरके कदलीगृहमें ले जा सिंहासन पर जिनमाताको उत्संगमे प्रभुको देकर

बैठाती हैं । फिर गौशीर्ष चन्दनके काष्ठ सेवक देवताओंसे मंगवा, अरणि काष्टके मथन द्वारा अग्नि उत्पन्न कर, उसमें चन्दन काष्ठका होम कर रक्षा पाड़ती हैं । इसके बाद जिन तथा जिनमाता दोनोंके हाथ पर प्रेत प्रमुखका दोष मिटानेके लिये रक्षा पोटली बांधती है, फिर दो गोल पाषाणको घुटाकर "तुम पर्वत सदृश आयुष्यवाले हों" इस प्रकार आशिष देती हैं फिर उनको जैसे लई थी उसी प्रकार ले जाकर जन्म गृहमें शय्या पर बैठा कर उसके समीप भागसे गीतगान आनन्द-महोत्सव करती हैं ।

ऐसा बहुश्रुत पुरुषोंने निश्चय किया है, कि ये देवीये भुवनपति जातिकी हैं, क्योंकि श्री ठाणांगसूत्रमें कई दिक् कुमारियोंका वर्णन करते हुए उनकी स्थिति एक पल्योपमकी बतलाई गई है । समान जातिके कारण इन देवियोंका आयुष्य भी उतना ही होता है । ये स्त्रियें अपरिगृहीता हैं इसलिये इन्हें दिक्कुमारियें कहते हैं ।

इस प्रकार दिक्कुमारियों द्वारा किया हुआ प्रभुका जन्मोत्सव श्री जम्बुद्वीप पन्नत्तिसे लेकर यहां संक्षेपसे लिखा गया है ।

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ अष्टनवत्यधिकशततमः प्रबन्धः ॥ १९८ ॥

व्याख्यान १९९

इन्द्रकृत जन्मोत्सवस्तु वर्णन

सिंहासनं सुरेन्द्रस्य, कम्पते युधि भीरुवत् ।
अनर्घिनाऽर्हतो जन्म, ज्ञात्वा तदुत्सवं तनोत् (चरेत्)॥१॥

भावार्थ —जैसे रणभूमिमें भीरु जन कंपित होता है उस प्रकार "प्रभुके जन्म समय इन्द्रका आसन कंपायमान होता है, इससे इन्द्र अवधि ज्ञानद्वारा प्रभुका जन्म हुआ जान उनका जन्मोत्सव करता है।"

विशेषार्थ —इन्द्रकृत जिनजन्ममहोत्सवका प्रकार इस प्रकार है। इन्द्र अवधिज्ञान द्वारा प्रभुकी उत्पत्ति जान सिंहासनसे खड़ा हो, सात आठ कदम प्रभुकी दिशाकी तरफ चल। विनयपूर्वक शक्रस्तवद्वारा स्तुति कर, वापस लौट, पूर्वाभिमुख सिंहासन पर बैठ इस प्रकार विचार करता है कि, "यहां त्रिकाल उत्पन्न होनेवाले इन्द्रका ऐसा आचार है कि वे अरिहंतका जन्माभिषेक करे।' ऐसा निश्चय कर पायदल सेनानामक हरिणगमेषी देवको बुलाकर कहता है कि, "तू सुघोष घंटा बजा और अपने स्वर्गके सब देवताओंसे हमारा प्रस्थान सूचित करो। फिर वह देव इन्द्रकी आज्ञा शिरोधार्य कर योजन प्रमाण मंडलवाली सुघोषा घंटाको तीनवार बजाता है। उसके बजाते समय बत्तीसलाख विमानमें बत्तीसलाख घंटे दिव्य प्रभावसे एकही साथ बजते हैं। उनकी ध्वनि

ज्ञात होने पर वे देव इस प्रकार उद्घोषणा करते हैं कि, "हे देवताओ ! तुम इन्द्रके साथ श्री जिनेश्वर भगवानके जन्म कल्याणकके उत्सवके लिये तत्पर होकर चलो सत्वर तैयार हो जाओ ।" इस प्रकारकी उद्घोषणा सुन सब देवता अपने अपने वाहन तैयार कर जिनभक्ति करनेके लिये जानेको उत्सुक होते हैं । फिर इन्द्र पालक नामक वाहन-विमानके स्वामीदेवको विमान तैयार करनेकी आज्ञा देता है । वह देव जम्बुद्वीप सदृश (लाख योजनका) विस्तारवाला पांचसो योजन ऊंचा पालकनामक विमान तैयार कर वहां लाता है । श्रीठाणांग सूत्रमें कहा गया है कि "चार वस्तु लोकमें समान हैं,-सातवीं नरकका अप्रतिष्ठान नरकवास, जम्बुद्वीप, पालक नामक यान-विमान, और सर्वार्थसिद्ध महाविमान-ये चारों लक्ष योजन प्रमाणके हैं ।" इससे पालक विमान प्रमाणांगुल निष्पन्न लक्षयोजनका जानना चाहिये । उस विमानमें पश्चिम सिवाय तीनों दिशाओंमें तीन तीन पगथिये वाला एक एक द्वार होता है । मध्यम अनेक रत्नमय स्तंभोंसे पूर्ण प्रेक्षागृह मंडप होता है । उसके मध्यमें रत्नपीठिका पर इन्द्रका मनोहर सिंहासन होता है । उसके वायव्य कोणमें, उत्तरमें और ईशान कोणमें चोरासी हजार सामानिक देवताओंके ८४००० सिंहासन होते हैं । पूर्व दिशामें इन्द्रकी आठ अग्रमहिषी (इन्द्राणियां)के आठ सिंहासन होते हैं । अग्नि कोणमें बारह हजार अभ्यंतर पर्षदाके देवोंके १२००० सिंहासन होते हैं । दक्षिण दिशामें मध्यम पर्षदाके चौदह

हजार देवोंके १४००० सिंहासन होते हैं और नैऋत्य कोणमें सोलह हजार देवोंके १६००० सिंहासन बाह्य पर्षदाके होते हैं और पश्चिममें सात कटक-सैन्यके स्वामीके सात सिंहासन होते हैं दूसरे वलयमें उनके आत्मरक्षक देवताओंके चोरासी चोरासी हजार सिंहासन चारों दिशाओंमें होते हैं । सर्व संख्यासे तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देवताओंके उतने ही सिंहासन होते हैं ।

इस प्रकार विमान तैयार हो जाने पर हर्षित होता हुआ इन्द्र जहां तको सेवार योग्य रूप बना विमानकी प्रदक्षिणा कर पूर्व दिशाके तीन सोपानवाले मार्गसे उसमें प्रवेश कर पूर्वाभिमुख बैठता है । सामानिक देवता उत्तर दिशाके सोपान मार्गसे प्रवेश कर अपने अपने आसन पर बैठते हैं, और दूसरे देवो दक्षिण दिशाके सोपान मार्गसे प्रवेश कर अपने अपने योग्य स्थान पर बैठते हैं ।

इस प्रकार तयार हुए विमानके चलने पर उसके आगे आठ मंगलिक तथा एक सहस्र योजन ऊंचा और छोटी छोटी हजार ध्वजाओंवाला महेंद्र ध्वज आदि चलते हैं । दुंदुभिकी ध्वनिके साथ वह विमान आकाशमार्गसे उत्तर बाजुके मार्गसे उतरता है । कहा है कि, "जिनजन्मोत्सवादि प्रसंगमें ईन्द्र, उसकी प्रशंसा करनेवाले अनेक जीवोंको समकितका लाभ होनेके लिये, उस मार्गसे होकर निकलता है।" फिर असंख्यद्वीप समुद्रके मध्य मध्य हो सत्वर चलता हुआ वह विमान नंदीश्वरद्वीपके रतिकर पर्वत पर आता है वहां

उस विमानको संक्षेपकर सौधर्मेन्द्र प्रभुके नगरमे और जन्म-गृहमें आता है। वहां साथमें लाये लघु विमान द्वारा प्रभुके घरके चारों ओर तीन प्रदक्षिणा कर, इन्द्र ईशान दिशामें पृथ्वीसे चार अंगुल ऊंचा उस विमानको छोड़ घरमें प्रवेश करता है। फिर श्रीजिनेश्वर भगवानको माता सहित नमस्कार कर तीन प्रदक्षिणा देकर कहता है कि, "हे जगत्पूज्य! तुमको नमस्कार हो। हे माता! तुम धन्य हो। तुमने पूर्वमें पुण्य किये हैं कि, जिससे तुम्हारी कुक्षिमें ये जगत्पति उत्पन्न हुए हैं। हे माता! मुझे जन्म दो, मरसे लेशमात्र भी भयभीत न हो। मैं तुम्हारे पुत्रका जन्मोत्सव करता।' इस प्रकार कह प्रभुकी माताको अवस्वापिनी निद्रा देकर प्रभुकी प्रतिकृति उसके पासमें रखता है। प्रभुका प्रतिबिंब उसके पासमें रखनेका यह कारण है कि—इन्द्र जिस समय स्वयं जन्मोत्सवमें व्यग्र हो, उस समय यदि कोई कुतूहली कोई दुष्ट देव कदापि जिनमाताकी निद्रा हर ले और उस समय पुत्रको पासमें न देख माता अथवा उसका परिवार दुःखी हो जावे। इसलिये वे दुःखसे रक्षित न हो इस हेतुसे इन्द्र ऐसा उद्यम करता हैं।" सच है कि दुर्जनोंसे सभीको सदा सावधान रहना पड़ता है।"

फिर इन्द्र पांच रूप कर एकरूपसे धोए, पवित्र किये और धूपित किये हाथमें प्रभुको ग्रहण करता है, दूसरे रूपसे प्रभुके सिरपर छत्र रखता है, दो रूपसे दोनों ओर चामर ढोलता है, और पांचवें रूपसे हाथमें वज्र ले सेवक सदृश प्रभुके आगे

आगे चलता है । उनका विमान पीछे खाली खाली चला आता है । इन्द्र अनेक देवोंके परिवारसे युक्त होता है, जिसपर खुद ही वाघ रूप विकुर्वित करता है यह त्रिजगत् गुरुकी परिपूर्ण सेवा करनेकी इच्छासे ही करता है । फिर अनेक देवताओंसे युक्त इन्द्र मंदरगिरि-मेरु पर्वतके शिखर पर जा पाण्डुकवनमें पाण्डुकम्बला नामक शिला पर अभिषेक करनेका जो शाश्वत सिंहासन है, उस पर पूर्वाभिमुख प्रभुको उत्संगमें लेकर बैठता है ।

इसी प्रकार ईशान इन्द्रभी लघुपराक्रम नामक अपने सेनापति देवसे महाघोषा नामक घंटा बजवाता है । फिर पुष्पक नामक देवतासे पुष्पक नामक विमान तैयार करा उसमें बैठ शक्रेन्द्र सदृश आता है । वह दक्षिण ओरके मार्गसे आकाशसे उतर नन्दीश्वर द्वीप परके उत्तरपूर्वके बीचके रतिकर पर्वत पर आता है । यहां आकर वह विमानको संक्षेपकर मेरुगिरि पर आकर शक्रेन्द्र सदृश प्रभुकी स्तुति कर श्री जिनेश्वर भगवतकी सेवा करता है । इसी प्रकार शेष इन्द्रोंका भी मेरुपर्वत पर आगमन शक्रेन्द्र सदृश समझ लेना चाहिये । इस उत्सवमें सब इन्द्रोंका एकही साथ आगमन होता है । सब मिलकर चौसठ इन्द्र आते हैं । वे इस प्रकार है-वैमानिकके दस इन्द्र, भुवनपतिके बीस इन्द्र, व्यंतरोंके बत्तीस इन्द्र, और सूर्य तथा चन्द्र-इस प्रकार चौसठ इन्द्र समझना । ज्योतिष्कके यद्यपि असंख्यात इन्द्र आते है तथापि जातिकी अपेक्षासे सूर्य और चन्द्र इन

दोनोंको ही गीना गया है। श्री समवायागसूत्रमें तो व्यतरके ३२ इन्द्रोके सिवाय शेष बत्तीस इन्द्र आवे है ऐसा कहा गया है। उनमे नववे दसवे कल्पका एक इन्द्र और ग्यारहवे, बारहवे कल्पका एक इन्द्र होनेसे वैमानिकके दस इन्द्र समझ।

वैमानिक इन्द्रोंका परिवार इस प्रकार है —पहले कल्पमे चोरासी हजार सामानिक देवता, दूसरेमे अस्सी हजार, तीसरेमे बहत्तर हजार, चोथेमे सित्तेर हजार, पांचवे मे साठ हजार छठ्ठेमे पचास हजार, सातवमे चालीस हजार, आठवमे तीस हजार, नवमे इन्द्रके बीस हजार और दसवे ईन्द्रके दस हजार सामानिक देवता होते हैं, और इससे चार चार गुण आत्मरक्षक देव होते हैं। आदि उनका परिवार समझना चाहिये। पहले और दूसर सिवाय बाकीके देवलोकके घटोंका नाम इस प्रकार है —तीसर, पांचवे, सातव और दसवे कल्पमे सुघोषा नाम घटा है और उनका वादक हरिणगमेषी देव है। चोथ, छठ्ठे, आठवे और बारहवे[१] देवलोकमे घटा तथा सेनानीका नाम आदि पूर्व कहे इशान इन्द्रके अनुसार है, अथात् घटा महाघोष नामक और बजान वाला लघु पराक्रम नामक सेनापति है। वैमानिक इस इन्द्रों के विमानके नाम अनुक्रमसे पालक, पुष्पक, सौमनस, श्रीवास,

१ नवमां दसवां ग्यारवां और बारहवां देवलोकका इन्द्र एकही होनेसे उनकी घटा दसवा और बारहवा देवलोकमेंही होती हैं। इन्द्रकी सभा वहां होती है।

नन्दावर्त, कामगम, प्रीतिगम, मनोरम, विमल और सर्वतो भद्र हैं और विमानोंके नामोंके अनुसार ही उन विमानोंके अध्यक्ष देवता हैं ।

भुवनपतिमें चमरेन्द्रके ओघस्वरा नामक घटा, द्रुम नामक सेनापति और पालक विमानसे अर्ध प्रमाणवाला विमान है तथा उसका ध्वज भी महेन्द्रध्वजसे अर्धप्रमाणवाला होता है । इसी प्रकार बलीन्द्रके भी समझना, जानना परन्तु महौघस्वरा नामक घटा और महाद्रुम नामक सेनापति है । शेष दक्षिण निकायके जो इन्द्र उनका भद्रासेन नामक सेनापति है और उत्तरके जो इन्द्र उनका दक्ष नामक सेनापति है । उनके विमान और ध्वज चमरेन्द्रसे अर्धप्रमाण वाले होते हैं, तथा नागकुमारादि जो निकायमें घट मेघस्वरा, हंसस्वरा, क्रौंचस्वरा, मंजुस्वरा, मंजुघोषा, सुस्वरा, मधुस्वरा, नंदिस्वरा और नंदिघोष नामक अनुक्रमसे हैं ।

दक्षिण ओरके व्यन्तरेन्द्रोंकी घटा मंजुस्वरा नामक है और उत्तरकी ओरके इन्द्रोंकी घटा मंजुघोषा नामक है । उनके विमान एक हजार योजन विस्तार वाले और ध्वज एकसो पचीस योजन ऊंची होती हैं । ज्योतिषीमें चन्द्रकी सुस्वरा नामक घटा और सूर्यकी सुस्वरनिर्घोषा नामक घटा है । शेष व्यन्तरेन्द्रके अनुसार है । भुवनपति, व्यन्तर और ज्योतिष्कके इन्द्रोंके विमान रचनेवाले कोई खास देवता नहीं होते, परन्तु उनके आभियोगिक देवता विमान रचते हैं ।

अब सौधर्म-इन्द्र सर्व समृद्धि सहित उत्सगमें कृचे विये दो हाथमें प्रभुको लेकर बैठता है। इसके बाद अच्युत इन्द्र अपने आभियोगिक देवताओंको कहता है कि "हे देवताओं! तुम अर्हतके जन्मका अभिषेकके योग्य सामग्री तैयार करो।" ऐसी आज्ञा होने पर वे देवता सुवर्ण, रूपा, रत्न, सुवर्णरत्न, रूपारत्न, रूपा सोना, सोना रूपा और रत्नके तथा मृत्तिकाके प्रत्येक एक हजार और आठ आठ कलस विकुर्वित करते-बनाते हैं उनके साथही साथ पङ्खा, चामर, तैलक कुण्ड, पुष्प चंगेरी और दर्पण आदि वस्तुएं भी प्रत्येक जातिकी एक हजार और आठ आठ रचते हैं फिर आभियोगिक देवता उन कुम्भ आदिको लेकर क्षीर सागर तथा गंगादि तीर्थका जल तथा कमल आदि लाते हैं। इसके विषयमें भी जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रमें कहा गया है कि-"क्षीर सागरसे क्षीरोदक ग्रहण करते हैं, ग्रहण कर वहां उत्पन्न होनेवाले कमल तथा सहस्रदल कमल लेते हैं, वहां से पुष्करोदधिमें से और यावत् भरत, ऐरवतमेंसे मागधप्रमुख तीर्थोंका जल तथा मृत्तिका ग्रहण करते हैं।" फिर वे देवता नन्दनवन आदिसे गोशीर्षचन्दनादि ले सब एकत्रित कर अच्युत इन्द्रको भेट करते हैं। इसलिये अच्युतेन्द्र पुष्पमालासे सुशोभित कण्ठवाले और कमलसे ढके मुखवाले, आठ हजार और चौसठ कलशोंसे भवसागरसे पार पानेके लिये अपने परिवार सहित अर्हत प्रभुका पूर्ववर्णित जलपुष्पादिकसे अभिषेक करता है। उस समय इशानेन्द्र आदि इन्द्र खड़े रहकर प्रभुकी सेवा

करते हैं । कितनेही देवता प्रभुके आगे गायन करते हैं, कितने ही नृत्य करते हैं और कितने ही अश्व तथा गजेन्द्र सदृश गर्जना करते हैं । इस प्रकार अभिषेक कर प्रभुको नमन कर अच्युत इन्द्र गधकाषायिक वस्त्रद्वारा प्रभुका अग लुछता है । फिर प्रभुको अलकार धारण करा उनके आगे सुवर्ण पट्ट पर रुप्यमय चावलसे अष्ट मगल आलेखित करता है । फिर बत्तीस प्रकारका नाटक कर, प्रभुके समीप पुष्पका प्रकर-ढेर रख, धूपकर एकसो आठ काव्य द्वारा प्रभुकी स्तवना करता है । श्री जबूद्वीपप्रज्ञप्तिमें इसके विषयमें कहा गया है कि, "प्रभुके धूपकर सात आठ कदम पिछा जा दस अगुलियोंने नख इकट्ठे हो सके इस प्रकार अजलि जोड मस्तक द्वारा प्रणाम करता है फिर नविन-अपुनरुक्त जसे १०८ विशुद्ध श्लोक बनाकर स्तुति करता है यावत् कहता है कि-हे सिद्ध, बुद्ध, निरकर्म, तपस्वी, रागद्वेष रहित, निर्मल, धर्मचक्रवर्ती प्रभु ! तुमको नमस्कार है ।" आदि स्तुति भक्ति कर विनयपूर्वक प्रभुके आगे खडा रहता है ।"

इस प्रकार सौधर्मेन्द्र सिवाय तेसठ इन्द्र अनुक्रमसे इस विधिसे अभिषेक करते हैं । फिर ईशानेन्द्र पाच रुप विकुर्वित कर एक रुपसे प्रभुको उत्सगमे ले शक्रेन्द्रके स्थान पर बैठता है, एक रुपसे छत्र धरता है, दो रुपसे दोनों ओर चामर ढुलाता है और एक रुपसे प्रभुके आगे वज्र ले किकर सदृश खडा रहता है, अर्थात् शक्रेन्द्र भी पूर्व सदृश सर्व सामग्री तैयार करता है । उसमें इतना विशेष है

कि वे चार वृषभके रूप विकुर्वित कर प्रभुके चारों दिशाओंमें रहकर उनके आठ सिंगोंमेंसे निकलती हुई जलकी आठ धाराएं ऊंची उछल एकत्रित हो प्रभुके मस्तक पर गिर सके इस प्रकार आयोजन करता है। फिर शक्रेन्द्र भी अच्युतेन्द्र सदृश परिवार सहित कृत्रिम और अकृत्रिम-ऐसे दोनों प्रकारके कुंभ द्वारा प्रभुका अभिषेक करता है यावत् १०८ श्लोक द्वारा स्तवना कर 'नमस्कार हो' ऐसा कहता है।

पूर्वोके मुखसे कलश आदिकी संख्या भी इस प्रकार सुनी गई है-एक एक जातिके बने आठ आठ हजार कुंभ होनेसे इनको आठ गुणा करने पर चोसठ हजार कुंभ होते हैं। इतने कुंभद्वारा एक एक अभिषेक होता है, इस प्रकार चोसठ इन्द्र, उनके तेतीस देवता, लोकपाल, इन्द्राणियें और तीना पर्षदाके देव आदि मिल कर दोसो पचास अभिषेक होते हैं। इसलिये चोसठ हजार कुंभको दोसो पचास अभिषेक होनेसे उतने गुणा करने पर एक कोटि और साठ लाख कलश द्वारा अभिषेक होता है। कलशके प्रमाणके विषयमें पूज्य पुरुष कहते हैं कि, "प्रत्येक कलश पच्चीस योजन ऊंचा और बारह योजन मोटा, और एक योजनके नालवेवाला होता है। ऐसे एक कोटि और साठ लाख कलश द्वारा अभिषेक किया जाता है।

सौधर्म-इन्द्र प्रभुको जन्माभिषेक होने बाद इस प्रकार स्तुति करता है कि, 'हे कृपालु परमेश्वर! मेरे जैसे अनन्त इन्द्र तुम्हें पूजे तो भी तुम्हारी वीतरागपणा रूप पुज्यताकी

तथा बाल्यावस्थामें रही ऐसी धीरताका वर्णन करनेमे भी कोई समर्थ नही हो सकता । हम इस संसारके विकारसे घेरे हुए हैं, इसलिये जिनकी महिमा अनाकलनीय है ऐसे तुम्हारे एक अंगुष्ठ मात्र अवयवकी पूजा करनेमें भी किस प्रकार समर्थ हो सकते हैं ? तथापि तुम्हारे जैसे निःस्पृहकी हमारे आत्महितके लिये की हुई भक्ति हमारे बोधिबीजके लाभके लिये होती है । हे भगवन् ! हमारी इच्छासे आप यहां आये, उस आश्चर्यके विचारमें मग्न हो हम विचार करते हैं कि हमने जो इन्द्रपन प्राप्त किया है वह आज ही सफल हुआ है । जो अलोकाकाश, हैं इसको भी लोकाकाशमें क्षेपनेमें समर्थ ऐसे जिनेश्वरके आश्रयबलसे हम हमारा चित्त संसार भावसे खींचनेको समर्थ हो सकेंगे[1] ।

इस प्रकार स्तुति कर कृतार्थ हुआ सौधर्म–इन्द्र, पांच रूपसे प्रभुकी सेवामें तत्पर हो, पुनः प्रभुको जन्मगृहमें ला माताके पास रख, उनकी प्रतिकृति तथा अवस्वापिनी निद्रा संहर लेता है और दो रेशमी वस्त्र तथा दो कुण्डल प्रभुके सिराहने रख, एक रत्नमय उल्लेच बांध, प्रभुके अंगुठेमें क्षुधाकी शान्तिके लिये अमृतका संक्रमण करता है । स्तनपान नही करनेवाले तीर्थंकर उस अंगुठेको मुंहमें डाल तृप्त होते हैं । फिर इन्द्रकी आज्ञासे धनद, जृंभक देवताओंसे बत्तीस कोटि सुवर्णकी वृष्टि प्रभुके पिताके घरमें कराता है । शक्रेन्द्र उद्-

1 अलोकव्योम ये लोकव्योम्नि क्षेप्तु क्षमा जिना ।
सदाश्रयबलाच्चित्त कृषामि [illegible] भवभावत [illegible]

घोषणा कराता है कि, जो कोई प्रभु या उनकी माताका विरुद्ध विचारेगा उसका मस्तक आर्यक वृक्षकी मंजरी सदृश फूट जायगा, फिर सब देवता नन्दीश्वर द्वीपमें जा अष्टाह्निका उत्सव करते हैं। इसके बादका कार्य कल्पसूत्र आदिसे जान ले।

"मन्दरगिरि-मेरुके शिखर पर अच्युत आदि चौसठ इन्द्रोंने जिनका अभिषेक किया। उस समय जो प्रभु बालक होते हुए भी कलशके जलके प्रवाहसे लेश मात्रभी क्षोभित नहीं हुए उन श्रीजिनेश्वर भगवतकी जय हो।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ नवनवत्यधिकशततम प्रबंध ॥ १९९ ॥

—○—

व्याख्यान २००

श्री जिनेश्वर भगवतके छद्मस्थपनका वर्णन

जगदुत्कृष्टसौन्दर्या, बाल्येऽप्यबालबुद्धय ।
जितेन्द्रिया स्थिरात्मानो, यौवनोद्योतिता अपि ॥१॥

भावार्थ —"भगवत सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्यवाले बाल्यवयमें भी अबाल बुद्धिवाले प्रभु यौवन वयसे प्रकाशित होनेपर भी जितेन्द्रिय और स्थिर आत्मवाले होते हैं।" वे संसारके सुखमें आसक्त नहीं होते। कहा भी है कि —

पद्मीराग दर्शयन्तोऽप्यन्त शुद्धा प्रवालवत्।
प्राप्तेऽपि चक्रभृद्राज्ये, न व्यासक्ता भवन्ति ते ॥१॥

" वे बाहरसे राग दर्शाते हैं, परन्तु अंत करणमें प्रवाल सदृश शुद्ध-निर्मल होते हैं। चक्रवर्तीका राज्य मिलने पर भी वे उसमें आसक्त नही होते ।

अब लोकांतिक देवताओंका कृत्य बतलाया जाता है। तीर्थंकर भगवन्तो अपनी दीक्षाका अवसर अवधिज्ञानसे जानते है, तथापि लोकान्तिक देवता आ कर नमस्कार कर इस प्रकार विज्ञप्ति करते है, कि " हे जगद्गुरु ? आपकी जय हो, और तीनों लोकके उपकारके लिय धर्मतीर्थ प्रवृत्त करे ।

अब वर्षीदानकी विधि बतलाई जाती है, दीक्षा लेनेके दिनमें जब एक वर्ष शेप रहता है तब तीर्थंकर प्रभु चार प्रकारके धर्मोंम दान धर्मको मुख्य समझ वार्षिक दान देते हैं। उस दानके देनका प्रकार इस प्रकार है-जब भगवन्त वर्षीदान देनेका विचार करते हैं उस समय आसनकंपसे शक्रेन्द्र अवधिज्ञानद्वारा उस विचारको जान जाता है। तीनों कालमे न्‍‍‍‍‍‍‍‍‍‍‍न हुए इन्द्रोंका ऐसा आचार-कर्तव्य है कि 'प्रभुको दीक्षा समय वार्षिक दान देनेके लिये तीनसो अठयासी कोटी तथा अस्सी लाख सुवर्णकी वे पूर्ती करते हैं। ऐसा निश्चय कर कुबेरको उतने ही द्रव्यकी पूर्ती करनेकी आज्ञा देते हैं। फिर धनदकी आज्ञासे जभक देवता उतने ही द्रव्यका प्रभुके घरमें क्षेपन करते हैं। यहा वृद्ध पुरुषोंके मुहसे ऐसा भी सुना गया है कि, अस्सी रत्तिका एक सोनैया होता है, उसमें प्रभुका-खुदका और उनके पिताका नाम होता है। एक दिनमें दिये दानके सोनैयाका तोल नो हजार मण होता

है। चालिस मणसे एक गाडा भरा जाता है । ऐसे दोसो पच्चीस गाडे भरे मालके जितने सुवर्णका दान प्रतिदिन करते हैं, अर्थात् प्रतिदिन एक कोटि आठ लाख सुवर्णका दान करते हैं । वार्षिक दानमें चाहिये जितने सोनैया इन्द्रकी आज्ञासे वैश्रमण[1] लोकपाल आठ समय[2]में तयार कर तीर्थंकरके घरमे स्थापन करते हैं ।

दानके छ अतिशय इस प्रकार हैं । दान देते समय सौधर्म इन्द्र प्रभुके हाथमे द्रव्य देता है कि जिससे दान देते हुए प्रभुको श्रम न हो । यद्यपि जिनेन्द्र भगवान् तो अत्यन्त बलवाले होते हैं तथापि भक्तिकी बुद्धिसे इन्द्र इस प्रकार करता है । (१)

इशानेइन्द्र हाथमे सुवर्णकी यष्टि धारण कर वे आगल पासम खडा रहता है, वह चोसठ इन्द्रों सिवाय अन्य अन्य देवोंको दान लेनेमे मना करता है और दान लेनेवालाका जैसा भाग्य होता है वैसा ही उसके मुहसे वाक्यका उच्चारण कराता है मगवाता है। ( )

चमरेन्द्र और बलीन्द्र प्रभुके मुष्टिमे स्थित सोनैयामें दान लेनेवाले पुरुषोंकी इच्छानुसार न्यूनाधिकता करते हैं । यदि याचककी इच्छासे अधिक हो तो न्यून करता है और इच्छासे न्यून हो तो अधिक करता है । (३)

१ वैश्रमण, धनद कुबेर य तीनों इन्द्रके एक लोकपालके पर्यायवाची नाम हैं । २ आठ समयमें कर सकना छद्मस्थके लिये अशक्य जान पडता है, तथापि तत्त्वकेवली गम्य हैं ।

अन्य भुवनपति भरतखण्डमें उत्पन्न हुए मनुष्योंको दान लेनेके लिये खींच लाते हैं। (४)

वाणव्यंतर देवता दान लेकर जानेवाले मनुष्योंको वापस उनके स्थान पर पहुंचाते हैं। (५)

निर्विघ्न स्थानको उनके ज्योतिष्क देवता विद्याधरोंको वार्षिक दानका समय बतलाते हैं। (६)

इस समय तीर्थंकरके पिता तीन बडी शालाये बनवाते हैं। एक शालामें भरत खण्डमें उत्पन्न हुए जो मनुष्य आते हैं उनको अन्नादि देते हैं। दूसरी शालामें वस्त्र और तीसरी शालामे आभूषण दिये जाते हैं।

चोसठ इन्द्रोंका प्रभुके हाथसे दान लेनेका यह परिणाम है कि उस दानके प्रभावसे उनसे दो वर्ष तक कोई कलह नहीं होता। चक्रवर्ती जैसे राजाओंके भण्डारका दानमें आये सोनैयेके प्रभावसे बारह वर्ष तक अक्षय रहते हैं। रोगियोंको दान लेनेसे बारह वर्ष पर्यन्त नवीन रोग उत्पन्न नही होता। उस समय सब स्थानों पर ऐसी उद्घोषणा होती है कि सब इच्छित वर माग लो।"

यहा कोई कहते हैं कि "यदि प्रभु दान दे तो दानका फल अवश्य भोगना पड़े, उसके अलावा फलके बधका अभाव होता है। अत तीर्थंकर दान नहि देते।" परन्तु उनका ऐसा कथन अयुक्त है, क्योंकि छट्ठे अग श्री मल्लीनाथके अध्ययनमें, साफ गया

है, अपितु जिनेश्वर भगवन्त कीर्त्तिके लिये कोई दान नही देते। इसके विषयमें कहा है कि –

घर्मप्रभावना बुद्धया, लोकाना चानुकम्पया ।
जिना ददति तद्दान, न तु कीर्त्यादिकांक्षिण' ॥१॥

"धर्मकी प्रभावना करनेकी बुद्धि और लोगो परकी अनुकंपासे तीर्थकर भगवन्त दान देते हैं, कीर्त्ति आदिके इच्छासे नही देते।"

अब दीक्षा कल्याणका वर्णन किया जाता है –

प्राप्यानुज्ञां ललौ दीक्षा, पित्रादेस्तदनु प्रभु ।
शक्रभूपादिभिर्भक्त्या, कृतनिष्क्रमणोत्सवः ॥१॥

"दान देने बाद मातापिताकी अनुज्ञा ले, जिनका शक्रेन्द्र तथा राजा आदिने भक्तिसे निष्क्रमणोत्सव किया है, वे प्रभु दीक्षा लेते हैं। इन्द्र और राजा आदिसे किया हुआ दीक्षा महोत्सव इस प्रकार होता है। दीक्षाके दिन स्वजन वर्ग नगरको ध्वजश्रेणि आदिसे अलंकृत करते हैं उस समय चोसठ इन्द्र आसन कपसे प्रभुका दीक्षा समय जान वहा आते हैं। फिर पूर्वोक्त आठ प्रकारके कलश तथा पूजाके उपकरण आठ आठ हजार बनवाते हैं। प्रभुके स्वजन वर्ग भी आठों प्रकारके कलश कारीगरोंसे बनवाते हैं। वे मनुष्य-कृत कलशोंमें दिव्य कलश प्रवेश कराते हैं इसलिये दिव्यशक्ति से वे अत्यन्त शोभित होते हैं। फिर इन्द्र तथा स्वजन देवताओं द्वारा लाये तीर्थजल, औषधि, तथा पवित्र मृत्तिका आदिसे

प्रभुका अभिषेक करते हैं । फिर गंधकषायी वस्त्र द्वारा प्रभुके अंगको लूछते हैं । फिर यथा स्थान सुशोभित आभूषण पहिनाकर लक्ष्य मूल्यके सदृश वस्त्र धारण कराते हैं । फिर सेकडो रत्नमय स्तंभवाली एक पालखी स्वजन कारीगरसे बनवाते है । देवताओं द्वारा बनाई गई दिव्य पालखीको उसमे मिश्रित कर देनेसे वह पालखी अत्यंत शोभा देती है । फिर छट्ठ आदि तपसे अलंकृत प्रभु उस पालखीमें सिंहासन पर पूर्वाभिमुख बिराजते है । प्रभुके दक्षिण बाजुको कुलकी वयोवृद्ध स्त्रिये बैठती है, बाई ओर हंसके चित्रवाला वस्त्र हाथमें ले धाय माता बैठती है पृष्ठ भागमे एक तरुण स्त्री छत्र ले कर बैठता है । ईशान कोणमें एक एक रमणी[1] पूर्ण कलश लेकर बैठती है । फिर स्वजनकी आज्ञासे एक समान वेश और शरीरवाले सहस्र पुरुष उस शिबिकाको उठाते है । उस समय शिबिकाकी दक्षिण ओरकी बाहू ऊपरकी शक्रेन्द्र वहन करता है । उत्तर ओरकी ऊपरकी बाहु ईशानेंद्र वहन करता है । दक्षिण ओरकी निचेकी बाहु चमरेंद्र वहन करता है और उत्तर ओरकी निचेकी बाहु बलीन्द्र वहन करता है । (फिर देवता उन बाहोंको ग्रहण करते है कि जिससे सौधर्मेन्द्र और ईशानेन्द्र दोनो ओर चामर ढोलते हैं) शेष देवता पंचवर्णी पुष्पवृष्टि आदि करते ले जाते हैं।

इस प्रकार अनेक प्रकारके महोत्सवसे प्रभु दीक्षा लेनेको निकलते हैं । उस समय सब मनुष्य भगवतकी इस प्रकार

१ दोनो और छोर वाले ।

स्तुति करते हैं —"हे जगत्प्रभु ! तुम सब कर्मरूप शत्रुओं को जीत कर सत्वर केवलज्ञान प्राप्त करो।" इस प्रकार स्तुति कराते हुए प्रभु वनमें जाते हैं, वहा अशोक आदि वृक्षके नीचे शिविका रक्खी जाती है वहा प्रभु उससे नाचे उतर आभूषण उतारते हैं, उस समय कुलकी वयोवृद्ध स्त्रिय पटशाटकमें उनको ग्रहण कर इस प्रकार हितशिक्षा देती हैं कि, "हे वत्स ! तुम ऊँचेसे ऊँचे गोत्रके उत्तम क्षत्रिय हो, इससे चारित्रमें प्रमाद नही करोगे, प्रमाद न करनेसे तुम्हारा वांछित शीघ्र सिद्ध होगा।' फिर भगवान् एक मुष्टिसे दाढी मूछ और चार मुष्टिसे मस्तकके केशोका लोच करते हैं। पाच इन्द्रिय और चार कषाय इस प्रकार नो प्रकारका भाव लोच करते हैं और केशके त्यागरूप दसवा द्रव्य लोच करते हैं। शक्रेन्द्र उन केशोको प्रभुसे बतलाकर क्षीर सागरमें क्षेपन करता है। फिर लक्ष मूल्यका देवदूष्य वस्त्र इन्द्र प्रभुके स्कंध पर रखता है। उस समय इन्द्रके वाक्यसे देवता और नारीयोंकी किल्लाहट बन्द हो जाती है और प्रभु 'नमो सिद्धाण' ऐसा कह सामायिकका पाठ पढते हैं, इस पाठमें 'भंत' इस पदका उच्चारण जिनेश्वर भगवंत नही करते क्योंकि उनके दूसरे भगवंत पूज्य नहीं होते। "नमो सिद्धाण" इस पदका उच्चारण तो मात्र आचारके लिये करते हैं क्योंकि उनके भी सर्व अर्थ सिद्ध हो चुके हैं ऐसा तत्त्वार्थवृत्तिमें अपेक्षासे बतलाया गया है, चारित्र लेनेके बाद शीघ्र ही प्रभुको चोथा ज्ञान प्राप्त होता है। संयम लेने बाद प्रभु उसी दिन विहार

किसी भी वस्तुका प्रतिबंध नही रखते । यहां संचित आदि वस्तु द्रव्य, ग्रामगृहादिक क्षेत्र, मास वर्ष आदि काल और रागद्वेष आदिको भाव समझना चाहिये । इन चारोंका प्रतिबंध प्रभुको नही होता ।

फिर श्री जिनेश्वर प्रभु जिसके यहां पहला पारणा करते हैं वहां देवता पांच दिव्यका विस्तार करते हैं, वे पांच दिव्य ये हैं (१) सुगंध जलकी वृष्टि, (२) पुष्प वृष्टि, (३) सुवर्ण वृष्टि, (४) आकाशमें दिव्य दुंदुभिकी ध्वनि, (५) 'अहोदान अहो दान 'की घोषणा उस समय हर्षित हुए देवता मनुष्य जन्म की अनुमोदना करते हैं और उत्कृष्टसे साढे बारह करोड सोनैया तथा जघन्यसे साढे बारह लाख सोनैयाकी वृष्टि करते हैं ।

" शक्रादि देवता इस प्रकार प्रभुकी सेवा करनेके लिये दीक्षा कल्याणक आदिमें मुख्य भाग लेते हैं । उसके हस्त और मस्तक पर अर्हन्त प्रभु बिराजते हैं।

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ द्विशततम प्रबंध ॥२००॥

व्याख्यान २०१

प्रभुको केवलज्ञानकी उत्पत्ति

आद्येऽथ शुक्लध्यानस्य ध्याते भेदद्वयेऽर्हताम् ।
घातिकर्मक्षयादाविर्भवेत्केवलमुज्ज्वलम् ॥ १ ॥

भावार्थ —"शुक्ल ध्यानके प्रथम दो भेदोंका ध्यान करते हुए अर्हतप्रभुके घाती कर्मोंका क्षय हो जानेसे उन्हें केवलज्ञान प्राप्त होता है।"

आठ प्रकारके कर्म मलको शोधनेवाले अथवा शोकको नाश करनेवाले शुक्लध्यान कहलाता हैं। शुक्ल जैसे ध्यानको शुक्ल ध्यान कहते हैं। उसके प्रथम दो भेदोंका ध्यान करने पर श्री जिनेश्वरभगवंतको केवलज्ञान प्राप्त होता है। उनमसे प्रथम भेद "पृथक्त्ववितर्कसप्रविचार" है। जिसमें एक द्रव्यमें उत्पाद, व्यय और ध्रुव आदि पर्यायके विस्तार द्वारा भिन्न भिन्न भेदसे विचार करना अर्थात विविध प्रकारके नयके अनुसार जीव अजीवको मिलकर वितर्क करना अर्थात् गुण पर्यायका विचार करना पृथक्त्व वितर्क सविचार अर्थात् आत्म सत्ताका ध्यान करना, शुक्ल ध्यानका प्रथम भेद है। यह भेद आठवे गुण ठाणासे लगाकर ग्यारवे गुण ठाणे तक लभ्य है। शुक्ल ध्यानका दूसरा भेद "एकत्व-वितर्क अविचार" है, जिसमे जीवके गुण पर्याय आत्मामें एकरुप होकर रहते हैं–भिन्न नहीं रहते ऐसा ध्यान करते हैं। तथा "मेरा जीव सिद्धस्वरूप होनेसे एकही है" ऐसा विचार करते हैं। इस विषयमें पूज्य पुरुष लिखते हैं कि, "एक द्रव्यसे अवलंबित अनेक पर्यायोंमसे एक पर्यायका ही आगम के अनुसार विचार करना और मन आदि योगमें भी एकसे अधिकका विचार जिसमें नहीं होता वह एकत्ववितर्क अविचार नामक शुक्ल ध्यानका दूसरा भेद है। यह ध्यान

योगसे चपलता रहित एक पर्यायमें चिरकाल पर्यन्त रहता है। इससे पवन रहित मकानमें दीपक सदृश इसकी स्थिरता होती है। यह दूसरा भेद बारहवे गुणठाणेमे होना सभव है। इस ध्यानसे घनघाती चार कर्मोंका क्षय कर जीव निर्मल केवलज्ञानको प्राप्त करता है, सयोगी केवली गुणठाणे ध्यानांतरिका होते है। उस ज्ञानके द्वारा अनत धर्म वाले सर्व पदार्थ जाने जा सकते हैं। कहा है कि, "इन तीन जगतमे ऐसी कोई वस्तु नही है कि जिसे श्री जिनेश्वर भगवत न जानते हो न देखते हो। इसीसे वे अर्हत तीनों जगतके पूज्य होते हैं।"

तीर्थंकरपद भी केवलज्ञान उत्पन्न होने पर ही भोग्य होता है। कहा है कि —

यत्तृतीयभवे बद्धं, तीर्थकृन्नामकर्म तत् ।
प्राप्तोदय विपाकेन, जिनाना जायते तदा ॥१॥

"श्री जिनेश्वरभगवतने तीसरे भवमे जो तीर्थंकरनामकर्म उपार्जन किया है वह विपाकपनसे तब ही उदयमे आता है।" अब यह बतलाया जाता है कि प्रभुको केवलज्ञान होने बाद देवता क्या करते हैं। 'उस समय इन्द्र आसनकम्पसे प्रभुको केवलज्ञान हुआ जान वहा आ ज्ञानोत्पत्ति महोत्सव करता है।" जब प्रभुको केवलज्ञान उत्पन्न होता है तब चोसठ इन्द्र वहा आकर प्रभुके केवलज्ञान कल्याणकका महोत्सव करते हैं। वह इस प्रकार है कि—वायुकुमार देव एक योजन

प्रमाण भूमडलको शुद्ध करते है, फिर मेघकुमार देवता उस भूमिको सुगंधित जलसे सिंचित करते हैं, छ ऋतुके अधिष्ठायक देवता पुष्पद्वारा उस पृथ्वीकी पूजा करते हैं । व्यतर देवता भूमि तलसे सवाकोश ऊचा सुवर्ण रत्न और मणिमय पीठिकाकी रचना करते हैं । फिर भूवनपति देव पृथ्वीसे दश हजार पगथिये द्वारा पहुच सके ऐसा सुवर्णके कगुरों वाला रुपेका किल्ला बनाते हैं । एक एक पगथिया एक हाथ पोला और एक हाथ ऊचा होता है । इससे उपरोक्त गढ पृथ्वीसे सवा कोश ऊचा होता है । उक्त रुपाकी भीत पाचसो धनुष प्रमाण मोटी और तेतीस धनुष और बतीस अगुल पोली होती है । उस किल्लेमें पुतलियों ओर आठ मगलिकवाले चार द्वार बनाते हैं । किल्लाके चारों कोनोंकी जमीन पर चार वापिकाये बनाते हैं । उपरोक्त गढ के पूर्वद्वार पर तुबरु नामक देव द्वारपाल होता है, दक्षिण द्वार पर खट्वाग नामकदेव द्वारपाल होता है, पश्चिम द्वार पर कपाली नामक देव द्वारपाल होता है, और उत्तरद्वार पर जटामुकुटधारी नामक देव द्वारपाल होता है । उपरोक्त गढके मध्यमें प्रवेश करने पर चारों द्वारके पास पचास पचास धनुष्य प्रमाण समचोरस भूमि होती है इस गढ के अन्दर देवताओं और मनुष्योंके वाहन रहते हैं ।

दूसरा सुवर्णका गढ जिसे रत्नमय कगुरोंसे अलकृत ज्योतिषी देव बनाते हैं । वह पाच हजार सोपानसे चढा जा शके जितना ऊचा होता है । उसकी दिवारों तथा चार

द्वार आदिका भी पूर्व कथनानुसार ही होता है। उसके पूर्व द्वार पर हाथमें अभयमुद्रा धारण करनेवाली श्वेतवर्णकी जया नामक दो देवियें रहती हैं; दक्षिण द्वार पर रत्न सदृश वर्ण-वाली विजया नामक दो देवियें हाथमें अंकुश लेकर खड़ी रहती हैं, पश्चिममें नीले वर्णवाली हाथमें पाश धारण करने-वाली अजिता नामक दो देविये रहती हैं और उत्तरमें नील वर्ण-वाली हाथमें मुद्गर नामक शस्त्र धारण करने वाली अपराजिता नामक दो देविये रहती हैं। पचास धनुष प्रमाण उस गढमें प्रवेश करने बाद भी उसमें समान भूमि भाग होता है। उस गढमें सिंह, व्याघ्र, मृग आदि तिर्यंच आदि आकर रहते हैं। यहां ईशान दिशामें देवच्छन्दकी रचना करते हैं। व्याख्यानके बादमें उत्तरकालमें देवताओंसे सेवित प्रभु उस पर आकर बसते हैं।

उस पर पांच हजार सोपान चढने पर पूर्व निर्देशानुसार दिवारकी मोटाई तथा ऊंचाई वाला चार द्वारका मणि-मय कंगुरोंसे सुशोभित रत्नका तीसरा गढ वैमानिक देवता बनाते हैं। उसके पूर्वद्वार पर सोम नामक पीत वर्णवाला वैमानिक देव हाथमें धनुष ले द्वारपालके रूपमें खड़ा रहता है, दक्षिण द्वार पर हाथमें दंड धारण करनेवाला गौरवर्णा यमनामक व्यंतरदेवता खडा रहता है, पश्चिमद्वारमें रक्तवर्णी पाशधारी वरुण नामक ज्योतिषी देव रहता है और उत्तर-द्वारमें श्यामवर्णी कुबेर नामक भुवनपति देव हाथमें गदा लेकर द्वारपाल बन खड़ा रहता है।

:- उस रत्नमय धनके मध्यमे सम भूमिका पीठ होता है जो एक कोश और छसो धनुष्य प्रमाण विस्तारवाला होता है। इतनेही विस्तारका माप पहले और दूसरे तथा दूसरे और तीसरे किल्लेके मध्यभागका भी दोनो ओरसे मिलाकर समझना चाहिये। वह इस प्रकार है कि-रूपेके गढमे प्रवेश करने बाद पचास धनुष्य प्रतर है और उसके आगे बारहसो पचास धनुष्यमे १० ० सोपान हस्त हस्त प्रमाणके है। इस प्रकार दोनो मिलाकर तेरहसो धनुष्य एक एक और रूपेके तथा सुवर्णके गढका अन्तर होता है। इस प्रकार दोनो बाजुके विभागको एकत्रित करने पर एक कोश और छसो धनुष्यका मान होता है। दूसरे और तीसरे किल्लेके मध्यका प्रमाण भी इसी प्रकार जान लेवे। इस प्रकार तीना गढोके मध्यभागके विस्तारका माप एकत्रित करने पर तीन कोश और अठारहसो धनुष्य होता है। तीनो गढोकी दोना ओरकी मिलाकर छ भित्ति होती है। उस एक एक भित्तिका विस्तार बतीस धनुष्य और बतीस अंगुल होता है। इसमे बतीस धनुष्यको छगुणा करने पर एकसो अठाणु धनुष्य होते है और बतीस अंगुलको छगुणा करनेसे एकसो बाणु अंगुल होता है। जिसके दो धनुष्य होते है। जिनको एकसो अठाणु धनुष्यमे नियोजित करने पर दोसो धनुष्य होते है। इसे पूर्वके अठारहसोमे मिलाने पर एक कोश होता है। उस कोशमे तीन कोश मिलानेसे एक योजन होता है। इस प्रकार एक योजनका वृत्त समवसरण होता है।-

इस समोसरणमें जो चारों दिशाओंसे प्रथम दस हजार, सोपान होते हैं उनको योजनके बाहर समझे । प्रभुके नीचेके भागसे (मध्य बिन्दुसे) बाहरके सोपान पर्यंतकी भूमि दोनों ओर सवा तीन तीन कोशकी होती है। यह समवसरण भूमिसे अधर बनाया जाता है। उसमें ऊपर ऊपर सोपानकी रचना की जाती है। इस प्रकार वृत्त (गोलाकार) समवसरणकी व्याख्या समझे । चोरस समवसरणका स्वरूप लोकप्रकाश ग्रंथसे जान लेवे ।

अब तीसरे गढमें जो पहले समान भूतल पर होना कहा गया है उसके मध्यमें मणि रत्नमय पीठ प्रभुके देह प्रमाण ऊंची, चार द्वारवाली और चारों दिशाओंमें तीन सोपानवाली होती है। यह लम्बाई तथा पोलाईमें दो सो धनुष्य प्रमाण होती है, और पृथ्वीसे अढाई कोश ऊंची होती है। उसके विषयमें कहा गया है कि 'एकेक हाथ ऊंचे बीस हजार पगथिये चढने बाद आनेवाला होनेसे प्रभुका सिंहासन जमीनसे अढाई कोश ऊंचा होता है।" यह प्रमाण सिंहासनके नीचेकी भूमिसे पीठिका तक समश्रेणी ऊंचाई गिनने पर होती है । इस पीठके मध्य भागमें एक योजनके विस्तार वाला अशोकवृक्ष होता है । यह जिनेश्वर भगवंतके शरीरके मानसे बारह गुणा ऊंचा होता है । इसके विषयमें कहा गया है कि, " श्री ऋषभदेव प्रभुका चैत्यवृक्ष तीन गाउ ऊंचा होता है और उसी प्रकार शेष तीर्थंकरोंके उनके शरीर भागसे बारह गुणा ऊंचा होता है ।" चैत्यवृक्ष उस

वृक्ष नाम है कि, जिसके नीचे भगवतको केवलज्ञानकी उत्पत्ति हुई हो। वह अशोक वृक्षके ऊपर रहता है। अशोक वृक्षके नीचे अरिहंत भगवतका देवछंदा होता है। वहां चारों दिशाओंमें चार सुवर्ण सिंहासन होते हैं। उनके आगे एक एक रत्नमय पीठ होता है। उस पर जब प्रभु पैर रखते हैं तब एसा प्रतित होता है कि मानो वो उल्लसित हो रहा हो। प्रत्येक सिंहासन पर तीन तीन छत्र होते हैं, वे सब मोतियोंकी श्रेणियोंसे अलंकृत होते हैं। प्रत्येक सिंहासनके दोनो ओर दो दो चामरधारी देवता खडे रहते हैं। सिंहासनके आगे चारों दिशाओंमे सुवर्णकमल पर सूर्यके तेजको निस्तेज करनेवाला एक एक धर्मचक्र होता है। वह अर्हंत प्रभुके त्रिभुवनके धर्मचक्रीपनका सूचक तथा मत्सरीजनके मदको टालनेवाला होता है। तथा चारों दिशाओंमें हजार हजार योजन ऊंचे, छोटी छोटी घण्टिकावाले चार महा ध्वज होते हैं। वे पूर्वमें धर्मध्वज, दक्षिणमें मानध्वज, पश्चिममें गजध्वज और उत्तरमें सिंहध्वजके नामसे विख्यात हैं।

यहां जो धनुष्य तथा कोस आदिका मान बतलाया गया है वह उस समयके तीर्थंकरके आत्मांगुल प्रमाण समझना चाहिये। मणिपीठ, चैत्यवृक्ष, सिंहासन, छत्र-चामर तथा देवछंदा आदिकी रचना व्यंतर देव करते हैं। यह समवसरण चारों निकायके देवताओंको साधारण है, क्योंकि सब मिलकर बनते हैं। अन्यथा यदि कोई महान उत्तम देवता चाहे तो वह अकेला भी ऐसे समवसरणकी रचना कर सकता है।

वहां वैमानिक देवता हर्षसे सिंहनाद और दुंदुभिका शब्द करते हैं । सूर्योदयके समय प्रभु सुवर्ण कमल पर पैर रखते हुए आकर पूर्व द्वारसे समवसरणमें प्रवेश करते हैं । फिर चैत्यवृक्षकी प्रदक्षिणा कर, पाद पीठ पर चरण रख, " नमो तीर्थाय " ऐसा कह सिंहासन पर बैठते हैं । तीर्थसे अभिप्राय श्रुतज्ञान अथवा चतुर्विध संघ, अथवा प्रथम गण धरसे है कि जिनके द्वारा यह संसारसागर तैरा जा सकता है । अर्हतको श्रुतज्ञान पूर्वक अर्हतपनकी प्राप्ति है इसलिये वे तीर्थशब्द द्वारा श्रुतज्ञानको नमन करते हैं । लोकमें अर्हत पूज्य होते है और पूज्य जिसको पूजे वह तो अवश्य पूजनीक होनेसे लोकमें चतुर्विध संघरूप तीर्थ भी पूजा जाता है । कृतकृत्य हुए अर्हत प्रभु भी तीर्थको नमन कर बादमें धर्म सुनाते हैं, उसी प्रकार सब लोग तीर्थको नमन करते हैं । फिर सिंहासन पर बैठ प्रभु देशना देते हैं। भगवंतके एक वचन मात्रसे अनेक जीवोंके संशयका छेदन हो जाता है। यदि संशयका छेद अनुक्रमसे हो तो संशय करनेवाले प्राणि असंख्य होनेसे असंख्यात कालसे भी उनके संशयोंका छेद होकर अनुग्रह नहीं हो सकते, परन्तु प्रभुकी शब्दशक्ति प्रभाविक है । वे एक ही वाक्यसे एक ही साथ अनेक प्राणियोंके संशयोंका उत्तर दे सकते हैं । इस शक्तिकी पुष्टिमें एक लौकिक दृष्टान्त भी है कि —

सगधर नामक ग्राममें धन, धान्य तथा सुवर्णसे भर-पूर बुढण नामक एक आहीर-ग्वाल रहता था । उसके पूर्व-

वतीआदि पन्द्रह स्त्रिये थी। वे सब स्नेहवाली थी, एक बार जब बुद्धण गाये चराने वनमें गया और मध्याह्नकाल होने पर भोजन करने बैठा तो उस समय वनकी शोभा देखनेकी उत्सुक हुई उसकी स्त्रिये भी उसके पास गई। वे सब अनुक्रमसे पुण्यवतीको इस प्रकार पुछने लगी। पहलीने पुछा "आज इतनी सारी खीचडी क्या राधी है?" दूसरीने कहा, "आज छाश-मिट्ठास मिजास कम क्यो है?' तीसरीने कहा, "वो दाढी-मूछ वाली स्त्री घर पर है?' चोथीने कहा, "आज तुम्हारे शरीरमे शान्ति है?" पांचवीने कहा, "आज किकोडेका शाक आछा क्या राधा है?" छट्ठीने कहा, 'ये कुत्ती क्या भसता है?" सातवीने कहा, "वो भेस गभवती हो गई है?' आठवीने कहा "यह आगे दिखाई देनेवाली स्त्री थक गई है या नही?" नवमीने कहा, "आज सब मनमें भोजन किया जाता है?" दसवीने कहा, 'आज इस जल प्रवाहमे इतना अधिक जल क्या बढ रहा है?" ग्यारहवीने कहा, "क्या तुम्हारा केश-जोल्ला साफ किया है?" बारहवीने कहा 'कानमे कुण्डल पहिने है या नही?" तेरवीने कहा, "इस गड्ढेमें भय क्यों नही लगता?' चोदहवीने कहा, "क्या ये फल लागे?' पन्द्रहवींने कहा, "इन बकरियाको गिना या नही?' इस प्रकार अनुक्रमसे पुछनेवाली उन सब स्त्रियोको सबसे मन्य पुण्यवतीने एक शब्दमे उत्तर दिया कि 'पाली नही है" पहलीने जो पूछा था कि इतनी अधिक खीचडी क्या राधी है? उसके उत्तरमे कहा कि धान्य मापनेकी पाली मेरे पास नही हैं, इससे अधिक राधी

गई है। धान्य माप करनेवाले लोग मापनेके पात्रको पाली कहते हैं। दूसरीने पूछा था कि छाशमें मिठास कम क्यों है? इसके उत्तरमे भी पाली नही है ऐसा कहा गया है जिसका मतलब यह है कि छाश बनानेकी आच धारी नही है, इससे कलको छाश होनेसे मिठास कम है। अथवा थोरडी, बावल आदि जो तिर्यंचका चारा है उसे भी लोकमें पाली अथवा पाला कहा जाता है उसके नही डालनेसे छाशमें मिठास कम है। तीसरीने पूछा था कि वह दाढी मूछवाली की घर पर है, या नही? क्या वह नापित-नाइके घर गई है? उसके उत्तरमें कहा कि आज हजामतकी पाली नही है इससे घर पर ही है। चोथीने पूछा था कि आज तुम्हारे शरीरमें शान्ति है? इसके उत्तरमें कहा कि पाली नही है। अर्थात् एकान्तर ताव आदि आता था उसकी आज पाली (वारी) नही है इससे शान्ति है। पाचवीने पुछा था कि कोहाका शाक आछा क्यों राधा? उसके उत्तरमें कहा कि पाली नही तथा उसके सुधारनेकी छरी नही है। छट्ठीने कहा था कि यह कुत्तरी क्यों भसती है? इसके उत्तरमें भी कहाकि पाली नही अर्थात् इस कुत्तरीको किसीने भी नही पाला है इस लिये वह भसती है। सातवीने पूछा था कि वह भेस गर्भवती है? इसके उत्तरमे कहा कि पाली नही गाय भेस आदिके गर्भ रहेनेके समयको लोग पाली कहते हैं वो नही है। आठवी ओने कहा कि क्या वह स्त्री मार्गमे थक गई है? उसके उत्तरमें कहा गया कि पाली नही, अर्थात् वो

पैदल नहीं चलती, रथमें बैठकर आई है, इससे नहीं थकी है। नवमी स्त्रीने कहा कि आज सदाव्रतमें भोजन दिया जाता है ? इसके उत्तरमें कहा गया कि पाली नहीं है अर्थात् आज दान देनकी बारी नहीं है। यह सदाव्रत किसी खास निश्चोंही दत है। दसवीन कहा था कि इस प्रवाहसे विशेष जल क्या बहता है ? इसके उत्तरमें कहा गया कि पाली नहीं है अर्थात् इसकी पाल बंधी हुई नहीं है जिससे अधिक जल बहता है। ग्यारवींने पूछा था कि चोटी तैयार की हुई है ? इसके उत्तरमे कहा गया कि पाली नहीं है। यहां पालीसे प्रयोजन जूसे है, अर्थात् मेरे मस्तकमे जू नहीं है, इससे केशपाश तैयार है। बारहवींने पूछा था कि कानमे कुण्डल पहिने या नहीं ? इसके उत्तरमे कहा गया कि पाली नहीं है। यहां कानमे जो छिद्र पड़ा कर बड़े किये जाते हैं उसे कान पाल्या कहते हैं उसके बिना कुण्डल क्यों कर पहिने जावे ? तेरवीने पूछा था कि इस गढ़रमे भय क्यों नहीं लगता ? इसके उत्तरमे कहा गया है कि पाली नहीं है। अर्थात् इस वनके समीप चोर लोगोंकी पली नहीं है इससे भय नहीं है। चोर लोगोंके रहनेके स्थानको पाल-पलि कहते हैं। चोदवीने पूछा था कि क्या इस फलको ग्रहण करोगे ? इसके उत्तरमे कहा गया है कि पाली नहीं है अर्थात् मेरे खोला नहीं है इससे फल किसमे लू ? पन्द्रहवीने पूछा था कि क्या इन बकरियोंको गिना है ? इसके उत्तरमे कहा गया है कि पाली नहीं है। यहा पाली अर्थात् प्रान्त (छेड़ा अर्थात् आदकी हद) नहीं है फिर इतनी सारी

बकरियोंकी गिनती क्योंकर की जा सकती है ? इस प्रकार पुष्पवतीने सब स्त्रियोंके प्रश्नोंका उत्तर एकही शब्दमे दे दिया और वे सब समझ गई, जिससे उसका पति भी खुश हो गया। जब एक साधारण मनुष्यमे उत्तर देनेकी ऐसी शक्ति होती है, तो फिर श्री जिनेश्वर देवके एक वचनसे सबके सशयोंका अभाव क्यों न हों सके ?

"अर्हतका एक वचन समकालसे अनेक लोकोंकी सशय श्रेणिको एक साथ ही हर लेता है, इस पर वृद्धा आहीरकी स्त्रियोंका दृष्टान्त सुन विचार करना चाहिये कि इसमे आश्चर्य की कौनसी बात है ? अर्थात् कोई बात नहीं है।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ एकाधिकद्विशततम प्रबध ॥ २०१ ॥

—o—

व्याख्यान २०२

प्रभुके देशना समयका वर्णन

जिनवाक्यात्प्रबुद्धा, ये दीक्षा गृह्णति ते मुदा ।
तेषु गणिपदार्हास्तान, यच्छति त्रिपदी जिना ॥१॥

भावार्थ —'जो श्री जिनेश्वर भगवतकी वाणीसे प्रतिबोधित होते हैं वे हर्षसे दीक्षा ग्रहण करते हैं उनमेंसे जो गणिपदके योग्य होते हैं उनको भगवत त्रिपदी देते हैं।" वे त्रिपदीका अध्ययन कर मुहूर्तमात्रमें बुद्धि बीज प्राप्त कर

द्वादशांगीकी रचना करते हैं। फिर जिनेश्वर भगवत उनको गणधरपद देते हैं महाबुद्धिवाले गणधर सूत्र रचना करते हैं। अरिहंत भगवंत तो प्राय अर्थ बतलाते हैं। गणधर भव्य जनोंके उपकारक लिये ही सूत्रकी रचना करते हैं। जैसे कोई पुरुष आम्रवृक्ष पर चढ नीचे खडे लोगोंके उपकारके लिये उपरसे फलकी वृष्टि करता है। और नीचे खडे लोगोंमें से कोई वस्त्र गिरते हुए फलोंको वस्त्रमे झोल लेता है। और फिर उनके द्वारा खुदको तथा अन्यको प्रसन्न करता हो। इसी प्रकार श्री जिनेश्वर भगवत ज्ञानरूप कल्प वृक्ष पर चढ भव्य प्राणियोंके हितके लिये अर्थकी वृष्टि करते हैं जिसमें से कोई गणधर बुद्धिरूप वस्त्रमें झोल लेते हैं फिर उसके द्वारा द्वादशांगीकी रचना कर के अपनी आत्मा और दूसरोंका अनुग्रह करते हैं जैसे यदि फूल अलग अलग पडे हों तो वे नाना जगह रहनेवाले सबका एक समान उपकार नहीं कर सकते परन्तु एकत्रित कर देने पर सबका उपकार कर सकते हैं उसी प्रकार भिन्न भिन्न अर्थको एकत्रित कर सूत्ररूपमें गूंथनेसे वे सबका उपकार कर सकते हैं।

अब यह बतलाया जाता है कि समवसरणमें प्रभुके कितने रूप होते हैं? "पूर्व दिशामें प्रभु मूल रूपसे विराजते हैं। और अन्य तीन दिशाओंमें देवता प्रभुकी महिमासे भगवतके सदृश ही अन्य तीन रूप बनाते हैं।" यद्यपि अन्य दिशाओंमें देवता अर्हतके प्रतिबिंब बनाते हैं। फिर भी वे रूप ऐसे होते हैं कि देखनेवालेको यह पता नहीं

चलता कि वे कृत्रिम हैं या अकृत्रिम, क्योंकि वे मूल स्वरूप से लेशमात्र भी भिन्न नहीं होते। वे रूप कृत्रिम होने पर भी श्री जिनेश्वरके सदृश ही होते हैं यह जिनेश्वरका ही प्रभाव है। अन्यथा यदि सर्व देव एकत्रित होकर सर्वशक्ति लगाकर रूप बनाना चाहें तो भी एक प्रभुके अंगूठेके जैसा रूप भी वे नहीं बना सकते। इसके विषयमें भी भक्तामर स्तोत्रमें कहा गया है कि —

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत। ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥

"हे त्रिभुवनमें अद्वितीय तिलकरूप प्रभु! शान्तराग रुचिवाले जिन परमाणुओंसे आपका निर्माण हुआ है वे परमाणु पृथ्वी पर उतने ही हैं अतः तुम्हारे समान पृथ्वी पर दूसरा कोई रूप नहीं है।" प्रभुके रूपका वर्णन श्री आवश्यक निर्युक्तिमें भी किया गया है। उसमें कहा गया है कि, अर्हतका स्वरूप वाणीसे अगोचर है (कहा नहीं जा सकता) इसलिये अनन्तगुण हीन ऐसा गणधरका स्वरूप होता है। उनसे आहारक शरीर अनन्त गुणहीन होता है। उनसे भी अनन्त गुणहीन अनुत्तर विमानके देवताओंका शरीर होता है। उनसे भी अनुक्रमसे न्यून होते होते व्यंतर देवता तकका शरीर अनन्त अनन्त गुणहीन होता है। उनसे

चक्रवर्तीका, उनसे वासुदेवका, उनसे बलदेवका और उनसे मंडलिक राजाका शरीर अनंत अनंत गुण हीन समझना चाहिये। उनसे शेष रहे राजाओं और सर्व लोगोंके शरीरमें परस्पर छ स्थान पड़ते हैं, वे इस प्रकार है कि-अनंत भागहीन, असंख्यात भागहीन, संख्यात भागहीन, संख्यात गुणहीन, असंख्यात गुणहीन, और अनन्त गुणहीन होते हैं।" श्री तीर्थंकरका स्वरूप सबको वैराग्य उत्पन्न करने वाला होता हैं, रागादि बढ़ानवाले नहीं होता।

अब समवसरणके पर्षदाके स्थान बतलाये जाते हैं— "देशना सुननेकी स्पृहावाली और मन-वचन-कायाके प्रशस्त योगसे प्रकाशित बारह पर्षदा समवसरणमें अपने अपने स्थान पर बैठती है। उस पर्षदाके बैठनेके स्थान इस प्रकार है, जो ज्येष्ठ और दूसरे गणधर होते हैं वे प्रभुके समीप अग्निकोणमें सबसे आगे बैठते हैं, केवलि भगवंतको तीन प्रदक्षिणा कर तीर्थको नमस्कार कर अपना गौरव संभाल कर पहले एसे गणधरोंके पीछे बैठते हैं। वे प्रभुको वन्दना नहीं करते, जिसका कारण यह बतलाया जाता है कि -

कृतकृत्यतया तादृकु-कल्पत्वाच्च जिनेश्वरान्।
न नमस्यन्ति तीर्थन्तु, नमस्यर्हन्नमस्कृतम् ॥ १ ॥

"वे केवली कृतार्थपनको प्राप्त कर लेनेसे तथा उनका वैसा आचार होनेसे वे तीर्थंकरको वन्दना नहीं करते, परन्तु अर्हंत द्वारा नमन किये तीर्थको वंदना करते हैं।" इसी

विषय पर श्री ऋषभस्तोत्रमे, धनपालने भी कहा है कि, "हे प्रभु ! आपकी सेवासे मोहका छेद होता तो निश्चय ही है, परन्तु व (केवली) अवस्थामे आपको वन्दना नहीं करते। इससे मुझ मेरे हृदयमे खेद होता है।" केवलीके पृष्ट भागमे लब्धिवाले और लब्धि रहित सब साधु, अर्हत, तीर्थ तथा गणधर आदिको नमन कर अनुक्रमसे विनयपूर्वक बैठते हैं, उनके पीछे वमानिक देवताओंकी देविय अर्हन आदिको नमन कर बैठती है और उनके पीछे साध्वीये, बैठती है। य तीनों पर्षदा पूर्वद्वार द्वारा समवसरणमे प्रवेश कर अहतकी प्रदक्षिणा कर अग्निकोणमे बैठती है। भुवनपति, ज्योतिषी, और व्यन्तरकी देविये ये तीन पर्षदा दक्षिणद्वारसे प्रवेश कर नैऋत्यकोनमे खडी रहती है। भुवनपति ज्योतिषी और व्यन्तर देवता पश्चिम द्वारसे प्रवेश कर वायव्य कौनमे बैठती है। वैमानिक देवता, नर और नारिये उत्तर द्वारसे प्रवेश कर अर्हत आदिको नमस्कार कर इशान कौनमे बैठती है। चार प्रकारकी देविये और साध्विये खडी रहकर देशना सुनती है। सब देवता, नर तथा नारिये और साधु बैठ कर सुनते हैं। आवश्यककी वृत्तिमे इस प्रकार कहा गया है और उसकी चूर्णीमे लिखा गया है कि, "साधु उत्कटिक आसन पर बैठकर सुनते है और साध्विये तथा वैमानिक देवताकी देविये खडी रह कर सुनती है।"

प्रभुके प्रभावसे बाल, ग्लान और जरापीडित वृद्ध लोगोंको भी पगथिये चढनेमे किञ्चित् मात्र भी श्रम या व्याधि

नहीं होती, किसीको वैरभाव भी नहीं होता। दूसरे गढमे अपने जातिवैरको भी भूलकर सब तिर्यंच साथ बैठकर देशना सुनते हैं।

अब यह बतलाया जाता है कि देशना सुननेके बाद क्या होता है। श्री जिनेश्वर भगवन्त पहली पोरसी पूर्ण होने तक धर्मदेशना देते हैं, उस समय लोग चोखे-चावलसे प्रभुको बधावनेकी विधि करते हैं। यहां तात्पर्य चक्रवर्तीसे लगाकर सामान्य राजा तक जो देशना सुननेको आये हों उनसे अथवा श्रावक और नगर जनस हैं। व शालि द्वारा वर्धापन विधि करते हैं। वर्धापन विधि इस प्रकार है— कलमशालिके अखन्न सुगंधित चोखे, छिलके रहित उज्वल और अखंडित चार प्रस्थ अथवा एक आढक प्रमाणको शुद्ध जलसे धो कर, राध कर अद्धफूले हुएको रत्नके थालमे भर कर सर्व शृंगार धारण की हुई सुवासिनी स्त्रीके मस्तक पर धारण करते हैं। उसमे देवता सुगंधित द्रव्य डालते हैं, जिससे यह बलि अत्यंत सुगंधित हो जाती है। फिर अनेक प्रकारके गीत-वाद्य सहित वो बलि प्रभुके समक्ष श्रावक ले जाते हैं। पूर्वद्वार द्वारा उसका समवसरणमे प्रवेश किया जाता है। उस बलिपात्रके आने पर भगवंत क्षणभर देशना देते हुए विरम जाते हैं। फिर चक्रवर्ती आदि श्रावक उस बलिके साथ तीन प्रदक्षिणा दे प्रभुके चरण पास जा पूर्व दिशामे खडे हो सब दिशाओंमे प्रौढ मुष्टि द्वारा उस बलिको फैंकते हैं, उसमे से आधि [illegible] ही आका-

शमे से ही देवताओं ग्रहण करते हैं, शेष आधे भागमे से आधा जो बलिके कर्ता प्रमुख होते हैं वे ले लेते हैं और उससे जो अवशिष्ट रहे उसे दूसरे लोग जिनको जितना मिल सके वे इतना लेते हैं। उस बलिका एक कण मात्र सिर पर रखनेसे सर्व रोग नाश हो जाते हैं और छ महिने तक नया रोग नही आता। इस प्रकार बलिकी विधि पूर्ण की जाती है।

इसके बाद श्री जिनेश्वर पहले गढसे उतर दूसरे गढमें ईशान कोनेमे देवछंदा पर आ अनेक देवताओंसे प्रवृत्त हो सुखपूर्वक बैठते हैं। दूसरी पोरषीमे राजा आदि द्वारा लाये सिंहासन पर अथवा प्रभुके पाद पीठ पर बैठ कर गणधर धर्मदेशना देते हैं। दूसरी पोरषीके पूर्ण होने पर सब अपने अपने स्थानकों लौट जाते हैं। फिर पीछली–चौथी पोरषीमे प्रभु सिंहासन पर बैठ कर देशना देते है। जहां ऐसा समवसरण पहले नही बनाया गया हो वहा चार प्रकारके देवता मिलकर ऊपर कथनानुसार समवसरण करते हैं और यदि कोई महर्द्धिक देवता प्रभुको नमन करने आया है तो वह अकेला भी समवसरण कर सकता है।

अब यह बतलाया जाता है कि समवसरण बिना भी नियमा प्रभुकी सहचारी संपत्ति होती है, "जब समवसरण न हो तब भी प्रभुके पास अवश्य आठ प्रातिहार्य होते हैं।" इन आठ प्रतिहार्यका वर्णन प्रथम स्तवमें बतलाया जा चुका है।

"इस प्रकार अनन्त गुणरत्नसे सुशोभित ऐसे अरिहंत भगवंतका वर्णन शास्त्ररूप समुद्रसे उद्धरित कर यहां बतलाया गया है। उसके अनुसार प्रवृत्ति कर धार्मिक जनोंको अपना आत्महित करना चाहिये।

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ द्व्यधिकद्विशततमः प्रबंध ॥ २०२॥

व्याख्यान २०३

श्री जिनेन्द्र भगवान् द्वारा समवसरणमें दी जानेवाली देशनाके विषयमें

बहवोऽविरता जीवास्तेभ्यो स्वल्पास्तु सुदृष्टय ।
स्वल्पतरास्तत श्राद्धा' साधवोऽल्पतमास्तत ॥ १ ॥

भावार्थ — 'जगतमें कई जीव तो अविरत हैं। उनमें से बहुत अल्प जीव सम्यक्त्वधारी होते हैं, उनमेंसे अति अल्प देश विरति (श्रावक) होते हैं और उनमेंसे अतिशय अल्प सर्व विरति (साधु) होते हैं।"

अविरति अर्थात् बारह प्रकारकी विरतिसे रहित ऐसे कई जीव होते हैं, क्योंकि समस्त विश्वमें मिथ्यात्वी जीव ही अधिक होते हैं। उनको भी यहां ग्रहण किया गया है। बारह अविरति इस प्रकार है-मन और पांचों इन्द्रियोंका अनियम-ये छ और छ कायके जीवोंका वध-ये छ मिलाकर

बारह प्रकारकी अविरति है। ऐसे अविरति जीवोंसे सम्यक्त्व धारी जीव अल्प होते हैं। उनसे भी देश विरति श्रावक तो अति अल्प होते हैं। वे ग्यारह अविरतिके नियमसे रहित बारवे त्रसकायको हणनेर नियमवाले (पच्चक्खाण करनेवाले) होनेसे विरतिक एक देशको धारण करनेवाले होते हैं, इस लिये वे देशविरति कहलाते हैं उनसे भी सर्वविरति साधु अतिशय अल्प होत हैं।

यहा भावना इस प्रकार है कि –इस ससारम जीवोंकी चार पक्तिये हैं, जिनमें से प्रथम पक्तिमें सर्व एकेन्द्रिय प्रमुख जीव हैं कि जो अविरतिकी पक्तिमे हैं। उसमें एकेन्द्रिय जीव पाच आश्रवसे विरत नहा होते, इसलिये उनसे उत्पन्न होनेवाले कर्मोका वे बध प्राप्त करते हैं, इसलिये वे विरत नहीं कहला सकते, जैसे सोये हुए प्रमादी और मूर्छित आदि जीव शक्ति चेतनाके अभावम कभी हिंसादि नही करते, फिर भी वे व्रती नही कहला सकते, क्योंकि उनमे विरतिक परिणामका अभाव है। इसी प्रकार मूगे आदि असत्य नही बोलते, फिर भी वे सत्यवादी नही कहे जा सकते। टूठे और पन्जु अदत्त ग्रहण नही करते, तथापि वे अदत्तादानके त्यागवाले नही कहे जा सकते। कृत्रिम, अकृत्रिम, नपुसक ऐसे तिर्यच और मनुष्य मैथुन नही करते, तथापि वे ब्रह्मचारी नही कहे जाते और पशु, दरिद्री आदि विशेष धनवस्त्रादिकके अभाववाले होते हैं तिस

फल प्राप्त नहीं हो सकता, इसी प्रकार एकेन्द्रिय जीवको भी सम्यक्त्वादिके अभावमें अविरत जानना चाहिये। कहा भी है कि, "एकेंद्रियके दूसरा सास्वादन गुणठाणा भी नहीं होता।"[1] इसी प्रकार विकलेंद्रिय और समूर्छिम पचेंद्रिय आदि जीवोंमें भी अविरतिपना जानना, क्योंकि वहां सास्वादन गुणठाणा होता है परंतु उस गुणठाणेकी स्थिति उत्कृष्ट मात्र है जो आवलिका तककी ही है।

अब एकेंद्रिय जीवोंमें कुछ विशेष हिंसादि आश्रव हैं जिनको बतलाया जाता है।—वृक्ष आदि अपने अपने आहारके रूपमें जल, पवन आदि सचित वस्तुओंको ग्रहण करते हैं, इसलिये उनको जल और पवनकी विराधना होना स्पष्ट ही है। कहा भी है कि, "जहां जल होता है वहां वनस्पति होती है, जहां वनस्पति होती है वहां अग्नि होती है और तेउकाय, वायुकाय तो साथही साथ होती है और त्रसजीव प्रत्यक्ष होते हैं।" वनस्पति आदिको भी आहार ग्रहण करनेमें सूक्ष्म वृत्तिसे विराधना होती है और बादर वृत्ति द्वारा तो वड़ कथेरा, बोरडी आदि वृक्ष मरुदेवादिके जीव मरुदेवा[2] कदली आदिका हनन करते हैं। थोर आदिके वृक्ष

---

१ अपर्याप्तावस्थामें होते हैं परंतु अल्प कालीन होनेसे उनकी विवक्षा नहीं की है।

२ मरुदेवा माताका जीव निगोदमेंसे निकल प्रत्येक वनस्पति कायमें केलके वृक्षमें उत्पन्न हुआ था वहां समीप प्रवृत्त कथेरके वृक्षके कांटे बारबार चुभनेसे होनेवाली वेदनाके शान्तपनसे सहन करके अकामनिर्जरा द्वारा मनुष्यपनको प्राप्त किया और उसी भवमें मोक्ष प्राप्त किया।

अपन मृत्के क्षार तथा कटुरस आदिसे पृथ्वीकाय आदि छ कायकी हिंसा करते हैं। वीछामार तथा किंपाक फल आदि मनुष्य तथा पशु आदिको मारते हैं। भेडामारी आदिके वृक्ष मनुष्य को उच्चाटन करते हैं। कई वनस्पति मनुष्यको पशु बनाती है और पशुको मनुष्य। घास और शर आदि वृक्ष मनुष्य और प्राणरूप हो कई जीवोंको मारते हैं। मनुष्य आदिके जीवोंको उत्सर्गसे अविरत परिणाम होनेसे उनके अचेतन हुए शरीर आदिसे भी हिंसा बंध होता है। जिनपूजाके योग्य पुष्प, फल तथा आभूषण आदिके तथा मुनिके पात्ररूप हुए पदार्थके जीवको उनका शरीर उत्तम साधनरूप होने पर भी पुण्य बंध नहीं होता, क्योंकि बंधके हेतुरूप विवेकका उनमें अभाव होता है। इसी प्रकार महारंभकी प्रवृत्तिके हेतुरूप गाडे, हल आदि जो जीवोंके शरीरसे हुए हो उन जीवोंको हिंसाके हेतुभूत समझे। इस प्रकार हिंसा बतलाई गई है। अब असत्यादि बतलाये जाते हैं —

एकेन्द्रियादि जीवोंको सत्य अध्यवसायका अभाव होने से असत्य लगता है। अपितु वे लोगोंके असत्य बोलनेके हेतुरूप होते हैं, इससे भी उनको असत्यका पाप लगता देखा गया है। जैसे कई औषधिके लिये सत्य और असत्य भी कहा जाता है जिस प्रकार काजली आदिमें कन्या आदि असत्य बोलती हैं इस प्रकार समझना चाहिये। इसी प्रकार मोहनवल्ली आदि मोह उत्पन्न कर लोगोंको विपरीत मार्ग आदि बताती हैं; इस प्रकार अनेक रीतिसे असत्यके प्रकार कहे गये हैं,

अब अदत्तादानके विषयमें कहा जाता है कि-वृक्ष आश्रित सब जीव सचित्त आहार ग्रहण करते हैं। उस आहारमें रहे जीव सम्बन्धी जीवादत्त लगता है। अपितु वनस्पतिमें अन्यक अदत्तादानका हेतुपन भी स्पष्ट दिखाई देता है। कोकास सूत्रधार (सुतार) द्वारा रचे काष्ठके शुक, कबूतर पारेवा आदिका राजाके कोठारमेसे अदत्तादान रूप शालि आदिको ग्रहण करनेकी हकीकत शास्त्रमें सुनी जाती है। उन काष्ठके शुकादिकको अदत्तादानका पाप पूर्व कथित वासके धनुष आदिके सदृश ही लगता है। परन्तु औषधके अंजन द्वारा लोगोंको परधन ग्रहण करते हुए भी देखे जाते हैं। इत्यादि।

इसी प्रकार मैथुनका पाप भी विरति भावके अभावसे उनको लगता है। इस प्रकारके पुष्पके बाग आदि मनुष्यों के प्रति काम रागके हेतुरूप हैं। अफीण आदि केफी वस्तुओं से प्राणीको मैथुनकी प्रवृत्ति विशेष होती है, तथा लोकमें कमलकंद, आम्रमंजरी, जाइके फूल, चम्पाके फूल और बपोरियाके फूल य पाच कामदेवके पांच बाण कहे जाते हैं, क्योंकि वे मथुन रागके जनक हैं। कई वृक्षोंमें तो साक्षात् काम संज्ञा दिखाई देती है। उनके विषयमें कहा गया है कि, "स्त्रीके चरणघातसे अशोकवृक्ष (आसोपालव) खिलता है, मधु (मदिरा) का कुल्ला डालनेसे बकुलका वृक्ष (बोरसली) प्रफुल्लित होता है, आलिंगन करनेसे कुरुबकका वृक्ष विकसित होता है और स्त्रीके देखनेसे तिलकवृक्ष कलिया द्वारा सुशोभित हो जाता है।"

इस प्रकार उन वृक्षोंके विरतिके अभावसे परिग्रह भी है। वह वृक्ष मूर्च्छासे द्रव्यके निधिको मूल द्वारा झकड लेते-दाबते हैं। जिससे उनको परिग्रहका पाप होना स्पष्ट है। अपितु बाहरसे वृक्षको एकेन्द्रियपन है, परन्तु भावसे पंचेन्द्रियपनका सद्भाव है। इसी प्रकार उनको दश संज्ञा द्वारा कर्मका बंध होता है। उन दश संज्ञाओंका नाम निम्न प्रकार है—१ आहार, २ भय, ३ परिग्रह, ४ मैथुन, ५ क्रोध, ६ मान, ७ माया, ८ लोभ, ९ लोक और १० ओघ। ये जीवकी दश संज्ञा है। वृक्षोंके हिसाबसे ये इस प्रकार हैं-वृक्षोंका जलादिका आहार-आहार संज्ञा है, लज्जालु वेल आदि भय द्वारा संकुचित हो जाती है यह भय संज्ञा, अपने ततुओं द्वारा जो वेले आदि वृक्षोंके चिपट जाती हैं वे परिग्रह संज्ञा, स्त्रीके आलिंगनसे कुरुबक वृक्ष फलता है यह मैथुन संज्ञा, कोकनदका कंद जब किसीसे टकराता है तब हुंकार करता है यह क्रोध संज्ञा, रुदति वेल जो झरता रहती है यह मान संज्ञा, लता पत्र पुष्प फलादिको ढकती है यह माया संज्ञा, विल्ली तथा पलासके वृक्ष द्रव्य पर मूल डालते हैं यह लोभ संज्ञा, रात्रिमें कमल संकुचित हो जाता है यह लोक संज्ञा और वेलडिये मार्गको छोड कर वृक्ष पर चढ जाती हैं वह ओघ संज्ञा। इस प्रकार दस संज्ञा होती हैं। इस प्रकार वनस्पतिके आश्रित अविरति दोष बतलाया गया है। उसी प्रकार पृथ्वीकायके जीवोंके लिये भी समझ लेवे।

हडताल, सोमल, क्षार आदिसे विकलेन्द्रिय, तिर्यंच तथा मनुष्योंका वध प्रत्यक्ष देखा जाता है यह हिंसा और कुण्में स्थित पारा अश्व पर बैठ कर आती हुई स्त्रीका मुंह देख उछल कर उसके पीछे दौडता है ये काम चिह्न स्पष्ट है । शेष पूर्व सदृश समझे ।

जल भी क्षार आदिके विशेषपनसे मीठे जल और पृथ्वी काय आदिके जीवोंको मारता है । नदियोंके बाढके समय मनुष्य और पशुओं आदिका बड़ा भारी नाश होता है ।

अग्नि तार तथा शोषण आदिसे जलके जीवों हनन करती है । यह सब ओर धारवाली शस्त्ररूप होनेसे सबको दहन करनेकी शक्ति रखती है इसलिये यह जो कुछ उसे प्राप्त हो जाती है उस सबको हनन कर देती है ।

इसी प्रकार उष्ण वायु भी शीत प्रमुख वायुके जीवोंका हनन करता है और दीपक आग्निसे यह अग्निके जीवोंका हनन करता है । अपितु लू लगन आदिसे मनुष्य आदिकी मृत्यु हो जाता भी देखा जाता है । इस प्रकार एकेन्द्रिय जीवमें आश्रवादिका अविरतिपन विद्यमान है । विकलेन्द्रियमें भी ऐसा ही अविरतिपन होता है जो इस प्रकार है कि —

फल, शख आदि बेइन्द्रिय जीव जीवका ही आहार करते है । जू, कीडी, माकड और खजूरा आदि तेइन्द्रिय जीव भी जीवका ही आहार करते हैं । कानखजूरे कानमें

घुस अति उद्वेग पैदा करते है । चउरिन्द्रिय मीछी, भम्मरी आदि जीव मन आदिको मारते है । डास-मच्छरादि यदि हाथीके कानमें घुस जावे तो हाथीको मार डालते है और सिंहके नाकमें घुसे हो तो सिंहको मारभी डालते है ।

पंचिन्द्रिय जीवोंमें मत्स्य आदि जलचर प्राणी मत्स्योंका ही आहार करते है । व्याघ्र, सिंह तथा सर्प आदि स्थलचर प्राणी भी मासका आहार करनेवाले है । बाज, गीध आदि खेचर प्राणी भी बहुधा हिंसा करने वाले होते है । और स्थलचरादि सबको कामसेवा तो स्पष्ट ही है । इनकी हिंसादिसे जनित गति भी अशुभ होता है । कहा है कि "स्थावर तथा विकलेन्द्रिय संख्याता वर्षकी आयुष्यवाले तिर्यंच और मनुष्यमें अवतरित होते है ।

असंज्ञी जीव पहली नरकमे जाते हैं, भुजपरिसर्प दूसरी नरक तक जाते हैं, पक्षी तीसरी नरक तक जाते है, सिंह चौथी नरक तक जाते है, उरपरिसर्प पांचवी नरक तक जाते है स्त्री छट्ठी नरक तक जाती है और मनुष्य तथा मत्स्य सातवी नरक तक जाते है इस प्रकार क्रमसे उत्कृष्टपनसे यहां तक जाते है । इस प्रकार अनंता जीव अविरतिकी पंक्तिमे ही प्रवेश करते है ।

मनुष्यमें भील कसाई, माछी, कुंभार तथा यवनादि अधर्मी तथा राजा, मन्त्री आदि उत्तम होने पर भी यदि जैन धर्मसे विमुख हो तो अविरति ही है ।

तथा द्वीपायन आदि देवता होने पर भी हिंसादिक आश्रवके करनेवाले होनेसे अविरत ही है। देवता सुवर्णादिककी लोभकी बुद्धिसे अमत्य बोलते हैं। अदत्त ऐसे दूसरेके निधान आदिके अधिकारी होते हैं, मैथुनमें दूसरोंकी देवांगनाकी कामना रखते हैं और परिग्रहमें तो विमान आदिकी अपरिमित लक्ष्मी उनकी आधिनतामें होती है, अत देवता भी अव्रती है।

इसी प्रकार अन्य मतसे ईश्वर-शिवको जगतके संहारक कहे गये है, अत वे तथा कृष्ण, ब्रह्मा आदि भी आश्रवपरायण है। लौकिक ऋषि भी शाप, अनुग्रह और स्त्री ऊपरकी आसक्ति आदिसे अविरतिकी पंक्तिमें ही आते है। विश्वामित्रको ब्रह्मर्षि न कहनेसे उसे क्रोध उत्पन्न हो आया, जिससे उसने वसिष्ठकी स्त्री अरूंधती और उसके पुत्रोंको मार डाला ऐसा अन्य मतोंके शास्त्रोंमें तो कहा गया है। इसी प्रकार विषयी पाराशर कामविह्वल हो दिनमें धुसर विधुर्व मत्स्य गंधा नामक माछीकी पुत्रीके साथ संभोग किया था, इत्यादि अनेक वृत्तान्त अन्य मतावलंबियोंके ग्रंथोंसे जान लेवे। अपितु अभव्य ऐसे तिर्यंच तथा मनुष्य कई द्रव्यसे देशविरति और सर्वविरति जान पड़ते हैं, परन्तु वे भावसे अविरति ही होते है।

नारकीके जीव भी क्रोधसे भर कर वैक्रिय शक्ति द्वारा अनेक प्रकारके शस्त्र विकुर्वीत कर उनसे तथा वज्रतुंड आदिसे परस्पर महावेदना उत्पन्न करते हैं। वे भी अविरतिकी

पक्तिमें ही आते हैं। इसी प्रकार चराचर (त्रस और थावर) जीव भी बहुधा प्रत्याख्यान रहित ही होते हैं, इससे सबसे बड़ी पक्ति अविरति जीवोंकी ही है।

अब दूसरी पक्ति अविरत सम्यग्दृष्टि जीवोंकी है। श्रेणिक राजा, सत्यकि तथा वासुदेव-कृष्ण आदि कई पुरुष, देवता तथा नारकीका असंख्यातवा भाग और तिर्यचका अनंतवा भाग ये सब अव्रती अविरत सम्यग्दृष्टि हैं, तथापि उनका मिथ्यात्व दोष नष्ट होजानेसे वे प्रथमके भेदके बनिस्बत अधिक श्रेष्ठ हैं। कई देवता जो समकिती हैं वे भी इस भेदमें आते हैं, फिर भी पूर्व कथित जीवोंसे यह पक्ति बहुत अल्प है।

उपरोक्त यह जीवोंसे असंख्यातवे भागके जीव विरति अविरति अर्थात् देशविरतिमय तीसरी पक्तिमें है। इस पक्तिमें कई गर्भज मनुष्य तथा गर्भज पचिन्द्रिय तिर्यचका असंख्यातवा भाग आता है। अर्थात् असंख्याता तिर्यच चडकौशिक सर्प, समलीका विहंगयली समली, चलभद्रका भक्त मृग तथा मेघकुमारका पूर्वभवी हाथी आदि जो जातिस्मरण से श्रावकधर्मको प्राप्त हुए हो वे सब इस पक्तिमें आते हैं अन्य नहीं आते। इस विषयमें ऐसा वचन है कि, "समकिती और देशविरति जीव पल्योपमके असंख्यातमें भाग हैं।" पल्योपमके असंख्यातवे भागमें जितना समय होता है इतने देशविरति लभ्य होते हैं। उनका असंख्यातवा भाग सर्वविरति मनुष्यमय चौथी पक्ति है, क्योंकि उत्कृष्टसे पन्द्रह कर्मभूमिमें दो हजार क्रोडसे नो हजार क्रोड तक ही मुनिवर प्राप्त होते हैं, इससे अधिक नहीं होते।

इन चार पक्तियोंमें पहली पक्तिके सिवाय अन्य तीन पक्तियाँ अति अल्प है और अनुक्रमसे अल्पतम तथा दुर्लभ है, सम्यक्त्ववाले जीव चारो गतियोंमें लभ्य है। देशविरति तो तिर्यच तथा मनुष्य दो गतिमें प्राप्त होते है और सर्व-विरति जीव तो केवल एक मनुष्य गतिमें ही मिलते है।

"इस प्रकार भगवतकी वाणी सुन भव्य जीव विरति प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं और उससे धन्य पुरुष लोकोत्तर और अक्षय सिद्धिगतिको प्राप्त करते हैं।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ -यधिकद्विशततम प्रबध ॥ २०३ ॥

—○—

व्याख्यान २०४

ग्रहण किया हुआ व्रत जीव भेदके अनुसार चार प्रकारका होता है।

शालिकणसबधोऽत्र, धार्यो व्रताभिलाषिभिः ।
भवेज्जीवविशेषेण, चतुर्धा व्रतविस्तर ॥ १ ॥

भावार्थ —"व्रतके अभिलाषी पुरुषोंको शालिकणका सम्बन्ध-प्रबन्ध हृदयमें धारण करना चाहिये, क्योंकि जीवके विशेषपनसे व्रतका विस्तार चार प्रकारका होता है।"

शालिके कण सम्बन्धी प्रबन्ध

जबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें मगध नामक देश है, जिसमें राजगृह नामक नगर है। उस नगरमें धन नामक श्रेष्ठी

रहता है। उसकी धारणी नामक रूपवती स्त्री है। उस स्त्रीकी कुक्षिसे धनशेठके धनपाल, धनदेव धनगोप और धनरक्षित नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। उनके यौवनावस्था प्राप्त करने पर धनशेठने उन्हे किसी धनाढ्यकी एक एक कन्या विवाह दी। उनमेंसे पहलीका नाम उज्झिका, दूसरीका नाम भक्षिका, तीसरीका नाम रक्षिका और चौथीका नाम रोहिणी था। उनके साथ सुख भोगते हुए उनको बीते हुए समयका भी पता नहीं पड़ता था।

एक बार श्रेष्ठी प्रात काल धर्मध्यान कर गृहचिंता करने लगा। उसको विचार आया कि "इन चार पुत्र वधूओंमें से मेरे गृहका निर्वाह कौन वधू कर सकेगी? इसका निर्णय करनेके लिये मैं उनकी परीक्षा करूंगा।" ऐसा विचार प्रात कालकी क्रिया कर भोजन करने बाद अपने बधु पुत्रादिकके समक्ष उन चारों वधूओंको बुलवा उनको पाच पाच अखड शालिकण दे कहा कि इनको जब मैं वापस मागू तब देना।" प्रथम पुत्रवधू मदबुद्धिवाली थी उसने एकान्तमें जाकर विचार किया कि, मेरे श्वसुरकी बुद्धि विपरित हो जाना ज्ञात पड़ता है कि जिससे उसने सर्व जनके समक्ष मात्र पाच शालीके दाने मेरे हाथमें डाले है, इसलिये मैं तो इनको फैंक देती हू, मुझे इनसे क्या प्रयोजन है? जब मागेगे तब मैं और दूसरे लाकर दे दूगी।" ऐसा विचार कर उसने उन दानोंको फेंक दिये। दूसरी वधूने विचार किया कि, "श्वसुर द्वारा दिये हुए दानोंको क्यों फेंक दू?

इनको तो मैं खा जाउ, जब मागेगे तब दूसरे ला कर दे दूगी।" ऐसा विचार कर उनको खा गई। तीसरीने विचार किया कि "श्वसुरने जो ये दाने दिये है इससे अवश्य इनमे कोई प्रयोजन होगा इससे मैं इसका रक्षण करू।" ऐसा विचार उसने उन दानोको उसके आभूषणके डिब्बेमें छिपा रखे और प्रतिदिन उनकी देखभाल करने लगी। चोथी बुद्धिशाली वधूने एकान्तमे जा विचार किया कि, "मेरे श्वसुर बृहस्पति सदृश बुद्धिमान है। उन्होंने सर्व जन समक्ष मुझे पाच शालीके दाने दिये है जिसमे हो न हो अवश्य कोई विशेष हेतु होगा, अत मैं इन दानोंकी वृद्धि करूगी।" ऐसा हृदयमे विचारकर उसने वो दाने उसके पियरमे अपने भाइयोंके पास भेज दिये और सदेशा भेजा कि, "तुम इन शालिके दानोंको तुम्हारे उत्तम क्षेत्रोंमे घरके दानोंके समान गिनकर पृथक्तया बोना।' बहिनके कथनानुसार भाइयोंने उन पाच दानोंको वर्षाऋतुमें ही उत्तम स्थानमें बोये। वे ऊग निकले और उनमसे एक प्रस्थ (दो सेर) जितने दाने पहले वर्षमें ही हो गये। दूसरे वर्षमे आढक प्रमाण, तीसरे वर्षमें द्रोण प्रमाण, चौथे वर्षमे सो खारी (कलशी) प्रमाण और पाचवें वर्षमे लाख पाली (माणा) हो गये।

पाच वर्ष बितने बाद एक दिन श्रेष्ठीने स्वजनों समक्ष चारों पुत्रवधूओंको बुलवाया। पहले ज्येष्ठासे कहा कि, 'मेरे दिये हुए पाँच शालीका कण लाओ।" तो उसने घरमे से दूसरे पाच शालीकण लाकर दिये। जिन्हें देख श्रेष्ठीने कहा

कि, "हे वत्से ! ये वे शालीके दाने नहीं है जो मैंने दिये थे।" उसने उत्तर दिया कि, "हे तात! उनको तो मैंने फैंक दिये थे।" यह सुन श्रेष्ठीने रोषमें भर कर कहा कि, "इस भोली वधूने बड़ा अघटित कार्य किया है कि मेरे दिये हुए दाने फैंक दिये, इससे यह वधू तो घरका वासीदा करने योग्य तथा छाणा कचरा आदि फेंक देने सम्बन्धी कामके योग्य हो।" फिर शेठने दूसरी वधूसे शालीकण मांगे कि, "हे वत्से! तुमको दिये शालीकण लाओ।" उसने उत्तर दिया कि, "हे पिताजी! मैं तो उनको खा गई हूं।" श्रेष्ठीने कहा कि, "यह स्त्री घरका रसोडेका काम करनेवाली हो।" फिर तीसरी वधूसे मांगे जिस पर उसने तत्काल अपने सावधानीसे रखे हुए शालीकण लाकर उसके सामने रखे। शेठने कहा कि, 'यह वधू घरमें धन धान्यकी रक्षा करनेवाली हो।" फिर श्रेष्ठीने चौथी वधूसे कहा कि, "हे वत्से! शालिकण लाओ।' उसने उत्तर दिया कि "हे पिताजी! गाडे लाइये कि उनमें भर लाउं" श्रेष्ठीने कहा कि "गाडेका क्या काम है?" वधूने उत्तर दिया कि, "मेरे भाईके पाससे उनको बोआ कर मैंने उन शालीकणोंको कई गुणा कर दिया है।" इससे जब श्रेष्ठीने गाडे ला दिये तो वधू गाडे भर लाई। उसे देख श्रेष्ठीने सर्व लोगोंके समक्ष उसकी प्रशंसा कर उसे अपने घरकी स्वामिनी बनाई और कहा कि, "जो इस वधूकी आज्ञा नहीं मानेगा उससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा।" सबने जब इस बातको स्वीकार

कर लिया तो वो श्रेष्ठी निश्चित हो अपने धर्मकार्यमे तल्लीन हो गया।

हे शिष्यों! इस कथाका भावार्थ सुनो! उपरोक्त कथा मे जो राजगृह नगर बतलाया गया है उससे प्रयोजन मनुष्य भवसे है। धनश्रेष्ठिसे तात्पर्य धर्मगुरुसे व चार वधुओंसे तात्पर्य शिष्योंसे है। पाच शाली कणसे मतलब पाँच महा व्रतसे है। स्वजन वर्ग यह चतुर्विध सघ है। शालिकण का दान पचमहाव्रतका आरोपण है। प्रथम वधू द्वारा जो शालीकणका त्याग किया गया है वो महाव्रत प्राप्त कर उसका त्याग करना है। इस प्रकार पाच महाव्रतका त्याग करने वाला इस लोक और परलोकमे दुखी होता है। दूसरी वधू सदृश मुनि वो व्रत लेकर मात्र आजीविका करने वाले, तपस्या आदि नही करने वाले, समझना चाहिये। तीसरी वधूने जिस प्रकार शालीकणको सावधानीसे सुरक्षित कर रखा था उसी प्रकार मुनिको भी पच महाव्रतको अति चारसे सुरक्षित रखना चाहिये, ऐसे मुनिको तीसरी वधू सदृश समझना चाहिये और चौथी रोहिणीने जिस प्रकार शालीकण बढाये थ उसी प्रकार जो महाव्रत लेकर गुण वृद्धि करे उनको उसके समान शासनका धोरी समझना चाहिये। इसके विषयमें चार दृष्टान्त हैं। प्रथम स्त्रीका दृष्टान्त कडरीक आदि मुनि हैं, दूसरीका दृष्टान्त दूमक ऋषि अथवा आधुनिक वेषधारी मुनि हैं, तीसरीका दृष्टान्त श्री मनकमुनि हैं, और चौथीका दृष्टान्त श्री गौतमादि महामुनि हैं।

कि, "हे वत्से ! ये वे शालीके दाने नही है जो मैंने दिये थे।" उसने उत्तर दिया कि, "हे तात! उनको तो मैंने फेक दिये थे।" यह सुन श्रेष्ठीने रोपमे भर कर कहा कि, "इस भोली वधूने बडा अघटित कार्य किया है कि मेरे दिये हुए दाने फेक दिये, इससे यह वधू तो घरका झाडू देने योग्य तथा छाणा कचरा आदि फेक देने सम्बन्धी कामके योग्य हो।" फिर शेठने दूसरी वधूसे शालीकण मागे कि, "हे वत्से! तुमको दिये शालीकण लाओ।" उसने उत्तर दिया कि, "हे पिताजी! मैं तो उनको खा गई हू।" श्रेष्ठीने कहा कि, "यह स्त्री घरके रसोईका काम करनेवाली हो।" फिर तीसरी वधूसे मागे जिस पर उसने तत्काल अपने सावधानीसे रखे हुए शालीकण लाकर उसके सामने रखे। शेठने कहा कि, 'यह वधू घरमे धन धान्यकी रक्षा करनेवाली हो।" फिर श्रेष्ठीने चौथी वधूसे कहा कि, "हे वत्से! शालिकण लाओ।' उसने उत्तर दिया कि, "हे पिताजी! गाडे लाइये कि उनमे भर लाउ" श्रेष्ठीने कहा कि "गाडेका क्या काम है?" वधूने उत्तर दिया कि, "मेरे भाईके पाससे उनको बोआ कर मैंने उन शालीकणोंको कई गुणा कर दिया है।" इससे जब श्रेष्ठीने गाडे ला दिये तो वधू गाडे भर लाई। उसे देख श्रेष्ठीने सर्व लोगोंके समक्ष उसकी प्रशसा कर उसे अपने घरकी स्वामिनी बनाई और कहा कि, "जो इस वधूकी आज्ञा नही मानेगा उससे मेरा कोई सम्बन्ध नही रहेगा।" सबने जब इस बातको स्वीकार

कर लिया तो वो श्रेष्ठी निश्चित हो अपने धर्मकार्यमे तल्लीन हो गया ।

हे शिष्यों ! इस कथाका भावार्थ सुनो ! उपरोक्त कथा में जो राजगृह नगर बतलाया गया है उससे प्रयोजन मनुष्य भवसे है । धनश्रेष्ठिसे तात्पर्य धर्मगुरुसे व चार बन्धुओंसे तात्पर्य शिष्योंसे है । पाच शाली कणसे मतलब पांच महाव्रतसे है । स्वजन वर्ग यह चतुर्विध संघ है । शालिकण का दान पंचमहाव्रतका आरोपण है । प्रथम वधू द्वारा जो शालीकणका त्याग किया गया है जो महाव्रत प्राप्त कर उसका त्याग करना है । इस प्रकार पाच महाव्रतका त्याग करने वाला इस लोक और परलोकमें दुःखी होता है । दूसरी वधू सदृश मुनि वो व्रत लेकर मात्र आजीविका करने वाले, तपस्या आदि नहीं करने वाले, समझना चाहिये । तीसरी वधूने जिस प्रकार शालीकणको सावधानीसे सुरक्षित कर रखा था उसी प्रकार मुनिको भी पंच महाव्रतको अति चारसे सुरक्षित रखना चाहिये, ऐसे मुनिको तीसरी वधू सदृश समझना चाहिये और चौथी रोहिणीने जिस प्रकार शालीकण बढाये थे उसी प्रकार जो महाव्रत लेकर गुण वृद्धि करे उनको उसके समान शासनका धोरी समझना चाहिये । इसके विषयमें चार दृष्टान्त है । प्रथम का दृष्टान्त कंड रीक आदि मुनि है, दूसरीका दृष्टान्त द्रुमक ऋषि अथवा आधुनिक वेषधारी मुनि है, तीसरीका दृष्टान्त श्री मनकमुनि है, और चौथीका दृष्टान्त श्री गौतमादि महामुनि है ।

" इन शालीकणोंका सम्बन्ध श्री ज्ञातासूत्रमें श्री भगवतने फरमाया है। इसका उपनय प्रत्ये सम्यग्धर्म बराबर शोच कर हरेक प्राणीओंको मनमें उतारना चाहिये।

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ चतुरधिकद्विशततमः प्रबंध ॥२०४॥

व्याख्यान २०५

भगवतके निर्वाण-कल्याणकका वर्णन

देशनां विविधा दत्त्वा, निजायुःप्रान्तदेशके।
पुण्यक्षेत्रे जिना सर्वे, कुर्वन्त्यनशनादिकम् ॥ १ ॥

भावार्थ —"सर्व जिनेश्वर भगवत विविध प्रकारकी देशना दे अपने आयुष्यके अन्तकालमें पुण्यक्षेत्रमें जा अनशनादि करते है।"

यहां अनशन अर्थात् आहारका त्याग समझना चाहिये। आदि शब्दसे शुक्लध्यानके दो अन्तिम भेदका ध्यान करना है। अर्थात् शुक्लध्यानके तीसरे भेद सूक्ष्मक्रियाअनिवृत्ति नामक ध्यान जो योगनिरोधका निमित्त है उसका ध्यान कर, केवलीको छद्मस्थकी ध्यानसे [illegible] होती है इस प्रकार [illegible]
[illegible] स्थैय [illegible] है। [illegible]

वाले हो उसके अनिश्चत असंख्यातवां भाग जितना मनोयोग समय समय रूध असंख्यात समयमे सर्व मनोयोगको रूधते है। इसी प्रकार तुरन्त पर्याप्तपन प्राप्त किये पर्याप्त बेइन्द्रियाको जितने प्रमाणका जघन्य वचन योग हो उसके असंख्यातवा भाग जितना वचनयोग समय समयमे रूधकर असंख्यात समयमे सर्व वचनयोगको रूधते है। तथा आद्य समय निष्पन्न सूक्ष्मपनेका आद्य समय जितना जघन्यसे काययोग होता है उसके असंख्यातवा भाग जितने काययोग को समय समय पर रूध देहके तीसरे भागको छोडते हुए असंख्याता समयमे सब काययोगको रूधते है। इस प्रकार शुक्लध्यानके तीसरे भेदमे वर्तते हुए योग निरोध कर पाच ह्रस्व अक्षरके उच्चार प्रमाण आयुष्य बाकी रहे तब पर्वत सदृश निश्चलकाय केवलीको शुक्ल ध्यानके चौथे भेदके परिणमनारूप शैलेशीकरण प्राप्त होता है। उस अयोगी केवली नामक चौदहवे गुणठाणे समुच्छिन्नक्रियारूप चोथा शुक्ल ध्यानका भेद प्राप्त होता है, जिसमे सूक्ष्म काययोगकी क्रिया भी उच्छिन्न नाश हो जाती है। अन्तिम गुणस्थानके अन्तिम दो समयमे से पहले समयमे पचासी प्रकृतिकी सत्ता होती है। उसमेसे ७२ क्षय होनेसे अन्त्य समयमे १३ प्रकृतिकी सत्ता होती है, और अन्त्य समयमे कर्म सत्ता रहित-निष्कर्म हो उसी समयमे लोकान्तको प्राप्त होते हैं। उस आस्पर्शवान् गति द्वारा एक समयसे अधिक समयको बिना स्पर्श किये ही सिद्धि पद-मोक्ष प्राप्त करते है।

" " इन शालीकणोंका संम्बन्ध श्री ज्ञातासूत्रमें श्री भगवतने फरमाया है । इसका उपनय भावसे सम्यग्धर्म बराबर सोच कर हरेक प्राणीओंको मनमें उतारना चाहिये ।

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ चतुरधिकद्विशततम प्रबंध. ॥२०४॥

व्याख्यान २०५

भगवंतके निर्वाण-कल्याणकका वर्णन

देशनां त्रिविधा दत्त्वा, निजायुः प्रान्तदेशके ।
पुण्यक्षेत्रे जिनाः सर्वे, कुर्वन्त्यनशनादिकम् ॥ १ ॥

भावार्थ —" सर्व जिनेश्वर भगवंत त्रिविध प्रकारकी देशना दे अपने आयुष्यके अन्तकालमें पुण्यक्षेत्रमें जा अनशनादि करते है । "

यहां अनशन अर्थात् आहारका त्याग समझना चाहिये । आदि शब्दसे शुक्लध्यानके दो अन्तिम भेदका ध्यान करना है । अर्थात् शुक्लध्यानके तीसरे भेद सूक्ष्मक्रियाअनिवृत्ति नामक ध्यान जो योगनिरोधका निमित्त है उसका ध्यान करे, केवलीको छद्मस्थको ध्यानमें मनकी स्थिरता होती है इस प्रकार ध्यान शरीरका स्थैर्य करनेवाला होता है । केवलीभगवंत शुक्लध्यानके तीसरे पाये द्वारा तुरन्त पर्याप्तपन पाये पर्याप्त संज्ञि जीवका प्रथम समयवर्ती जघन्य मनोयोग जितना प्रमाण

वाला हो उसके अनिश्चत असंख्यातवा भाग जितना मनोयोग समय समय रूध असंख्यात समयमे सर्व मनोयोगको रूधते है। इसी प्रकार तुरन्त पर्याप्तपन प्राप्त किये पर्याप्त बेइन्द्रियाको जितने प्रमाणका जघन्य वचन योग हो उसके असंख्यातवे भाग जितना वचनयोग समय समयमे रूधकर असंख्यात समयमे सर्व वचनयोगको रूधते हैं। तथा आद्य समय निश्पन्न सूक्ष्मपनेका आग समय जितना जघन्यसे काययोग होता है उसके असंख्यातवे भाग जितने काययोग को समय समय पर रूध देहके तीसरे भागको छोडते हुए असंख्याता समयमे सब काययोगको रूधते हैं। इस प्रकार शुक्लध्यानके तीसरे भेदमे वर्तते हुए योग निरोध कर पांच ह्रस्व अक्षरके उच्चार प्रमाण आयुष्य वाला १६ तक पर्वत सदृश निश्चलकाय केवलीको शुक्ल ध्यानके चोथे भेदरूप परिण मवारूप शैलेशीकरण प्राप्त होता है। उस अयोगी केवली नामक चौदवे गुणठाणे समुच्छिन्नक्रियारूप चोथा शुक्ल ध्यानका भेद प्राप्त होता है, जिसमे सूक्ष्म काययोगकी क्रिया भी उच्छिन्न नाश हो जाती है। अन्तिम गुणस्थानके अन्तिम दो समयमे से पहले समयमे पचासी प्रकृतिकी सत्ता होती है। उसमे से ७२ क्षय होनेसे अन्त्य समयमे १३ प्रकृतिकी सत्ता होती है, और अन्त्य समयमे कर्म सत्ता रहित-निष्कर्म हो उसी समयमे लोकान्तको प्राप्त होते हैं। उस अस्पर्शवान् गति द्वारा एक समयसे अधिक समयको बिना स्पर्श किये ही सिद्धि पद-मोक्ष प्राप्त करते है।

"" इन शालीकणोंका सम्बन्ध श्री ज्ञातासूत्रमें श्री भगवतने फरमाया है । इसका उपनय ग्रन्थके सम्बन्धमें बराबर शोच कर हरेक प्राणीओंको मनमे उतारना चाहिये ।

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ चतुरधिकद्विशततम प्रबंध ॥२०४॥

व्याख्यान २०५

भगवतके निर्वाण-कल्याणकका वर्णन

देशना विविधा दत्त्वा, निजायु प्रान्तदशके ।
पुण्यक्षेत्रे जिना सर्वे, कुर्वन्त्यनशनादिकम् ॥ १ ॥

भावार्थ —"सर्व जिनेश्वर भगवत विविध प्रकारकी देशना दे अपने आयुष्यके अन्तकालमे पुण्यक्षेत्रमे जा अनशनादि करते है ।'

यहा अनशन अर्थात आहारका त्याग समझना चाहिये। आदि शब्दसे शुक्लध्यानके दो अन्तिम भेदका ध्यान करना है । अर्थात् शुक्लध्यानके तीसरे भेद सूक्ष्मक्रियाअनिवृत्ति नामक ध्यान जो योगनिरोधका निमित्त है उसका ध्यान कर, केवलीको छद्मस्थको ध्यानसे मनकी स्थिरता होती है इस प्रकार ध्यान शरीरका स्थैर्य करनेवाला होता है । केवलीभगवत शुक्लध्यानके तीसरे पाये द्वारा तुरन्त पर्याप्तपन पाये पर्याप्त संज्ञि जीवका उस समयवर्ती जघन्य मनोयोग जितना प्रमाण -

वाले हो उसके बनिस्बत असख्यातवा भाग जितना मनोयोग समय समय रूध असख्यात समयमे सर्व मनोयोगको रूधते है। इसी प्रकार तुरन्त पर्याप्तपन प्राप्त किये पर्याप्त बेइन्द्रियोंको जितने प्रमाणका जघन्य वचन योग हो उससे असख्यातवे भाग जितना वचनयोग समय समयमे रूधकर असख्यात समयमे सर्व वचनयोगको रूधते है। तथा आद्य समय निपन्न सूक्ष्मपनेका आद्य समय जितना जघन्यसे काययोग होता है उसके असख्यातवे भाग जितने काययोग को समय समय पर रूध देहके तीसरे भागको छोडते हुए असख्याता समयमे सर्व काययोगको रूधते है। इस प्रकार शुक्लध्यानके तीसरे भेदमे वर्तते हुए योग निरोध कर पाच ह्रस्व अक्षरके उच्चार प्रमाण आयुष्य बाकी रहे तब पर्यंत सदृश निश्चलकाय केवलीको शुक्ल ध्यानके चोथे भेदके परिण मवारूप शैलेशीकरण प्राप्त होता है। उस अयोगी केवली नामक चौदवे गुणठाणे समुच्छिन्नक्रियारूप चोथा शुक्ल ध्यानका भेद प्राप्त होता है, जिसमे सूक्ष्म काययोगकी क्रिया भी उच्छिन्न नाश हो जाती है। अन्तिम गुणस्थानके अन्तिम दो समयमे से पहले समयमे पचासी प्रकृतिकी सत्ता होती है। उसमेसे ७२ क्षय होनेसे अन्त्य समयमे १३ प्रकृतिकी सत्ता होती है, और अन्त्य समयमे कर्म सत्ता रहित–निष्कर्म हो उसी समयमे लोकान्तको प्राप्त होते हैं। उस अस्पर्शवान् गति द्वारा एक समयसे अधिक समयको बिना स्पर्श किये ही सिद्धि पद–मोक्ष प्राप्त करते है।

यहां शिष्य प्रश्न करता है कि, "हे गुरू महाराज! निष्कर्म आत्मावाले सिद्धकी लोकान्त तक गति किस प्रकार होती है?" गुरू उत्तर देते हैं कि "हे भद्र! पूर्व प्रयोग से गति होती है।" अचिंत्य आत्माके वीर्य द्वारा उपान्त्यके दो समयमें पचासी कर्म प्रकृतिका क्षय करनेके लिये जो व्यापार पूर्वमें प्रयुक्त किया हो उसके प्रयत्नसे सिद्धकी गति लोकान्त तक होती है। यहां दृष्टान्त है कि जैसे कुम्हार का चक्र, हिंडोला, बाण और गोफणका गोला पूर्वके प्रयोगके बलसे गति करता है इसी प्रकार पूर्वके प्रयोगके बलसे सिद्धकी गति होती है, अथवा कर्मसंगके अभावसे गति होती है। जैसे किसी तुम्बे पर मृतिकाके आठ लेप किये हुए हों उन लेपोंके हटने बाद उस तुम्बेकी जलमें ऊर्ध्वगति होती है, उसी प्रकार कर्मरूप लेपके अभावसे सिद्धकी ऊर्ध्व गति होती है अथवा बंधमोक्षसे-कर्मके बन्धन छुटनेके कारणसे गति होती है। जिस प्रकार एरंडके फलके अन्दर रहे बीज आदिकी बंधन हटनेसे ऊर्ध्वगति होता है उसी प्रकार कर्मबंधके छेदसे सिद्धकी ऊर्ध्वगति होती है, अथवा स्वभावके परिणामसे भी सिद्धात्माकी ऊर्ध्वगति होती है। जिस प्रकार पाषाणका स्वभाव नीचे गिरनेका, वायुका स्वभाव आड़ा जानेका और अग्निका स्वभाव ऊंचे जानेका होता है उसी प्रकार आत्माका स्वभाव भी ऊर्ध्व गति करनेका है।

सिद्ध अपने स्थानसे चलित नहीं होते। इसके विषयमें स्पष्टीकरण करते हैं कि-गौरवके (भारीपनके) अभावसे सिद्ध

नीचे नही गिरते, प्रेरक विना आडे अवले नही जाते और धर्मास्तिकायके अभावसे लोक उपर भी नही जा सकते।

अब यह बतलाया जाता है कि जीवका सिद्धिगतिमें गमन किस प्रकार होता है —सिद्धिमे जाते हुए सयमी महात्माका चेतनात्मा शरीररूप पीजरेसे सर्व अग द्वारा निकल जाता है। इस विषयमें श्री ठाणागसूत्रके पाचवे ठाणेमें कहा गया है कि, "जीवके निकलनेका मार्ग पाच प्रकारका है। १ पगसे, २ जघासे, ३ पेटसे, ४ मस्तकसे और ५ सर्वागसे–इन पाच मार्गसे जीव निकलता है। जो जीव पैरोंसे निकलता है वह नारकी होता है, जघासे निकलता है वह तिर्यच होता है, पेटसे निकलता है वह मनुष्य होता है, मस्तकसे निकलता है वह देवता होता है और सर्वागसे निकलता है वह मोक्षमे जाता है।" अब श्री जिनेश्वर भगवतके निर्वाण बाद होनेवाले देवताके कृत्यका वर्णन किया जाता है—"इन्द्र अवधिज्ञान द्वारा प्रभुका मोक्ष–निर्वाण जान, वहा आ विधिपूर्वक मोक्ष कल्याणक उत्सव भक्तिपूर्वक करता है।" यहा इस प्रकार भावना है जब आसनकप द्वारा इन्द्र प्रभुका मोक्ष होना जानता है तो प्रथम तो खेद सहित कहता है कि, "अरे! जगत्पतिका निर्वाण हो गया!" फिर विचारता है कि, "अब शीघ्र हमे उनका उत्सव करना चाहिये।" ऐसा विचार पूर्ववत् पादुकाका त्याग कर वही ठहर भावसे प्रभुको वदना करता है। कहा है कि, "इन्द्र प्रभुके निर्जीव शरीरको भी वदना

यहा शिष्य प्रश्न करता है कि, "हे गुरु महाराज ! निष्कर्म आत्मावाले सिद्धकी लोकान्त तक गति किस प्रकार होती है ?" गुरु उत्तर देते हैं कि "हे भद्र ! पूर्व प्रयोग से गति होती है।" अचिन्त्य आत्माके वीर्य द्वारा उपान्यके दो समयमें पचासी कर्म प्रकृतिका क्षय करनेके लिये जो व्यापार पूर्वमें प्रयुक्त किया हो उसके प्रयत्नसे सिद्धकी गति लोकान्त तक होती है। यहा दृष्टान्त है कि जैसे कुम्हार का चक्र, हिंडोला, बाण और गोफणका गोला पूर्वके प्रयोगके बलसे गति करता है इसी प्रकार पूर्वके प्रयोगके बलसे सिद्धकी गति होती है, अथवा कर्मसंगके अभावसे गति होती है। जैसे किसी तुम्बे पर मृत्तिकाके आठ लेप किये हुए हो उन लेपोंके हटने बाद उस तुम्बकी जलमे ऊर्ध्वगति होती है, उसी प्रकार कर्मरूप लेपके अभावमे सिद्धकी ऊर्ध्व गति होती है अथवा बंधमोक्षके-कर्मके बन्धन छुटनेके कारणसे गति होती है। जिस प्रकार एरंडके फलके अन्दर रहे बीज आदिकी बंधन हटनेसे ऊर्ध्वगति होती है उसी प्रकार कर्म बंधके छेदसे सिद्धकी ऊर्ध्वगति होती है, अथवा स्वभावके परिणामसे भी सिद्धात्माकी ऊर्ध्वगति होती है। जिस प्रकार पाषाणका स्वभाव नीचे गिरनेका, वायुका स्वभाव आडे जानेका और अग्निका स्वभाव ऊचे जानेका होता है उसी प्रकार आत्माका स्वभाव भी ऊर्ध्व गति करनेका है।

सिद्ध अपने स्थानसे चलित नहीं होते। इसके विषयमें स्पष्टीकरण करते हैं कि-गौरवके (भारीपनके) अभावसे सिद्ध

नीचे नही गिरते, प्रेरक विना आडे अवले नही जाते और धर्मास्तिकायके अभावसे लोक ऊपर भी नही जा सकते।

अब यह बतलाया जाता है कि जीवका सिद्धिगतिमें गमन किस प्रकार होता है —सिद्धिमे जाते हुए सयमी महात्माका चेतनात्मा शरीररूप पीजरेसे सर्व अग द्वारा निकल जाता है। इस विषयमें श्री ठाणागसूत्रके पाचवे ठाणेमें कहा गया है कि, "जीवके निकलनेका मार्ग पाच प्रकारका है। १ पगसे, २ जघासे, ३ पेटसे, ४ मस्तकसे और ५ सर्वागसे-इन पाच मार्गसे जीव निकलता है। जो जीव पैरोंसे निकलता है वह नारकी होता है, जघासे निकलता है वह तिर्यच होता है, पेटसे निकलता है वह मनुष्य होता है, मस्तकसे निकलता है वह देवता होता है और सर्वागसे निकलता है वह मोक्षमे जाता है।" अब श्री जिनेश्वर भगवतके निर्वाण बाद होनेवाले देवताके कृत्यका वर्णन किया जाता है—"इन्द्र अवधिज्ञान द्वारा प्रभुका मोक्ष-निर्वाण जान, वहा आ विधिपूर्वक मोक्ष कल्याणक उत्सव भक्तिपूर्वक करता है।" यहा इस प्रकार भावना है जब आसनकप द्वारा इन्द्र प्रभुका मोक्ष होना जानता है तो प्रथम तो खेद सहित कहता है कि, "अरे! जगत्पतिका निर्वाण हो गया!" फिर विचारता है कि, "अब शीघ्र हमे उनका उत्सव करना चाहिये।" ऐसा विचार पूर्ववत् पादुकाका त्याग कर वही ठहर भावसे प्रभुको वन्दना करता है। कहा है कि, "इन्द्र प्रभुके निर्जीव शरीरको भी वदना

यहा शिष्य प्रश्न करता है कि, "हे गुरू महाराज ! निष्कर्म आत्मावाले सिद्धकी लोकान्त तक गति किस प्रकार होती है ?" गुरू उत्तर देते हैं कि "हे भद्र ! पूर्व प्रयोग से गति होती है।" अचिन्त्य आत्माने वीर्य द्वारा उपान्त्यके दो समयमें पचासी कर्म प्रकृतिका क्षय करनेके लिये जो व्यापार पूर्वमें प्रयुक्त किया हो उसके प्रयत्नसे सिद्धकी गति लोकान्त तक होती है। यहा दृष्टान्त है कि जैसे कुम्हार का चक्र, हिंडोला, बाण और गोफणका गोला पूर्व प्रयोगके बलसे गति करता है इसी प्रकार पूर्वके प्रयोगके बलसे सिद्धकी गति होती है, अथवा कर्मसंगके अभावसे गति होती है। जैसे किसी तुम्बे पर मृतिकाके आठ लेप किये हुए हो उन लेपोंके हटने बाद उस तुम्बेकी जलमे ऊर्ध्व गति होती है, उसी प्रकार कर्मरूप लेपके अभावसे सिद्धकी ऊर्ध्व गति होती है अथवा बंधमोक्षके—कर्मके बन्धन छुटनेके कारणसे गति होती है। जिस प्रकार एरंडके फलके अन्दर रहे बीज आदिकी बंधन हटनेसे ऊर्ध्व गति होती है उसी प्रकार कर्मबंधके छेदसे सिद्धकी ऊर्ध्व गति होती है, अथवा स्वभावके परिणामसे भी सिद्धात्माकी ऊर्ध्व गति होती है। जिस प्रकार पाषाणका स्वभाव नीचे गिरनेका, वायुका स्वभाव आडा जानेका और अग्निका स्वभाव ऊंचे जानेका होता है उसी प्रकार आत्माका स्वभाव भी ऊर्ध्व गति करनेका है।

सिद्ध अपने स्थानसे चलित नही होते। इसके विषयमें स्पष्टीकरण करते हैं कि—गौरवके (भारीपनके) अभावसे सिद्ध

नीचे नही गिरते, प्रेरक विना आडे अवले नही जाते और धर्मास्तिकायके अभावसे लोक उपर भी नही जा सकते।

अब यह बतलाया जाता है कि जीवका सिद्धिगतिमें गमन किस प्रकार होता है —सिद्धिमें जाते हुए सयमी महात्माका चेतनात्मा शरीररूप पीजरेसे सर्व अग द्वारा निकल जाता है। इस विषयमें श्री ठाणागसूत्रके पाचवे ठाणेमें कहा गया है कि, "जीवके निकलनेका मार्ग पाच प्रकारका है। १ पगसे, २ जघासे, ३ पेटमे, ४ मस्तकसे और ५ सर्वांगसे–इन पाच मार्गसे जीव निकलता है। जो जीव पैरोंसे निकलता है वह नारकी होता है, जघासे निकलता है वह तिर्यंच होता है पेटसे निकलता है वह मनुष्य होता है, मस्तकसे निकलता है वह देवता होता है और सर्वांगसे निकलता है वह मोक्षमे जाता है।" अब श्री जिनेश्वर भगवतके निर्वाण बाद होनेवाले देवतार्क कृत्यका वर्णन किया जाता है—"इन्द्र अवधिज्ञान द्वारा प्रभुका मोक्ष-निर्वाण जान, वहा आ विधिपूर्वक मोक्ष कल्याणक उत्सव भक्तिपूर्वक करता है।" यहा इस प्रकार भावना है जब आसनकप द्वारा इन्द्र प्रभुका मोक्ष होना जानता है तो प्रथम तो रुदन सहित कहता है कि, "अरे! जगत्पतिका निर्वाण हो गया!" फिर विचारता है कि, "अब शीघ्र हमे उनका उत्सव करना चाहिये।" ऐसा विचार पूर्ववत् पादुकाका त्याग कर वही ठहर भावसे प्रभुको वन्दना करता है। कहा है कि, "इन्द्र प्रभुके निर्जीव शरीरको भी वदना

करता है, अत समकित दृष्टि जीवोंको प्रभुके द्रव्य निक्षेपों को भी वन्दना करना योग्य है।"

फिर इन्द्र परिवार सहित प्रभुके निर्वाण स्थान पर आ अश्रुपूर्ण नेत्रासे खेद सहित तथा उत्साह रहित शोक करता हुआ, प्रभुके शरीरकी तीन प्रदक्षिणा कर प्रभुको नमस्कार कर इस प्रकार कहता है कि, "हे नाथ! हम तुम्हारे धर्म सेवक हैं, फिर आप हमारी ओर पूर्ववत् क्यों नहीं देखते? यह अकस्मात् क्या कर लिया? हमारे जैसे निरपराधीका इस प्रकार त्याग करना आपको योग्य नहीं था। इस भवाटवीमें तुम्हारे जैसे विश्वपतिको इस प्रकार अकेलापन क्यों कर योग्य है, कि जिससे तुम हम सबको यहीं छोड अकेले अनंत सुखका भोग करोगे? हे नाथ! यह रमणीय क्षेत्र आपके बिना रात्रिमें दीपक रहित घर सदृश और दिनमें सूर्य रहित आकाश सदृश शून्य प्रतीत होता है। हे स्वामी! यद्यपि आप तो अनंत सुखके भोगनेवाले हो गये हैं, परन्तु हम तो हमारे स्वार्थके लिये शोकातुर हैं।"

इस प्रकार विलाप कर फिर इन्द्र आभियोगिक देवताओं द्वारा नन्दनवनसे गोशीर्ष चन्दनके बहुतसे काष्ट मंगवाता है। देवता चंदनकाष्ट लाकर उनके द्वारा अर्हतके लिये, गणधरके लिये और साधुओंके लिये अलग अलग तीन चिताय बनवाते हैं। उनमेसे पूर्व दिशामें भगवंतकी चिता वर्तुलाकार-गोल बनाते हैं। दक्षिण दिशामें गणधरोंकी चिता त्रिकोणी बनाते हैं और पश्चिम दिशामें मुनियोंकी चिता चोरस बनाते हैं। फिर

इन्द्र क्षीर सागरसे लाये जल द्वारा प्रभुके शरीरको स्नान करा चन्दन द्वारा विलेपन कर, हंस लक्षणवाले वस्त्र पहिना, सर्व अलंकारोंसे विभूषित करता है। अन्य देवता गणधरोंके शरीर और मुनियोंके शरीरको उसी प्रकार स्नान कराकर पूजते हैं। फिर इन्द्रकी आज्ञासे देवता तीन पालकियें बनाते हैं। उनमेंसे एकमें शक्र इन्द्र स्वयं प्रभुके देहको स्थापन करता है। दूसरे देवता गणधरों और मुनियोंके शरीरको दूसरी दो शिविकाओंमें रखते हैं। फिर इन्द्र तथा देवतागण उन तीनों शिविकाओंको उठा कर अनुक्रमसे तीनों चिताओं पर महोत्सव सहित रखते हैं फिर शक्रकी आज्ञासे अग्नि कुमार देवता साश्रुनयनसे उन चिताओंमें अग्नि रखता है। वायुकुमार देव अपने इन्द्रकी आज्ञासे उस अग्निको प्रज्वलित करते हैं। अन्य देवता इन्द्रकी आज्ञासे मधु तथा घीके कुंभका अग्निको प्रदीप्त करनेके लिये होम करते हैं। फिर जब शरीरको दग्ध करते हुए सिर्फ अस्थि-हड्डी मात्र शेष रह जाते हैं तब इन्द्रकी आज्ञासे मेघकुमार देवता उन चिताओं को क्षीरसमुद्रादिकसे लाये जलकी वृष्टि द्वारा बुझाते हैं। फिर शक्र इन्द्र प्रभुके दाहिनी ओरकी ऊपरकी दाढ ग्रहण करता है। चमरेन्द्र दाहिनी ओरकी नीचेकी दाढे लेता है क्योंकि वे उन दिशाओंके स्वामी हैं। ईशान इन्द्र बाईं ओरकी ऊपरकी दाढ ग्रहण करता है, और बलि-इन्द्र बाईं ओरकी नीचेकी दाढको स्वीकार करता है। शेष देवता गण उनके अवशिष्ट अस्थिको ग्रहण करते हैं। कई देवता अपना आचार

जान कर लेते हैं और कई भक्तिवश ऐसा करते हैं । इस दाढाका महात्म्य इस प्रकार है कि, नवीन उत्पन्न होनेके लिये सौधर्म और ईशान इन्द्रको विमानके लिये जब विवाद होता है तब उनके बीच बडा युद्ध हो जाता है, उसके निवारणार्थ बडे देवता इन जिन दाढाका अभिषेक कर उस जल द्वारा छांट डालते हैं, जिससे वो विग्रह-युद्ध शांत हो जाता है।

चिताकी भस्म विद्याधर आदि ग्रहण करते हैं, क्योंकि वो सर्व उपद्रवोंका निवारण करनेके लिये औषधरूप है । अपितु लोक "मैं पहले लू, मैं पहले लू" इस प्रकार स्पर्धासे उसको ग्रहण करते हैं । अत उस स्थान पर एक बडा खड्डा पड जाता है। फिर प्रभुकी चिताके स्थान पर अन्य लोकोंके चरणस्पर्शसे आशातना न हो इसके लिये व उससे तीर्थकी प्रवृत्ति हो इस हेतुसे शक्रेन्द्र वहां एक चैत्य स्तूपकी रचना करता है । इसी प्रकार गणधरों व मुनियोंकी चिताओंके स्थान पर भी इन्द्र दो स्तूप बनवाता है ।

इस प्रकार चतुर्विध देवता प्रभुका निर्वाण महोत्सव कर नन्दीश्वर द्वीपमें जा अट्ठाई उत्सव कर अपने अपने स्थानको जाते हैं । वहां वे प्रभुकी दाढोंको अपनी अपनी सुधर्मासभामें माणवक चैत्यस्तंभको ऊपर बीत कर रहे रत्नके डब्बे में रख प्रतिदिन पूजते हैं, इसी प्रकार उसकी आशातना होनेके भयसे देवता उस सुधर्मा सभामें काम क्रीडा भी नहीं करते। अब यह बतलाया जाता है कि सिद्धका सुख कैसा होता है—"अव्यय पदको प्राप्त हुए सिद्धोंको जो सुख है

वह सुख मनुष्य तथा देवताओंको नहीं है। उस सुखके माधुर्यको जाननेवाले केवली भी मूगे मनुष्यके समान गुड आदि मिष्ट पदार्थको खा लेने पर भी उसके माधुर्यको नहीं कह सकते उसी प्रकार उसको नहीं बतला सकते। सिद्ध, बुद्ध, पारगत, परपरागत ऐसे मुक्त जीव अनता अनागत काल सुखपूर्वक लीलाम व्यतीत करते हैं।"

अरूपी होते हुए भी उत्कृष्ट रूपको प्राप्त करनेवाले, अनग होते हुए भी अनग (काम) से मुक्त हुए और अनत अक्षर होते हुए भी अशेष वर्ण, रस, गध, स्पर्शादिसे रहित हुए तथा वचनसे अगोचर ऐसे सिद्धके जीवोंको हम स्तुति-नमस्कार करते हैं।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ पचाधिकद्विशततम प्रबन्ध ॥२०५॥

व्याख्यान २०६

कालका स्वरूप

अवसर्पिण्युत्सर्पिण्यो स्वरूप जिननायकै ।
यथा प्रोक्त तथा वाच्य, भव्याना पुरतो मुदा ॥१॥

भावार्थ —"श्री जिनेश्वर भगवतने अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालका स्वरूप जैसा बतलाया है वैसा ही भव्य जीवोंके समक्ष हर्ष पूर्वक वर्णित किया जाता है।"

कालका स्वरप इस प्रकार है–अवसर्पिणी और उत्स र्पिणी मिलकर एक कालचक्र होता है, उस कालचक्रमें बारह आरे–विभाग होते हैं। उनमसे प्रथम आरेकी आदिमें–पृथ्वी पर प्रथम प्रवृत्त होनेवाले कालचक्रके ग्यारहवे आरेके प्रान्तमे भिन्न भिन्न सात सात दिन तक विद्युत और विषादिक की हुई वर्षासे तृण और अन्नादिकका नाश हो जाता है और मनुष्य रथके मार्ग जितने विस्तारवाली, कई मत्स्यसे आकुल गंगा तथा सिंधु नदीके किनारे पर स्थित वैताढ्यगिरिके दोनों ओर नो नो बील मिलाकर कुल बहत्तर बीलोंमे अनेक रोगोंसे व्याप्त ऐसे बीलोंमे रहते हैं। वे मांसाहारी होनेसे प्राय दुर्गतिगामी, निर्लज्ज, नग्न, दुर्भाषी कुत्र धर्म रहित, क्रूरकर्मी, सोलह वर्षकी आयुष्यवाले और एक हाथके शरीर वाले होते हैं। स्त्रिये भी छ सालकी आयुमे गर्भ धारण करनेवाली, अधिक सन्तानवाली, और दु खसे प्रसव करनेवाली होती हैं। उत्सर्पिणीके प्रथम आरेमे धीरे धीरे उन बिलोंमेसे मनुष्य बाहर निकलते हैं। इस प्रकार समय बीतने पर उत्सर्पिणीके प्रथम आरेके अन्तमें पुष्करस, क्षीररस, घृतरस, अमृतरस और सर्व रस नामक पांच जातिके मेघ भिन्नभिन्न तथा सात दिन तक बरसते हैं, जिससे पृथ्वी सर्व प्रकारके धान्यादिकसे रसवाली होती है। उत्सर्पिणीके प्रारंभसे मनुष्योंके देह तथा आयुष्य धीरे धीरे बढने लगते हैं, वे यहांतक बढते हैं कि प्रथम आरेके अन्तमे उनके शरीर दो हाथके प्रमाणवाले और आयुष्य बीस वर्षका हो जाता है।

इस प्रकार इक्कीस हजार वर्षका पहला दुषमदुषम नामका आरा बीतने बाद दूसरे दुषम आराका आरंभ होता है । जिसमें प्रारंभमें तो मनुष्यका शरीर दो हाथका और आयुष्य बीस वर्षका होता है, परन्तु वह धीरे धीरे बढते बढते दूसरे आरेके अन्तमें मनुष्यके शरीर सात हाथ प्रमाण और आयुष्य एकसो बीस वर्षका हो जाता है । दूसरे आरेमें जाति स्मरणसे नगर वसाने आदि सर्व मर्यादाके करनेवाले सात कुलकर होते हैं ।

इस प्रकार इक्कीस हजार वर्षका दूसरा दुषम नामका आरा व्यतीत होने बाद दुषमसुषम नामक तीसरा आराका आरंभ होता है । उस तीसरे आरेके नवासी पक्ष व्यतीत होने बाद प्रथम तीर्थंकर सात हाथकी कायावाले और बहत्तर वर्षकी आयुष्यवाले होते हैं । वे सर्व प्रकारके रूपादि-अतिशयवंत और सुवर्ण सदृश कान्तिवाले श्री महावीर प्रभु जैसे कुंडग्राममें उत्पन्न हुए थे वैसे होते हैं । यहां नगरका नाम वर्तमान चोवीसीके चरम तीर्थंकरके आश्रितसे कहा गया है अन्यथा उनकी नगरीका नाम तो अन्य भी होता है । दीवाली कल्पमें पद्मनाभ जिनकी उत्पत्तिका स्थान शतद्वार नामक नगर कहा गया है । इसी प्रकार आगे अन्य तीर्थंकरोंके लिये भी जान लेवे । उन श्रीजिनेश्वरके पांचवे कल्याणकमें मुक्ति पाये पश्चात् कुछ अन्तरसे दूसरे तीर्थंकर नो हाथके शरीरवाले, नील वैडुर्य मणि जैसे शरीरके वर्णको धारन करनवाले और सो वर्षके आयुष्यवाले होते हैं । वे प्रभु प्रथम तीर्थंकरकी

उत्पत्तिके समयसे दो सो पचीस वर्ष बाद मानो शांत रसकी मूर्ति हो वैसे उत्पन्न होते हैं । वे प्रभु भी जैसे वाराणसी नगरीमें श्रीपार्श्वनाथ प्रभुने तीर्थ प्रवर्ताया था वैसे ही तीर्थको प्रवर्ता अनुक्रमसे मोक्ष जानेके कितने ही समय बाद सात धनुषकी कायावाले, सात सो वर्षकी आयुष्यवाले और सुवर्ण सदृश कान्तिवाले प्रथम चक्रवर्ती काम्पिल्य नगरमें जैसे ब्रह्मदत्त चक्री हुए थे वैसे उत्पन्न होते हैं । वे भरतक्षेत्रके छ खंडको साधते हैं । नव महानिधि और चौदह रत्नोंके स्वामी होते हैं । पच्चीस हजार यक्ष उनकी सेवा करते हैं । ६४००० स्त्रिये और एक लाख अट्ठाइस हजार वारांगनायें उनको आनन्द देती हैं और वे छन्नु कोटि गावके अधिपति होते हैं । उनकी मृत्युके पश्चात् दूसरे तीर्थकरके जन्मसे तीयासी हजार सातसो पचास वर्ष व्यतीत होने पश्चात् तीसरे तीर्थकर शौर्यपुरमें उत्पन्न होते हैं । वे एक हजार वर्षके आयुष्यवाले, दस धनुषकी कायवाले और श्याम कांतिवाले होते हैं । इस समय प्रथम वासुदेव उत्पन्न होते हैं । वे चक्रसे वैतढ्यगिरि पर्यंत त्रिखंड पृथ्वीको साधते हैं । वे अर्धचक्री प्रतिवासुदेवका चक्रसे ही उनका अंत करते हैं । सोलह हजार मुकुटबद्ध राजा उनके चरणोंकी सेवा करते हैं । जब वे गर्भमें आते हैं तब उनकी माता सात स्वप्न देखती हैं । वे वासुदेव चक्र आदि सात रत्नोंके अधिपति, एक हजार वर्षकी आयुष्यवाले, पीताम्बरधारी, ध्वजमें गरुडके चिह्नवाले, श्याम मूर्ति और दस धनुष्यकी कायावाले होते हैं ।

उनके जेष्ठ बंधु बलदेव होते हैं । व उज्ज्वल वर्णी कायावाले, गर्भमें आते समय चार स्वप्नसे सूचित होनेवाले नीलवस्त्र धारण करनेवाले, ध्वजामें तालवृक्षका चिह्नवाले, हल मूशलादि शस्त्रको धारण करनेवाले, बारह सो वर्षकी आयुष्यवाले, मृत्यु पाकर स्वर्ग या मोक्षमें जानेवाले और अपने अनुज बंधुके साथ परम स्नेहाकुलवाले उत्पन्न होते हैं । इस समय प्रथम नारद मुनि भी होते हैं, जो बहुत कलहप्रिय आकाशगामी विद्यावाले, सर्व राजाओं आदिसे पूजा सत्कार प्राप्त करनेवाले और दृढ शीलवाले होते हैं । व संयम तथा केवल ज्ञानके द्वारा उसी भवमें मोक्षगामी होते हैं । इस प्रकार तीसरे तीर्थंकरके समयमें चार उत्तम पुरुष होते हैं ।

तीसरे जिनके मुक्ति प्राप्त किये बाद कितने ही समय व्यतीत होने पश्चात् राजगृहनगरमें दूसरे चक्रवर्ती उत्पन्न होते हैं । उनकी सुवर्ण सदृश कान्ति, बारह धनुषकी काया और तीन हजार वर्षका आयुष्य होता है । उनके सर्व वैभवका विस्तार प्रथम चक्रवर्ती जितनाही होता है ।

तीसरे तीर्थंकरके जन्मसे पांच लाख वर्ष व्यतीत होने पश्चात् चौथे तीर्थंकर उत्पन्न हैं । मिथिलापुरीको पवित्र करते हैं । उनका आयुष्य दस हजार वर्षका, काया पन्द्रह धनुषकी और देहका वर्ण सुवर्ण जैसा होता है । इस अवसरमें कांपिल्यपुरमें तीसरे चक्रवर्ती होते हैं । उनका वैभव आदि सब प्रथम चक्रवर्तीके सदृश ही होता है । इसी प्रकार आगे होनेवाले चक्रवर्तीके लिये भी समझ लिजिये । उन

चक्रवर्तियोंकी गति समझ कर ऐसा मानलेना चाहिये कि जो परिग्रहकी अत्यन्त आशक्तिमे अन्त अवस्था तक चक्रवर्तिपन नहीं छोड़ते वे मरकर अवश्य अधोगतिमे (नरकमे) जाते हैं और जो धर्मदवपन (श्रामण्य) अगीकार कर लेते हैं अर्थात चारित्र धर्मका आचरण कर लेते हैं वे अवश्य स्वर्ग या मोक्षमेसे एक गतिको प्राप्त करते हैं ।

चौथे तीर्थकरके मोक्षम जाने पश्चात् कितनहा समय बाद दूसरे प्रतिवासुदेव, वासुदेव, बलदेव तथा नारद मुनि होते हैं । उनका वैभव तथा मृत्यु बादकी गति आदि पूर्ववत् ही समझे । सर्व अर्द्धचक्री (वासुदेव) पूर्वजन्मम उपार्जन किये सुकृतसे नियाणु करनेसे वैसी सपत्ति प्राप्त कर मृत्युके पश्चात् नरकमे जाते हैं । प्रतिवासुदेव भी उसी प्रकार नरकमे जाते हैं और बलदेव पूर्व भवम नियाणु न करनेसे धर्मा राधन करनेसे समृद्धिके निस्तारका सपादन कर सयम ले उर्ध्वगतिम ही जाते हैं । सर्व नारद चारित्र शुद्धिके कारणसे मोक्षमे हा जाते हैं ।

उपर कहे दूसरे अर्द्धचक्रीका शरीर सालह धनुप प्रमाण होता है और आयुष्य बारह हजार वर्प प्रमाण होता है और बलदेवका आयुष्य पन्द्रह हजार वर्पका होता है। वे चार पुरुष कालधर्मसे शेषकीर्ति होने पश्चात् चौथ तीर्थकरके जन्मसे छ लाख वप व्यतीत होने पर राजगृहनगरम पाचवे तीर्थकर होते हैं, वे श्याम कातिवाले, तीस हजार वर्पकी आयुष्य वाले और वीस धनुपकी कायावाले होते हैं । उस

समय वाराणसी नगरीमें बीस धनुषकी काया वाले और बीस हजार वर्षकी आयुष्यवाले मेघ चक्रवर्ती होते हैं। पांचवें तीर्थंकरके मोक्षमें जाने पश्चात् उनको निर्वृतिके समयसे चोपन लाख वर्ष व्यतीत होने पर छट्ठे तीर्थंकर मिथिलानगरीमें उत्पन्न होते हैं। उनकी काया पच्चीस धनुषकी आयुष्य पचावन हजार वर्षका और शरीरकी कांति मरकत मणि सदृश होती है। आप भी प्रथमके पांच प्रभु सदृश ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्यरूप अनंत चतुष्टयको प्राप्त करने पश्चात् अर्थात् निर्वाण पाने बाद कितनाही समय बीतने पर तीसरे वासुदेवादि चार पुरुष उत्पन्न होते हैं। उनका सर्व स्वरूप पूर्ववत्‌ही समझ लेवें। विशेष इतना है कि तिसरे वासुदेवका शरीर छव्वीस धनुष प्रमाण और आयुष्य छप्पन हजार वर्षका होता है और बलदेवका आयुष्य पंसठ हजार वर्षका होता है। इन चार पुरुषोंके व्यतीत होने बाद कितना ही समय बीता जाने पर पांचवे चक्रवर्ती हस्तिनापुरमें उत्पन्न होते हैं। उनके शरीरका प्रमाण अठाईस धनुषका और आयुष्य साठ हजार वर्षका होता है। इन पांचवें चक्रवर्तीके होने बाद कितनाही समय व्यतीत होने पर चोथे बलदेवादि चार पुरुष होते हैं, उनका स्वरूप पूर्व प्रमाणही समझें। विशेष इतना कि चोथे अर्धचक्रीके शरीरका प्रमाण उनतीस धनुषका और आयुष्यका प्रमाण पेंसठ हजार वर्षका होता है। बलदेवके आयुष्यका मान पचासी हजार वर्षका होता है।

इन चार पुरुषोंके काल कर जाने पश्चात् छट्ठे तीर्थंकरके जन्मसे एक हजार कोटी वर्ष व्यतीत होने पर दिल्लीनगरमें सुवर्णवर्णी सातवे तीर्थंकर अवतरित होते हैं। उस अवसर पर उसी नगरमे चक्रवर्तीका भी जन्म होता है। उस चक्री और भगवतके शरीरका प्रमाण तीस धनुषका और आयुष्यका प्रमाण चोरासी हजार वर्षका होता है।

उन सातवे तीर्थंकरके मोक्षमें जाने बाद उनके जन्म से एक हजार क्रोड वर्षमें न्यून पल्योपमके चोथे भाग जितना काल व्यतीत होने पर आठवे तीर्थंकर हस्तिनापुरको अपने अवतारसे पवित्र करते हैं। उनके शरीरका प्रमाणमें तीस धनुषका, आयुष्यका प्रमाण पचाणु हजार वर्षका और शरीरकी कांति सुवर्ण सदृश होती है। उस अवसर पर उसी नगरमें सातवे चक्रवर्ती भी होते हैं। उनके शरीर तथा आयुष्यका प्रमाण उस समयके तीर्थंकर जितना होता है।

आठवे तीर्थंकरके मोक्षमें जाने पश्चात् उनके जन्मसे अर्ध पल्योपम समय व्यतीत होने पर उसी नगरमें नवमें तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं। उसी समय उसी नगरमें आठवे चक्रवर्ती भी उत्पन्न होते हैं। उन दोनोंके शरीरका प्रमाण चालीस धनुषका और आयुष्यका प्रमाण एक लाख वर्षका होता है। उनके निर्वृत्ति-मोक्षपाने बाद कितने ही समयके बीत जाने पर हस्तिनापुरमें नवमें चक्रवर्ती होते हैं। उनके शरीरका मान साढे इक्तालीस धनुषका और आयुष्यका मान तीन लाख वर्षका होता है। उन नवमे चक्रवर्तीके कथाशेष

होने कितने ही समयके बीत जाने पर श्रावस्ती नगरीमें दशवे चक्रवर्ती उत्पन्न होते हैं। उनके शरीरका मान साढे ब्यालीस धनुषका और आयुष्यका मान पाव लाख वर्षका होता है।

दसवे चक्रवर्तीके होने बाद रत्नपुर नगरमें सुवर्ण-कांतिवाले दसवे तीर्थंकर नवमे तीर्थंकरके जन्मसे पोन पल्योपमसे न्यून तीन सागरोपम बाद होते हैं। उनके शरीरका प्रमाण पेतालीस धनुषका और आयुष्यका प्रमाण दस लाख वर्षका होता है। इस समय बलदेवादि चार प्रधान पुरुष अवतरित होते हैं। उनका स्वरूप पूर्ववत् जान ले। विशेष इतना कि पाचवे वासुदेवके आयुष्य तथा शरीरका मान उस समयके जिनके जितना समझे और बलदेवका आयुष्यका प्रमाण तीस लाख वर्षका जाने।

दसवे तीर्थंकरके मुक्तिरूप वधू-स्त्रीके स्वामी होने बाद उनके जन्मसे चार सागरोपम जितने समयके व्यतीत हो जाने पश्चात् अयोध्या नगरीमें ग्यारहवे तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं। उनके शरीरकी कांति सुवर्ण सदृश होती है, शरीरका प्रमाण पचास धनुषका होता है और आयुष्यका प्रमाण तीस लाख वर्षका होता है। उनके समयमें छट्ठे बलदेव आदि चार पुरुष उत्पन्न होते हैं। उनमेसे अर्द्धचक्रीके शरीर व आयुष्यका प्रमाण उस समयके जिनके जितना होता है और बलदेवका आयुष्य पचायन लाख वर्षका होता है।

ग्यारहवे तीर्थंकरके अपने आत्मस्वरूपको प्राप्त करने बाद उनके जन्मसे नौ सागरोपम प्रमाण काल व्यतीत होनेके

पश्चात् कपिलपुरमें बारहवे तीर्थंकर जन्म पाते हैं । उनके शरीरका प्रमाण साठ धनुपका और आयुष्यका प्रमाण साठ लाख वर्षका होता है। इस समय सातवे बलदेवादि चार पुरूप उत्पन्न होते हैं । उनका सब स्वरूप पूर्ववत ही होता है। विशेष इतना की सातव अर्द्धचक्रीके शरीर और आयुष्यका प्रमाण उस समयके जिनके जितना और बलदेवके आयुष्यका प्रमाण पेसठ लाख वर्षका होता है।

बारहवे जिनेश्वरके मुक्ति पाने पश्चात् उनके जन्मसे तीस सागरोपम गये बाद तेरवे तीर्थंकर कंपानगरीमे उत्पन्न होते हैं । उनका शरीर सितर धनुपका और आयु बहतर लाख वर्षकी होती है । देहका वर्ण सुवर्ण सदृश होता है । उनके समयमें आठवे बलदेवादि चार पुरुप प्रगट होते हैं । उनमेसे वासुदेवका आयुष्य तथा शरीरका प्रमाण उस समयके जिनके जितना होता है और बलदेवके आयुष्यका प्रमाण पचहत्तर लाख वर्षका होता है ।

तेरहवे तीर्थंकरके महानंदपदकी महर्द्धिको प्राप्त करलेने पश्चात् उनके जन्मसे चोपन सागरोपम जितना समय व्यतीत होने पर सिंहपुरमे चौदव तीर्थंकर उत्पन्न होत हैं। उनके शरीरकी शोभा सुवर्णकी प्रभाको लज्जित करनेवाली होती है। उनके आयुष्यका प्रमाण चोरासी लाख वर्षका होता है और शरीरका प्रमाण अस्सी धनुपका होता है । इस अवसर पर नवमे बलदेव आदि चार श्रेष्ठ नर उत्पन्न होते हैं । उनमे अर्द्धचक्रीका शरीर तथा आयुष्यका प्रमाण उस समयके

तीर्थंकरके जितना होता है और उनके अनुज पश्चुके आयुष्यका प्रमाण पचासी लाख वर्षका होता है।

चौदहवें तीर्थंकरके मुक्तिरूप नवोढाके आलिंगन करनेरूप अति रमणीय सुखको प्राप्त करने बाद उनके जन्मसे चामठ लाख छवीस हजार वर्ष अधिक ऐसे गा सागरोपममें न्यून एक कोटि सागरोपमके काल बीतने बाद पन्द्रहवें तीर्थंकर भद्रिलपुरमें अवतरित होते हैं। उनके आयुष्यका प्रमाण एक लाख पूर्वका, शरीरका प्रमाण नव्वे धनुषका और शरीरकी कांति सुवर्ण सदृश होता है।

छ जीव निकायके स्वामी उन प्रभुके शिवपद पाने पश्चात् नव कोटि सागरोपम काल व्यतीत होने पर सोलहवें तीर्थंकर काकंदी नगरीमें उत्पन्न होते हैं। उनके शरीरका वर्ण चन्द्र सदृश, कायाका प्रमाण सो धनुष और आयुष्यका प्रमाण दो लाख वर्षका होता है।

उन बोधिबीज दायक श्रीतीर्थंकर प्रभुके मुक्ति पाने बाद उनके जन्मसे नव्वे करोड सागरोपम काल बीतने पर चन्द्रपुरीमें सतरहवें तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं, उनका आयुष्य दस लाख पूर्वका, शरीर मूर्तिमान चन्द्र सदृश और शरीरका प्रमाण डेढसो धनुषका होता है।

उन भगवन्तके तीर्थको प्रवर्ता कर्ममलसे दूर कर महानन्दपदको प्राप्त करने बाद उनकी उत्पत्तिके समयसे नौ सो कोटि सागरोपम प्रमाण समय बीतने पर बनारसी नगरीमें

अठारवे तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं। उन सुवर्णवर्णी प्रभुके आयुष्य प्रमाण बीस लाख पूर्वका, और कायाका प्रमाण दो सो धनुषका होता है।

उन प्रभुके श्री सूर्य सदृश यथार्थ मोक्ष मार्गका प्रकाश कर शिव सुखको प्राप्त करने बाद नो हजार क्रोड सागरोपम व्यतीत होने पर, कौशाम्बी नगरीमें उन्नीसवे तीर्थंकर भगवन्त उत्पन्न होते हैं। उनके शरीरका प्रमाण अठाईसो धनुषका और आयुष्यका प्रमाण तीस लाख पूर्वका होता है।

सर्व पृथ्वी मण्डलको प्रबोध दे उन प्रभुके सिद्धरूप महलके सुख सपादन करन पर उनके बाद नव्वे हजार क्रोड सागरोपम काल व्यतीत होने पर, बीसवे तीर्थंकर अवतरित हो कोशला नगरीको पवित्र करते हैं। उन जगत् वत्सल और सुवर्णवर्णा प्रभुके शरीरका मान तीनसो धनुषका और आयुष्यका प्रमाण चालीस लाख पूर्वका होता है।

वे त्रिकालवेत्ता केवलज्ञान द्वारा विश्वगत सर्व मूर्त–अमूर्त पदार्थको प्रकाशित करने वाले प्रभु जब मुक्तिपुरीके पति बन जाते हैं उसके बाद नव लाख कोटी सागरोपम काल व्यतीत होने पर विनीता नगरीमें बडे राजाके कुलमें इक्कीसवे तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं। अज्ञानरूप अंधकारको नाश करनेमें सूर्यरूप प्रभुके शरीरका प्रमाण साढे तीनसो धनुषका और आयुष्यका प्रमाण पचास लाख पूर्वका होता है। देह सुवर्ण वर्णी होता है।

- इन प्रभुके भी ज्ञानादि तीन रत्नोंके दानसे अनेक भव्य जनोंका उपकार कर सिद्धपदको प्राप्त करने बाद दस लाख कोटि सागरोपम समय व्यतीत होने पर श्रावस्ती नगरीमें सुवर्ण समान कान्तिवाले पांचवें तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं। उनके शरीरका प्रमाण चारसो धनुषका और आयुष्यका प्रमाण साठ लाख पूर्वका होता है।

उन प्रभुके भी जन्ममृत्युका उच्छेद कर मुक्तिको प्राप्त करने बाद उनके जन्मसे तीस लाख कोटि सागरोपमका समय व्यतीत होने पश्चात् अयोध्या नगरीमें सुवर्ण समान कांति वाले छट्ठे तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं। उनके शरीरका प्रमाण साढ़े चारसो धनुषका और आयुष्यका प्रमाण बहत्तर लाख पूर्वका होता है। उस समय ग्यारहवें चक्रवर्ती उसी नगरीमें अवतरित होते हैं। उनके देह तथा आयुष्यका प्रमाण उस समयके जिनके बराबर ही होता है।

अजितनाथ समान वे प्रभु सर्व भवप्रपंचको दूर कर जब मोक्ष चले जाते हैं बादमें उनकी उत्पत्तिके समयसे पचास लाख कोटि सागरोपम समय व्यतीत होने बाद दुषमसुषमा नामक तीसरा आरा समाप्त हो जाता है। इस आरेमें तेईस तीर्थंकर ग्यारह चक्रवर्ती और छतीस प्रतिवासुदेव आदि कुल सीत्तर (नव नारद सहित) उत्तम पुरुष उत्सर्पिणी नामक कालचक्रके दलमें उत्पन्न होते हैं। इस तीसरे आरेके प्रारंभ समय मनुष्यका आयुष्य एकसो वीस वर्षका होता है। यह यहां तक बढता है कि तीसरे आरेके अन्तमें क्रोड पूर्वका

अठारवे तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं। उन सुवर्णवर्णी प्रभुके आयुष्य प्रमाण वीस लाख पूर्वका, और कायाका प्रमाण दो सो धनुषका होता है।

उन प्रभुके भी सूर्य सदृश यथार्थ मोक्ष मार्गका प्रकाश कर शिव सुखको प्राप्त करने बाद नो हजार क्रोड सागरोपम व्यतीत होने पर, कौशाम्बी नगरीमें उन्नीसवे तीर्थंकर भगवन्त उत्पन्न होते हैं। उनके शरीरका प्रमाण अठाईसो धनुषका और आयुष्यका प्रमाण तीस लाख पूर्वका होता है।

सर्व पृथ्वी मण्डलको प्रबोध दे उन प्रभुके सिद्धरूप महलक सुख संपादन करने पर उनके बाद नव्वे हजार क्रोड सागरोपम काल व्यतीत होने पर, वीसवे तीर्थंकर अवतरित हो कोशला नगरीको पवित्र करते हैं। उन जगत् वत्सल और सुवर्णवर्णी प्रभुके शरीरका मान तीनसो धनुषका और आयुष्यका प्रमाण चालीस लाख पूर्वका होता है।

वे त्रिकालवेत्ता केवलज्ञान द्वारा विश्वगत सर्व मूर्त—अमूर्त पदार्थको प्रकाशित करने वाले प्रभु जब मुक्तिपुरीके पति बन जाते हैं उसके बाद नव लाख कोटी सागरोपम काल व्यतीत होने पर विनीता नगरीमें बडे राजाके कुलमें इक्कीसवे तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं। अज्ञानरूप अंधकारको नाश करनेमें सूर्यरूप प्रभुके शरीरका प्रमाण साडे तीनसो धनुषका और आयुष्यका प्रमाण पचास लाख पूर्वका होता है। देह सुवर्ण वर्णी होता है।

इन प्रभुके भी ज्ञानादि तीन रत्नोंके दानसे अनेक भव्य जनोंका उपकार कर सिद्धपदके प्राप्त करने बाद दस लाख कोटि सागरोपम समय व्यतीत होने पर श्रावस्ती नगरीमें सुवर्ण समान कान्तिवाले बाइसवे तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं। उनके शरीरका प्रमाण चारसो धनुषका और आयुष्यका प्रमाण साठ लाख पूर्वका होता है।

उन प्रभुने भी जन्ममृत्युका उच्छेद कर मुक्तिको प्राप्त करने बाद उनके जन्मसे तीस लाख कोटि सागरोपमका समय व्यतीत होने पश्चात् अयोध्या नगरीमे सुवर्ण समान कांति वाले तेइसवे तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं। उनके शरीर का प्रमाण साढे चारसो धनुषका और आयुष्यका प्रमाण बहत्तर लाख पूर्वका होता है। उस समय ग्यारहवे चक्रवर्ती उसी नगरीमें अवतरित होते हैं। उनके देह तथा आयुष्यका प्रमाण इस समयके जिनके बराबर ही होता है।

अजितनाथ समान वे प्रभु सर्व प्रपंचको दूर कर जब मोक्ष चले जाते हैं बादमें उनकी उत्पत्तिके समयसे पचास लाख कोटि सागरोपम समय व्यतीत होने बाद दुषमसुषमा नामक तीसरा आरा समाप्त हो जाता है। इस आरेमें तेईस तीर्थंकर ग्यारह चक्रवर्ती और छवीस प्रतिवासुदेव आदि कुल सीत्तर (नव नारद सहित) उत्तम पुरुष उत्सर्पिणी नामक कालचक्रके दलमे उत्पन्न होते हैं। इस तीसरे आरेके प्रारंभ समय मनुष्यका आयुष्य एकसो वीस वर्षका होता है। यह यहां तक बढता है कि तीसरे आरेके अंतमें क्रोड पूर्वका

अठारवे तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं। उन सुवर्णवर्णी प्रभुके आयुष्य प्रमाण तीस लाख पूर्वका, और कायाका प्रमाण दो सो धनुषका होता है।

इन प्रभुके भी सूर्य सदृश यथार्थ मोक्ष मार्गका प्रकाश कर शिव सुखको प्राप्त करने बाद नो हजार क्रोड सागरोपम व्यतीत होने पर, कोशाम्बी नगरीमें उन्नीसवे तीर्थंकर भगवन्त उत्पन्न होते हैं। उनके शरीरका प्रमाण अठाईसों धनुषका और आयुष्यका प्रमाण तीस लाख पूर्वका होता है।

सर्व पृथ्वी मण्डलको प्रबोध दे उन प्रभुके सिद्धरूप महलमें सुख संपादन करने पर उनके बाद नव्वे हजार क्रोड सागरोपम काल व्यतीत होने पर, बीसवे तीर्थंकर अवतरित हो कोशला नगरीको पवित्र करते हैं। उन जगत् वत्सल और सुवर्णवर्णी प्रभुके शरीरका मान तीनसो धनुषका और आयुष्यका प्रमाण चालीस लाख पूर्वका होता है।

वे त्रिकालवेत्ता केवलज्ञान द्वारा विश्वगत सर्व मूर्त-अमूर्त पदार्थको प्रकाशित करने वाले प्रभु जब मुक्तिपुरीके पति बन जाते हैं उसके बाद नव लाख कोटी सागरोपम काल व्यतीत होने पर विनीता नगरीमें बडे राजाके कुलमें इक्कीसवे तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं। अज्ञानरूप अन्धकारको नाश करनेमें सूर्यरूप प्रभुके शरीरका प्रमाण साढे तीनसो धनुषका और आयुष्यका प्रमाण पचास लाख पूर्वका होता है। देह सुवर्ण वर्णी होता है।

इन प्रभुके भी ज्ञानादि तीन रत्नोंके दानसे अनेक भव्य मनोंका उपकार कर सिद्धपदके पात्र करने बाद दस लाख कोटि सागरोपम समय व्यतीत होने पर श्रावस्ती नगरीमें सुवर्ण समान कान्तिवाले बाइसवे तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं। उनके शरीरका प्रमाण चारसो धनुषका और आयुष्यका प्रमाण साठ लाख पूर्वका होता है।

उन प्रभुके भी जन्ममृत्युका उच्छेद कर मुक्तिको प्राप्त करने बाद उनके जन्मसे तीस लाख कोटि सागरोपमका समय व्यतीत होने पश्चात् अयोध्या नगरीमें सुवर्ण समान कान्ति वाले तेइसवे तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं। उनके शरीर का प्रमाण साढे चारसो धनुषका और आयुष्यका प्रमाण बहत्तर लाख पूर्वका होता है। उस समय ग्यारहवें चक्रवर्ती उसी नगरीमें अवतरित होते हैं। उनके देह तथा आयुष्यका प्रमाण इस समयके जिनके बराबर ही होता है।

अजितनाथ समान वे प्रभु सर्व भवप्रपञ्चको दूर कर जब मोक्ष चले जाते हैं बादमें उनकी उत्पत्तिके समयसे पचास लाख कोटि सागरोपम समय व्यतीत होने बाद दुषमसुषमा नामक तीसरा आरा समाप्त हो जाता है। इस आरेमें तेइस तीर्थंकर ग्यारह चक्रवर्ती और छतीस प्रतिवासुदेव आदि कुल सीत्तर (नव नारद सहित) उत्तम पुरुष उत्सर्पिणी नामक कालचक्रके दलमें उत्पन्न होते हैं। इस तीसरे आरेके प्रारंभ समय मनुष्यका आयुष्य एकसो बीस वर्षका होता है। यह यहां तक बढता है कि तीसरे आरेके अन्तमें क्रोड पूर्वका

अठारवे तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं। उन सुवर्णवर्णी प्रभुके आयुष्य प्रमाण वीस लाख पूर्वका, और कायाका प्रमाण दो सो धनुपका होता है।

उन प्रभुके भी सूर्य सदृश यथार्थ मोक्ष मार्गका प्रकाश कर शिव सुखको प्राप्त करने बाद नो हजार क्रोड सागरोपम व्यतीत होने पर, कोशाम्बी नगरीमें उन्नीसवे तीर्थंकर भगवन्त उत्पन्न होते हैं। उनके शरीरका प्रमाण अठाईसो धनुपका और आयुष्यका प्रमाण तीस लाख पूरवका होता है।

सर्व पृथ्वी मण्डलको प्रबोध दे उन प्रभुने सिद्धरूप महलमें सुख संपादन करने पर उनके बाद नव्व हजार क्रोड सागरोपम काल व्यतीत होने पर, वीसवे तीर्थंकर अवतरित हो कोशला नगरीको पवित्र करते हैं। उन जगत् वत्सल और सुवर्णवर्णी प्रभुके शरीरका मान तीनसो धनुपका और आयुष्यका प्रमाण चालीस लाख पूर्वका होता है।

वे त्रिकालवेत्ता केवलज्ञान द्वारा विश्वगत सर्व मूर्त–अमूर्त पदार्थको प्रकाशित करने वाले प्रभु जब मुक्तिपुरीके पति बन जाते हैं उसके बाद नव लाख कोटी सागरोपम काल व्यतीत होने पर विनीता नगरीमें बडे राजाके कुलमें इक्वीसवे तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं। अज्ञानरूप अंधकारको नाश करनेमें सूर्यरूप प्रभुके शरीरका प्रमाण साडे तीनसो धनुपका और आयुष्यका प्रमाण पचास लाख पूर्वका होता है। देह सुवर्ण वर्णी होता है।

इन प्रभुके भी ज्ञानादि तीन रत्नोंके दानसे अनेक भव्य जनोका उपकार कर सिद्धपदके प्राप्त करने बाद दस लाख कोटि सागरोपम समय व्यतीत होने पर श्रावस्ती नगरीमें सुवर्ण समान कान्तिवाले बाइसवे तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं। उनके शरीरका प्रमाण चारसो धनुषका और आयुष्यका प्रमाण साठ लाख पूर्वका होता है।

उन प्रभुके भी जन्ममृत्युका उच्छेद कर मुक्तिको प्राप्त करने बाद उनके जन्मसे तीस लाख कोटि सागरोपमका समय व्यतीत होने पश्चात् अयोध्या नगरीमे सुवर्ण समान कांति वाले तेइसवे तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं। उनके शरीर का प्रमाण साढे चारसो धनुषका और आयुष्यका प्रमाण बहत्तर लाख पूर्वका होता है। उस समय ग्यारहवे चक्रवर्ती उसी नगरीमे अवतरित होते हैं। उनके देह तथा आयुष्यका प्रमाण इस समयके जिनके बराबर ही होता है।

अजितनाथ समान वे प्रभु सर्व भवप्रपंचको दूर कर जब मोक्ष चले जाते हैं बादमें उनकी उत्पत्तिके समयसे पचास लाख कोटि सागरोपम समय व्यतीत होने बाद दुषमसुषमा नामक तीसरा आरा समाप्त हो जाता है। इस आरेमे तेईस तीर्थंकर, ग्यारह चक्रवर्ती और छतीस प्रतिवासुदेव आदि कुल सीत्तर (नव नारद सहित) उत्तम पुरुष उत्सर्पिणी नामक कालचक्रके दलमे उत्पन्न होते हैं। इस तीसरे आरेके प्रारंभ समय मनुष्यका आयुष्य एकसो वीस वर्षका होता है। यह यहा तक बढता है कि तीसरे आरेके अंतमें क्रोड पूर्वका

आयुष्य हो जाता है । इस तीसरे आरेका प्रमाण ब्यालीस (४२) हजार ऊणा एक कोटाकोटि सागरोपमका पूज्य पुरुषोंने कहा है।"

" दुषमसुषमा नामक तीसरे आरेमें उत्सर्पिणीमें तेईस तीर्थंकर होंगे । वे सदैव सबको उत्तम लक्ष्मी प्रदान करने वाले हों ।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ त्र्यधिकद्विशततम प्रबंध ॥ २०६ ॥

—o—

व्याख्यान २०७

भावी चोथे आरेका स्वरूप

सुषमदुषमासञ्ज-स्तुर्यारको निगद्यते ।
नाभेयसन्निभो भावी, चतुर्विंशतमो जिन ॥१॥

भावार्थ —" उत्सर्पिणीमें जो सुषमदुषमा नामक चोथा आरा कहलाता है, उसमें भी ऋषभदेव सदृश चोवीसवे तीर्थंकर होंगे ।"

उत्सर्पिणीके चोथे आरेमें तीन वर्ष साढे आठ महिने व्यतीत होने बाद सुरगंगणी चोवीसवें तीर्थंकर विनीता नगरीको अलंकृत करेंगे । उनके शरीरका मान पांचसो धनुषका और आयुष्यका मान चोरासी लाख पूर्वका होता है।

तीनों जगतके लोगोंसे पूजनीय ऐसे इन प्रभुके समयमें बारहवें चक्रवर्ती होते हैं। उनके शरीर तथा आयुष्यका प्रमाण श्री जिनेश्वर भगवतके बराबर ही होता है। इन प्रभुके मुक्तिरूपी स्त्रीके भर्ता होने बाद उनकी पट्ट परंपरामें श्री जिनेश्वर भगवतके तत्त्वविचारको जानने वाले श्री युग प्रधान मुनिपति कितने ही समय तक इस भरतखण्डके भूमण्डलको पवित्र करेंगे, फिर धीरे धीरे सुखी समयकी वृद्धि होते हुए युगलिया मनुष्याय उत्पन्न होनेका समय नजदीक आनेसे सुखके प्रचुरपनसे प्रथम साधु-संततिका उच्छेद हो अन्तम तीर्थका भी उच्छेद होगा। युगलिक मनुष्यके समयमें धर्मका भी अभाव होता है। उनके साथ साथ स्वामी, सेवक, वर्ण, व्यापार और नगर आदिकी व्यवस्थाका भी उच्छेद होता है।

युगलियोंके स्वरूपका श्री प्रश्नव्याकरण सूत्रके चोथे आश्रव द्वारके विषयमें वर्णित किया गया है कि, "उस समयमें भोग सुख अधिक होने व उनके भोग विषय करते पर भी युगलिया जीव बिना तृप्त हुए ही कालधर्मको प्राप्त हो जाते हैं-अर्थात् मरण प्राप्त करते हैं।" देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्रमें युगलिया सम्बन्धी वर्णन करते हुए लिखते हैं कि, "देवकुरु तथा उत्तरकुरु क्षेत्रके युगलिये वनमें विचरते हैं, पैरोंसे चलते हैं, वे भोगमें श्रेष्ठ होते हैं, भोगके लक्षणको धारण करने वाले होते हैं, उनका रूप वर्णन करने योग्य और चन्द्र सदश निरखने योग्य

होता है और वे सब अगसे सुन्दर होते है। " आदि वर्णन वहास देख लेवे ।

और वे युगलिया (स्त्रिये और पुरुष) आद्य सहनन-सघयण तथा आद्य सस्थान वाले होते हैं। उनके अग-उपागके भाग कान्ति द्वारा प्रकाशित होते हैं। उनके श्वासमें कमल सदृश सुगन्ध होती है। उनके गुह्य भाग उत्तम अश्व सदृश गुप्त होते है। उनको क्रोध, लोभादि कषाय अत्यन्त न्यून होते हैं। मणि-मौक्तादिक पदार्थ तथा हाथी, घोडा आदिके होने पर भी वे उनके उपयोगसे पराङ्मुख होते हैं। और ज्वर आदि रोग, ग्रह, भूत, मारी और व्यसनसे वर्जित होते हैं। उनमें स्वामी, सेवकभाव न होनेसे वे बहुधा अह मिन्द्र होते हैं। उनके क्षेत्रमे बिना बोये ही स्वभावसे ही जातिवन्त शालि, आदि धान्य प्रचुरतासे होते हैं परन्तु वे उनके भोगमें नही आते। उस क्षेत्रमें पृथ्वी सावरसे भी अनन्त गुण माधुर्य वाली होती है। व कल्पवृक्षके पुष्प, फलका आस्वादन करते हैं। वह चक्रवर्तीके भोजनसे भी अत्यन्त अधिक माधुर्य वाला होता है। वे पृथ्वीका तथा कल्पवृक्षके फलादिकका उस प्रकारका आहार ग्रहण कर प्रासादादिक आकार वाले जो गृहाकार कल्पवृक्ष होते हैं उनमें सुखपूर्वक निवास करते हैं। उनको खान, पान, प्रेक्षण आदि दस प्रकारके कल्पवृक्षोंसे प्राप्त होता रहता है। वहा डास, जू, मावड और मक्षिका आदि देहको उपद्रव करने वाले जन्तु उत्पन्न ही नही होते हैं। व्याघ्र-सिंहादि हिंसक

पशु वहा हिंस्य हिंसक भाव नही रखते । उस क्षेत्रमें घोड़ा, हाथी आदि चोपगे प्राणी, घो आदि भुजपरिसर्प, सर्प आदि उरपरिसर्प तथा चकोर, हस आदि पक्षी-सब युगलिया रूपसे ही उत्पन्न होते हैं[1] । ये सब युगलिय मर कर उनके आयुष्य जितने आयुष्य वाले अथवा न्यून आयुष्य वाले देवता होते हैं । अधिक आयुष्य वाले देव नही होते ।

उत्सर्पिणीके चोथे आरेमें होने वाले युगलियोंके देहकी ऊँचाई उस आरेके अन्तमें एक गाउकी होती है और आयुष्यका प्रमाण एक पल्योपमका होता है । वे एकान्तरे आमलकके पत्र जितना आहार करते हैं । उनके चोसठ पासलिय होती है । इस आरेमें युगलिये उन्यासी दिन तक सततिका पालन करत हैं । फिर श्वासोश्वास, उबासी, खासी, छीक आदिसे प्राण छोड कर देवगतिमें उत्पन्न होते है ।

इस प्रकार दो कोटा कोटि सागरोपमका सुषम-दुषमा नामक पाचवा आरा होता है । उस आरेक आदिमें युगलिय चोथ आरेके अतम उत्पन्न होन वाले युगलियों सदृश ही होत हैं, परन्तु धीरेधीरे उनक शरीर और आयुष्य यहातक बढते है कि यावत् उस आरेके अतम शरीरका प्रमाण दो गाउका और आयुष्यका प्रमाण दो सागरोपमका हो जाता है उनके पृष्ठ भागकी पासलिय भी इतनी बढती है कि उनकी सख्या एकसो अट्ठाईसकी हो जाती है उनका

---

१ भुजपरिसर्प और उरपरिसर्प युगलिया नही होत, चतुष्पद और खेचर पक्षी ही होत हैं ।

आहार घटता घटता इतना घटता है कि दो दिनके आतरेसे बदरीफल (बोर) जितना रह जाता है और सतति को वे चोसठ दिन तक पालते हैं । इस प्रकार तीन कोटा कोटि प्रमाणवाले पाचवे आरेके व्यतीत होनेपर छट्ठा आरा आता है ।

इस छट्ठे आरेके प्रारभम युगलियोंके शरीर आदिका प्रमाण पाचवे आरेके अवसान समय प्रसूत हुए युगलियों जितना होता है परन्तु उनके शरीर तथा आयुष्यका प्रमाण यहा तक वृद्धि पाता है कि यावत् उस आरेके अन्तमे शरीरका प्रमाण तीन पल्योपमका हो जाता है । उनके पृष्ठकी पासलियाकी सख्या दोसो छप्पन हो जाती हैं । उनके आहारकी हानि इतनी अधिक होती हैं कि वे तीन दिनके आतरेसे केवल तुअर जितना आहार करते हैं । वे सततिका पालन उनपचास दिन तक करते हैं ।

इस आरेमे हाथीका आयुष्य मनुष्य जितना, अश्वादिका आयुष्य मनुष्यके चोथे भाग जितना, मेढा आदिका आठवे अश जितना, गाय, भैंस, खर, ऊट आदिका पाचवे अश जितना, श्वान आदिका दसवे अश जितना, भुजपरिसर्प तथा उरपरिसर्पका एक क्रोड पूर्वका, पक्षियोंका पल्योपमके असख्यातवे भाग जितना और जलचरोंका एक पूर्व कोटिका होता है । तिर्यच पचेन्द्रियका उत्कृष्ट आयुष्य इसी आरेमे होता है । (युगलिक तो केवल चतुष्पद और पक्षी ही होते हैं)।

भुजपरिसर्पके शरीरका मान गाउ पृथक्त्व, उरपरिसर्पके शरीरका प्रमाण एक हजार योजनका, खेचरोंका धनुष पृथक्त्व, और हाथी आदिके शरीरका प्रमाण छ गाउका होता है। आहारका ग्रहण दो दिनोंके अंतरे होता है। तिर्यंच पंचेन्द्रियके शरीरका उत्कृष्ट मान इसी आरमे जाने शेष रहने वालेके शरीर तथा आयुष्यादिका प्रमाण सूत्रसे जान ले।

इस प्रकार छट्ठा सुषमसुषमा आरा चार कोटा कोटि सागरोपममें समाप्त होता है। इस प्रकार उत्सर्पिणी सम्बन्धी छ आरे होते हैं।

अवसर्पिणी कालके भी छ आरे होते हैं। इनमें इतना ही फर्क होता है कि कहे हुए आरे प्रथमके आरेसे विपरित होते हैं। वे इस प्रकार है -जो उत्सर्पिणीके छट्ठे आरेमें कहा हैं, वह अवसर्पिणीके प्रथम आरेमें, जो पांचवें आरेमें कहा गया है वो दूसरे आरेमें, जो चौथे आरेमें कहे गये हैं वे तीसरे आरेमें, जो तीसरे आरेमें कहे गये हैं वे चौथे आरेमे, जो दूसरे आरेमें कहे गये हैं वे पांचवें आरेमें, और जो पहले आरेमें कहे गये हैं वे छट्ठे आरेमें ऐसा समझ लेवें। अपितु तीर्थंकर आदिके देह एवं आयुष्यका जो प्रमाण आदि बतलाया गया है उसको भी विपरीत रीतिसे जान लेवें। वह इस प्रकार है कि- उत्सर्पिणीमें जो चोवीशवें तीर्थंकरका स्वरूप बतलाया गया है, उसे अवसर्पिणीके प्रथम तीर्थंकरका मानें। इसी प्रकार दूसरेमें भी क्रमके रूपसे जानें। चक्रवर्ति आदिके विपर्यास

भी इसी प्रकार समझ लेना, इस प्रकार बारह आरे मिलकर एक कालचक्र होता है । इस कालकी व्यवस्था पाच भरतक्षेत्र और पाच ऐरवत क्षेत्रमें एक समान ही समझे, महाविदेह-क्षेत्रमें इस प्रकार न समझे । वहां उत्सर्पिणी और अव-सर्पिणीके अनुसार काल नहीं वर्तता है । वहां तो सदैव मनुष्योंके शरीरका प्रमाण उत्कृष्ट पांचसो धनुषका और आयुष्यका प्रमाण पूर्वकोटिका होता है । तीस अकर्मभूमिमें भी सनातन पणासे-शाश्वत पणासे एकसा समय वर्तता है । उसका वर्णन अन्य स्थानसे जान लेवे ।

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ सप्ताधिकद्विशततमः प्रबन्धः ॥ २०७ ॥

व्याख्यान २०८

वर्तमान पाचवे दुषम आरेका लक्षण

वर्तमानारके भावि-स्वरूप ज्ञानिनोदितम् ।
स्वप्नादिभिः प्रबन्धैश्च, विज्ञेयं श्रुतचक्षुषा ॥१॥

भवार्थ —" वर्तमान आराका जो भाविस्वरूप ज्ञानी महाराजने बतलाया है उसे स्वप्नादिक प्रबन्ध द्वारा आगम-दृष्टिसे जान ले । "

सोलह स्वप्नोंका प्रबन्ध भी व्यवहार चूलिकामें इस प्रकार बतलाया गया है कि —उस काल उस समयमें पाटली-

पुरें नगरमें श्रावक धर्ममें तत्पर चन्द्रगुप्त नामक राजा था। एक समय वह राजा पाक्षिक अहोरात्र पोसह लेकर रात्रिमें धर्मजागरणमें जगता था। उस समय मध्यरात्रिमे अल्पनिद्रा आनेसे सुखपूर्वक सोते हुए उस राजाने सोलह स्वप्ने देखे, जिससे वह तत्काल जाग उठा। उसे चिन्ता हुई कि यह क्या हो गया? फिर अनुक्रमसे सूर्योदय होने पर उसने पोसह पाला। उसी समयमे सभूतिविजयके शिष्य (गुरुभाई) युगप्रधान श्री भद्रबाहुस्वामीजी पाचसो साधुओंके साथ विचरते हुए पाटलीपुरमे आकर वहाके उद्यानमे पधारे। राजा उनको वन्दना करने गया। उसने कोणिक राजा सदृश छत्र, चामरादि दूर कर, पाच अभिगमका सचय कर गुरु महाराज को वदना कर धर्म सुना। फिर उसने जो स्वप्नमे कल्पवृक्षकी शाखा तोडी थी आदिके जो सोलह स्वप्न देखे थे उसका अर्थ स्वामीसे पूछा कि, "हे भगवन्त! मैंने जो स्वप्न देखे थ उसके अनुसार शासनमे क्या क्या होगा? सो बतलाइये।" श्रुतकेवली श्री भद्रबाहुस्वामीजीने सर्व सघके समक्ष कहा कि, "हे चन्द्रगुप्त राजा इसका अर्थ सुन —

"प्रथम स्वप्नमे जो तूने कल्पवृक्षकी शाखाको तोडा था इसका यह फल है कि आजसे कोई महाराजा चारित्र नहीं लेगा। दूसरे स्वप्नमे जो तूने सूर्यको अस्त होते देखा है, इसका यह फल है कि अब केवलज्ञानका उच्छेद होगा। तीसरे स्वप्नमे जो तूने चन्द्रमामे छिद्र देखा, इसका फल यह है कि एक धर्ममे अनेक मार्ग चलेंगे। चौथे स्वप्नमे

तूने भूतको नाचते देखा, इसका यह फल है कि कुमति लोग भूत सदृश नाचेगे । पाचवे स्वप्नमे तूने जो बारह फणवाला काला सर्प देखा, इसका यह फल है कि बारह वर्षों दुकाल पडेगा, कालिकसूत्र आदिका विच्छेद होगा । देवद्रव्य भक्षी साधु होगे, लोभसे मालाका आरोपण, उप-धान, उजमणा आदि कई तपके भाव प्रकाशित होगे और जो सच्चे धर्मके अर्थी साधु होगे वे विधि मार्गका प्ररू-पण करेगे । छट्ठे स्वप्नमे जो तूने आकाशमेसे आनेवाले विमानको चलित होता देखा, इसका यह फल है, कि चारण लब्धिवन्त साधु भरत ऐरवत क्षेत्रमे नही आवेगे । सातवे स्वप्नमे तूने जो कमलको उकरडे पर उत्पन्न हुआ देखा, इसका यह फल है कि चार वर्णमे वैश्यके हाथ धर्म रहेगा, वे वणिग्जन अनेक मार्गमे चलेगे, सिद्धात पर रुचिवाले अल्प प्राणि होगे । आठवे स्वप्नमे जो आगियेको उद्योत करते देखा इसका फल यह है कि राजमार्ग (जैन मार्ग) को छोड अन्य माग खजवा सदृश प्रकाश करेगे और श्रमण-निग्र थका पूजा सत्कार कम होगा । नवमे स्वप्नेमे जो बडे सरोवरको सूखा हुआ देखा और उसमे दक्षिण दिशामे थोडासा जल देखा, उसका फल यह है कि, जहा जहा प्रभुके पाच कल्याणक हुए हैं उस उस देशमे प्राय धर्मकी हानि होगी और दक्षिण दिशामे जिनमार्गकी प्रवृत्ति होगी । दशवे स्वप्नमे जो सोनेके थालमे श्वानको दूध पीते देखा, इसका यह फल है कि उत्तम कुलकी सपत्ति

मध्यमके घर जायेगी और कुल चार कर्मको छोडकर उत्तम पुरुष नीच मार्गमे प्रवृत्त होंगे। (हिंसामे धर्म मानेंगे)। ग्यारहवे स्वप्नमे जो हाथी पर बैठा वानर देखा, इसका यह फल है कि पारधि-शिकारी आदि अधम लोग सुखी होंगे और सुजन दुःखी होंगे, अपितु उत्तम इक्ष्वाकु तथा हरिवंश कुलमे राज्य नही रहेगा। बारहवे स्वप्नमे जो समुद्रको मर्यादा उल्लंघन करते देखा, इसका यह फल है कि राजा उन्मार्गचारी होंगे और क्षत्रिय विश्वासघात करेंगे। तेरवे स्वप्नमे जो बडे रथमे छोटे छोटे बछरड़े जाते हुए देखे उसका यह फल है कि प्रायः वैराग्य भावसे कोई संयम नहि लेंगे जो वृद्ध होकर लेंगे न तो महा प्रमादी होंगे और गुरुकुल वासको छोड देंगे, और जो बालभावसे संयम लेंगे, वे लज्जा से गुरुकुल वासको नही छोड़ेंगे। चौदहवे स्वप्नमे जो बडे मूल्यवान् रत्नको तेजरहित देखा, उसका फल यह है कि भरत तथा ऐरावत क्षेत्रमे साधु क्लेश करनेवाले अविनयी और धर्म पर अल्प स्नेहवाले होंगे। पन्द्रहवे स्वप्नमे जो राजकुमारको पोठिये पर बैठा हुआ देखा, उसका यह फल है कि राजकुमार राज्य भ्रष्ट होंगे और हलके काम करेंगे। सोलहवे स्वप्नमे जो दो काले हाथियोको लडते देखा, इसका यह फल है कि आगामी कालमे पुत्र तथा शिष्य अल्प बुद्धिवाले तथा अविनयी होंगे देवगुरु और माता-पिताकी सेवा नहीं करेंगे और भाई अन्दर ही अन्दर ईर्ष्या-कलह करे। हे राजन्!

इस प्रकार सोलह स्वप्नोंका फल है । श्री जिनेश्वर भगवानके कहे वचन अन्यथा नहीं होते । उन्होंने कहा है कि यह दुषम आरा लोगोंको महा दुःखदायक होगा ।"

इस प्रकार सुन चन्द्रगुप्त राजा वैराग्यसे संयम लेकर देवलोकको प्राप्त हुआ । यह स्वप्न प्रबंध है, आदि शास्त्रसे दुसरा भाविस्वरूप कल्की के संबन्धसे जान ले जो निम्न प्रकार है कि –

श्री महावीर प्रभुके निर्वाण बाद चारसो सितर वर्ष व्यतीत हो जाने पर विक्रम राजाका संवत्सर हुआ ? उसका उन्नीसो, चौदह वर्ष बाद पाटलीपुर नगरमे म्लेच्छ कुलमे यशा नामकी चाडालिनीकी कुक्षिसे तेरह महिने रहकर चैत्र शुक्ला अष्टमीके दिन कल्कीका जन्म होगा । वह कल्की, रूद्र और चतुर्मुख ऐसे तीन नाम धारण करेगा । उसका शरीर तीन हाथ उंचा होगा । उसके मस्तकके केश कपिलवर्णी (काबेर) और नेत्र पीले होंगे । जन्मसे पांचवे वर्ष उसके उदरमे रोग उत्पन्न होगा । अठारवे वर्षमे कार्तिक मासके शुक्ल पक्षमे पडवेके दिन उसका राज्याभिषेक होगा । वह मृगांक नामक मुकुट, अदस नामक अश्व, दुर्वास नामक माला, और दैत्य सूदन नामक खड्ग धारण करेगा । उसके सूर्य, चन्द्र नामक दो पैरके कडे और त्रैलोक्य सुन्दर नामक सुंदर वासगृह होगा । वह सुवर्णका पुष्कल दान दे विक्रमके संवत्सरका उत्थापन कर अपना संवत्सर चलावेगा । उसके चार पुत्र होंगे । उनमेसे दत्त नामक पुत्र राजगृह नगरीमे, विजय

नामक पुत्र अणहिलपुर पाटणमे, मुग नामक पुत्र अवंति देशमे अपनी अपनी राजधानी स्थापित करेंगे । उस कल्की के राज्य समयमे यह पृथ्वी क्षत्रिय राजाओंके रुधिर प्रवाहसे स्नान करेगी । उसके द्रव्य भंडारमे नवाणु कोटि सोनैया एकत्रित होगी । उसकी सेनामे चौदह हजार हाथी, चारसो पचास हाथनिये, सत्यासी लाख घोंडे, और पाच कोटि पैदल होंगे । आकाशमे खेलने वाले, त्रिशुलको धारण करने वाला, पाषाण अश्वका वाहन करने वाला और अति निर्दय कल्की छतीस वर्षकी आयुमे त्रिखंड भरतका स्वामी होगा । उसके राज्यकालमे मथुरा नगरीमे वासुदेव तथा बलदेवके प्रासाद अकस्मात पड जायगे । अनुक्रमसे वह कल्की अतिलोभ वश अपने नगरको खुदवा सर्व ओरसे द्रव्य निकलवा कर ग्रहण करेगा । इस प्रकार खोदते हुए लोगोंकी भूमिमसे पाषाणमय लवणदेवी नामक प्रभाविक गाय निकलेगी । उसे चोराहेमें स्थापन की जायगी । वहा खडी हुई वह गाय भिक्षाके लिये जाते हुए साधुओंको दिव्य शक्ति द्वारा अपने शिगोंसे मारने दौडेगी । जिसे देख साधु उस नगरमे जलका भावी उपसर्ग जान वहासे विहार कर जायेगे । उसके बाद सित्तर अहोरात्र तक वहा अखण्ड मेघवृष्टि होगी, जिससे कल्कीका नगर जलमान हो जायेगा । कल्की भग कर किसी ऊँचे स्थल पर चला जायेगा । फिर जलके पुरसे उपरकी मिट्टी घो जानेसे नन्द राजा द्वारा बनाये स्वर्णगिरिको उघाडे देख वह अर्थका अत्यन्त लोलुपी होगा । इसलिये

नया नगर वसा ब्राह्मण आदि सबोंसे कर लेगा। उस समय पृथ्वीसे सुवर्ण नाणाका नाश हो जायगा, और चमडेके नाणे (सिके)से वह व्यवहार चलायेगा। लोग कम्बल तथा घासके वस्त्र पहिनेगा कल्कीके भयसे सभ्रान्त हुए लोग पत्रावली आदिमे भोजन करेंगे।

एकवार कल्की राजमार्गमे फिरते साधुओंको देख उनकी भिक्षामेंसे छट्ठा हिस्सा मांगेगा। जिस पर साधु द्वारा कायोत्सर्ग कर बुलवाई हुई शासनदेवी उसे वैसा करनेसे रोक करेगी। फिर पचासमें वर्षमे उसका द्वारा जंघामे और दाढ मुष्टिका प्रहार होगा जिस पर भी फिर कल्की साधुओसे भिक्षाका छट्ठा भाग लेनेके लिये उनको गायोंके बाडेमे बन्द करेगा। जिसमे प्रातिपद नामक आचार्य भी आ जायेंगे। फिर सर्व संघके स्मरणसे शासनदेवी आकर उसे समज देगी परन्तु वह नही समजेगा तिसपर इन्द्र आसनकंपसे यह हकीकत जान वृद्ध ब्राह्मणका रुप धारण कर वहां आ उसे इस प्रकार कहेगा कि "हे राजन्! ऐसे निग्रंथको कष्ट देना तुझे योग्य नही है" जिस पर कल्की उत्तर देगा कि "मेरे राज्यमे अन्य सब भिक्षुक कर देते हैं जबकि ये साधु कुछ नही देते इसलिये मैंने उनको बाडेमें बन्द किये हैं।" फिर इन्द्र उसे दो तीन बार समजायेगा फिर इन्द्र क्रोधसे थप्पड दे उसे मार डालेगा। कल्की छियासी वर्षका आयुष्य भोग मर कर नरकमे फिर इन्द्र उसके पुत्र दत्तको वह प्रकारकी शिक्षा

धीन कर गुरुको नमस्कार कर स्वर्ग लौटेगा । दत्त उसके पिताको मिले पापके फलको जान सब पृथ्वीको जिन चैत्यसे मंडित करेगा और महातीर्थ श्री शत्रुंजयका उद्धार करेगा । तत्पश्चात् जिनधर्मकी महिमाका अत्यंत विस्तार होगा ।

ऐसे समयमें भी कई लोग धर्मके रागी होंगे । कहा है कि, 'जैसे मृगी मत्स्य खारे समुद्रमें रहते हुए भी मिष्ट जलका पान करते हैं, उसी प्रकार ऐसे कालमें भी प्राज्ञ पुरुष धर्मतत्वमें तत्पर होते हैं ।"

इस दुषमा आरामें युगप्रधान सूरीश्वर होंगे । चतुर्विध संघ धर्ममें प्रवृत्त होगा और राजा लोग धर्मकार्यमें तत्पर होंगे । युगप्रधान आदिकी संख्या श्री देवेन्द्रसूरीजी कृत कालसित्तरीप्रकरणमें इस प्रकार बतलाई गई है कि —

"दुषम कालमें ग्यारह लाख सोलह हजार राजा श्री जिनेश्वरके भक्त होंगे और ग्यारह क्रोड जैनशासनके प्रभावक होंगे । तथा श्री सुधर्मास्वामिजीसे अन्तिम श्री दुप्पसहसूरिजी पर्यंत तेईस उदयमें दो हजार और चार युगप्रधान[1] होंगे और ग्यारह लाख सोलह हजार आचार्य होंगे ।" दो हजार चार युगप्रधानमें श्री सुधर्मास्वामीजी और श्री जम्बूस्वामीजी तो उसी भवमें सिद्धिपदको प्राप्त करेंगे और अन्य सब एकावतारी होंगे । वे प्रभावक के आठ गुणोंको धारण करने वाले, मुनि महाराज जहां

१ इस समयमें वर्तित सर्व सूत्रके पारगामीको युगप्रधान कहते हैं ।

विहार करेगे वहा चारों दिशाओमें अढाई अढाई योजन पर्यन्त दुष्काल, मरकी आदि उपद्रवोंका नाश हो जायेगा और ग्यारह लाख, सोलह हजार आचार्य प्रावचनी, धर्मकथी आदि ज्ञान-क्रिया गुण वाले और युगप्रधान सदृश होंगे। दीपालीकल्पमें तीन प्रकारके सूरि होना कहा गया है। इनमें पचावन कोटि, पचावन लाख, पचयन हजार और पाचसो सूरि तो उत्कृष्ट क्रिया वाले, तेतीस लाख चार हजार चारसो इकाणवे सूरि मध्यम क्रिया वाले और पचावन कोटि, पचावन लाख, पचावन हजार, पाचसो पचावन सूरि प्रमादी और अनाचारि होनसे जघन्य हैं। पचावन क्रोड, पचावन लाख और पचावन हजार उत्तम चोपन क्रोड मध्यम, और चुम्मालीस क्रोड चुम्मालीस लाख और चुम्मालीस हजार जघन्य उपाध्याय पांचवे आरेमे होंगे। सित्तर लाख क्रोड और नो हजार क्रोड उत्तम, सो क्रोड मध्यम और इकत्तीस कोटि, इकवीश लाख और साठ हजार जघन्य साधु होंगे, दस हजार नो सो बारह क्रोड, छप्पन लाख छतीस हजार एक सो नवानु उत्तम साध्वियें होंगी। सोलह लाख तीन हजार तीनसो सित्तर क्रोड और चोरासी लाख श्रावक होंगे। और पचीस लाख, बाणु हजार पाचसो बतीस क्रोड उपर बारह जीतनी श्राविका होंगी। इस प्रकार दुषम आराके चतुर्विध सघका प्रमाण बतलाया गया है[1]।

---

[1] १ इसमें बतलाई सख्या दीपाली कल्पमें बतलाई सख्यासे बराबर नही मिलती है तत्त्व तो बहुश्रुत गुरुजीसे समज लेवे।

यहा कई कहते हैं कि यह प्रमाण जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रके विषयमें है। कई कहते हैं कि यह प्रमाण श्री महावीर प्रभु द्वारा प्रतिबोधित किये चतुर्विध संघ सहित जानना चाहिये। परन्तु कई कहते हैं कि यह पाचों भरत क्षेत्र सम्बन्धी इकठा प्रमाण जाने। इसका खुलासा दुषम आराके यन्त्रपटसे तथा बहुश्रुत गुरु भगवन्तके मुहसे जान लेना।

अब पाचवे आरेके अन्तमे उत्पन्न होने वाले चतुर्विध संघका नाम कालसित्तरीके अनुसार लिखा जाता है कि, "स्वर्गसे चव कर होने वाले श्री दुप्पसहसूरिजी नामक साधु, फल्गुश्री नामक साध्वी, नागिल श्रेष्ठी नामक श्रावक और सत्यश्री नामक श्राविका इसे चरम संघ समझे।" संबोध सत्तरीमें कहा गया है कि, "एक साधु, एक साध्वी, एक श्रावक और एक श्राविका-आज्ञायुक्त हो तो उसे संघ समझ और शेष आज्ञारहितको अस्थिका संघ[1] समझे। उस समय मुनि दशवैकालिक जितकल्प, आवश्यक, अनुयोगद्वार, और नन्दीसूत्र आदि सूत्रके पाठी-जानकार होंगे। उनको इन्द्र नमस्कार करेगा। उत्कृष्ट छट्ठ तपके करने वाले होंगे। श्री दुप्पसहसूरिजी दो हाथके देह वाले, बारह वर्ष तक गृहस्थपनमें रह कर, चार वर्ष तक व्रतधारी हो, चार वर्ष आचार्यपद धारण कर अन्तमे अट्टम तप द्वारा कालधर्म प्राप्त कर, एक सागरोपमके आयुष्य वाले देवपनको प्राप्त कर वहासे चव इस भरतक्षेत्रमें ही सिद्धिपदको प्राप्त करेंगे।

---

१ हड्डियोंका समूह।

" पाचवे आरेके प्रान्त समयमें पूर्वाह्न कालमें श्रुत, सूरि, संघ और धर्मका विच्छेद होगा। राजा विमलवाहन, मन्त्री सुधर्मा, और न्यायधर्म मध्याह्नमें नष्ट होंगे और अग्नि सायंकालमें नाशको प्राप्त होगी। श्री महावीरस्वामीजीसे जब तक पाचवे आरेमें श्री जैनधर्मकी प्रवृत्ति रहेगी वह इस प्रकार है कि–बीस हजार नोसो वर्ष, तीन महिने, पाच दिन, पाच पहर, एक घडी, दो पल, और अडतालीस अक्षर इतने समय तक जिनधर्मकी प्रवृत्ति रहेगी।

"इस प्रकार सोलह स्वप्नके प्रबंधसे और कल्की[1] राजाकी कथासे कालका सर्व स्वरूप जान प्राज्ञ पुरुष श्री युग प्रधान सूरीश्वरो तथा श्री जिनेश्वर भगवन्तकी आज्ञाका विराधन नही करते।"

,,, इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ अष्टाधिकद्विशततमः प्रबंधः ॥२०८॥

व्याख्यान २०९

भविष्यम होनेवाले श्री जिनेश्वर भगवन्तका वर्णन

भाविना पद्मनामादि–जिनाना प्राग्भवास्तथा।
नामानि स्तूयन्तेऽस्माभिः, प्राप्य पूर्वोक्तशास्त्रतः ॥१॥

---

[1] कल्कीका वृत्तान्त सदतके सम्प्रदायमें घटित नही होता, इसलिये इसका खुलासा बहुश्रुत गुरु भगवन्तसे जान ले।

भावार्थ —" भविष्यमें होने वाले भी पद्मनाभ आदि तीर्थंकरोंका पूर्वभव और नाम पूर्वक शास्त्रोंसे उद्धरित कर यहां वर्णित किया जाता है।" भावि जिनका पूर्वभव इस प्रकार है कि —

उत्सर्पिणीका दूसरा आरा श्रावण कृष्णा एकमसे आरंभ होगा। तबमें अनुक्रमसे सात सात दिन तक पांच जातिके मेघ वर्षा करेंगे। उनमें प्रथम पुष्करावर्त नामक मेघ पृथ्वीके सर्व तापको दूर करेगा। दूसरा क्षीरोद मेघ सर्व औषधियोंके बीजोंको उत्पन्न करेगा। तिसरा घतोद मेघ सर्व धान्यादिमें स्नेह-रस उत्पन्न करेगा। चौथा शुद्धोदक मेघ सर्व औषधियोंको परिपक्व करेगा। पांचवा रसोदक मेघ पृथ्वी पर इक्षु आदिमें रस उत्पन्न करेगा। इस प्रकार पांच मेघ पेंतीस दिन तक वर्षा करेंगे। जिसमें वृक्ष, लता, औषधि धान्य आदि सर्व अपने आप उत्पन्न हो जायगे। यह देख बिलमें रहने वाले सर्व जन बाहर निकल आयेंगे और अनुक्रमसे दूसरे आरेके अन्त भागमें मध्यदेशकी पृथ्वी पर सात कुलकर होंगे। उनमेंसे प्रथम कुलकर विमलवाहन जाति स्मरण ज्ञानसे जान कर राज्य आदिकी स्थितिको स्थापित करेंगे। उसके पश्चात् तीसरे आरेके नेवासी पक्ष व्यतीत होने बाद शतद्वार नगरमें सातवें कुलकर समुचि नामक राजाकी भद्रा राणीकी कुक्षिमें श्रेणिक राजाका जीव पहले नरकसे चव कर

१ बीचमें पांच कुलकर सुधम, सगम सुपार्श्व दत्त और सुमुख नामक होंगे।

श्री महावीर प्रभुके च्यवनेके दिन और उसी समय अवतरित होगा और श्री महावीर प्रभुके जन्म दिनको ही उसका जन्म होगा। वह श्री पद्मनाभ जिन महावीर सदृश प्रथम तीर्थंकर होंगे। श्री महावीरप्रभु और श्री पद्मनाभ प्रभुका अन्तर श्री प्रवचन सारोद्धारमें इस प्रकार कहा गया है कि, "चोरासी हजार वर्ष, सात वर्ष और पांच मासका श्री महावीर प्रभुका निर्वाण और श्री पद्मनाभ प्रभुके च्यवनके बीचका अन्तर जानना चाहिये।' उनका निर्वाण कल्याणक दीवालीके दिन होगा।

दूसरे तीर्थंकर सुरदेवके शरीरका वर्ण, आयुष्य, लाछन, देहकी ऊँचाई और पंच कल्याणकके दिन आदि पार्श्वनाथ प्रभुके अनुसार होंगे। श्री महावीर स्वामीके काका सुपार्श्वका जीव दूसरा तीर्थंकर होगा।

तीसरे सुपार्श्व नामक तीर्थंकर शरीर-कान्ति आदिमें बाइसवे जिन श्री नेमिनाथके जितने होंगे। वह पाटलीपुत्रके राजा उदायनका जीव होगा। वे श्रेणिक राजाके पौत्र और कोणिक राजाके पुत्र जिनको पौषधगृहमें विनयरत्न नामक अभव्य साधुसे घात हुआ था उनका जीव तीसरा तीर्थंकर होगा।

चोथे स्वयंप्रभ नामक तीर्थंकर इक्कीसवे नमिनाथ जिन सदृश होंगे वह पोटिल मुनिका जीव होगा।

पांचवें सर्वानुभुति नामक तीर्थंकर जो दृढायु श्रावक का जीव है वह बीसवे मुनिसुव्रत प्रभुके समान होंगे।

छट्ठे तीर्थंकर देवश्रुत नामक होंगे, यह कार्तिक शेठका जीव होगा। इसमें विशेष इतना जानना कि अभी जो कार्तिक श्रेष्ठिका जीव दो सागरोपमकी अवधिसे सौधर्मेन्द्रपनाका अनुभव कर रहा है उसका जीव यह नहीं है किन्तु तुल्य असर वाला दूसरा जीव जानना। वह देवश्रुत जिन मल्लिनाथ सदृश होंगे। परन्तु स्त्रीवेद वाले नहीं होंगे।

सातवां उदय नामक तीर्थंकर शङ्ख श्रावकका जीव होगा, परन्तु वह भगवतीमें वर्णित शङ्ख श्रावक नहीं है, यह तो कोई दूसरा ही जीव है। ये तीर्थंकर अठारवें अरनाथ प्रभु सदृश होंगे। इसमें केवल यह विशेषता है कि इनके चक्रवर्तीपनेको निश्चय न समझना। आठवें पेढाल नामक तीर्थंकर होंगे जो आनन्द नामक श्रावकका जीव है। यहां विशेषता इतनी है कि यह आनन्द श्रावक नहीं है जो सातवें अंगमें बतलाया गया है। यह तो महाविदेहक्षेत्रमें सिद्धिको पाने वाला है। इससे कुंथुनाथ प्रभुके सदृश इस तीर्थंकरको किसी दूसरे आनन्दका जीव जानना। नवम तीर्थंकर पोट्टिल नामक सुनन्दा श्राविकाका जीव होगा वह शान्तिनाथ प्रभुके सदृश होगा। दसवां शतकीर्ति नामक तीर्थंकर होगा। वह शतक श्रावकका जीव और धर्मनाथ प्रभुके समान होगा। यह शतक पुष्कली जैसे दूसरे नामसे भगवतीजीमें वर्णित श्रावकका जीव है। ग्यारहवां सुव्रत नामक तीर्थंकर दशार्ह सिंह, जो कृष्णकी माता देवकीका जीव ही होगा। वह अनन्तनाथके तुल्य होगा। बारहवां अमम नामक भगवन्त

नवमें वासुदेव कृष्णका जीव होगा । वह तेरवे विमलनाथ प्रभुके समान होगा । श्री समवायागसूत्रमें कहा गया है कि कृष्ण भावी चोवीसीमें तेरवे तीर्थकर होगे । तत्त्व बहुश्रुत जानते हैं ।

तेरवा निकषाय नामक तीर्थकर सत्य विद्याधरका जीव होगा । वह सुज्येष्टा साध्वीका पुत्र और जो लोकमे ११ वे रुद्र (महा शिव)के नामसे प्रसिद्ध था उसका जीव होगा । श्री समवायागसूत्रमे कहा गया है कि वो बारहवा तीथकर होगा । तत्त्व वो बहुश्रुत जानते हैं । वह प्रभु वासुपूज्य स्वामीके समान होगा । चौदवा तीर्थकर निष्पुलाक नामक बलदेवका जीव होगा । परन्तु यह बलभद्र कृष्णका भाई बलभद्र नहीं है, क्योंकि उस बलदेवके लिये श्री हेमचन्द्र सूरिजीने श्री नेमिचरित्रमें कहा है कि बलभद्रका जीव कृष्णके तीर्थमे सिद्धिको प्राप्त होगा । वह तीर्थकर श्रेयास प्रभुके सदृश होगा । पंदरवा तीथकर निर्मम नामक सुलसाका जीव होगा । इस सुलसा श्राविकाम प्रयोजन यह है कि जिसके प्रति श्री महावीर प्रभुने अंबडके मुखसे धर्मलाभ कहलाया था । वह प्रभु शीतलनाथके समान होगा । सोलहवा चित्रगुप्त नामक तीर्थकर बलभद्रकी माता रोहिणीका जीव होगा । वह सुविधिनाथके समान होगा । सत्तरवा समाधि नामक तीर्थकर होगा । वह रेवती श्राविकाका जीव होगा कि जिस रेवतीने बीजोरा पाक बहोरा कर गोशाल द्वारा की हुइ तेजो लेश्यासे श्री महावीर प्रभुके देहमें हुई व्याधिको शान्त किया था । वह तीर्थकर चन्द्रप्रभुके समान होगा ।'

अठारवा सवर नामक तीर्थंकर शताली श्रावकका जीव होगा जो सुपार्श्व प्रभु तुल्य होगा । उन्नीसवा यशोधर नामक तीर्थंकर द्वीपायनका जीव होगा जो पद्मप्रभुके समान होगा। यह द्वीपायन लोकमें वेदव्यासके नामसे प्रसिद्ध है। बीसवा विजय नामक परमेष्ठी कर्ण राजाका जीव होगा जो सुमति नाथके समान होगा । कई इस कर्णको पाण्डव-कौरवोंका भाई बतलाते हैं और कई उसको चम्पानगरीके पति वासुपूज्यके वंशज बतलाते हैं। तत्त्व तो केवली ही जान सक्ते हैं।

इक्कीसवा मह नामक तीर्थंकर नारदका जीव होगा जो अभिनन्दन प्रभुके समान होगा । कई इस नारदको भगवती सूत्रमें वर्णित निर्ग्रंथ बतलाते हैं और कई राम-लक्ष्मणके समयमें होने वाले नारदको बतलाते हैं। बाईसवा देव नामक तीर्थंकर अंबडका जीव होगा जो सभवनाथके समान होगा। श्री औपपातिकसूत्रमें जिस अंबडका वर्णन किया गया है वह तो महाविदेहक्षेत्रमें सिद्धि प्राप्त करेगा ऐसा कहा गया है, इससे यह अंबड सुलसाकी परीक्षा करने वाला प्रतीत नहीं होता । तत्त्व तो केवली ही जानते हैं। तेईसवा अनन्तवीर्य नामक तीर्थंकर अमरका जीव होगा जो अजितनाथजीके समान होगा । चोवीसवा भद्रंकर नामक तीर्थंकर बुद्धका जीव होगा । जो श्री ऋषभदेव प्रभुके[1] समान होगा ।

---

१ इन पूर्वभवके जीवोंके नाम श्री त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्रके १० वें पर्वमें कहे हुए नामोंसे बहुत भिन्न है अतः इसका खुलासा बहुश्रुत गुरु भगवन्तसे जान लेना। श्री लोकप्रकाशमें भिन्न भिन्न नाम आदि आधार सहित बतलाये गये हैं । ३४ वा सर्ग देखिये ।

इन सब तीर्थंकरोंके देह और आयुष्यका प्रमाण, कल्याणक तिथियें, लांछन, वर्ण और अंतर आदि पश्चानुपूर्वीसे वर्तमान तीर्थंकरोंके समान जानना चाहिये।

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ नवाधिकद्विशततमः प्रबन्धः ॥ २०९ ॥

व्याख्यान २१०

दीपोत्सवी पर्वका वर्णन

विश्वे दीपालिका पर्व, विख्यातं केन हेतुना ।
पृष्ट: संप्रति भूपेना-र्यसुहस्ति गुरुर्जगौ ॥ १ ॥

भावार्थ —"संप्रति राजाने जब श्री आर्यसुहस्तीसूरिजीसे पूछा कि लोकमें दीवालीपर्व किस हेतुसे प्रचलित हुआ है ?" तो उन्होंने जो उत्तर दिया वह प्रबन्ध इस प्रकार है कि —

उज्जयिनी नगरीमें बड़े संघसे परिवृत श्री आर्यसुहस्ती सूरिजीको राजमार्गमें जाते हुए देखकर संप्रति राजा उनके पास गया और गुरुको नमन कर पूछा कि, "हे पूज्य ! आप मुझे जानते हैं ?" गुरुने उत्तर दिया कि, "हे संप्रति राजा ! तुझे कौन नहीं जानता ? तू तो इस देशका स्वामी है।" राजाने कहा कि, "हे स्वामी ! इस सामान्य हेतुसे पहचानना मैं नहीं कहता, मैं तो यह पूछता हूं कि, क्या आप मुझे किसी और विशेष प्रकारसे जानते हैं ? इस पर दश पूर्वधारी गुरुने श्रुतज्ञानसे

बलसे उसके पूर्वभवके स्वरूपको जान कर कहा कि, "हे राजा ! तू पूर्वभवमें हमारा शिष्य था। मात्र एक दिनकी दीक्षाकी महिमासे तू यहां राजा हुआ है।" गुरुके इन वचनको सत्य समझ उसने कहा कि, 'हे स्वामी ! आपके प्रभावसे ही मुझे यह राज्य मिला है इसलिये अब आप इस राज्यको ग्रहण कीजिये और इसे ग्रहण कर मेरे पर अनुग्रह-कृपाकर मुझे अनृणी बनाइये।' ऐसा कह पैरोंमें गिर बार बार विज्ञप्ति करने लगा। इस पर गुरुने कहा कि, 'हे राजन् ! संयमरूप साम्राज्य सदृश यह राज्य नहीं है। अपितु जब तूने धर्मके योगसे यह राज्य प्राप्त किया है तो अब धर्ममें ही उद्यमरत हो।" इस प्रकार गुरुके कहने पर राजा धर्म करनेमें सावधान हुआ।

अन्यदा उसे संशय होनेसे उसने गुरुसे पूछा कि, "हे पूज्य ! जैन आगममें छः अट्ठाइका पर्व बतलाये गये हैं, तथापि लोकमें तथा जिनमार्गमें जो दीवालीका पर्व विख्यात है वह क्यों कर हुआ ? क्योंकि उस दिन तो लोग विविध वस्त्र पहिनते हैं और पशु, घर और हाटकी श्रेणी तथा वृक्ष आदिका शृंगार करते हैं।" गुरुने उत्तर दिया कि, 'हे राजन् ! सुन, श्री महावीर प्रभु प्राणत देवलोकसे चवे, जिनका च्यवन कल्याणक अषाढ मासकी शुक्ला छट्ठको हुआ। चैत्र मासकी शुक्ला त्रयोदशीकी मध्यरात्रिको उनका जन्म कल्याणक हुआ। तीस वर्ष गृहवासमें रह छट्ठका तप कर मिगशर कृष्णा दशमीको उन्होंने संयम ग्रहण किया। उस

उनको मनपर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ। फिर दुस्तप तपस्या करते हुए वैशाख मासकी शुक्ल दशमीको घातिकर्मोंके अभाव होने पर केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। कुछ न्यून तीस वर्ष तक केवलज्ञानके पर्यायसे युक्त रहे। अन्तमें श्री महावीर प्रभुने अपना आयुष्य अल्प जान अपापा नगरीमें आ हस्तीपाल राजा की सभामें अन्तिम चातुर्मास किया। उस समय अनेक भव्य जीवोंके संशयोंका निवारण कर भावी भावका स्वरूप कह सोलह पहर तक लोगोंकी अनुकम्पासे उन्होंने अन्तिम देशना दी। अपने निर्वाण समये प्रभुने उनके मुख्य गणधर गौतम स्वामीजीको देवशर्मा ब्राह्मणको प्रतिबोध करने भेजा। कार्तिक मासकी अमावास्याके दिन[1] छट्ठ तप कर प्रभु पर्यकासन पर बैठ। रात्रिके अन्तिम पहरमें स्वाति नक्षत्रके योग होने पर इन्द्रने प्रभुसे कहा कि, "हे भगवन्! आप एक क्षण आयुष्य बढाओ और आपके जन्म नक्षत्र पर संक्रमण होने वाले भस्मराशी ग्रहको देखो, कि, जिसकी दो हजार वर्षकी स्थिति है वह अभी ही बैठेगा। इससे आपके पश्चात् लोककी उन्नति नहीं होगी, परन्तु यदि आपकी पावनकारीदृष्टि उस पर गीरेगी तो उसके प्रभावसे उस भस्मराशी ग्रहका उदय निष्फल होगा।" प्रभुने उत्तर दिया कि, "हे इन्द्र! आयुष्य कर्मके पुद्गल जो पूर्वभवमें बांधे हो उसमें न्यूनाधिक करनेको श्री जिनेश्वर भी असमर्थ हैं। और नहीं होनेवाला भावी कुछ नहीं हो सकता और भावी भावका नाश भी नहीं हो सकता।" अन्त

---

[1] गुजरात देशमें कही जाने वाला आसो मासकी वदि अमवास्या।

समयमें प्रभुने पंचावन अध्ययन शुभ फल विपाकके कहे और पंचावन अध्ययन अशुभ फल विपाकके बतलाये। इसी प्रकार गणधर साधु या श्रावकोंका बिना पूछे ही मात्र लोगोंकी अनुकम्पाके लीये छत्तीस अध्ययन कहे। फिर श्री महावीर प्रभुने योग निरोध कर, शैलेशीकरण आचरण कर सिद्धि-गति रुप महलको प्राप्त किया। उस समय अति सूक्ष्म देख न सके ऐसे कुंथुवे अनेक उत्पन्न हो जानेसे अब संयम पालना कठिन होगा ऐसा ज्ञान अनेक साधुओंने अनशन ग्रहण किया। प्रभुके निर्वाण काल समय सर्व संघ नेत्रोंमे अश्रु भर इस प्रकार विलाप करने लगा कि, "हे जगद्बंधु! हे कृपासिंधु! आप दयालु रूपसे विख्यात हैं, फिर हमको महादुःख देकर आप महानन्दको क्योंकर प्राप्त हो गये? हे नाथ! आपके शरीर छोडते समय महा अधम नारकियोंको भी किंचित्मात्र हर्ष हुआ है फिर हमको रोदित क्यों करते हो? पुन हे त्रिविश्व आधार! हे कृपानिधि! हमारी एक विज्ञप्ति सुनों। आपको यहांसे जाते समय श्री संघका तुम्हारे प्रति अत्यंत राग और विविध प्रकारका अनुभाव तुमको विघ्नकारी क्यों नहीं हुआ? हे स्वामी! अब हम 'वीर! वीर! कह कर किसके पास पृच्छा करंगे और हमारे संशयोंको कोण टालेगे कि जिससे तुम हम-मुग्धोंको आश्वासन दे कर मोक्ष सिधाव गये? हे नाथ! इस समय इस पृथ्वी पर आप सदृश संघकी निःस्पृहपनसे सार संभाल करने वाला कोई नहीं है। अब भाव नेत्रको देने वाला और जीवोंका नायक ऐसे अमोघ तुम्हारे नामको कौन धारण करेगा? हे

आप हमारे त्राता हैं तो लोगोंके चित्तकी गतिको जानते हुये भी फिर हमारी उपेक्षा क्यों करते हैं ? अब मूर्तिमान् ज्ञान द्वारा ससारका स्वरूप हम किस प्रकार जानेंगे ?"

इस प्रकार जब लोग विलाप कर रहे थे, उस समय काशी और कोशल देशके चेटक राजाकी आज्ञामें रहने वाले नव मल्लकी जातिके तथा नव लच्छकी जातिके कुल अठारह राजा किसी कार्यके प्रसगसे वहा एकत्रित हो गये थे। उन्होने भी अमावस्याके दिन पौषध सहित उपवास कर जिनवाणी सुनी। रात्रिके समय श्री महावीर जिनके निर्वाण कल्याणक होने पर उन राजाओंने पीछली रात्रिमें श्री महावीर प्रभुरूप भावउद्योतके अस्त हो जानेसे व्याप्त हुए दोनों प्रकारके अधकारको सहन न कर सकनेसे द्रव्य उद्योत करनेवाले दीपक जलाये। तथा उसी प्रकार जाते आते देव देवियोंसे वह रात्रि ज्योतिर्मय हो गई। उस समय देवतागण अन्धकारको हरने वाले प्रकाशित रत्न हाथमें ले वहा आने लगे और प्रभुके प्रति कहने लगे कि, "हे प्रभु ! हम आपकी आरति उतारते हैं" इससे सर्व स्थलमें "मेआराइय"[1] (हमारी आरति) यह शब्द लोकोमें प्रसारित हो गया इसलिये लोग भी हाथमें दीपावली ले यह हमारी आरति है" इस प्रकार कहते हुए वहा आये। इस प्रकार परस्पर सर्व स्थलमें दीपक होने लगे। सर्व द्रव्यको उद्योत करने वाली दीप श्रेणिके करनेसे दीपोत्सवी नामक पर्व तभीसे लोकमें प्रवृत्त हुआ।

---

[1] मेआराइयका अपभ्रश मेराया है।

भस्मराशि ग्रह भगवन्तके जन्म नक्षत्रमें संक्रमित हुआ, तब ही से मिथ्यात्वी देवता आदि श्री महावीर भगवन्तके शासन प्रति दुष्टता करते हैं। उनके द्वारा किये दुष्ट फलका हनन करनेके लिये मेराया होने लगा अर्थात् "श्री महावीर प्रभुके संघकी शान्ति-पीडा दूर हो" इस धारणाको लेकर रूढीसे इस पर्वमें मेराया करनेकी विधि भी प्रवृत्त हुई।

अब देवशर्माको प्रतिबोध कर प्रभातमें श्री गौतमगणधर श्री महावीर प्रभुको वन्दना करनेके लिये जब उनके पास जानेको रवाना हुए तो मार्गमें कई निरुत्साही और निरानन्दी देव, मनुष्य और नारियोंको देख गौतमस्वामीजीने उनसे पूछा कि, "आप सब इस समय आनन्द रहित क्यों हो गये हैं?" इस पर देवताओंने उत्तर दिया कि, "श्री महावीर प्रभु स्वधाम-मुक्तिपुरीमें पधार गये इससे हम खेदित हैं।" यह सुन जिनके नेत्र स्तंभित हो गये हैं वे गौतमगणधर मनमें विचार करने लगे कि, "अहो! जगच्चक्षु श्री महावीर प्रभु चले गये? अब मुझ सदृश भिक्षुओंको इक्षु रस सदृश मीठी वाणीसे प्रतिबोध कौन देगा? हे नाथ! इस समय तुम्हारे द्वारा ही जीवित रहने वाले आश्रितको इस प्रकार दूर करना तुम्हें योग्य नहीं था। हे स्वामी! आप मुझे अन्य स्थानको भेज कर मोक्ष सिधार गये। यदि मुझे अपने पास रखा होता तो क्या मैं आपके वस्त्रका छोर पकड, बालचेष्टा करता? हे प्रभु! आप जब मोहादि महा योद्धाओंसे भी भयभीत नहीं हुए तो फिर मुझ जैसे अल्प शिशुसे क्यों भयभीत

हो गये ? अथवा क्या मेरे आनेसे मेरी अवगाहना द्वारा मोक्ष स्थान सांकड़ा हो जाता ? उस स्थानमें तो अनन्तगुण पर्याय वाले स्वस्व धर्मयुक्त अनेक जीव परस्पर बाधा संघट्ट विना रहते हैं और आगामी कालमें भी स्नेह वाले हैं ऐसी सिद्धिकी स्थितिका वर्णन तो आपने ही किया था। हे प्रभु! आपने सहसा वियोग क्यों किया ? हे वीतराग! आपके दर्शन विना मैं सब योनियोंमें अनन्त वार भटका हूं, इस प्रकार भटकते भटकते महा भाग्यके योगसे आपका दर्शन-संयोग प्राप्त हुआ है, तो फिर अब मेरा वियोग नहीं होना चाहिये। हे वीतराग! जिस समय आपको वन्दना करनेका महोत्सव मुझे प्राप्त हुआ वो दिन सफल था, और वो क्षण सर्व कामनाको पूर्ण करने वाला था। हे स्वामी! इस बालकको मिष्ट वचनसे लुभा तुम्हारा चला जाना योग्य नहीं था। अब 'हे गौतम!' ऐसे मधुर वचन द्वारा आपके आगमका रहस्य कौन बतलायेगा ? हे जिननाथ! मुझे दर्शन दो। अब विलम्ब करना आपको शोभा नहीं देता है। हे भगवन्! आपका आग्रह छोड़ दें, वरना आपकी तारक नामकी विख्याति क्योंकर घटित होगी ? हे प्रभु! अब मैं किसके चरणकमलको वन्दना करूंगा ? मैंने तो मेरा जीवन आपमें ही स्थापित किया हुआ था। परन्तु हे स्वामी! आपने मुझे युक्तिसे और विविध प्रकारके निश्चयसे आपका हो बना लिया था। अतः हे देव ? मेरी रक्षा करो।"

इस प्रकार प्रशस्त रागसे जिनका चित्त रञ्जित हो गया

है और जो क्षयोपशम भावसे रत्नत्रयीको धारण करते हैं ऐसे गौतमगणधर कुछ उपालभ देने बाद वीतराग शब्दके अर्थ पर विचार करते हुए क्षपकश्रेणीमें आरूढ हो केवलज्ञान प्राप्त किया । पूर्वमें केवलज्ञानके लिये अनेक उपाय किये थे परन्तु ऐसा भाव कभी प्राप्त नहीं हुआ था । अनन्तानन्त काल भटकते हुए यहां केवलज्ञान प्राप्त होने वाला हो उसी क्षेत्रमें और उसी कालमें जैसा भाव उत्पन्न हो सकता है। इसलिये इस समय उन्हें केवलज्ञान हुआ।

शक्रेन्द्र प्रथम श्री महावीर प्रभुका मोक्ष महिमा की और बादमें प्रात काल श्री गौतम गणधरका केवलज्ञान उत्सव किया । उस समय एक हजार आठ पत्र वाले सुवर्णके कमल पर पद्मासन पर बैठ स्फुरणायमान लब्धिसे विभूषित श्री गौतम स्वामीजीने धर्म देशना दी । श्री गौतमस्वामीजी द्वारा कहे सूरिमन्त्रके आराधक सूरि अब तक भी उस दिन श्री गौतम स्वामीजीकी भक्ति करते हैं।

श्री महावीर प्रभु रहित पृथ्वीको देख मोहरूपी महा चोर सब स्थान पर धर्मरूपी द्रव्यको लूटने लगा, जिसे देख केवलज्ञानको प्राप्त हुए श्री गौतम गणधरने उस चोरके प्रति यर्म कहा कि, "अरे मोह ! तू यह समझता है कि श्री महावीर प्रभु मोक्षमें चले गये हैं इसलिये अब मैं धर्मको लूट लूं ? परन्तु उनके द्वारा स्थापित धर्मराज्य पर मैं बैठा हु, जिसको क्या तू नहीं जानता ? अरे पापी ? तू अब मृत्युकी इच्छा करता है, अब तू कहां जायेगा ? कितनी

दूर भगेगा ? अभी लोग तुझ सोधनेका बहाना कर हाथमें दीपक ले अपने घरसे सुपडे द्वारा तेरे जैसे चोरको त्रासित कर निराल भगायेंगे।" भावार्थ इस प्रकार है कि दीपावली पर्वमें लोग मोह तथा अविरति रूप अश्मनको निकालते हैं और श्री गौतमस्वामीजीको प्राप्त हुई ज्ञानरूपी लक्ष्मीको अपने मन्दिरमें स्थापित करते हैं।

इस दीपावली पर्वके दिनोंमें एक उपवास करनेसे सहस्र गुणा पुण्य होता है और यदि कोई अट्ठम तप करे तो कोटि गुणा पुण्य होता है, कारण कि दिवाली पर्वके दिनोंमें सर्व लोक पांचेन्द्रियोंको सुखके विशेष अभिलाषी होते हैं। महान कर्मबंधके कारण रचते हैं और भोगोत्सुक होते हैं, उन दिनोंमें इन्द्रियोंके भोगोंका त्याग कर परमार्थ जानने वाले और धर्म सेवन करने वालेको महा लाभ होना प्रत्यक्ष ही है।

इस पर्वमें चतुर्दशी और अमावस्या इन दो दिनोंमे सोलह पहरका पौषध करना अथवा दो उपवास कर चन्दन अक्षत आदिसे और कोटि पुष्पसे श्री महावीर प्रमुख जिनेश्वरकी तथा पैंतालीस आगमकी पूजा करनी चाहिये और "श्री महावीर स्वामी सर्वज्ञाय नमः" इस मन्त्रका जाप करना चाहिये। अमावस्याकी रात्रिके अन्तिम अर्द्ध पहोरमें "श्री महावीर पारंगताय नमः" इस मन्त्रका जाप करना चाहिये और एकमके प्रभातमें "श्री गौतमस्वामी केवलज्ञानाय नमः" इस मन्त्रका जाप करना चाहिये। एक हजार पांखडी वाले सुवर्णके कमल पर पद्मासन लगा बैठे हुए श्री

भगवन्त द्वारा दीक्षित पचास हजार साधु साध्वी तथा अपने पुत्रे द्वारा दीक्षित स्वाध्याय मुनियोंकी पर्षदासे युक्त गौतम स्वामीका। जिसमें स्मरण करना चाहिये तथा श्री प्रभुके समक्ष और श्री गौतमस्वामीके सामने पचास हजार अखण्ड अक्षत द्वारा स्वस्तिक कर, अखण्ड दीपक जला श्री गौतमस्वामीजीका ध्यान करना चाहिये, कि जिससे महाफल होता है।"

इस प्रकार श्री आर्यसुहस्तिसूरिजीने सम्प्रति राजाके समक्ष उपदेश दिया जिसे सुन सम्प्रति राजा भी दीवाली पर्वके आराधनमें तत्पर हुआ।

" जिस पर्वमें श्री वर्द्धमानस्वामीजी मोक्षको प्राप्त हुए और श्री गौतमस्वामीजीने केवलज्ञानकी लक्ष्मी प्राप्त की, तथा जिस दिन राजाओंने दीपमाला रची उस दीपवाली पर्व सदृश दूसरा कोई पर्व इस पृथ्वी पर नहीं है।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशसंग्रहाख्यायामुपदेशप्रासादवृत्तौ चतुर्दशस्तंभे दशाधिकद्विशततम प्रबंध ॥ २१० ॥

—○—

श्री उपदेशप्रासाद ग्रंथे स्थंभ १४
इति चतुर्दश स्तंभ समाप्त.

(चौदहवां स्तंभ समाप्त हुआ)

यहां तीसरा भाग भी